आधुनिक हिन्दी-महाकाव्य में नायक-निरूपण

(सन् १६१०—सन् १६६०)

•

प्रयाग-विश्वविद्यालय की डाक्टर आफ फिलासफी की उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

•

निर्देशक

श्री डा० रामकुमार वर्मा 'पद्मभूषण'

प्रेम मोहिनी सिनहा
एम्० ए०

१६६५

इलाहाबाद

गुरवेनमः

प्राक्कथन

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबंध में 'आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों में नायक -निरूपण' विषय पर कार्य किया गया है । विषय की सीमा सन् १९१० से सन् १९६० तक के प्रमुख महाकाव्य हैं । इस प्रकार प्रबंध में 'प्रिय प्रवास' से 'एकलव्य' तक के बीच की अवधि में रचे गये महाकाव्यों के नायकों की विवेचना की गई है । साथ ही संस्कृत-साहित्य तथा पाश्चात्य साहित्य के अनुसार महाकाव्य के स्वरूप विधान पर विचार किया गया है । कहना न होगा कि रसानुभूति और ब्रह्मानंद की दृष्टि से साहित्य-जगत् में काव्य का रूप सर्वोत्कृष्ट है तथा विवेचना की दृष्टि से वह गंभीर तथा दुरूह है ।

आधुनिक हिन्दी के प्रमुख महाकाव्यों का विस्तृत विवेचन शोध-ग्रंथ में करने का प्रयास किया गया है । संस्कृत लक्षण ग्रन्थों तथा पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन के पश्चात् कहा जा सकता है कि ये महाकाव्य पौरस्त्य और पाश्चात्य सिद्धान्तों की संधि में निर्मित हुए हैं क्यों कि आधुनिक महाकाव्यकारों ने महाकाव्य के रूढ़िगत लक्षणों को पूर्णरूपेण नहीं अपनाया तथा नायक को विभिन्न दृष्टिकोणों से आंकने का प्रयास किया है ;'प्रिय-प्रवास' में कृष्ण को लोक-सेवक के रूप में चित्रित किया है,गांधी को राष्ट्र-नायक के रूप में प्रस्तुत किया है । नायक के व्यक्तित्व का विस्तृत विश्लेषण ग्रन्थ में करने का प्रयत्न किया गया है । संस्कृत महाकाव्यों का अध्ययन करने का भी मैंने उपक्रम किया है, उसमें अधिकांश महाकाव्यकारों ने परंपरागत सिद्धान्त केअनुसार नायक का सृजन किया है ,यह अवश्य है कि उनकी कोटियां बनाई जा सकती हैं । महाकाव्य का रचना-वैभव संस्कृत साहित्य में प्रचुर रूप से पाया जाता है ।महाकाव्यों को इससे सामग्री ही नहीं प्राप्त हुई, वरन् हिन्दी-महाकाव्य समृद्ध भी हुआ है ।

प्रबंध की अवतरणिका में जीवन और साहित्य के अन्योन्याश्रित संबंध पर विचार किया गया है,साहित्य में भावनाओं और कल्पनाओं की असीम

पृष्ठभूमि है, निर्फरिणी की भांति प्रगतिशीलता है, इसके उल्लेख के साथ ही साहित्य में काव्य की स्थिति, काव्य की परिभाषा, काव्य के भेद और महाकाव्य में नायक की स्थिति, नायक के अध्ययन की आवश्यकता पर दृष्टि डाली गई है । जीवन की घनीभूत निगूढ़ अनुभूतियों को अपने कहाकलेवर में समेट कर महाकाव्य का नायक युग के समक्ष आता है । प्रथम अध्याय में पौरस्त्य तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार महाकाव्य के स्वरूप विधान का वर्णन किया गया है । संस्कृत के प्रमुख आचार्य भामह, दंडी, रुद्रट, विश्वनाथ आदि के सिद्धान्तोंका निरूपण किया गया है । पाश्चात्य महाकाव्यों का संक्षिप्त विवरण देते हुए उसमें नायक के चरित्र का अवलोकन किया है । द्वितीय अध्याय में नायक की परिभाषा, नायक के गुण तथा कार्य की व्याख्या की गई है । मानवता की उच्च भूमि पर पहुंचा महान् पुरुष वही है जिसके व्यक्तित्व में प्राणिमात्र का समाहार हो जाय । प्राचीन आचार्य महाकाव्य के नायक का धीरोदात्त गुणों से सम्पन्न होना अनिवार्य मानते हैं । इसमें नायक के भेद, उपभेदों का विस्तृत विवेचन किया गया है । साथ ही हिन्दी के लक्षण ग्रन्थों के अनुसार भी नायक को परिभाषित किया गया है । तृतीय अध्याय में संस्कृत के महाकाव्यों में नायक के विविध गुणों का विश्लेषण किया गया है क्योंकि हिन्दी-महाकाव्य संस्कृत के विशाल साहित्य से प्रभावित है । चतुर्थ अध्याय में प्राचीन हिन्दी महाकाव्यों के ~~नायक~~ नायक -निरूपण का तुलनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है और उसमें नायक की लोकोत्तर प्रतिभा को व्यंजित किया गया है । महाकाव्यकार सत्य, न्याय की सुरक्षा के लिए नायक का निर्माण करता है । महान् गुणों से सम्पन्न नायक मानव कल्याण के लिये प्रयत्नशील रहता है । पंचम अध्याय में आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों के नायक के वैविध्य का निरूपण किया गया है तथा नायक के व्यक्तित्व का सूक्ष्म विवेचन करने का प्रयास किया गया है । राम कृष्ण आदि के अलौकिक स्वरूप

को परिवर्तितकरके आधुनिक महाकाव्यकार ने बुद्धिग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया है और इन्हें लोकसेवी, विश्वकल्याणकारी महापुरुष के रूप में चित्रित किया है । षष्ठ अध्याय में नायक के कार्य और व्यक्तित्व के अनुसार कोटियों की नवीन योजना प्रस्तुत करने का प्रयत्न है । नायकों ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रोंको विभिन्न दृष्टि-कोण से स्पर्शकिया है इस संबंध में विचार किया गया है । सप्तम अध्याय में महाकाव्य का नायक देश,काल से किस प्रकार प्रभावित रहता है,इसका चित्रण किया गया है ।इसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नायक के चारित्रिक विकास का महत्व समाज की व्यवस्थापना से नायक का संबंध,नायक का पुरुषार्थ के बल पर चारित्रिक दृढ़ता को अक्षुण्ण बनाये रखना तथा नायक के व्यक्तित्व का आदर्शोन्मुख और यथार्थोन्मुख सूत्रपात होना-जैसे सूक्ष्म एवं गहन तत्वों पर प्रकाश डाला गया है । अंतिम अध्याय में नायक-निरूपण की उपलब्धियों को निष्कर्षत: आलोकित किया गया है । मानवता के उदात्त दृष्टिकोण की स्थापना के लिए महाकाव्यकार नायक का निर्माण करता है, और सत्य ,धर्म की प्रतिष्ठापना करता है, नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जीवन की विषम परिस्थितियों में सन्नद्ध रहने की प्रेरणा देता है।समाज में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का प्रवर्तक नायक त्याग से संसार का उपभोग करने का आदर्श प्रस्तुत करता है,इन उपलब्धियों की विस्तृत रूप से विवेचना की गयी है । इस प्रकार प्रबन्ध को समग्र रूप से पूर्ण बनाने का उपक्रम किया गया है ।

वक्तव्य का अंत करने से पूर्व उन व्यक्तियों के प्रति आभार - प्रदर्शन करना आवश्यक है जिनके सहयोग के अभाव में प्रबन्ध को रूपायित करना कदाचित् असंभवप्राय था ।

सर्वप्रथम वीतराग,तपोनिष्ठ गुरुदेव श्री नारायण महाप्रभु के चरण-कमलों में कोटिश: प्रणाम अर्पित करती हूं जिनकी असीम कृपा से मेरी

साधना के बिखरे हुए पुष्प प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में एकत्रित हो सके हैं। उन्हींकी सत्प्रेरणा से मुझे आचार्य श्री डा० रामकुमार वर्मा `पद्मभूषण` की छाया में यह शोध कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।गुरुदेव डा० रामकुमार वर्मा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना गुरुत्व के प्रति अपमान होगा । गुरु की अनुकम्पा से कोई उऋण नहीं हो सकता और गुरुकृपा आध्यात्मिक तत्व के द्वारा पल्लवित तथा पुष्पित होती है । गुरु-ऋण से कोई एकलव्य ही मुक्त हो सकता है । मैं अकिंचन गुरु-चरणों में प्रणाम अर्पित करती हूं जिनकी कृपा-दृष्टि से इस गृहस्थ जीवन में सभी उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए भी शोध के गुरुतर कार्यको पूर्ण करने में सफल हो सकी हूँ । मैं जब भी सन्मुख आने वाली विषमताओं से विचलित होने लगती थी मेरे आचार्य डा० रामकुमार वर्मा की आश्वासनयुक्त वाणी सहायक एवं पथ-प्रदर्शक होती थी । स्नेही राजलक्ष्मी वर्मा(मुन्नी रानी) का परामर्श मेरे लिए लक्ष्य बन सका । वह निरन्तर कहा करतीं जिस कार्य को आरम्भ करें उसे समाप्त करके दूसरी ओर ध्यान देना चाहिए । इस प्रकार वह शोध-कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती रहीं । अवस्था में छोटी विवेकमें बड़ी मुन्नी रानी को हार्दिक स्नेह और धन्यवाद—दोनों ।

मैं अपने प्रिय बन्धु डा० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव प्राध्यापक हिन्दी-विभाग,प्रयाग-विश्वविद्यालय , के प्रति अत्यन्त ही कृतज्ञ हूं जिन्होंने अपने परिष्कृत विचारों द्वारा मुझे सदैव सहायता दी और जब भी कोई असुविधा हुई उन्होंने अपने आवश्यक कार्यों की चिन्तान करके मुझे अपना अमूल्य समय दिया । प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय की उदारतापूर्ण सुविधा केलिए मैं सहायक पुस्तकाध्यक्ष श्री त्रिवेदी जी तथा श्री चन्द्रप्रकाश जी हेड आफ़ दी इशू डिपार्टमेंट की सदैव आभारी हूं । पूज्य पिता श्री सहतबहादुर एडवोकेट की कृपा-दृष्टि है जिसके द्वारा मुझे शोध कार्य की प्रेरणा मिली उसे शब्दों में व्यक्त कर सकना मेरे लिये संभव नहीं । मैं श्री विश्वनाथ प्रसाद सिन्हा एडवोकेट के प्रति सदैव आभारी हूं जिन्होंने मुझे शोध-कार्य के लिए

उत्साहित ही नहीं किया वरन् प्रत्येक प्रकार की सुविधा दी ।

शोध-प्रबंध का टंकण सुरुचिपूर्ण और कलात्मक रूप में हो सका है इसका श्रेय श्री रामलखन द्विवेदी को है, जो टंकण को एक कला के रूप में ग्रहण करते हैं । टंकित प्रतियों के मिलने में मुझे मेरी नंद कुमारी उषारानी से सहायता मिली उसके लिए उन्हे मेरा स्नेह । गुरुकृपा से यह शोध-प्रबन्ध समाप्त हो सका अत: उनके चरणाम्बुजों में मेरा कोटिश: प्रणाम ।

प्रेममोहिनी सिनहा

(प्रेम मोहिनी सिनहा)
एम०ए०

विषय-सूची

श्री गुरवेनमः

अवतरणिकाः-

1- जीवन और साहित्य

2- साहित्य में काव्य की स्थिति

3- काव्य की परिभाषा

4- काव्य के भेद (पाश्चात्य तथा पौरस्त्य दृष्टिकोण से)

खण्डकाव्य , चम्पू , महाकाव्य ।

5- महाकाव्य की दृष्टि

6- महाकाव्य में व्यक्तित्व निरूपण और नायक की स्थिति

7- महाकाव्य में नायक के अध्ययन की आवश्यकता ।

जीवन और साहित्य

साहित्य में सार्वभौम जीवन की अभिव्यक्ति होती है। मानव के भावों, विचारों, अनुभूतियों और आदर्शों की रक्षा का उपयुक्त साधन साहित्य ही है यह अवश्य है कि जातीय जीवन की विविध कालीन भिन्न भिन्न दशाओं का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

आज हिन्दी साहित्य बहुत विशाल समृद्ध और व्यापक रूप धारण कर चुका है, विविध साहित्यकारों की लगभग पिछले एक हज़ार वर्षों की सतत साधना के फलस्वरूप वह प्रगति के पथ पर अग्रसर है। साहित्यकार अपने अंतराल में निहित रहस्यमय शाश्वत सत्य के द्वारा मानव हृदय की गहनता में प्रवेश करता है और अपनी अनुभूतियों के द्वारा कल्पना के पंखों पर उड़ कर उन सारभूत तत्वों की खोज करता है जो समष्टि का आधार स्तम्भ है, इसी सामग्री के संचयन के द्वारा हमारा साहित्य समृद्ध होता है।

साहित्य मानव की संवेदनाओं का सार है और कलात्मक रूप में अभिव्यक्ति करण है, उसमें भावनाओं -- और कल्पनाओं की असीम पृष्ठभूमि है निर्झरिणी की भांति प्रगतिशीलता है और हृदय को शांति देने वाली निर्मलता तथा पवित्रता है आह्लाद तथा आनंद है। जिस प्रकार एक नदी अपने प्रवाह के अनुकूल तटों का निर्माण कर लेती है उसी प्रकार साहित्य अपने जीवन की अनुभूतियों में सिद्धान्तों का निर्माण करता है सिद्धान्त और नियम साहित्य का निर्माण नहीं करते। जीवन की संवेदना प्रमुख है सिद्धान्त गौण।

साहित्य की परिभाषा पर शताब्दियों से विचार होता आ रहा है किन्तु किसी भी वस्तु का निश्चित और निभ्रान्त रूप प्रस्तुत करना दुरूह है। साहित्य तो अजस्र और अनंत वैचित्र्य का स्रोत है। विद्वानों ने उसकी संज्ञा पर विचार करने के लिए कुछ अंश को सीमा में बांधने का प्रयत्न किया है, मानव प्रवृत्ति ऐक्यान्वेषी है वह साहित्य में निहित सम्पूर्ण वैचित्र्य में से एक तत्त्व को ग्रहण कर अन्वेषण करती आई है।

जैसा ऊपर कहा गया है साहित्य के मूल्यांकन में जीवन की संवेदना प्रमुख हो जाती है और सिद्धान्त गौण । जीवन की परिस्थितियों के कारण साहित्य की प्रवृत्ति में परिवर्तन हो जाता है पर उतनी ही शीघ्रता से सिद्धान्तों का परिवर्तन नहीं हो पाता और वह स्थिर रहता है । यह स्थिरता साहित्य की विकासोन्मुख गति को कैसे आंक सकती है क्योंकि संसार चाहे कितना ही परिवर्तित हो जाय, जीवन का दृष्टिकोण जो भी हो जाय, रस की अनुभूति का केन्द्र मानव मन अंतत: एक-सा ही रहेगा । रस से सम्बन्धित काव्य की परिभाषा साधारणीकरण के क्षेत्र में एक-सी रहेगी ।

साहित्य राष्ट्र की तपस्या है, वह जीवन के अनन्त प्राणियों की सिद्धि,समस्त संवेदनाओं का सार रूप है । वह केवल आज का मनोरंजन नहीं वरन् कल का संबल भी है । अत: उसमें जीवन का ऐसा परिष्करण या ऊर्जस्वीकरण है जिससे मनुष्य को भविष्य में बल मिल सके । साहित्य के अमरता की कसौटी उसमें अन्तर्निहित शाश्वत सत्य है,सहस्त्रों वर्ष पूर्व उत्पन्न साहित्यकारों की कल्पना और उदात्त भावना आज भी हमारे हृदय के तारों को झंकृत कर देती है क्यों कि उसमें अनंत के मूक संदेश का संगीत भरा रहता है । साहित्यकार की बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियों में ऐसा प्रकाश निहित है जो चिरन्तन काल से एक समान रहने वाले मानव हृदय को आलोकित कर देता है ।

साहित्य युग विशेष का होने पर भी युगयुगान्तर का होता है । सत्य के गहनतम तत्वों का चित्रण, अंतस्तल के उद्गारों और विचारों का जाति के साथ संबंध स्थापित करने का दृष्टिकोण संसार के साहित्य में लगभग समान है । साहित्य में छिपे शाश्वत सौन्दर्य और अनिर्वचनीय आनन्द की उपलब्धि सभी देशों के वाङ्मय में न्यूनाधिक मात्रा में समान रूप से पाते हैं ।

साहित्य में काव्य की स्थिति :-

शब्द और अर्थ का योग साहित्य की सृष्टि अवश्य करता है, किन्तु यह आवश्यक है कि वह अपनी अनुभूतियों के द्वारा उस चिरन्तन सत्य को पहिचान ले जो वास्तव में एक होकर भी अनेक रूप से अभिव्यक्त होता है । अंतरतम में

उठने वाली तरंगों से जब हृदय का सत्य उद्वेलित होकर वाह्य जगत् में प्रकट हो जाता है तब एक संवेदनात्मक भावाभिव्यक्ति होती है वही साहित्य की सृष्टि करता है।

साहित्य के मूल स्रोत का संबंध मनोभावों से है परन्तु भाषा रहित साहित्य न स्थिर है न ही स्थायी। हमारा सम्बन्ध ऐसे साहित्य से है जो भाषा के रथ पर चढ़ कर विश्वविजय की कामना लिए अग्रसर होता है वही विश्व जो वहिर्जगत की अपेक्षा अंतर्जगत में अधिक व्याप्त है।[1]

आचार्य कुन्तक[2] का मत है कि शब्द और अर्थ का जो शोभाशाली सम्मिलन होता है वही साहित्य है अर्थात् काव्य मर्मज्ञों को आनन्द देने वाली सुन्दर:वक्र: कवि व्यापार युक्त रचना :बन्ध:में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर :सहित रूप में: काव्य कहलाते हैं।

साहित्य की संवेदनाओं को व्यक्त करने में काव्य सबसे बड़ा साधन है। विश्व के लगभग सभी साहित्यों का प्रारम्भ काव्य से ही हुआ है। संस्कृत-साहित्य आदि कवि की वाणी में मुखरित हुआ उसी प्रकार हिन्दी साहित्य सिद्धों और नाथों की आध्यात्मिक पदावलियों से ही अपना रूप निर्मित कर सका। अत: काव्य की सरणियों में जीवन निहित संवेदना अधिक से अधिक प्रखररूप में अभिव्यक्त होती है। वस्तुत:यह काव्य ही साहित्य की प्रमुख संवेदनाओं का प्रतीक है, इस काव्य की अनन्त सम्भावनाओं में ही महाकाव्य का अवतरण होता है पहले काव्य का वास्तविक रूप निर्धारण आवश्यक है।

१- साहित्य शास्त्र, पृ० १६ - डा० रामकुमार वर्मा

२- शब्दार्थौ सहितौ वक्र कवि व्यापार शालिनि
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यंतद्विदाह्लादकारिणि।कुन्तक, वक्रोक्तिजीवित, पृ०१६

व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर
हिन्दी अनुसंधान परिषद्,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
संपादक- डा० नगेन्द्र

काव्य की परिभाषा :-

कवि संयम, विवेक और आह्लादिनी शक्ति के द्वारा कल्पना के लोक में विचरण करता है, उसका संसार अनोखा है, सामान्य दृष्टि से परे है। कवि का लोक एक विचित्र लोक है। कलाकार की कलाकारिता सत्य और शिव स्वरूप होने के कारण यथार्थ है। कवि की आंतरिकता ही उच्च काव्य का निर्माण करती है। जीवन के परिपूर्ण क्षणों में होने वाली स्वानुभूतियों को भाषाबद्ध करने को व्याकुल कवि-हृदय ही उत्तम काव्य की रचना करता है।

भारतीय वाङ्मय में काव्य को सर्वाधिक महत्त्व मिला है। काव्य का इतना व्यापक प्रसार है कि भारतीय आचार्यों ने अत्यन्त प्राचीनकाल से काव्य का बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने सभी आचार्यों के लक्षणों का सार लेकर अतिव्याप्ति दोष से बच कर काव्य का निर्दोष लक्षण निर्धारित किया है 'रसात्मकलोकोत्तरानन्ददायकवाक्यं'[१]। काव्य का रस अलंकार वस्तुएं महाकवि के एक प्रयत्न से सिद्ध हो जाते हैं।

काव्य में समाधि की आवश्यकता है योग में ही नहीं, काव्य कर्म में कवि की समाधि ही प्रधान है।[२]

काव्य परमात्मा के सदृश अनंत है, उसका स्वरूप निश्चित करना एवम् उसका परिचय शब्दों में व्यक्त करना सरल नहीं है। काव्य का आनंद ब्रह्मानन्द के समान कहा गया है।

कवि काव्य संसार का ब्रह्मा है, यदि कवि शृंगारी है तो संसार रसराज-संपन्न है, कवि विरागी है तो उसका संसार निर्वेदमय। कवि अपने जगत् का स्वयं निर्माता है। कवित्व शक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसी कृति तो विरले ही कोई रचते हैं जो सर्वजन के हृदय में प्रवेश कर स्थायी प्रभाव डाल सके और सहृदय जन उसका आनन्द उठा सकें। कवि में ऐसी अलौकिक शक्ति होती है जिसमें वह मनुष्य के भाव

१- साहित्यदर्पण, पृ० ५

२- 'काव्य कर्मणि कवेः समाधिः परं व्याप्रियते।' - काव्यमीमांसा

जगत् में एक युगान्तर पैदा कर देता है, आनन्द और मंगल के गीत भर देता है जिसकी ध्वनि मानव को कल्याण-पथ पर अग्रसर करती है। यही शाश्वत काव्य का गुण है।

संस्कृत के सभी आचार्यों ने काव्य की परिभाषाएं अनेक प्रकार से की है। आचार्य भामह[1], दण्डी[2], आनन्दवर्धन[3], पं०राज जगन्नाथ[4], आचार्य विश्वनाथ[5], मम्मट[6] ने रस एवं रमणीय अर्थ के प्रतिपादन को ही काव्य की संज्ञा प्रदान की है। रस की विवेचना चाहे जिस रूप में की जाय, वह जीवन का उदात्त चित्रण करने में सब से महान् शक्ति कही जासकती है। अत: हृदय का रस सिक्त होकर रमणीय अर्थ की अभिव्यक्ति करना यही काव्य की सर्वमान्य भूमिका प्रस्तुत करती है।

काव्य में सौन्दर्य :-

कवि की महत्वाकांक्षा अंतरतम में व्याप्त सौंदर्य की प्रेरणा का उत्स है। जगत में व्याप्त असीम अनुभूति कवि के नेत्रों में आलोक बन कर छा जाती है, इसके द्वारा काव्य में एक शाश्वत सौन्दर्य का सन्निवेश होता है। यही चिरन्तन सौन्दर्य सत्यं शिवं की चरम परिणति है। कवि की सुंदरम् की भावना सत्य बन कर अन्तर्जगत् के सौन्दर्य को बिखेरती है तभी काव्य का शृंगार होता है तथा शिव तत्व का रूप सौन्दर्य में समाविष्ट हो जाता है और हमारे प्राणों से प्राण मिलाकर हमें ऐसे लोक में पहुँचा देता है जहां एक अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है। सृष्टि की क्रीड़ास्थली में दृश्यमान वस्तुओं का नित्य निर्माण

१- शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् - भामह, काव्यालंकार

२- तै: शरीरं च काव्यानामलंकाराश्चदर्शिता:
शरीरं तावादिष्टार्थव्यच्छिन्नापदावली। -दण्डीकाव्यादर्श

३- काव्यस्यात्मा ध्वनि: ।आनंदवर्धन-ध्वन्यालोक, पृ०२-
आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि :संपादक-डा० नगेन्द्र, एम०ए०डी०लिट्, गौतम बुक डिपो

४- रमणीयार्थ प्रतिपादक:शब्दकाव्यम्। -जगन्नाथ -रसगंगाधर

५- रसात्मकं काव्यम् - विश्वनाथ-साहित्यदर्पण

६- तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन:क्वापि -मम्मट -काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, अनुवादक-स्वर्गीय पंडित हरिमंगल मिश्र, एम०ए०, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

और नित्य संहार होता है वहां कवि चिन्मय आनंद का, शाश्वत सत्य का दर्शन करता है। कवि की सौन्दर्य चेतना इतनी सूक्ष्म है कि अपनी अभीप्सित संपूर्णता में ही लीन रहने के लिए सचेष्ट रहती है।

रावर्ट ब्रिजेज ने भी कहा है " सौन्दर्य उसकी सर्वोत्कृष्टता का मौलिक उद्देश्य, लक्ष्य तथा शान्तिपूर्ण आदर्श है। सौन्दर्य से हम ज्ञान पर जाते हैं किन्तु तर्क से कभी सौन्दर्य नहीं पाते।"

यह सत्य है कला और सौन्दर्य का उपासक मानव विश्व में अन्तर्निहित सौन्दर्य की राशि को एकत्रित कर आध्यात्मिक लोक की झांकी देखता है।

कवि की दृष्टि :-

कला मानवीय मनोवेगों को अनुप्राणित और तरंगित करने वाली रहस्यमयी शक्ति है। कवि की कला अमर है। जगत् के जिस दृश्य की ओर साधारण दृष्टियां जाकर शून्य भाव से पुन: लौट आती हैं वही कवि के भाव जगत् को प्रकाशोन्मुख करती हुई उसे स्वर्णिम बना देती है और चिरंतन आनन्द चिन्मय अनुभूतियों से भर देती है। कवि की अनुभूतियों की परिधि व्यापक है। वह दृश्य जगत् की साधारण छवियों में अपने ज्ञान और विज्ञान के द्वारा ऐसी वृत्तियों का समावेश करता है कि उस रस से स्वयं विभोर हो उठता है और जीवन वीणा पर ऐसी उन्मद स्वर लहरी छेड़ देता है जिसमें लीन होकर सृष्टि को भी मदविह्वल बना देता है; नील नभ में बिखरे हुए नक्षत्र जो सामान्य दृष्टि में केवल जुगनू-से प्रतीत होते हैं। रंगविरंगे पुष्प जो मुरझा कर गिर जाते हैं कवि के अन्तस्तल में न जाने कितनी मादक और कोमल भावनाओं को जाग्रत कर देते हैं।

कवि अपनी विलक्षण बुद्धि और अनुभूतियों के द्वारा मानव के अंतस्तल में प्रवेश कर ऐसे सत्य को प्रकट करता है जिसमें हम खो जाते हैं कवि की रहस्यमयी दृष्टि इतनी व्यापक है कि उसके द्वारा वह विश्व प्रांगण की समग्रता को पल भर में समेट लेता है। कवि की दृष्टि की परिधि सागर में विश्व डूबता और उतराता है रहता है उसकी दृष्टि जगत् से परे कुछ भी अवशेष नहीं।

अब संक्षिप्त रूप से काव्य के प्रमुख तत्वों पर विचार किया गया है और उसमें

पाश्चात्य विद्वानों तथा पौरस्त्य आचार्यों के सिद्धान्तों का निरूपणकिया गया है क्योंकि इस क्रमिक रूपरेखा से हमारे सन्मुख साहित्य काव्य और महाकाव्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है और उसमें नायक निरूपण के विषय को उभारने तथा विवेचन करने के लिए उपयुक्त क्षेत्र उपस्थित हो जाता है ।

काव्य के भेद :--

पाश्चात्य दृष्टिकोण से काव्य के तत्व --

पाश्चात्य विद्वानों ने भी काव्य के स्वरूप की विवेचना करते हुए इसकी भिन्न भिन्न परिभाषाएं निश्चित की हैं । जानसन[१], कार्लाइल[२], शैली[३], हैजलिट[४] वर्ड्सवर्थ[५], मैथ्यू आर्नोल्ड[६], रस्किन[७] का मत भिन्न भिन्न है । पश्चिमी आचार्यों ने काव्य को प्रमुख चार तत्वों में विभाजित किया है, वह इस प्रकार है --

१- भाव - इसका संबंध रागात्मक तत्व से है, इसके अन्तर्गत कविता केप्राण स्वरूप

---

1. Poetry is metrical Composition ---Johnson
2. Poetry we will call musical thought ---Carlyle
3. The poet has essentially the character of a Prophet
   The poet Defence
   Shelly
4. H (Poetry) is the language of the imagination & passions ------- Hazli
5. Poetry is the spon_taneous overflow and powerful feelings -----------Words worth
6. Poetry is at bottom & criticism of life--Mathew Arnold
7. Poetry is the suggestion by the imagination of noble grounds for the noble emotions ------- Ruskin

-हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य-डा० गोविंदराम शर्मा -थीसिस

- पृ० २०-२१

रस की अभिव्यक्ति से होने वाले एक अलौकिक आनन्द का वर्णन आता है। अनुभूति क और अभिव्यक्ति के अन्तर्गत भाव तत्व आ जाता है वहां[1] नये ने काव्य में भाव को ही प्रमुखता दी है। शान्ति के समय प्रभावपूर्ण भावों का स्वतंत्र तथा प्रबल प्रवाह यही काव्य है जिसकी अभिव्यक्ति रागात्मक तत्व को स्फुरित करती है। पश्चिमी आचार्यों की प्रवृत्ति दर्शन और मनोविज्ञान की ओर अधिक उन्मुख है और उन्होंने भावाभिव्यक्ति को प्रधानता दी है।

२-कल्पना- इसमें अभिव्यक्ति की प्रधानता है तथा यह तत्व काव्य में निहित विचारों को सुन्दर और मर्मस्पर्शी बनाने में समर्थ होता है। कवि अपनी लेखनी के द्वारा काल्पनिक भावनाओं में प्राण की संजीवनी फूंक देता है और अमूर्त को मूर्त करता हुआ नाना प्रकार के चित्रपट प्रस्तुत करता है। अपनी अनुभूतियों और अन्तर्दृष्टि के द्वारा कवि ऐसे जगत् का निर्माण करता है जो कल्पना का आधार लेने पर भी यथार्थ के सदृश्य ही प्रकट होता है। कवि अरूप और अदृश्य को भी अपनी कल्पना के द्वारा साकार कर देता है। काव्य जगत् में कल्पना तत्व का अत्यधिक महत्व है। कल्पना के संसार में कुशल कवि ही वास्तव में महाकवि होता है।

हडसन ने भी कहा है" कविता कल्पना और मनोवेगों द्वारा जीवन की व्याख्या करती है कवि की कल्पना शक्ति उसके कौशल और चातुर्य की कसौटी है जो हमारे सन्मुख यथार्थ की रूपरेखा के सदृश्य ही प्रकट होती है।"

३- बुद्धि - बुद्धि तत्व का संबंध उन विचारों से है जिनके कारण काव्य में सत्य का अंश सुरक्षित रहता है। यह भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों की उचित परिधि को निर्धारित करता है। हमारे हृदय में उठने वाली तरंगों, नेत्रों के सन्मुख नाचने वाले काल्पनिक चित्रों, विषय के प्रतिपादन की रूढ़ियों में सामंजस्य की प्रतिष्ठा बुद्धितत्व के द्वारा ही होती है। इसी कारण पाश्चात्य साहित्यकारों ने बुद्धि तत्व को प्रमुखता दी है। इसी तत्व के द्वारा कवि की कल्पना साकार रूप धारण करती है। बौद्धिक विलक्षणता के द्वारा ही कवि कल्पना के लोक में प्रवेश करता

है । परंपरागत प्रचलित विचारों का वर्तमान के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए कवि बुद्धि का ही सहारा लेता है ।जीवन की महान् तत्वों का विश्लेषण कवि बुद्धि तत्व के द्वारा करता है और विचारों को भी प्रमुखता देता ।

४- शैली- इस तत्व के द्वारा काव्य के कला पक्ष में सौन्दर्य का सन्निवेश किया जाता है । इसके अन्तर्गत गुण, रीति, अलंकार आदि आते हैं । मनुष्य में भावाभिव्यक्ति की प्रबल आकांक्षा होती है साथ ही उसमें उन भावों को भाषा में सजाने की प्रवृत्ति भी होती है तथा अलंकार से अमलकृत करने की सहजवृत्ति होती है । जो इस कला में जितना ही पारंगत होता है वह उतना ही कुशल और सफल कवि समझा जाता है । अपनी अंतर्भूत भावनाओं को मनोरम भाषा में महान् कवि ही प्रस्तुत कर सकता है । आत्मभूततत्वों को सुन्दर और सुचारु रूप से वहिर्मुख करने का प्रमुख साधन शैली तत्व है । हाउसमैन ने शैली और अभिव्यंजना प्रणाली को महत्व देते हुए कहा कि `काव्य केवल कथित वस्तु नहीं किन्तु कथन की एक रीति है ।`

तात्पर्य यह कि उत्कृष्ट काव्य में सभी तत्वों कासमावेश अनिवार्य है । आन्तरिक मनोवेगों का भव्य और उदात्त रूप में प्रस्फुटन तथा सृजनात्मक शक्ति द्वारा प्रेरित होकर काव्य में प्रकट होना उसकी उत्कृष्टता का द्योतक है । काव्य साहित्य में मनोभावात्मक, कल्पनात्मक, बुद्ध्यात्मक तथा रचनात्मक तत्वों का सन्निवेश आवश्यक माना है ।

इस प्रकार पश्चिमी आचार्यों ने काव्य में उपर्युक्त चारों तत्वों को मान्यता दी है । यह अवश्य है कि किसी ने भाव को, किसी ने कल्पना को, किसी ने शैली को प्रधानता दी परन्तु काव्य में बुद्धितत्व, कल्पना तत्व, भावतत्व और शैली तत्व सभी अनिवार्य है और अपना अपना महत्व रखते हैं । इन तत्वों के द्वारा काव्य की परिभाषा और उसका स्वरूप निर्धारित करने में सहायता मिलती है ।

आचार्यों द्वारा काव्य का रूप निश्चित हो जाने के उपरान्त उसके विविध भेदों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा प्रमुख रूप से काव्य दो भेदों में विभाजित है-

१- प्रबन्ध काव्य

२- मुक्तक काव्य

प्रबन्धकाव्य में किसी घटना या कार्य की एक विशिष्ट संयोजना क्रमिक शृंखला के रूप में पाई जाती है और मुक्तक काव्य में किसी विशिष्ट भाव बिन्दु को स्वतंत्र इकाई के रूप में चित्रित किया जाता है प्रबन्ध काव्य प्रमुख रूप से तीन भागों में विभाजित किया जाता है --

१- खण्डकाव्य

२- चम्पू

३- महाकाव्य

खण्डकाव्य वह है जिसमें काव्य के एक अंश का अनुसरण किया गया हो। इसमें जीवन के एकांग का वा किसी घटना का वा कथा का वर्णन रहता है जो स्वत: पूर्ण होता है। जैसे मेघदूत, जयद्रथवध आदि[१]।

चम्पू - शैली के भेद से काव्य का विभाजन किया गया है। गद्य-पद्यमिश्रित रचना को चम्पू काव्य कहते हैं हिन्दी में चंपू काव्य का बहुत अभाव है। नाटक में गद्य पद्य दोनों रहते हैं किन्तु उनकी शैली संवाद प्रधान होती है और इनकी वर्णन प्रधान[२]।

महाकाव्य- प्रबन्धकाव्य का सर्वोपरि रूप महाकाव्य है। संस्कृत के विविध आचार्यों ने महाकाव्य को अनेकानेक रूप से बांधने का प्रयत्न किया है जिन पर आगे विचार किया जायगा। आचार्य विश्वनाथ[३] ने इस प्रकार इसकी परिभाषा

१- काव्यदर्पण -सातवां प्रकाश, पृ० ३२७
अभिनव साहित्य शास्त्र - रामदहिन मिश्र

२- काव्यदर्पण-सातवां प्रकाश, पृ० ३२८ रचयिता-भारत भूगोल आदि संस्कृत तथा मेघदूतविमर्श काव्यालोक आदि हिन्दी के शताधिक ग्रन्थों के प्रणेता और संपादक पं० रामदहिन मिश्र। :प्रथम संस्करण १९४७:प्रकाशक ग्रन्थमाला कार्यालय-बांकीपुर

३- सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक:सुर:
सद्वंश:क्षत्रियोवापि धीरोदात्त गुणान्वित:।।
एक वंश भवा भूपा:कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽगी रस इष्यते।।

शेष--

दी है, किसी देवता सद्वंशोद्भव नृपति व किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का वृत्तान्त लेकर अनेक सर्गों में जो काव्य लिखा जाता है वह महाकाव्य है । इन वृत्तान्तों के आधार पुराण इतिहास आदि होते, इनमें कोई एक रस प्रधान होता है और अन्य रस गौण इनमें विविध प्रकार का प्राकृतिक वर्णन रहता है तथा अनेक छंदों का उपयोग किया जाता है । ऐसे ही अनेक बातें लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य के संबंध में लिखी गयी है । भामह[1] ने भी किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का वृत्तान्त लेकर अनेक सर्गों में की गयी रचना को महाकाव्य कहा है और किसी एक रस की प्रधानता को माना है । उसमें विविध प्रकार का वर्णन और विभिन्न छंदों की योजना रहती है । महाकाव्य के स्वरूप लक्षण आदि पर आगे विस्तार से विचार किया गया है ।

शेष- अंगानि सर्वेऽपि रसा: सर्वे नाटक-संधय: ।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यदवा सज्जनाश्रयम् ।।
चत्वारस्तस्य वर्गा:स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।।
क्वचिन्निन्दाखलादीनां सतां वा गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयै: पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै: ।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा:सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमय:क्वापि सर्ग:कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया:सूचनं भवेत् ।
सन्ध्या-सूर्येन्दु-रजनी-प्रदोष-ध्वान्तवासरा:।।
प्रातर्मध्याह्न मृगया-शैलर्तुवन-सागरा: ।।
संयोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा:।
रणप्रयाणोपयम मंत्र पुत्रोदयादय:।।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य,सर्गो पादेयकथया सर्गनाम तु ।।---साहित्य दर्पण-परि०६,३१५-२५

1- सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां चमहच्चयत् ।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम् ।।
मन्त्र-दूत-प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत् ।
पंचभि:सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।।— काव्यालंकार प्रथम परिच्छेद

महाकाव्य की दृष्टि :-

महाकाव्य जीवन के विराट् एवं विस्तृत अनुशीलन की भावना और कल्पना के साहचर्य से अद्भुत उपलब्धि है । महाकवि अपनी व्यष्टिगत परिधि से बाहर निकलकर समाज और राष्ट्र की उन समस्याओं को सुलझाने में प्रयत्नशील होता है जो मानव मात्र की कल्याण विधायिनी प्रगति के लिये आवश्यक है । इस परिप्रेक्ष्य में महाकाव्य की व्यापक दृष्टि में अनेक तथ्यों का समावेश हो जाता है ।

(१) विश्वजनीनता- जिन परिस्थितियों में प्रवेश कर महाकवि जीवनगत सत्य को उद्घाटित करता है वह देश काल निरपेक्ष होता है और किसी भी समय किन्हीं भी परिस्थितियों में वह मानवता के कल्याण का उद्घोष करता है । ऐसी परिस्थिति में वह उन प्रवृत्तियों का आश्रय ग्रहण करता है जो मानवता के रक्त में स्पंदित होती है और पात्र वर्ग के प्रतीक बन कर समाज के नव निर्माण की भूमिका प्रस्तुत करते हैं ।

(२) संघर्ष की पृष्ठभूमि- महाकाव्य नायक को प्रतिष्ठित कर उसे धीरोदात्त गुणों से समन्वित करता है ऐसी स्थिति में वह किसी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा का प्रवर्तक बन जाता है और सत्य,न्याय एवं धर्म के प्रति आस्थावान् बनता है। इस संसार में इन आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिये उसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है और अनुपम धैर्य के साथ अन्याय पर न्याय की,अधर्म पर धर्म की और असत्य पर सत्य की विजय में मानवमात्र की सहानुभूति अर्जित कर गतिशील होता है,जिस भांति अग्नि में पड़कर स्वर्ण अनुपम कीर्ति से ज्योतित होता है उसी प्रकार संघर्ष की अग्नि में पड़कर नायक समाज और राष्ट्र का प्रतिनिधित्व प्राप्त करता है ।

(३) परम्परा की प्रगति- संसार की संस्कृति और सभ्यता में कुछ विशिष्ट परंपरायें मान्य होती हैं । यह भी संभव है कि युग व्यतीत होने पर वह परंपरायें अन्य मान्यताओं के साथ सम्बद्ध हो जायें,महाकाव्य इन अन्य परम्पराओं को विनष्ट कर स्वस्थ परम्पराओं के प्रचलन में सहायक होता है और युग को अपने साथ लेकर ऐसे आदर्शों की प्रतिष्ठा करता है जिसमें जीवन की स्वस्थ संभावनाओं को प्रश्रय प्राप्त होता है । परम्पराओं में अनेक प्रकार के प्रयोग भी संभव होते हैं इन प्रयोगों

की बुद्धिपरक व्याख्या तथा उसकी स्थापना महाकाव्यों का इष्ट होता है इस भांति महाकाव्य समाज को ऐसी परम्पराकिसुनहले सूत्रों में संबद्ध करता है जिसमें विश्वबन्धुत्व की भावना और ऐक्य की संयोजिका शक्ति निवास करती है ।

(४) काव्य की कलात्मक अभिव्यक्ति- महाकाव्य काव्य का सबसे श्रेष्ठ रूप है ऐसी स्थिति में काव्य के समस्त गुणों का संचय महाकाव्यों में देखा जा सकता है रस,अलंकार,वृत्ति छंद और भाषा का श्रृंगार महाकाव्य के द्वारा ही संभव होता है । महाकवि काव्य के इन अनेकानेक गुणों से जहां रागात्मक वृत्तियों की सृष्टि करता है वहां जनता का अनुरंजन करता हुआ सत्यं शिवं सुन्दरम् की प्रतिष्ठा करने में सफल होता है इस प्रकार महाकाव्य अपने काव्य श्रृंगार से साहित्य में नवीन सौन्दर्य के मापदण्डों की प्रतिष्ठा करता है ।

महाकाव्य में व्यापक दृष्टि से मानव जीवन की व्याख्या और मानवीय मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह मिलता है महाकवि जीवन की घनीभूत रहस्यात्मक अनुभूतियों को अपने क्रोड़ में समेट कर मानवीय उच्चादर्शों के माध्यम से प्रकट करता है जो हमारे जीवन के अति निकट आकर हमारे कानों में प्राणदायिनी शक्ति का मंत्र फूंक जाता है । महाकवि अपनी लोकोत्तर प्रतिभा के द्वारा जीवन-गत दृष्टिकोण की विलक्षणता और विशदता को भी बुद्धिग्राह्य बना कर प्रस्तुत करता है और वही सफल साहित्यकार कहा जाता है । महाकाव्य का वैभव अनोखा है इसका क्षेत्र विशाल और विविधता से पूर्ण है उसमें व्यक्तिगत अनुभूतियों का विलक्षण सन्निवेश रहता है ।

महाकवि कल्पना संवलित दृष्टि से जीवन की विविध संवेदनाओं को नवीन उन्मेष से अनुप्राणित करता है और मानवी चेतना,मानव सम्बन्धों एवं परिस्थितियों को अपनी अनूठी भाव-व्यंजना के साथ ऐसा उभार कर प्रस्तुत करता है कि जीवन के अनेक भावबिम्ब हमारी आंखों में तैरने लगते हैं । सभी सुख के साधनों के होते हुए भी प्राय: मन अशान्त हो उठता है और कुछ खोजता है इसकी पूर्ति जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं से परिचित महाकवि करता है ।

महाकाव्य में कवि वैयक्तिक सत्ता को त्याग कर समष्टिगत जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करता है और वाह्य जगत् के साथ अपने जीवन का सामंजस्य

देखता है । महाकवि निजी व्यक्तिगत भावनाओं में लीन नहीं रहता बल्कि जाति का प्रतिनिधित्व करता है । गीतिकाव्य के लोक में कवि एकान्तसेवी बन आनंदोपलब्धि करता है वहीं महाकाव्य के विस्तृत प्रांगण में जन कल्याण की महत् भावना को लिए हुए हमारे सन्मुख आता है और समाज के रुदन में अश्रु प्रवाहित करता है मुस्कान में मुखरित हो उठता है, जनवाणी महाकवि के अंतस्तल में प्रविष्ट होकर उसकी कृति में प्रस्फुटित होती है ।

महाकाव्य में जीवन समष्टि की अभूतपूर्व झांकी, पार्थिव कर्तव्यों एवं चेष्टाओं का अवसान सत्य सौन्दर्य एवं अंतर्जगत् को परिप्लावित करने वाली मंगलमयी निर्मल मंदाकिनी निर्झरित होती है जिसमें अद्भुत श्री और अद्भुत् शांति व्याप्त रहती है । निस्सन्देह ऐसे महाकाव्यों में ही विश्वात्मा संचरण करती है और उनका प्रभाव उनके अपने समय देश और जाति तक ही सीमित नहीं होता वरन् उनके पीछे आने वाले युगों, इतर देशों जातियों एवं संस्कृतियों पर भी अमिट रूप से अंकित होता चलता है[1]।

महाकवि की लेखनी अपने प्रवाह में वह गति लिए रहती है जिसमें कभी शिथिलता नहीं आती उसकी स्फूर्ति युग में प्राण का आवाहन कर उसे सदैव के लिये अमर बना देती है । जीवन का चरम लक्ष्य आनंद की प्राप्ति है मनुष्य इसीलिए भटकता भी रहता है किन्तु जब हमारी अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी प्रवृत्तियां एकाकार होती हैं तभी आनंद की उपलब्धि होती है ।आत्मा और विश्वास के समीकरण में ही आनन्द की स्थिति रहती है । महाकवि ने समरसता का यही रूप अंकित किया है । महाकाव्यकारों ने आध्यात्मिक दृष्टिकोण का सन्निवेश अपनी कृतियों में किया है यह अवश्य है कि बौद्धिक युग के कारण उसके प्रत्येक अंग को बुद्धिग्राह्य बनाने का प्रयास किया है । महाकाव्य अथाह सागर की भांति है जिसमें प्रवेश करके अमूल्य रत्नों को खोजने का प्रयास किया जाता है । महाकवि की दृष्टि विलक्षण और मनमोहिनी है ।

१- साहित्य दर्शन - शचीरानी गुर्टू, पृ० ६

महाकाव्य में व्यक्तित्व निरूपण और नायक की स्थिति :-

महाकाव्य की परिधि अत्यन्त विस्तृत है इसकी कथा किसी व्यक्ति विशेष की नहीं वरन् व्यक्तित्व की होती है। उसमें मानव जीवन की व्याख्या मानवता का इतिहास मानवीय मनोवेगों का प्रवाह मिलता है। आज के युग ने मानवतावादी विचारों को ही प्रश्रय दिया है और व्यक्तित्व को प्रधानता दी है। बौद्धिक विकास के इस युग में मानवीय गुणों का आदर देख कर मेरे हृदय में नायक के विषय में कार्य करने की जिज्ञासा हुई और मैंने प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में नायक के चरित्र, गुण, कोटि तथा स्थिति पर विचार करने का प्रयास किया है। मानव का महत् व्यक्तित्व उसके उदात्त चरित्र का द्योतक है उच्च वंश अथवा उच्च वर्ग में उत्पन्न होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी वर्ग का व्यक्ति त्याग और परोपकार के द्वारा महान् बन सकता है। मानव कर्म से ही मानव अथवा दानव है यह जीवनगत सत्य है। जीवन की घनीभूत विशदतम, निगूढ़ अनुभूतियों को अपने महाकलेवर में समेट कर महाकाव्य का नायक विलक्षण प्रतिभा से युक्त होकर सन्मुख आता है।

व्यक्तित्व की ओर दृष्टि जाते ही हमारा ध्यान महाकाव्य में नायक की स्थिति की ओर आकर्षित हो जाता है क्यों कि नायक के माध्यम से मनस्तत्व का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है जो वैयक्तिक चरित्र की विशेषता के उद्घाटन के साथ वर्गगत सामान्य मानव वृत्ति का परिचायक है[१]।

मनुष्यता की उच्चभूमि पर पहुंचा हुआ मानव वही है जिसकी भावना का प्रसार हो गया हो, जिसका व्यक्तित्व इतना विशद विशाल एवं व्यापक हो गया हो कि उसमें स्वजन, परिजन, बन्धु बांधव, देशवासी ही नहीं मनुष्य मात्र वरन् उससे भी बढ़कर प्राणी मात्र का समाहार हो जाय।[२]

और जो चरित्र भाव के ऐसे प्रसरण को हृदय के ऐसे व्यापक तत्व को अनुप्राणित करता है वही नायक है वही काव्य का श्रेष्ठ पात्र है क्योंकि सत्काव्य सदैव शिवत्व

१- कामायनी दर्शन - कन्हैयालाल विजयेन्दु स्नातक - पृ० १४५

२- गुप्त जी की काव्यसाधना - डा० उमाकान्त, पृ० ६१

का समर्थक रहा है । इसी महान् चरित्र की सृष्टि के लिए कवि महाकाव्य का सृजन करता है । क्योंकि नायक के व्यक्तित्व में जीवन समष्टि की अनोखी झांकी, पार्थिव कर्तव्यों एवं चेष्टाओं का प्रयास अद्भुत श्री अद्भुत शान्ति अद्भुत शालीनता निहित है ।

आदर्श के चमत्कारपूर्ण लोक में क्षण भर को पहुँचा कर आत्मविभोर कर देने वाले, अतिमानवीय गुणों से युक्त नायक को पाकर हम सन्तुष्ट नहीं होते क्योंकि आज हमारे बौद्धिक विकास के कारण हमारा प्रत्येक दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है जीवन के मापदंड का स्तर उच्च हो गया है । मानवीय दुर्बलताओं के बीच भी दृढ़ रह कर जीवन की निर्धारित दिशा की ओर अग्रसर होने वाला महापुरुष हमारा नायक है उसके द्वारा हम मानवता को विजयिनी बनाने का प्रयास करते हैं ।

इस बौद्धिक युग में दूसरी विचारधारा आकर प्रवेश कर गयी है । किसी मनुष्य के महापुरुष होने के कारण उसका किसी उच्चकुल में जन्म होना आवश्यक नहीं है कीचड़ ० से कमल, कोयले से हीरा और दीपशिखा से काजल उत्पन्न होता है । मनुष्य का आदर गुण पर ही आधारित होता है गुण मानव के यश:शरीर को स्थायित्व प्रदान करता है आज का मानव वरेण्य गुणियों की झांकी देखने को ही आतुर रहता है, युग व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है मानवता की आराधना करता है इसी कारण महाकाव्य में नायक का स्थान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है ।

विज्ञान के आधार पर व्यक्ति के विशिष्ट गुणों की स्थापना की गई है । मानव सर्वशक्तिमान है अपार शक्ति का स्रोत है । अलौकिक तथा चमत्कारपूर्ण कार्यों के द्वारा मानवीय पराक्रम की जो झांकी हम आज देखते हैं उससे हमें स्तब्ध हो जाना पड़ता है ऐसा लगता है संसार में कोई भी कार्य नहीं है जो मानव की शक्ति के परे हो । केवल जन्ममृत्यु के रहस्यात्मक विधान में मानव बुद्धि निष्कर्ष रूप में अधिकार नहीं प्राप्त कर सकी । व्यक्ति के मस्तिष्क की प्रगति उसके महत्व को अधिकाधिक बढ़ा रही है ।

महाकाव्य के नायक का चरित्र और व्यक्तित्व अनंत प्राणियों की सिद्धि और संवेदनाओं का सार है उसके परिष्कृत विचारों के द्वारा मानव मात्र को भविष्य में भी बल मिलता है। मानवता के अमरत्व की कसौटी का दूसरा दृष्टिकोण उसमें अन्तर्निहित चिरन्तन सत्य है। कवि शाश्वत सत्य को अपना लक्ष्य बनाकर विषमताओं से युक्त बीहड़ पथ पर अग्रसर होता है तथा नायक निर्माण के द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है और नायक के सम्पूर्ण जीवन का ऐसा चित्र अंकित करता है जो युगों तक हमें प्रेरणा देता है। महाकवि अपने बुद्धि कौशल के द्वारा कृष्ण राम, बुद्ध के और हमारे बीच समय की जो गहरी खाई है उसे मिटा कर उन्हें हमारे सन्मुख उपस्थित कर देता है इसीलिए वह महत् चरित्र की प्रतिष्ठापना करता है।

महाकाव्य में नायक के अध्ययन की आवश्यकता :-

महाकाव्य का विशाल कलेवर पात्रों के चरित्र-चित्रण, घटनाओं के वर्णन तथा प्राकृतिक दृश्यों के अंकन से निर्मित होता है। कथावस्तु को विकसित और चमत्कृत करने के लिए स्थूल घटनाओं का विधान तथा प्रकृति वर्णन किया जाता है किन्तु प्रमुख पात्र के चरित्र की गतिविधि से महाकाव्य की मूल कथा पल्लवित होकर चरमोत्कर्ष तक पहुँचती है इसी कारण महाकाव्य की सफलता का मापदण्ड चरित्र चित्रण का सौष्ठव है। पात्रों में प्रधान पुरुष पात्र नायक है। नायक के क्रिया कलाप को चित्रित कर के प्रतिभाशाली कवि अपनी कृति को सजीव बनाता है क्योंकि पात्र ही काव्य में प्राणवान शक्ति है।

महाकाव्य में दो प्रकार के पात्रों की अवतारणा की जाती है एक तो महान् और उदात्त चरित्र वाले पात्र जो नायक की श्रेणी में आते हैं तथा उसके चरित्र के विकसित करने में समर्थ होते हैं दूसरे पात्र वे हैं जो अपनी नीच वृत्तियों के द्वारा नायक की लक्ष्यपूर्ति में बाधा बनते हैं। कवि खल पात्रों के द्वारा नायक के चरित्र का उत्कर्ष प्रकट करता है।

नायक के सृजन के लिए ही कवि महाकाव्य की रचना करता है । उसके समकक्ष अन्य सभी तत्त्व गौण हो जाते हैं नायक के चारित्रिक विकास के लिये ही अन्य तत्त्वों का सन्निवेश किया जाता है । मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है सहसा जब एक ~~महाकाव्य~~ महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार जमाता है मनुष्य चरित्र का उदार महत्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मंदिर निर्माण करता है उस मंदिर की भित्ति पृथ्वी के गंभीर अन्तर्देश में रहती है और उसका शिखर मेघों को भेद कर आकाश से उठता है । उस मंदिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है उसके देव भाव से मुग्ध और उसकी पुण्य किरणों से अभिभूत होकर नाना दिग्देशों से आ आ कर लोग उसे प्रणाम करते हैं ।[१] वही होता है महाकाव्य का प्रधान पुरुष पात्र नायक जातीय भावनाओं और आदर्शों का प्रतिनिधित्व करने वाला महान् व्यक्ति ।

युग और परिस्थितियों के अनुसार महापुरुषों ने धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक और सामाजिक क्षेत्रों में कार्य किया और सदैव विजय प्राप्त किया क्योंकि भारतीय सिद्धान्तों के अनुसार नायक जीवन में कभी पराजित नहीं होता । मानव मात्र के हृदय की गति सफल नायक के कार्यों में निहित रहती है नायक के उदात्त चरित्र में विश्वजनीन भावनाओं के अभिव्यक्तिकरण की अपूर्व क्षमता है इसी कारण महाकाव्य का नायक अपने तत्कालीन समय की परिधि में सीमित नहीं रहता बल्कि प्रत्येक युग देश और जाति की वस्तु बन जाता है और महाशाश्वत साहित्य की कोटि में आता है । आज हमारे सामने यही ध्येय है कि हम मानवता को किस प्रकार उभारें और विजयिनी बनायें । इसके लिए नायक के अध्ययन की आवश्यकता है। नायक का प्रमुख गुण महान् संघर्ष में संलग्न होना और उसमें विजय प्राप्त करना है किन्तु आज महान् शब्द की परिभाषा में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है उसकी परिधि

१- मेघनाथवध : हिन्दी अनुवाद : चिरगांव, झांसी, संवत् २००८
भूमिका भाग पृ० १३७

व्यापक हो गई है ।

विप्लव और राज्य क्रान्ति में भाग लेकर सामान्य सिपाही या स्वयं-सेवक भी महान् हो सकता है इसके साथ ही रचनात्मक कार्यों में तत्पर अध्यवसायी शान्त और निरुपद्रवी व्यक्ति भी महान् समझे जाते हैं शान्ति प्रसार में लीन व्यक्ति को कौन सदाशय और महात्मा न कहेगा । कल्याण के सभी कार्य महान् होते हैं । उनके साधक भी महापुरुष गिने जाते हैं । राजतंत्र,या समाज तंत्र में व्यवस्था तथा सामंजस्य स्थापित करने का उद्योग करने वाले सामान्य मानव भी महान् हैं ,उनकी प्रतिष्ठा महाकाव्य में नायक के रूप में होती है । आज नायक तथा उदात्त चरित्रों की अवतारणा के लिए प्राचीन परम्परा का निर्वाह अनिवार्य नहीं रह गया है । संघर्ष की भूमिकाएं परिवर्तित हो गयीं । संघर्ष स्थल भी बदल चुके हैं अपने ही मानसिक संघर्ष से जूझने वाले मनस्वी व्यक्ति भी महान् होते हैं[१] ।

समाज की भावनाओंऔर युग की समस्याओं के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए नायक का विवेचन अनिवार्य है । नभ में टिमटिमाते हुए तारों के बीच कलाधर की भांति नायक अपने अन्य पात्रों के साथ महाकाव्य के लोक को प्रकाशित करता है । पात्रों के चरित्र की योजना महाकाव्य का मुख्य विषय है, आधुनिक युग में चरित्रांकन ही सर्वश्रेष्ठ और महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है । प्राचीन युग में आदर्श की स्थापना महाकाव्य का लक्षण माना है और आज के मनोवैज्ञानिक युग में मानवता का मूल्य सर्वोपरि है । सजीव चरित्र चित्रण तभी संभव है जब काव्यकार में मानव सत्ता की गहरी परख वैचित्र्य परीक्षा और सजीव स्वरूप देने की क्षमता हो । नायक के अध्ययन के द्वारा ही हम मानव जीवन के सर्वांगीण चित्रण से परिचित हो सकते हैं । राम,कृष्ण और बुद्ध का अलौकिक चरित्र आज भी हमारे सम्मुख उपस्थित होकर हमारी गहन समस्याओं को हमारी गुत्थियों को सुलझाता है । कुशल महाकवि इन ~~महाकाव्यों~~ महामानवों को अपने नायक के रूप में प्रतिष्ठित कर जातीय भावनाओं तथा संस्कृति को अभिव्यक्त करता

----

१. कामायनी दर्शन - कन्हैयालाल विजयेन्द्र स्नातक - पृ० १४५-४६

है साथ ही समय के गर्त में विलीन इन महापुरुषों को हमारे सन्मुख भी पुन: प्रत्यक्ष कर देता है ।

समस्त मानवता और उसको विकसित करने की क्षमता को लेकर ही कोई महापुरुष अथवा कोई नायक जीवन के संघर्षों में अग्रसर होता है । नायक महाकाव्य का प्राण है, मानव हृदय के चिरंतन मनोवेगों, भावनाओं और अनुभूतियों का ज्ञान नायक के चरित्र के अध्ययन के द्वारा ही हो सकता है । मानवतावादी युग में नायक जो युग पुरुष कहा गया है, श्रद्धा का पात्र है । नायक के जीवन का सूक्ष्म विवेचन करके मानवता के कल्याण का मार्ग प्रस्तुत किया जाता है ।

युग ने ऐसे-ऐसे पुरुषों को जन्म दिया जो अपने उदात्त व्यक्तित्व के कारण ही अमीर हुए । राष्ट्रपिता बापू के त्यागमय जीवन का मार्मिक चित्रण श्री रघुवीर शरण मित्र ने अपने जननायक महाकाव्य में किया है, अतीत की घटनाएं नेत्रों के सन्मुख सजीव होकर घूमने लगती हैं और हमारा हृदय राष्ट्र-प्रेम से उद्वेलित हो उठता है । इसी प्रकार प्राचीन कथानक से निषाद-पुत्र एकलव्य को लेकर डा० रामकुमार वर्मा ने उसे अपने एकलव्य महाकाव्य का नायक बनाया है । एकलव्य के शील और त्याग के समक्ष आचार्य द्रोण, आर्यकुलभूषण पार्थ नतमस्तक हो जाते हैं । इन महापुरुषों के उदात्त चरित्र के द्वारा हम मानवता के उच्चादर्शों को समाज के सन्मुख प्रस्तुत करते हैं और मानव के कल्याण का सत्य पथ ढूंढ लेते हैं इसीलिए नायक के अध्ययन के लिए जिज्ञासा हुई और उस पर कार्य करने का प्रयास किया है ।

नायक के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि महाकाव्य का सम्पूर्ण रूपाकार दृष्टि के समक्ष उपस्थित किया जाय, जिससे महाकाव्य के विविध अवयवों के परिप्रेक्ष्य में नायक के चरित्र की विविध प्रेरणा प्रवृत्ति एवं अभिव्यक्तिकरण के रूप निर्धारित किये जा सकें, इसी दृष्टि से विवेच्य विषय नायक निरूपण होते हुए भी उसकी पृष्ठभूमि में महाकाव्य के विविध अंगों के अध्ययन की आवश्यकता समझी गयी और महाकाव्य के विविध लक्षणों को नायक निरूपण के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है ।

गुरवेनमः

अध्याय १

' महाकाव्य का स्वरूप-विधान '

१- संस्कृत साहित्य की दृष्टि से

२- पाश्चात्य साहित्य की दृष्टि से

क- पाश्चात्य सिद्धान्तों के अनुसार महाकाव्य के लक्षण

ख- पाश्चात्य दृष्टि से महाकाव्य के भेद और रूप

३- पाश्चात्य महाकाव्यों पर एक दृष्टि

: पाश्चात्य महाकाव्यों का कलात्मक धरातल

४- पाश्चात्य और पौरस्त्य विचारों का तुलनात्मक-अध्ययन

: १ :

संस्कृत साहित्य की दृष्टि से महाकाव्य का स्वरूप-विधान

महाकाव्य का स्वरूप विधान

महाकाव्य शब्द महत् और काव्य इन दो शब्दों के समास से व्युत्पन्न है। काव्य शास्त्र से पूर्व काव्य अपने इस महत् विश्लेषण के साथ यदि कहीं प्रयुक्त हुआ है तो वह आदि काव्य रामायण में। उत्तरकांड में राम ने लव कुश से प्रश्न किया था --

`किं प्रमाणमिदंकाव्यं का प्रतिष्ठामहात्मन:
कर्ता काव्यस्य ऽ महत: क्व चाऽसौ मुनि पुंगव: ।`[1]

अर्थात् यह काव्य कितना बड़ा है और महात्मा की क्या प्रतिष्ठा है ? इस महत् के रचयिता श्रेष्ठ मुनि कहां हैं ? प्रस्तुत श्लोक में `कर्ताकाव्यस्यमहत ।`इसी महत् और काव्य के योग से बने हुए महाकाव्य शब्द की ओर संकेत किया है।

महाकाव्य शब्द आभ्यंतरिक महत्ता का द्योतक है, सर्गबन्ध शब्द के बाहरी रूप की ओर लक्ष्य करता है और जिस समय काव्यशास्त्र रचे गए महाकाव्य शब्द का प्रयोग सर्गबंध के अर्थ में हुआ। आदि काव्य रामायण से ही इसकी कल्पना ली गई है। काव्यशास्त्रों में महाकाव्य के लिए सर्गबन्ध शब्द ही का प्रयोग किया है आगे चल कर सर्व साधारण में महाकाव्य शब्द की ही प्रतिष्ठा हुई[2]।

महाकाव्यों का निर्माण प्रमुख रूप से निम्नलिखित उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाता है अत: महाकाव्य के स्वरूप विधान पर दृष्टि डालने के लिये इन तत्वों पर विचार करना आवश्यक है।

१- महार्घ चरित्रों के द्वारा आदर्श तथा यथार्थ का प्रस्तुतीकरण:-

सम्पूर्ण महाकाव्य अर्थात् उसके प्रत्येक अंग कथा, चरित्र, भाव-सभी एक विशाल पट पर अंकित होते हैं, इसमें यदि एक ओर वज्र सी कठोरता है तो दूसरी ओर पुष्प के

१- उत्तरकांड, वाल्मीकि रामायण - ६४, २३
२- काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास- पृ०८१-डा०शकुन्तला दुबे

सदृश कोमलता भी रहती है। अनुभूति के गौरव से वेष्टित महाकवि ऐसी कृति हमारे सन्मुख उपस्थित करता है जिसे हम काव्य कला के सर्वोच्च शिखर पर आसीन करते हैं। महाकाव्य में किसी महापुरुष के जीवन के महान् कार्यों का उल्लेख रहता है जो समाज के लिये आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

२- मानव मात्र के लिये मंगल कामना:-

महाकाव्य कवि का विराट् मानस प्रासाद होता है। जिसका विन्यास विधाता की ही सृष्टि कला का नमूना होता है। इसके निर्माण में कवि अपने समस्त जीवन की व्यापक गंभीर सूक्ष्म और बहुमूल्य अनुभूतियों का मानव कल्याण के लिये कलात्मक प्रयोग करता है। उसके भीतर देश जाति या विश्व मानवता की अनेक पीढ़ियों का जीवन सत्य निवास करता है। महाकाव्य मानव सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास का जीवंत पर्वताकार दर्पण होता है जिसमें अपने मुख को देख कर मानवता अपने को पहिचानने में समर्थ होती है।

३- सत्य की प्रतिष्ठापना:-

महाकवि जीवन के सत्य को अपने कौशल की संजीवनी पिला कर चिरन्तन सत्य का स्वरूप दे देता और जीर्ण-शीर्ण पंजर के सदृश्य कथानक में भी नवीन प्राणों का शक्तिशाली स्पर्श कर उसे सजीव बनाने की शक्ति रखता है,मानव सभ्यता तथा सांस्कृतिक समस्याओं का निरूपण कर उसे युग और समाज के सन्मुख प्रस्तुत करने की शक्ति रखता है। यही नहीं मानव जीवन की मौलिक चिरन्तन समस्याओं को महाकवि अपने कथा पट के ताने बाने में नये रूप से उपस्थित कर मानव जीवन के सत्य को निखारने का बल रखता है।

४- युग का प्रतिनिधित्व:- महाकाव्य युग का प्रतिनिधि काव्य है। युग ने जीवन के लिए संकट उत्पन्न किये तो काव्य ने उससे अपनी रक्षा करने को वीरता का कवच धारण किया। युग ने जीवन को विलासिता की गोद में सुलाना चाहा तो काव्य ने शृंगार के रंगमंच पर नायक नायिका के आलंबन से समस्त जीवन को मुस्कान

की रेखाओं में खींच दिया, प्रेम की ऋतु में सौन्दर्य का सम्मोहन प्रस्तुत कर दिया। युग ने जीवन में विवेक दिया तो काव्य ने ज्ञान विज्ञान की अनेक शाखायें प्रशाखायें पल्लवित कीं ।

महाकाव्य के स्वरूप विधान को स्पष्ट रूप से समझने के लिए सर्वप्रथम संस्कृत के आचार्यों के सिद्धान्तों की विवेचना करना उपयुक्त होगा क्यों कि विवेच्य विषय नायक निरूपण होते हुए भी महाकाव्य के विविध लक्षणों को नायक के संदर्भ में समझने और प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । तथा महाकाव्य की पूर्ण रूपेण रेखा उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है । जिससे नायक के चरित्र का चित्रपट स्पष्ट और अनुकूल हो ।

महाकाव्य के स्वरूप विधान के सम्बन्ध में विचार करने वाले संस्कृत के प्रमुख आचार्य भामह[1], दण्डी[2], रुद्रट[3], हेमचन्द्र[4], विश्वनाथ[5] तथा धनंजय[6] हैं । अग्निपुराण[7] में भी महाकाव्य के सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है ।इन आचार्यों द्वारा निर्धारित किये महाकाव्य के स्वरूप के आधार पर निम्नलिखित लक्षण विकसित किये जा सकते हैं --

सर्गबद्धता:-

महाकाव्य की सर्गबद्धता के सम्बन्ध में सब आचार्यों का मत एक नहीं है ।भामह[8] ने सर्गबद्ध को महाकाव्य कहा और साथ ही आकार का बड़ा होना भी अनिवार्य माना। दण्डी ने कहा कि सर्ग अति विस्तीर्ण न हो कि नाटक की सन्धियोजना, कथानक के संघटन में बाधा पड़े । और इन्हें सामान्य लक्षण कहा क्योंकि यह संस्कृत के सभी महाकाव्यों में नहीं मिलते । रुद्रट[6] ने सर्गबद्धीय नाटकीय तत्वों से युक्त होना कथा का आवश्यक गुण है माना है ।

१- काव्यालंकार :भामह परि० १।१९-२३
२- काव्यादर्श : दंडी परि० १।१४-२०
३- काव्यालंकार :रुद्रट परि० १६।७-१९
४- काव्यानुशासन:हेमचन्द्र अ०८।३३० पृ०
५- साहित्यदर्पण: विश्वनाथ :परि० ६, ३१५-२५

सर्गों की संख्या को निश्चय करने का प्रश्न है, उस पर साहित्यदर्पणाकार विश्व-नाथ ने अपना यह मत प्रकट किया है कि आठ सर्ग होने चाहिए-और न बहुत बड़े न बहुत छोटे । सर्ग के अन्त में ही आली कथा की सूचना होनी चाहिए ।कथा-विभाजन की सुविधा के लिये सर्गों का होना ठीक है । संख्या का निश्चय होना आवश्यक नहीं है । ऐसे तो ईशान[1] संहिता में महाकाव्य के लिए अधिक से अधिक ३० सर्गों की संख्या नियत कर दी है । प्राकृत में इसे `आश्वास` अपभ्रंश में `संधि` और `अस्कंध` कहा । विश्वनाथ ने अपभ्रंश के महाकाव्यों में सर्ग को `कडवक` कहा है । आर्ष महाकाव्यों में सर्गों के स्थान पर आख्यान आया है । साहित्य दर्पण-कार विश्वनाथ ने महाभारत को आर्ष महाकाव्य माना है ।

सर्ग की रूढ़िवादिता से मुक्त कोई महाकाव्य की रचना करता है तो दोष न माना जायेगा जैसा हेमचन्द्र[2] ने उल्लिखित किया है कि रावण विजय, हर विजय सेतुबंध में समाप्ति पर्यन्त एक ही छंद है । यद्यपि इन्होंने अपना विचार प्रकट किया है कि प्रत्येक सर्ग में एक छंद होना चाहिए अंत में छंद बदल जाय यह अनिवार्य होता है । संस्कृत में सर्गबंध, ग्राम्यापभ्रंश में अवस्कंध कबंध महाकाव्य में होते हैं । कभी कभी संस्कृत में भी अवस्कंध नाम से सर्ग विभाजन मिलता है । सर्गबद्धता में छंदों की भिन्नता की रूढ़ि को स्वीकार करते हुए भी अपवाद स्वरूप यह च चर्चा की है-जिससे सर्गों का होना महाकाव्य का आवश्यक अंग नहीं माना ।

शेष- ६-दशरूपक-धनंजय-२।१२

७- अग्निपुराण-३३७ अध्याय

८- काव्यालंकार-भामह :परि०१, १९-२१ `सर्गबंधोमहाकाव्यं`

९-काव्यालंकार-रुद्रट:परि० १६।७-१८`सर्गाभिधानिचास्मिनावातु प्रकरणानि-कुर्यात्`

१- काव्यादर्श पृ० २६ :रंगाचार्य की टीका:

२- काव्यानुशासन- हेमचन्द्र :अध्याय ८, पृ० ३३०

सर्ग की अनिवार्यता को आचार्य विश्वनाथ ने माना है और साधारण रूप से देखा जाय तो किसी भी महान् व्यक्ति के जीवन का सांगोपांग चित्रण करने के लिए विभाग की रूपरेखा सुविधाजनक सिद्ध होती है और आठ विभाजन पर्याप्त लगते हैं। इसी कारण संभवत: साहित्यदर्पणकार ने कम से कम आठ सर्ग आवश्यक बताया इसके अतिरिक्त एक सर्ग के अंत में अगले सर्ग की कथा की सूचना मिल जाती है। अत: इसे महत्व दिया गया है। यह अवश्य है कि साहित्य दर्पणकार[1] के अनुसार सर्ग नाति स्वल्पा: नाति दीर्घा: होना चाहिए और आठ सर्ग भी नहीं होंगे तो महाकाव्य ही क्या होगा, उसकी वृहत् कथा के लिये विस्तार कैसे आयेगा, सम्पूर्ण मानव व्यापारों का चित्रण कहां से आयेगा ? चार-चार पांच-पांच पृष्ठ के सर्ग न हों कि बार बार मोड़ आने से कथा का गांभीर्य ही विनष्ट हो जाय और नहीं सर्ग दो सौ ढाई सौ पृष्ठ के हों, जिससे अपने आप में ही पूर्ण हो जायें किसी महाकाव्य के अर्थात् महत्कथा के अंश न रह जायें। वृहत् कथाओं का सर्गों अथवा अध्यायों में विभाजन होना आवश्यक है क्यों कि एक दृश्य अथवा स्थान से दूसरे दृश्य अथवा घटना तक पहुंचने के लिए किसी माध्यम की कल्पना करना अस्वाभाविक और हास्यास्पद भी लगता है जैसे पद्मावत में हीरामन तोते की कथा। सर्गबद्ध रचना में एक दृश्य से दूसरे तक सुविधा से बिना किसी माध्यम और कल्पना के पहुंचा जा सकता है इस प्रकार महाकाव्य की वृहत् कथाओं का सर्गबद्ध होना उचित प्रतीत होता है।

२- प्रख्यात कथावस्तु :-

महाकाव्य की कथा के लिये उसका प्रख्यात होना प्रथम तत्व है। कथा ऐतिहासिक होनी चाहिए। भामह[2] ने इस पर ही अधिक बल दिया है कि जीवन के समग्र अंगों का चित्रण हो। कथा प्रख्यात होने से उसके प्रति जनता के मन में

१- साहित्यदर्पण -परि० ६, ३१५-२५

२- काव्यालंकार- भामह : परि० १, १९-२३

विशेष राग होता है । काल्पनिक कथावस्तु से न पात्र से परिचय ही रहता है और न श्रद्धा या अनुराग ही होता है । कथा का आधार ऐतिहासिक या पौराणिक होने से रस की प्राप्ति अथवा रस की अभिव्यक्ति होती है और अनेक प्रकार के वर्णन कथा को क्रमबद्ध रूप में अग्रसर होने में सहायक होते हैं, घटना से विस्तार होता है, वर्णन से रोचकता, दोनों का सम्यक योग होना आवश्यक है । संस्कृत आचार्य दंडी[1] ने इसे स्वीकार करते हुए कथा को संधिबद्ध होना चाहिए, ऐसा वर्णन किया है ।

अपवाद स्वरूप आचार्य रुद्रट[2] का मत इससे भिन्न है वह कथा का ऐतिहासिक होना नहीं मानते हैं, उन्होंने लिखा है कि कथा पूर्णरूपेण अथवा अंशत: कल्पित हो सकती है । इन्होंने कहा है इतिहास पुराण से कथा पंजर ही ले सकते हैं रक्तमांस के रूप में कवि कल्पना वाणी का प्रयोग कर महाकाव्य का सुगठित शरीर रचेगा पर अन्य आचार्यों ने इसे नहीं माना । इन्होंने मंगलाचरण आदि में भी रूढ़ियां नहीं रक्खीं, महदुद्देश्य, महच्चरित्र इन प्रधान लक्षणों को माना और अपने को अन्य आचार्यों से भिन्नकर दिया । रुद्रट ने कथा के सम्बन्ध में उत्पाद्य अनुत्पाद्य महत् लघु, कोई लंबी पद्य कथा होती है इस पर बल दिया है । संस्कृत में उस समय पद्य कथा आख्यायिका के ढंग के महाकाव्य होते थे जिनकी शैली में बाद में बृहद्कथा मंजरी कथा सरित्सागर का निर्माण हुआ । रुद्रट ने अनुत्पाद्य महत्प्रबंध :कथोद्भव महाकाव्य: के उन सभी लक्षणों को स्वीकार किया -जो गद्यबंध, कथा, आख्यायिका में होते हैं ।

रुद्रट ने प्रसंगानुसार अवांतर कथाओं का होना भी माना है जिसे महाकाव्य की जीवन्तता और लोकसम्पृक्तता का संकेत बताया -हेमचन्द्र ने भी इसे आवश्यक माना । लोककथा लोकगाथा और पुराण में भिन्नता है ।

१- काव्यादर्श : दण्डी - परि० १, १४-२०

२- पंजरामितिहासादि प्रसिद्धमखिलं तदेक देशवा
परिपूरये स्व वाचा यत्र कविस्तै स्वनुत्पाद्या: -काव्यालंकार-रुद्रट परि०१६ श्लोक२
: काव्यालंकार- रुद्रट : परि० १६, श्लोक २

अनुत्पाद्य और मिश्र यानी इतिहासपुराण निर्जंधरी लोक कथा पर आधारित होता है कि पाठक या श्रोता का मन घटनाचक्र में न उलझ कर वर्णन सौन्दर्य रस परिपाक का आनन्द प्राप्त कर सके ।उत्पाद्य कथामें कलात्मक सौन्दर्य से कथा प्रवाह प्रधान हो जाता है ।

महाकाव्य के कथानक की सम्पूर्णता कवि की पूर्ण अनुभूति परनिर्भर है तथा महाकाव्य की रचना का उद्देश्य जीवन के सम्पूर्ण अंगों को लेकर चित्रित होना चाहिए ।सर्वांगपूर्ण जीवन के किसी अंग का अभाव उसकी महत्ता में क्षति पहुंचाता है । महाकाव्य के लिये परम्परा प्रख्यात कथा को अपनाने में आपत्ति नहीं होती है और कल्पना का तत्व ऐसा हो कि विश्वास को डिगा न सके,उसमें संसार की ही कथा होनी चाहिए अर्थात् अन्य वृत्त काल्पनिक हो पर विश्वसनीय हो ।प्रमुख इति-वृत्त के साथ गौण कथानकों, सर्वथा नवीन काल्पनिक घटनाओं रसात्मक प्रसंगों और महत्वपूर्ण जीवन दशाओं को भी समाविष्ट किया जा सकता है ।योजना पर प्राय: दृष्टि इतनी अधिक सुस्थिर हो जाती है कि समुचित प्रतिपादन पद्धति की पर्वाह न करके कवि विस्मयोद्बोधक चमत्कार पूर्ण प्रसंगों के वर्णन में ही सारी शक्ति लगा देता है ।

रुद्रट के परिभाषा की विशेषता यह थी कि उसमें जीवनके विविध रूपों पक्षों और घटनाओं को चित्रित करने की बात बहुत स्पष्ट रूप में और विस्तार केसाथ कही गयी है । अग्निपुराण[१] में कथावस्तु के दो मुख्य भेद किये गये हैं आधिकारिक प्रासंगिक मुख्य कथावस्तु आधिकारिक कहलाती है समस्त काव्य में रहती है ।मुख्य कथा की अंगभूत अमुख्य कथावस्तु को प्रासंगिक कहते हैं । जो काव्य के कुछ भाग में व्याप्त रहती है ।प्रासंगिक कथा के भी दो भेद किये हैं, पताका प्रकरी ।

सानुबंध प्रासंगिक कथा को पताका कहते हैं, एक प्रदेश में सीमित रहने वाली कथा को प्रकरी कहते हैं । पताका कथा मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती रहती है

१- अग्निपुराण - काव्यादि लक्षण कथनं नाम अध्याय :

प्रकरी कुछ दूर तक चल कर ही समाप्त हो जाती है[1]। रामायण में सुग्रीव व विभीषण का वृत्तान्त पताका है वह दूर तक चलती है, वह मुख्य नायक के पताका चिन्ह की तरह आधिकारिक कथा तथा मुख्य नायक की पोषक होती है। पताका का नायक भिन्न होता है वह पताका नायक कहलाता है। रामायण में छोटे छोटे वृत्त प्रकरी हैं जैसे श्रवण शबरी आदि की कथायें[2]।

इन तीनों में से प्रत्येक के तीन तीन भेद माने गये हैं -

प्रख्यात- इतिहास से ली हुई कथावस्तु ।

उत्पाद्य - कवि कल्पित कथावस्तु ।

मिश्र - ऐतिहासिक, कल्पित दोनों प्रकार की मिश्रित कथावस्तु ।

इस प्रकार ९ भेद होते हैं। इन नौ भेदों के बीच में भी दो दो भेद किये हैं-

दिव्य- देवता आदि अमर व्यक्ति ।

मर्त्य - मृत्यु धर्मा मानव कथा ।[3]

अनेक आचार्यों के विचारों का विवेचन करने के उपरान्त यह कहना अनुचित न होगा कि महाकाव्य की कथा के प्रख्यात होने से विशेष लाभ यह है कि जो आदर्श भावना महाकवि स्थापित करता है वह समय के साथ कंचन की कसौटी पर लीक की तरह कसी ~~कसि~~ जा चुकी है इस कारण उसका स्थायी प्रभाव पड़ता है। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण का प्रत्येक रूप प्रत्येक कर्म नाम लेते ही जनता के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। रामसीता का त्याग, भरत की साधना, लक्ष्मण की सेवा का आदर्श मानव के हृदय में स्थान बना चुका है। ऐसी कथा ~~उसका~~ साधारणीकरण सहज होता है। अंत में सत् की जय असत् की पराजय होना महाकाव्य के भारतीय सिद्धांत का प्रमुख लक्षण है।

१- दशरूपक- १।११-१३

२- हिन्दी दशरूपक -पृ० ८ -डा०भोलाशंकर व्यास -चौखंभा विद्याभवन, बनारस

३- दशरूपक - १।१५-१६

पताका स्थानक का प्रयोग :-

कथावस्तु में चमत्कार उत्पन्न करने अथवा आगामी कथा की सूचना देने के लिये महाकाव्यकार अपने काव्यों में पताकास्थानकों का प्रयोग करते हैं । दशरूपक[1] में इसकी विवेचना की गई है, अनेक भेदों में दो भेद प्रमुख माने गये हैं ।

१- अन्योक्तिमूलक पताकास्थानक - जिसमें तुल्य संविधान द्वारा अथवा समान इतिवृत्ति द्वारा आगे आनेवाली घटना सूचित की जाती है ।

२- समासोक्तिमूलक पताकास्थानक[2] - जिसमें समान विशेषणों द्वारा आगामी घटना या कथा की सूचना दी जाती है ।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने चार प्रकार के पताकास्थानक माने हैं, पर उपरोक्त दो में इन चारों का समावेश हो गया है अतः अलग विवेचना की आवश्यकता नहीं । इसका होना महाकाव्य में इसलिए आवश्यक हो जाता है कि इसके द्वारा कथा की गतिविधि का पूर्व संकेत मिलता है जिस घटना से कथा की गतिविधि का पता चलता है उसे पताकास्थानक कहा है जैसे मानस में विभीषण का शरणागत होना और श्रीराम का लंकेश कह कर संबोधित करना कथा की गतिविधि का संकेत करता है इसलिए आचार्यों ने इसकी अनिवार्यता को माना है ।

अर्थ प्रकृतियां-

कथावस्तु के प्रधान फल की प्राप्ति में प्रायः अर्थ प्रकृतियां नायक की सहायक होती हैं ।प्रबन्ध काव्य में भी इनकी क्रमबद्ध योजना की जाती है जिससे कथा वस्तु तनिक भी विश्रृंखल नहीं होने पाती ।इसके पांच भेद हैं—

बीज- इससे तात्पर्य है कथावस्तु के फल या कार्यसिद्धि करने वाले हेतु को आरम्भ में ही बहुत स्वल्प मात्रा में निर्दिष्ट कर देना और आगे चल कर अनेक प्रकार से

१- प्रस्तुतागन्तुकभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम्
पताकास्थानकं तुल्य संविधान विशेषणम् । - दशरूपक- १।१४

२- साहित्यदर्पण - पंचम संस्करण -पृ० ३०५-३०८

उसी विस्तार का वर्णन करना[1]।

विन्दु- बीज में जिस कथा के हेतु का निर्देश किया जाता है उसके तनिक विच्छेद हो जाने पर अथवा अवान्तर कथा की समाप्ति हो जाने पर उसे आगे बढ़ाने का कार्य इसके द्वारा होता है[2]। पानी में तैल की बूंद की भांति काव्य में फैल जाती है। किसी दूसरी कथा :अर्थ: से विच्छिन्न हो जाने पर इति वृत्त को जोड़ने और आगे बढ़ाने के लिए जो कारण होता है वह विन्दु कहलाता है।

पताका :- अर्थप्रकृति से तात्पर्य उन तत्वों से है जो प्रयोजन को सिद्ध करने के कारण अथवा हेतु होते हैं यह कथा मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती हैं, सानुबंध प्रासंगिक कथा को पताका कहते हैं। जैसे राम कथा में सुग्रीव की कथा को पताका कहा है।

प्रकरी- एक ही प्रदेश में सीमित रहने वाली कथा को प्रकरी अर्थ प्रकृति का रूप दिया जाता है यह कुछ दूर तक चल कर समाप्त हो जाती है। सम्पूर्ण काव्य में यह कथा नहीं रहती उदाहरणार्थ- जैसे मानस में शबरी की कथा।

कार्य - काव्य में जिसके लिए समस्त उपायों का आरंभ किया जाता है जिसकी सिद्धि के लिए सम्पूर्ण सामग्री संकलित की जाती है उसे कार्य या काव्य का फल कहते हैं[3]।

काव्य में एक दो या तीन फल मिलते हैं कवि अंत में एक फल या कार्य की सिद्धि दिखाते हैं वही काव्य का अभीष्ट कार्य होता है[4]।

अर्थ प्रकृति को स्पष्ट करते हुए धनिक और विश्वनाथ भी "प्रयोजन सिद्धि हेतव:" कह कर चुप हो जाते हैं। कार्य या प्रयोजन दो तरह के माने जाने चाहिए। एक प्रमुख कार्य जैसे रामकथा में रावण का वध दूसरा अवान्तर कार्य जैसे-विभीषण का मिलना ऐसा मानने पर अवान्तर कार्य प्रमुख कार्य रूप प्रयोजन का सिद्ध हेतु बन जायेगा[5]।

१- ४- दशरूपक - १।१७
३- नाट्यशास्त्र-२१।२७
४-दशरूपक- १।१६
५-हिन्दी दशरूपक- पृ० १३ -डा० भोलाशंकर व्यास

कार्यावस्थाएं:- विश्व के सभी प्रबंध काव्यों में प्राय: देखा जाता है कि उनमें नायक किसी एक फल की प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाकर चलता है, मार्ग में आई बाधाओं का दृढ़ता से प्रतिकार करता हुआ आगे बढ़ता है कभी कभी ये कठिनता फल प्राप्ति में आशंका उत्पन्न करने लगती हैं। नायक के इन्हीं कार्यों को व्यापारों को आचार्यों ने कुछ अवस्थाओं में विभाजित कर दिया है वह इस प्रकार हैं-

आरम्भ:- नायक में अत्यन्त फल लाभ की उत्सुकता मात्र ही आरम्भ कहलाती है।[1] किसी भी फल की प्राप्ति के लिए नायकादि में इच्छा होती है तथा उसके प्रति उत्सुकता होती है इस उत्सुकता मात्र का पाया जाना ही आरम्भ है। महाकाव्य का नायक महान् पुरुष होता है उसके महाचरित्र और महत् कार्य का विवेचन ही महाकाव्य का उद्देश्य होता है। उस काव्य के नायक को अपने कार्य की सिद्धि के लिए जो उत्सुकता रहती है वही 'आरम्भ' है। सत्य भी है उत्सुकता से प्रेरित होकर ही मनुष्य किसी कार्य के लिये, उसकी पूर्ति के लिये अग्रसर होता है। यदि उत्सुकता न हो तो वह उसकार्य को करेगा ही नहीं, और अभीष्ट कार्य के प्रति उत्सुकता कार्य अवस्थाओं की प्रथम दशा आरम्भ है।

प्रयत्न:- नायक के द्वारा फल की प्राप्ति के लिये की गयी चेष्टा का समावेश इस दूसरी अवस्था में हो जाता है। उस फल की प्राप्ति न होने पर उसे पाने ~~की~~ के लिए बड़ी तेजी के साथ जो उपाय योजनायुक्त व्यापार या चेष्टा होती है वह प्रयत्न है। प्रयत्न के अन्तर्गत नायक अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने में संलग्न रहता है। यह स्वाभाविक है कि कार्य की सिद्धि के लिये जैसा प्रयत्न किया जायेगा उसी के अनुसार ही नायक अपने फल को प्राप्त करेगा। नायक की दृढ़ता और वीरता का परिचय भी यहां पर होता है जब वह अपने अभीप्सित वस्तु की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं की चिन्ता न कर के निरन्तर प्रयत्नशील रहता है, यह कार्य की दूसरी अवस्था है।

१- औत्सुक्यमात्रमारम्भ:फललाभाय भूयसे १।२० -दशरूपक १।२०

प्राप्त्याशा:- जहां उपाय तथा विघ्न की आशंका के कारण फल प्राप्ति के विषय में कोई ऐकान्तिक निश्चय नहीं हो पाता फल प्राप्ति की संभावना उपाय व विघ्नाशंका दोनों में दोलायमान रहती है, वहां प्राप्त्याशा नामक अवस्था होती है । विघ्न की आशंका से फल प्राप्ति में संदेह[1] हो जाता है अर्थात् कार्य की पूर्ति के विषय में निश्चय नहीं हो पाता वहां प्राप्त्याशा अवस्था होती है क्योंकि फल की सिद्धि के लिए नायक जो व्यापारों में अपने को संलग्न रखता है और उसके लिए जो प्रयत्न करता है उसी कार्य के विभाजन को अवस्था के अन्तर्गत रखा है ।

नियताप्ति:- जब विघ्न के अभाव के कारण फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है तो नियताप्ति नामक अवस्था होती है । प्राप्त्यावस्था में नायक का हृदय संदेह[2] से विचलित रहता है क्यों कि विघ्न तथा आशंका से फल प्राप्ति में निश्चय नहीं हो पाता किन्तु नियताप्ति की अवस्था में पहुंच कर नायक को फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है उसके हृदय में ऐसी बात दृढ़ हो जाती है कि ध्येय की पूर्ति अवश्य होगी ।

फलागम :- समस्त फल की प्राप्ति हो जाने पर फलागम :फल योग: कहलाता है ।[3] कहने का तात्पर्य यह कि अधूरे फल मिलने तक नियताप्ति की अवस्था मानी जायेगी ।जब फल की पूर्णरूपेण सिद्धि हो जायेगी तभी फलागम की अवस्था होगी।

अर्थ प्रकृति और अवस्था के भेद के विषय में डा० भोलानाथ[4] जी का विवेचन मान्य है ।बीज आदि पांच अर्थ प्रकृति वस्तु के उपादान कारण हैं ।इसे वस्तु का 'मेटीरियल' कहा है । जहां भी ये पांच अर्थ प्रकृति होगी कथा का ढांचा खड़ा हो जायगा । अवस्था को नायक की मनोदशा से संबद्ध बताया है इस प्रकार उन्होंने पांच अर्थप्रकृति को औपादानिक विभाजन : Physical division :कहा और

१- हिन्दी दशरूपक :पृ० १५ :डा० भोलाशंकर व्यास
: उपाया पायशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभव:' -दशरूपक-१।२१

२- हिन्दी दशरूपक-पृ०१५- डा०भोलाशंकर व्यास-
'अपायाभावत: प्राप्तिर्नियताप्ति:सुनिश्चिता।२१।-दशरूपक धनंजय

३- हिन्दी दशरूपक :पृ०१६-'समग्रफलसंपत्ति:फलयोगो यथोदित:।।२।।
-दशरूपक

पांच कार्य अवस्था को नायक की मनोदशा की दृष्टि से वस्तु का मनोवैज्ञानिक विभाजन : Psychological Division : कहा।

संधियों की योजना:- महाकाव्य की परिभाषा में संधियों का अभ्युदय भामह के विचार से होता है उन्होंने लिखा है कि मंत्र दूत, प्रयाण, आजि और नायकाभ्युदय - इन पांच सन्धियों में महाकाव्य को समन्वित होना चाहिए। पूर्ववर्ती आचार्यों का मन्तव्य सन्धियों की चर्चा के द्वारा प्रकट होता है पर नाटक की संधियों के अनुसार महाकाव्य की भी संधियां होनी चाहिए ऐसा मत नहीं है। सब का प्रयोग तो काव्य में कठिन है पर अपनी रचनाओं में सन्धियों की योजना कवि जन करते अवश्य हैं और उसके कुछ अंग आ ही जाते हैं।

कथा के समस्त भागों को एक प्रयोजन से संबद्ध करने के लिए कवि अपने काव्य में संधियों की योजना करते हैं। ये संधियां कथावस्तु में एक रूपता, क्रमबद्धता लाने में सहायक होती है तथा विभिन्न भागों में विभक्त इति वृत्त को सुगठित एवं सुसंबद्ध किया करती हैं। संधि का शाब्दिक अर्थ है संधान करना, ठीक रूप में लाना।[1]

जिस समय किसी कथानक का ठीक ठीक निर्वाह करने के लिए उसे विभिन्न भागों में बांट लिया जाता है उस समय उस कथानक का संधान ठीक रूप में हो जाता है इसलिए एक ही प्रयोजन से जहां कहीं एक कथांश परस्पर अन्वित हों वहां उन कथांशों का एक अवान्तर अर्थ के साथ सम्बन्ध होना ही संधि कहलाता है।[2]

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, उपसंहृति :उपसंहार: इन संधियों के कई अंग होते हैं जो संध्यांग कहलाते हैं। भरत मुनि ने अंगहीन व्यक्ति जिस भांति युद्ध नहीं कर सकता अंगहीन संधियों को भी कहा है।[3]

शेष- ४- हिन्दी दशरूपक - पृ० १४

१- दशरूपक - १।२३ १

२- वही १।२३-२

३- नाट्यशास्त्र- २१।५५ भरतमुनि

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने महाकाव्य के स्वरूप निरूपण में नाटक की सभी संधियों का होना आवश्यक माना है[1]।

नायक के द्वारा फल प्राप्ति के लिए किये गये कार्यों को आचार्यों ने प्राप्त्याशा नियताप्ति, फलागम में विभाजित किया है यही यथासंख्य से पांच संधियां होती हैं। धनंजय के मतानुसार बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य- ये पांच अर्थ प्रकृतियां जब क्रम से अवस्था, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम इन पांच अवस्थाओं से मिलती हैं तो क्रमश: मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा उपसंहृति :उपसंहार: इन पांच संधियों की रचना होती है[2]।

कुछ महाकाव्य में संधियां प्राप्त हैं, अनेक संस्कृत प्राकृत महाकाव्य में इनका अभाव है विशेषत: उनमें जो नायक के चरित या किसी राजवंश के अनेक राजाओं के चरित ~~या किसी राजवंश के अनेक राजाओं के चरित~~ को कथावस्तु के रूप में लेते हैं। महाकाव्य में सभी सन्धियों का होना आवश्यक नहीं है पर कुछ तो प्राय: संस्कृत के महाकाव्यों में रहती ही हैं। कथावस्तु में अन्विति लाने के लिए भी संधियों का प्रयोग करना आवश्यक होता है इसलिये इसे महाकाव्य में स्थान देते हैं संधियों के प्रयोग से कथानक में उतार चढ़ाव अर्थात् कथा का क्रमिक विकास होता है, इस तत्व का होना कथानक में आवश्यक है।

१- साहित्य दर्पण - ६।११५-२५ -`सर्वे नाटक संधय:`

२- दशरूपक -धनंजय १।२२
`अर्थप्रकृतय:पंच पंचावस्था समन्विता:
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या:पंच संधय:।

महाकाव्य का नायक — देवता, राजा या सद्वंशीय क्षत्रिय :-

नायक को धीरोदात्त होना अनिवार्य है। उसे सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिए। भामह[1] ने महान चरित्र और विजयी नायक का होना अनिवार्य माना है। आरंभ में ही उसके वंश, वीर्य और श्रुत का परिचय होना चाहिए। समग्र महाकाव्य में नायक की महानता होनी चाहिए।

दण्डी[2] की दृष्टि में नायक धीमान होना चाहिए और उदात्त होना चाहिए। इन्होंने चतुरोदात्त नायक शब्द को ही अधिक महत्व दिया है।

रुद्रट[3] ने नायक द्विज कुलोत्पन्न, सर्वगुण सम्पन्न महान वीर और विजिगीषु, शक्तिमान, नीतिज्ञ, कुशल राजा को कहा है। केवल इन्होंने ही माना है कि नायक के चरित्र की महत्ता को बढ़ाने के लिए प्रतिनायक आवश्यक है। क्योंकि संघर्षमूलक घटना बिना प्रतिनायक के संभव नहीं है। प्रतिनायक नायक के समान ही गुणवाला भी हो और उसके कुल का भी वर्णन होना चाहिए। एक विशेष बात उन्होंने और माना है कि तीन वर्णों में से कोई एक वर्ण का नायक हो सकता है यानी अन्य आचार्यों की तरह उच्च कुल का ही होना अनिवार्य नहीं माना है।

रुद्रट[4] ने नायक ऐतिहासिक या कल्पित राजा हो सकता है ऐसा विचार भी प्रकट किया है उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रति प्रवृत्त होना चाहिए। इन्होंने ही राजा, वीरों, मंत्रियों के स्वभाव की चर्चा की है। अपवाद स्वरूप केवल साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ[5] ने एक वंश के कई राजा या उच्च कुलों में उत्पन्न अनेक राजा महाकाव्य के नायक हो सकते हैं ऐसा विचार प्रकट किया है। यद्यपि अनेक नायकों की कथा में वह अन्विति नहीं रह सकेगी जो एक नायक की कथा में रहेगी।

१- काव्यालंकार-परि० १, १९, २३

२- काव्यादर्श-प्रथम परि० १५ श्लोक

३- काव्यालंकार- १६ अध्याय- श्लोक ८

४- कल्पित मुक्तोत्पति नायकमपिकुत्रचित्कुर्यात् ।-काव्यालंकार-१६ अध्याय, श्लोक ३

५- साहित्यदर्पण- २ श्लोक - ३१६। पृ० ३०८ शालिगराम शास्त्री

पाठक के हृदय में स्थायी भाव पैदा करने वाला पात्र जो एक हो सकता है वह अनेक नहीं हो सकता और न वह आदर्श स्थान ही पा सकता है । ऐसे कम महाकाव्यों में कथानक का संग्रथन और उसकी रसपरकता का निर्वाह कठिन हो जाता है किन्तु यद्यपि कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य में 'रघु का वंश' ही नायक है तथापि 'रघुवंश' महाकाव्यों के सारे मानदण्डों के अनुसार संस्कृत साहित्य के सर्वोत्कृष्ट महाकाव्यों में से एक है । वंशनायक महाकाव्य सामान्यत: प्रशस्तिमूलक, ऐतिहासिक और धार्मिक महाकाव्य के रूप में आये । इस प्रकार के महाकाव्यों में हेमचन्द्र रचित 'द्वयाश्रय महाकाव्य' तथा 'राष्ट्रौढ़वंश' उल्लेखनीय हैं । एकाधिक नायक होने से कथा विशृंखल हो जायेगी और संकलन त्रय भंग हो जायेगा । स्वयं रघुवंश में वास्तविक नायक राम हैं और सब का चित्रण उन्हीं के चरित्र के परिदर्शनार्थ हुआ है । महाभारत में कुरु कुल का वर्णन है किन्तु नायक तो युधिष्ठिर ही है । महाकाव्य में नायक का वंशवृत्त आ सकता है पर नायक अनेक नहीं हो सकता । अनेक नायक होने से किसी के भी चरित्र का पूर्ण विकास नहीं होगा, यह एक दोष हो जायेगा[१] ।

संस्कृत महाकाव्य में देवता, राजा, ऋषि- तीन प्रकार के नायक पाये जाते हैं । ऋषि कोटि के नायक का परिगणन संस्कृत साहित्य शास्त्र में नहीं हुआ । संस्कृत के उच्च कोटि के महाकाव्य बुद्धचरित, सौन्दरनंद के नायक इसी कोटि के हैं ।

अन्य पात्रों के सम्बन्ध में हम शास्त्रों में चर्चा नहीं पाते जिस प्रकार नायक आदि के विषय में पाते हैं । बस केवल इतना है कि मंत्र दूत प्रयाण की चर्चा हो और मंत्री सहायक, दूत, सेना, सेनापति, शासक, रानियां, दास, दासियां, महाकाव्य में आवश्यक है । यह पात्र वैसे ही इनके विषय में भारतीय शास्त्र मौन हैं । नायिका की भी चर्चा बहुत अधिक नहीं पाते । रुद्रट ने राजा, वीरों मंत्रियों के स्वभाव की चर्चा की है ।

१- साहित्यदर्पण - श्लोक ३१६। पृ० ३०८ शालिगराम शास्त्री

महाकाव्य के पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक, आदर्शोन्मुख होना चाहिए । संस्कृत सभी आचार्यों ने चरित्रचित्रण में आदर्श को मान्यता दी है ।

आज के अधिकांश महाकवियों ने परम्परागत नायक स्वरूप में अपनी दृष्टि में परिवर्तन कर नायक की परिधि को अधिक विस्तृत कर दिया है, दिव्य, आदर्श चरित्र, तथा उच्च कुल में उत्पन्न धीरोदात्त गुणों से युक्त पुरुष ही नायक हो सकता है इस रूढ़ि को समाप्त कर दिया । आज महाकाव्य का नायक हमारे सन्मुख यथार्थ मानव के रूप में आता है । अब वह आदर्श मानव की भूमिपर ही नहीं, सुशोभित होता है बल्कि आज का नायक साधारण मानवोचित विशेषताओं और दुर्बलताओं से युक्त हो प्रत्येक मानव के हृदय में उतरने का प्रयत्न करता है और सफल होता है ।

अधिकांश महाकवियों ने प्राचीन लक्षणों और नवीन धारणाओं के बीच सामंजस्य उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। संस्कृत के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों को ध्यान में रखकर हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों की रचना हुई है । यह अवश्य है कि वह मान्यतायें उसी रूप में नहीं अपनाई ~~गयीं~~ जा सकीं किन्तु उनकी पूर्ण रूप से उपेक्षा भी नहीं की गयी ।जाति विशेष के जीवन में परिवर्तन के साथ साथ युग के प्रतिनिधि काव्य में अर्थात् महाकाव्य के स्वरूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक भी है ।

आज अधिकांश महाकाव्यों की रचना प्राचीन पौराणिक कथावस्तु को लेकर हुई है किन्तु युग की बौद्धिकता के अनुरूप कथा के अति प्राकृत और अलौकिक अंशों का परित्याग आधुनिक महाकाव्यकारों ने उचित समझा ।

विविध वर्णन :-[१]

नगर, सागर, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वन विहार, जल क्रीड़ा, पान, रति विलास, वियोग, विवाह, मंत्र, दूत, प्रयाण तथा नायकाभ्युदय ।

१- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० द्वारिकाप्रसाद मिश्र पृ० ४१

भारतीय आचार्यों ने इस पर बहुत अधिक बल दिया है । अलंकृत महाकाव्यों में अलंकृत वर्णनों की प्रधानता होना आवश्यक माना :घटना प्रवाह की तुलना में इसे अधिक महत्त्व दिया है । भामह ने परवर्ती आचार्यों की भाँति महाकाव्य के शरीर के बाह्य लक्षणों का ब्यौरा नहीं उपस्थित किया और न सर्गों की संख्या वर्ण्य विषय की सूची नायक के विशिष्ट गुणों, छंद और ग्रंथारम्भ इनकी परिभाषा दी है, प्रधान तत्त्व को पकड़ लिया है । भामह[1] ने केवल पाँच सन्धियों की दृष्टि से मंत्र, दूत, प्रयाण, युद्ध नायकाभ्युदय का आकलन किया है ।

दण्डी[2] ने नगर, सागर, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वन विहार, जलक्रीड़ा, पान रतिविलास, वियोग, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, मंत्र, दूत प्रयाण तथा नायकाभ्युदय इसको माना है, इन्हीं के आदर्शों को रख कर परवर्ती महाकाव्यों की रचना हुई है । अलंकृत और चमत्कार पूर्ण होना महाकाव्य का प्रधान लक्ष्य हो गया, चरित्र की महानता तथा रसाभिव्यक्ति ध्येय नहीं रहा ।

आचार्य रुद्रट ने अपने सिद्धान्तों का निरूपण करते समय महाभारत, रामायण प्राकृत, अपभ्रंश के महाकाव्यों को भी ध्यान में रक्खा । इनकी मान्यताएं यूरोपीय महाकाव्यों के लक्षणों को व्यक्त करती है । इन्होंने जीवन के समग्र व्यापारों को महाकाव्य में चित्रित होने पर अधिक बल दिया है जिसमें सभी व्यापार और परिस्थिति का आकलन करना पड़ता है ।

आचार्य रुद्रट ने एक विशेष प्रकार से महाकाव्य के तत्त्वों का आकलन किया है जिसमें व्यापार वर्णन की सूची भी आजाती है । नायक, नगर,- वर्णन उसके कुल का परिचय देने के पश्चात् नायक राष्ट्र विधान में लगा है , नायक प्रतिनायक की चर्चा दूत द्वारा सुनाता है, मंत्रियों द्वारा विचार करके दूत भेजता है या आक्रमण करता है । प्रयाण में नागरिकों का क्षोभ, जनपद, पर्वत, झील, मरुस्थल, सागर,

---

१- काव्यालंकार - भामह - १-१९ -२१

२- काव्यादर्श -दंडी- परि० १, १६-१७

द्वीप, भूभाग, स्कंधावार, युवकों की क्रीड़ाओं, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, रात्रि, युवकों की गोष्ठी संगीत, पान और प्रसाधन के वर्णनों का समावेश हो । अंत में नवयुवक योद्धा अपनी प्रेयसी के मिलन के पश्चात् युद्ध में जाने की सूचना देंगे - तत्पश्चात् नायक की विजय श्री का वर्णन ।

इस प्रकार महाकाव्य में जीवन के विभिन्न व्यापारों का वर्णन आना चाहिए। जीवन की सम्पूर्णता का वर्णन किसी प्रधान घटना जैसे युद्ध अथवा कोई महान कार्य-इसके माध्यम से करना चाहिए तथा अलंकृत वर्णन, प्रकृति चित्रण, विभिन्न नगरों देशों, भुवनों :स्वर्गादि: के वर्णन का विधान है । वर्णनों की योजनायें एक और विशेषता है महाकाव्य की श्रेष्ठता का आधार इन्हीं मनोरम वस्तुओं के चित्रण को बना दिया है यह वर्णन महाकाव्य में प्रचुरता से पाये जाते हैं ।

साहित्यदर्पणकार[1] की सूची में प्राय: वही होते हुए भी अंतर है । सूची में शनै: शनै: वृद्धि हो ही गयी । सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रात: मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, मंत्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि हैं ।

कुछ आचार्यों ने प्रधान व्यापार ही रक्खा जिसमें प्रेम, विवाह, मिलन, कुमारोदय संगीत, समाज राज काज, मंत्रणा, दूत प्रेषण, यज्ञ, सैनिक, अभियान, स्कन्धावार, व्यूह रचना, कारावरोध, युद्ध, नायक की विजय है इन्हें अलंकृत महाकाव्यों में पाते हैं। परवर्ती महाकाव्यों में कहीं कहीं तो इनको इतनी अधिक प्रधानता दी गयी है कि कि कथा के ~~क्रमिक~~ क्रमिक विकास में बाधा आ गयी है । यह महाकाव्य में शिल्प सौन्दर्य में वृद्धि के स्थान पर दोष उत्पन्न करता है । महाकाव्यकार को पूर्णतया सतर्क रहना चाहिए ।वर्णन की अधिकता अथवा सूची के दीर्घ चित्रण से नीरसता न आने पावे उतना ही वर्णन प्रयोग हो जो काव्य सौष्ठव को सुन्दर बनावे ।

१- साहित्यदर्पण -श्लोक ३२२-३२३ - पृ० ३०८ -विश्वनाथ

विश्व की प्राकृतिक वस्तुओं अथवा दृश्यों का वर्णन इस प्रकार करना चाहिए कि रसाभिव्यक्ति में बाधा न उत्पन्न हो । सूची के रूप में वर्णन जैसे 'प्रियप्रवास' में फलों के नाम की सूची चित्रित की गयी है काव्य में नीरसता उत्पन्न करता है । इसलिए घटनाप्रसंग के अनुसार इसका वर्णन करना चाहिए।

महाकाव्य में रस का अविरल प्रवाह हो:-[१]

भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में रस की योजना को आवश्यक तत्व कहा है । अग्नि पुराण में सभी भावों एवं रसों का समावेश अनिवार्य माना गया है । इसके लिए यह नियम अनिवार्य है कि एक रस प्रमुख होना चाहिए विषयगत वैविध्य की अवस्थिति में भी कोई एक रस प्रधान होना चाहिए जिसमें अन्य रसों का पर्यवसान हो ।

काव्य में रस की प्रधानता होनी चाहिए । महाकाव्य को रसोद्रेक की अभिव्यंजना का सागर कहा है । कुछ लोग तो रस निष्पत्ति ही महाकाव्य का उद्देश्य मानते हैं । दंडी ने 'रस भाव निरन्तरम्'[२] का मत प्रकट किया है अर्थात् रसाभिव्यक्ति स्रोत बराबर प्रवाहित होना चाहिए ।

रुद्रट[३] ने भी सभी रसों का होना महाकाव्य का प्रमुख अंग माना है, वैसे भी रस ही काव्य का आनंद है ।

१- **One predominent sentiment should run through the entire length of the poen, even in the time of such a diversity of topics discussed therein.**

A prose English Translation of Agni Puran Edited and Published by Manmath Dutt Vol. II Edition 1904

२- रसाभावनिरन्तरम् - काव्यादर्श - परि० १।१८

३- सर्वैरसा: क्रियन्तो काव्य स्थानानि सर्वाणि -

-काव्यालंकार- रुद्रट, १६-५

साहित्यदर्पणाकार विश्वनाथ[1] ने तीन रसों में से :शृंगार,वीर,शान्त : एक को अंगी शेष रसों को अंग रूप में स्वीकार किया है । अर्थात् एक रस इसमें से प्रधान और अन्य उसके सहायक होना चाहिए ।

महाकाव्य में रस स्वयं महान् उद्देश्य का साधन बन जाता है, रसानुभूति का उत्पन्न करना सर्वोत्कृष्ट उपाय है, पर चतुर्वर्ग को अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य माना है । पात्रों के और परिस्थिति के संपर्क,संघर्ष, क्रिया प्रतिक्रिया के द्वारा रस की उत्पत्ति होती है किन्तु आचार्यों ने इसकी विशेषता पर अधिक विवेचना न करके इस स्थान पर वियोग संयोग,युद्ध वर्णन आदि को ही अनिवार्य कहा है । जितने भी सफल और उत्कृष्ट श्रेणी के महाकाव्यकार हैं उनमें घटना प्रवाह, वस्तुव्यापार योजना, रस और भाव योजना के समन्वय की विलक्षण शक्ति थी ।

रस ही काव्य की आत्मा है उसमें व्यतिरेक होने से काव्य के आनन्द में बाधा पहुंचती है इसलिए प्रत्येक लक्षण का जैसे घटना प्रवाह,वस्तु व्यापार,शैली,भाव, योजना इस सबका समन्वय इस रूप में करना चाहिए जो रसोद्रेक में बाधक न हो । विश्व की प्राकृतिक वस्तुओं का सन्निवेश भी रसाभिव्यक्ति का ध्यान रख कर करना चाहिए ।

<u>रम्य छंदों का प्रयोग हो :-</u>

आचार्य[2] दण्डी ने कहा है कि महाकाव्य में `श्राव्यवृत्तै:` अर्थात् पढ़ने सुनने में रम्य छंदों का प्रयोग हो ।[3]

प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद होना चाहिए इस पर दंडी, हेमचन्द्र, विश्वनाथ का एक ही मत है । अंत के कुछ श्लोक भिन्न कर देते हैं अर्थात् अन्तिम दो-तीन छंद बदलने

१- `शृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते ।
अंगानि सर्वे पिरसा: सर्वे नायक संधय: ।साहित्यदर्पण-६-३१६

२- श्राव्यवृत्तै: ---`काव्यादर्श- दंडी,प्रथम परि० श्लोक १८

३-`सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तैरुपेतं लोक रंजनम्`
-काव्यादर्श - दंडी - प्रथम परि० श्लोक १९

के लिए कहा है जिससे कि अगले सर्ग की कथा की सूचना मिलती रहे, सर्गों की अन्विति बनी रहे और पाठक की उत्सुकता भी बनी रहे । भामह, रुद्रट ने अलग से कोई मत नहीं प्रकट किया है ।

हेमचन्द्र ने भी इन्हीं विचारों को अपनाया है और यह भी कहा है कि 'अर्थानुरूपछंदस्त्वम्' अर्थ के अनुरूप छंद योजना होनी चाहिए।

प्रत्येक सर्ग का विषय पृथक् होता है अतएव उसके उपर्युक्त भिन्न छंद का प्रयोग किया जाय किन्तु एक सर्ग में एक ही छंद हो तो सुन्दर है क्यों कि छंद परिवर्तन के आग्रह ने भी रामचन्द्रिका के महाकाव्यत्व पर आघात किया है । बार बार छंद परिवर्तन महाकाव्य के गांभीर्य में बाधा पहुँचाता है । रामचरित-मानस का सम्पूर्ण ग्रन्थ दोहा, चौपाई में ही समाप्त कर दिया है पर उसकी महाकाव्यगत सौन्दर्य और कलात्मक तत्व की रक्षा अक्षुण्ण रही ।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ[1] ने सबसे भिन्न एक मत प्रकट किया है कि कुछ सर्गों में विविध प्रकार के छंदों का होना भी पाया जाता है ।संस्कृत महाकाव्यों में इसके उदाहरण भी हैं। महाकवि माघ ने शिशुपाल वध के चतुर्थ सर्ग में अनेक छंदों का प्रयोग किया है ।

छंदयोजना भी रसाभिव्यक्ति के अनुकूल ही की जाती है ।छंदों का संचयन इसलिए होता है कि उसमें एक विशिष्ट भेदात्मक शक्ति होती है जो रस की उत्पत्ति करती है । आगामी छंद को प्रत्येक अंतिम छंद में प्रयुक्त करने से पूर्व सूचना मिल जाती है इससे शृंखलाबद्ध एकसूत्रता बनी रहती है, आगामी सर्ग के प्रथम छंद का भाव वही होगा जो पूर्व सर्ग के अंतिम छंद का होगा ।

मुख्य बात यह है कि भावना के आधार पर छंदों का नियोजन होता है जिसमें एक विशिष्ट आकर्षण और प्रभाव होता है जैसे करुण रस के भाव को प्रकट करने के लिए मंदाक्रान्ता वैराग्य की भावना के लिये शिखरिणी छंद का प्रयोग सुन्दर लगता है ।इसलिए महाकाव्य में छंद योजना महत्वपूर्ण तत्व है इसका निर्वाह होना चाहिए।

वर्णनीय विषयों में खलों की निन्दा और सज्जनों की स्तुति:-

खलों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा का वर्णन भी कहीं कहीं पाते हैं ।

१- नाना वृत्तमयःक्वापि सर्गःकश्चनदृश्यते -साहित्यदर्पण-श्लोक ३२ पृ०३०८
-शालिग्राम शास्त्री की टीका

अन्य आचार्यों ने इस पर अपना कोई मंतव्य नहीं प्रकट किया ।साहित्यदर्पण-कार विश्वनाथ[1] ने महाकाव्यों के वर्णनीय विषयों में इसकी भी गणना की है परन्तु इस पर अधिक विचार नहीं किया अर्थात् अपने दृष्टिकोण से इसे महत्त्व पूर्ण नहीं समझा ।वास्तव में खल निन्दा या सज्जनों की स्तुति महत्वपूर्ण तत्त्व नहीं है प्रसंगवश वर्णन कर देना उचित है पर आवश्यक नहीं है कि उसका प्रवेश कराया ही जाय ।

आशीर्वाद नमस्कार या वर्ण्य वस्तु के निर्देशन द्वारा महाकाव्य का आरंभ :-

`आदौ नमस्क्रियाशीर्वावस्तुनिर्देशएव वा`[2]

विश्वनाथ ने महाकाव्य के आरम्भ करने में मंगलाचरण का होना बताया है । वह मंगलाचारण नमस्कार के रूप में रहता है । अथवा आशीर्वाद के रूप में रहता है । कहीं कहीं मुख्य कथा की ओर संकेत का निर्देश रहता है । अन्य आचार्यों ने इस पर अपना कोई विशेष दृष्टिकोण नहीं रक्खा इस परिपाटी को बाद के अधिकांश संस्कृत महाकाव्यों में अपनाया गया है । इससे अधिक प्राकृत, अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों में इनका पालन हुआ है ।

रुद्रट ने आदि में सन्नगरी वर्णन नायक वंश प्रशंसा का होना आवश्यक बताया हेमचन्द ने इसमें कुछ और वृद्धि कर दी, कहा है वक्तव्य, अर्थ का प्रतिज्ञान, उसके प्रयोजन का प्रकाशन, कवि प्रशंसा, सज्जन दुर्जन का स्वभाव चित्रण आदि होना चाहिए।

भामह दण्डी ने कोई लक्षण इस प्रकार का नहीं बनाया । बाद के रचित महाकाव्यों को देख कर रुद्रट, हेमचन्द्र विश्वनाथ ने अपनी परिभाषा में इन लक्षणों को दिया है ।

अग्निपुराण में महाकाव्य के संबंध में मंगलाचरण का कुछ भी उल्लेख नहीं है । वस्तुत:लक्षणों का निर्माण निगमन शैली पर ही हुआ करता है । दण्डी और विश्वनाथ के समय तक कई महाकाव्य ऐसे प्रसिद्ध हो चुके थे जिनमें`मंगलाचरण`पाया

१- क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतांचगुणकीर्तनम्`-साहित्यदर्पण-परि० ११, ५-२५

२- साहित्यदर्पण~~कार~~- परि० ६, ११५-२५

जाता है । आस्तिक आचार्य विश्वनाथ ने नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण होना चाहिए, यह नियम बना डाला ।

परम्परा का अनुसरण करने वाले हिन्दी कवियों ने भी अपनी कृतियों में इसे स्थान दिया है वे लोग ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए इसे आवश्यक समझते थे । किसी सीमा तक यह उचित भी है कि अपनी परम्परा और आस्तिकता को अक्षुण्ण रखने के लिए रूढ़िवादिता के पुजारी कवि आज भी इसका ध्यान रखते हैं. किन्तु मूल्यों की अराजकता के इस युग में और तर्क के समय में मंगलाचरण में उतनी आस्था क नहीं है जो इसे अनिवार्य समझें ।

विचार किया जाय तो धर्मप्रिय आध्यात्मिक देश भारत की संस्कृति के अनुसार साहित्य में विशेषतयामहाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण की कुछ पंक्तियां होना उचित है भले ही इसमें परिवर्तन संशोधन कर दिया जाय किन्तु इस तत्व को महत्व हीन नहीं कहा जा सकता क्योंकि साहित्य का हमारे जीवन से, आचरण से घनिष्ठ सम्बन्धहै । हमारा युग मानवता में ईश्वरत्व का दर्शन करता है तो हमें ईश्वर के गुण और उसकी अपार कृपा का स्मरण तो करना ही चाहिए इसे हम साहित्य से ही सीखेंगे ।

महाकाव्य की समाप्ति:-

अंत के सम्बन्ध में रुद्रट ने कहा कि नायक का अभ्युदय अंत में होना चाहिए चरम सीमा पर पहुँच कर नायक का उत्कर्ष भीपूर्ण रूप से में होता है उसके पश्चात् कुछ लिखना प्रभावान्विति में रुकावट पैदा करना होता है ।

आचार्य हेमचन्द्र ने इससे भिन्न मत प्रकट किया । अंत में उपसंहार के रूप में वर्णन होना अनिवार्य कहा है । ऐसा प्राकृत अपभ्रंश के महाकाव्य में पाते हैं । हमें हेमचन्द्र ने भी इन्हीं महाकाव्यों को माध्यम बना लिया । इनकी दृष्टि में कवि को "स्वाभिप्रायस्वनामेष्टनाम मंगलांकितसमाप्तित्वम्" अपना ध्येय प्रकट करना चाहिए अपना तथा अपने इष्ट का नाम मंगलसूचक शब्दों का आकलन करना चाहिए ।

आरंभ और अन्त के सम्बन्ध में तो महाकाव्यों को नियम की परिपाटी में न बांध कर स्वतंत्रता होना चाहिए, पर संस्कृत आचार्यों ने इसे भी परिभाषा में सन्निहित कर रूढ़ि में बांधने का प्रयत्न किया है । यह अवश्य है कि नायक का अभ्युदय पूर्णरूपेण अन्त में होना चाहिए।

महाकाव्य के नामकरण का आधार कवि वृत्त और नायक:-[1]

आचार्य विश्वनाथ ने इस संबंध में लक्षण दिये हैं । कवि कथावस्तु अथवा नायक किसी आधार पर महाकाव्य का नाम होना चाहिए, किसी अन्य पात्र के नाम के आधार पर भी होना बताया है और यह मत भी प्रकट किया है कि सर्गों का नाम सर्गगत कथा का आश्रय लेकर होना चाहिए।[2]

संस्कृत के महाकाव्यों में इस परिपाटी का उदाहरण विद्यमान है-

कवि नाम पर 'भट्टिकाव्य' का नामकरण हुआ है, अन्य पात्र का आधार लेकर संस्कृत के उत्कृष्ट महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' का नामकरण हुआ है तथा नायक के आधार पर 'बुद्ध चरित' का निर्माण हुआ है ।

महाकाव्य में अलंकारों का स्थान:-

इस पर प्राय: सभी आचार्यों ने अपने विचार प्रकट किये और अलंकार युक्त होना महाकाव्य का अनिवार्य गुण बताया । भामह[3] ने कहा- सालंकार होना चाहिए अर्थात् अलंकरण नहीं होने पर उसे महाकाव्य मानने को तैयार नहीं ।

१- कवेर्वृत्तस्यवानाम्नानायकस्येतरस्यवा नमास्य -साहित्यदर्पण -परि० ६-११५-२५

२- नामास्य सर्गोपादेय कथयासर्गनामत

-साहित्यदर्पण- परि० ६, ११५-२५

३- ग्राम्यशब्दमर्थं च सालंकारं सदाश्रयम्

-काव्यालंकार - १, १९-२१

ग्राम्य शब्दों का प्रयोग अधिक न होना चाहिए यह भी कहते हैं । शिष्ट नागर प्रयोग और अलंकृत यह महाकाव्य का आवश्यक गुंण माना है ।

दण्डी[1] अलंकार के सम्बन्ध में और आगे बढ़ गये - अलंकृत होना ही महाकाव्य का लक्षण है ऐसा मत प्रकट किया - अर्थात् भामह के मत में 'सालंकार होना चाहिए' को इस रूप में लिया कि महाकाव्य का प्रधान गुंण है ।

प्रारंभिक महाकाव्य रामायाण, महाभारत में यद्यपि अलंकारों पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया गया पर अभाव नहीं पाते क्यों कि यह उत्कृष्ट काव्य का आवश्यक गुंण है और स्वत: वह आ ही जाता है । वही स्वाभाविक भी रहता है । जैसे महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य में व अन्य रचनाओं में अलंकार का प्रयोग किया है तो भावाभिव्यक्ति और रसोद्रेक :रस व्यंजना :में व्यतिरेक नहीं आया अर्थात् अलंकार योजना का समन्वय अति नैसर्गिक रूप से प्रयुक्त किया गया है जोड़े हुए से अलग नहीं लगते, बल्कि आगे चल कर अवश्य काव्य में काव्य कला की अपेक्षा आचार्यत्व अधिक प्रमुख हो गया जो नहीं होना चाहिए उतना ही अलंकार होना चाहिए जो स्वाभाविक लगे । काव्य में अलंकार का अधिक पाया जाना इसका कारण दरबारी वातावरण का होना भी था । अपवाद स्वरूप साहित्य दर्पण के रचयिता ने अलंकार को महाकाव्य का अनिवार्य लक्षण नहीं माना ।

भाषा सरल और सर्वबोधगम्य :-

भाषा के विषय में आचार्यों ने अधिक विवेचन नहीं किया, जो महाकवि हो उसका भाषा पर पर्याप्त अधिकार होगा ।

भामह ने शिष्ट नागर जनों की भाषा प्रयुक्त होना चाहिए, महाकाव्य में ग्राम्य शब्दों और अर्थों का प्रयोग न होना चाहिए ऐसा मत प्रकट किया है ।

आचार्य हेमचन्द्र का विचार है कि भाषा सरल सर्वबोध गम्य हो ताकि

१- अलंकृतम् संदिप्तं रस भाव निरन्तरम्
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलंकृति ।।-काव्यादर्श-प्रथम परि० १८, १९ श्लोक

महाकाव्य से सब का मनोरंजन हो सके , महाकाव्य का प्रमुख गुण है लोकरंजकता परन्तु आगे चल कर भाषा क्लिष्ट, समास-बहुला, अतिशय अलंकृत पाते हैं । अलंकृत होना भी भाषा का गुण है पर अतिशयता तो सौन्दर्य को जटिल बना देती है । उसी प्रकार भाषा में गांभीर्य उसमें चमत्कार उत्पन्न करता है पर उसकी दुरूहता रसानुभूति में विघ्न उपस्थित करती है क्यों कि मन आनंद के सागर में डूबने नहीं पाता बल्कि शाब्दिक जाल को सुलझाने में उलझ जाता है । अत: महाकाव्य की भाषा सरल और सुंदर होनी चाहिए सरलता के साथ स्वाभाविकता, प्रवाह शीलता होना चाहिए अर्थात् भाषा ऐसी हो जो काव्य सौष्ठव में वृद्धि करे ।

शैली की उच्चता कीदृष्टि से संस्कृत के महाकाव्य भारतीय साहित्य में प्राय: सर्वोपरि है । महाकाव्य की शैली का मूलतत्व है उसकी गंभीरता । यह निर्भर है महदुद्देश्यमहच्चरित्र महती घटना और कवि की महाप्राणता पर । महाकाव्य के स्वरूप विवेचन में भाषा शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य की रचना में काव्य सौष्ठव की अतिशयता होनी ही चाहिए, किन्तु आचार्यों ने बाह्य तत्वों- भाषा अलंकार, रस, छंद पर ही विचार किया है शैली के मूलतत्व पर कम विचार किया है। महाकाव्य की भाषा बोधगम्य होना चाहिए ताकि सब लोग उसका आनन्द प्राप्त कर सकें ।

अलौकिक तत्वों का सन्निवेश:-

महाकाव्य में महदुद्देश्य, महच्चरित्र, महती घटनाओं को प्रमुख तत्व माना । इससे अतिप्राकृत तत्वों और अलौकिक कार्यों का समावेश आवश्यक है किन्तु रुद्रट का कथन है कि वह जो कार्य मानव की शक्ति के परे है -जैसे पर्वत, समुद्रलंघन, पृथ्वी भ्रमण आदि - इन्हें देवता किन्नर आदि के द्वारा ही करवाये या इनकी सहायता से करवाये । अत: इन अलौकिक आश्चर्यजनित कार्यों की योजना मानवशक्ति की परिधि के भीतर ही रक्खे अथवा उसके करने वाले भी अतिप्राकृत गुणों से युक्त यानी देवता, यक्ष आदि हों ताकि महाकाव्य की नैसर्गिकता नष्ट न होने पावे और कल्पना को भी संयत रखे ।

रुद्रट[1] ने इस विचार को निश्चित करते समय कदाचित् रामायण, महाभारत, रोमांचक कथाकाव्यों को ध्यान में रक्खा था उसी के माध्यम से यह लक्षण निर्धारित किया।

महाकाव्य में अलौकिक या पारलौकिक तत्व ऐसा हो जो कथा प्रवाह में सहायता पहुंचावे, हास्यास्पद न हो, औत्सुक्य या कुतूहल मात्र ही जाग्रत न करे बल्कि श्रद्धा को उद्दीप्त करे। अब तो समयानुसार युग का बौद्धिक स्तर उन्नत होता चलता है महाकाव्य में अलौकिक तत्व के समावेश में सतर्कता से काम लेना चाहिए उनको बुद्धिग्राह्य बना कर प्रयोग करना चाहिए जो हमारे लिये केवल आदर्श या चमत्कार के रूप में न हो बल्कि हमारे जीवन के अति निकट आ सके। प्राचीन के साथ नवीन का समन्वय करते हुए महाकाव्य को मान्य और बोधगम्य रूप देना चाहिए। अलौकिक तत्वों का समावेश महाकाव्य में करना चाहिए कि उसकी स्वाभाविकता सुरक्षित रहे।

महाकाव्य के सृजन में महाकवि का उद्देश्य:-

महाकाव्य के सृजन में कोई न कोई महान् उद्देश्य अवश्य अन्तर्निहित रहता है। यह युग काव्य होता है महाकवि अपनी इस कृति के द्वारा समाज के सन्मुख एक आदर्श की स्थापना करता है, अपने उद्देश्य के माध्यम से युग की समस्याओं को सुलझाता है और यही कारण है कि किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही महाकाव्य का निर्माण होता है और उसी अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए नायक का चरित्र विकसित होता है।

१- कुलशैलाम्बुनिधीनांनबूयालंघनं मनुष्योक्ता
आत्मीयैरेवशक्त्या सप्तद्वीपानि चंक्रमणम्
यैऽपितुर्लंघित पन्तो भरत प्राया कलाकलाम्बुनिधान
तेषां सुरादि मुख्यैः संगादासन्निमानानि।
-काव्यालंकार-१६ वां अध्याय, श्लोक ३८ वां

भारतीय आचार्यों ने अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को महाकाव्य के सृजन में उद्देश्य माना है। महाकाव्य में किसी महान् पुरुष के जीवन का सम्पूर्ण चित्रण अंकित किया जाता है इस कारण यह आवश्यक है कि चतुर्वर्ग को उद्देश्य बनायें। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष यह जीवन के प्रमुख अंग हैं। अत: इसको समक्ष रख कर इसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न ही नायक का सर्वांगीण चरित्र चित्रण है। आज के युगानुसार उद्देश्य की परिपाटी में भी कुछ परिवर्तन हो गया है चतुर्वर्ग को अनिवार्य नहीं मानते।

सारांश[1] यह कि कुछ आचार्यों ने तो चतुर्वर्गफलको आवश्यक बताया और कुछ ने केवल एक को लक्ष्य माना किन्तु विचारणीय है कि केवल काम या मात्र अर्थ को कैसे महाकाव्य का ध्येय स्वीकार किया जा सकता है जब महाकाव्य जीवन सम्पूर्ण चित्रण का काव्य है। विश्वनाथ जी ने एक स्थान पर काव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग फल प्राप्ति स्वीकार किया है। महाकाव्य ऐसे महार्घ विधा का लक्ष्य लौकिक और अलौकिक दोनों ही होना चाहिए। जीवन के इन मुख्य अंशों को महाकाव्य के नायक के चारित्रिक विकास के लिए महत्व देना आवश्यक है।

आचार्य दण्डी[2] ने भी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष - इस चतुर्वर्ग का वर्णन महाकाव्य की परिभाषा की विवेचना करते समय किया है रुद्रट ने सभी को आवश्यक माना है। प्राय: अन्य आचार्यों ने सभी को लक्ष्य माना। रुद्रट ने कहा कि खंड काव्य में किसी एक वर्ग को ही ध्येय बना ले पर महाकाव्य में सभी की प्राप्ति ध्येय है। इसमें समग्र जीवन का चित्रण होता है।

१- साहित्यदर्पण - ६।३१८

२- साहित्यदर्पण- १।२

: चत्वारस्तस्य वर्गा:स्युस्तेष्वेकंच फलम्भवेत।३१८।

३- चतुर्वर्ग फलायत्तं -काव्यादर्श प्रथम परि० १५, श्लोक

:२:

पाश्चात्य साहित्य की दृष्टि से महाकाव्य का स्वरूप-विधान

क- पाश्चात्य सिद्धान्तों के अनुसार महाकाव्य के लक्षण

ख- पाश्चात्य दृष्टि से महाकाव्य के भेद और रूप

महाकाव्य संबंधी पाश्चात्य दृष्टिकोण :—

संस्कृत के प्राचीन महाकाव्यों को ध्यान में रखकर भामह दंडी आदि आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण निश्चित किये उसी प्रकार होमर के इलियड, औडिसी जैसे प्राचीन पाश्चात्य महाकाव्यों को आधार मान कर ही पाश्चात्य समीक्षकों ने महाकाव्य के सिद्धान्तों का निरूपण किया है-परन्तु समय के साथ साथ मनुष्य की सोचने समझने की शक्ति में परिवर्तन होता रहता है, जो नियम और लक्षण आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व आचार्यों ने निर्धारित किये वे आज के युग में उसी रूप में मान्य नहीं हो सकते । युग की प्रवृत्तियों के अनुसार उनमें भी परिवर्तन आवश्यक रहता है ।

पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तू ने महाकाव्य की विशद् रूप में परिभाषा दी है यह अवश्य है कि महाकाव्यों के लक्षण को अलग से संकेत न कर के दुखान्तों (Tragedies) से तुलना करते हुए (Epic Poetry) के लक्षणों का निर्देशन किया है । अरस्तू के अनुसार महाकाव्य की कथा स्वाभाविक हो और उसमें जीवन के किसी एक सत्य का निरूपण हो तथा ऐसे उदात्त व्यापार की काव्यमय अनुकृति का प्रतिपादन हो जो स्वत: पूर्ण हो, गंभीर हो तथा वर्णनात्मक हो, भाषा शैली मनोरम हो, अलंकार युक्त हो, आदि से अंत तक एक छंद हो, आदि मध्य अंत से युक्त कार्य की एकता हो और संपूर्ण घटना हो जिसका जीवंत विकास दिखाया गया हो, वह कथा जीवित प्राणी की तरह एक इकाई मालूम पड़ती हो, सरस सजीव शैली युक्त हो । महाकाव्य का आनंद सुशिक्षित वर्ग ही उठा सकता है कथानक में शिथिलता आ जाये परन्तु शैली मनोरम और भव्य हो; श्रेष्ठ तथा आदर्श चरित्रों का वर्णन हो ।

अरस्तू ने महाकाव्य और `त्रासदी` की तुलना करते हुए इनका अंतर भी स्पष्ट किया है । महाकाव्य में आदि से अंत तक एक ही छंद का प्रयोग होता है उसके कार्य व्यापार में समय की सीमा नहीं रहती जबकि `त्रासदी` का कार्य व्यापार लगभग २४ घन्टे तक ही सीमित रहता है । जहां तक शब्दों के माध्यम से महाकाव्य और `त्रासदी` में महान चरित्र और

उनके कार्यों के अनुकरण का संबंध है, पर्याप्त समानता है । अरस्तू के इन विचारों की विवेचना स्पष्ट रूप से इसी तुलनात्मक दृष्टिकोण से ही पाते हैं ।[1]

अरस्तू ने हर प्रकार के काव्य को अनुकरण कहा है । इसी कारण महाकाव्य के विषय में भी अपना यही मत प्रकट किया है कि जिसमें कथानक अनुकरण हो, षटपदी छंद का प्रयोग हो तथा कथानक दुखांत नाटक के समान अन्वितियुक्त हो[2] - उसे महाकाव्य माना है । और महाकाव्य में नाटकीय तत्वों अतिप्राकृत और अलौकिक घटनाओं को कथानक में प्रयुक्त सम्भावना और कल्पना पर आधारित तथ्यों तथा महाकाव्य की भाषा और शब्द चयन को आवश्यक माना है ।[3]

----

1. Epic poetry agrees so far with tragic as it is an imitation of great characters and actions by means of words, but in this it differs ; that it makes use of only one kind of metre through out and that it is narrative. It also differs in length for tragedy endeavour as far as possible to confine its actions within the limit of a single revolution of the sun or nearly so, but the time is of epic action is indefinite.

   Dometrius- Aristoli's Poetrics P.13

2. With respect to that species of poetry which imitates by narration and the hexametre verse, it is obvious that the fable ought to be dramatically constructed like that of tragedy.

   -- - Aristotle's Poetics--Part III of the Epic poen. Every man's Library Edition 1949 Edited by T.A. Moxon Page 46.

३- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास : पृ०- ७३-७४ ।

इटली के प्रथम सम्राट `आगस्टस` के संरक्षण में महाकवि वर्जिल ने `इनीड` की रचना की वह भिन्न युग का भिन्न ही महाकाव्य था । अरस्तू के लक्षण इस पर नहीं घटित हुए क्योंकि अरस्तू ने अपने पूर्व के दो महाकाव्य इलियड और ओडिसी को आदर्श मान कर महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किये थे । हजारों वर्षों तक वर्जिल के महाकाव्य को आधार मनकर निर्धारित किये गये लक्षणों को यूरोप में मान्यता मिली । इसी प्रकार १२वीं शताब्दी में रचे गये महाकाव्य जो लोक महाकाव्य कहे गये जैसे `वियोवुल्फ`, `सांग आफ रोलां`, `नेवुल गैन लीड` आदि ये अरस्तू के सिद्धान्तों के अनुसार महाकाव्य नहीं माने गये ।

इस प्रकार महाकाव्य के स्वरूप विकास के समानान्तर में महाकाव्य की परिभाषा में भी परिवर्तन होता रहा । विद्वानों ने अलग-अलग तत्वों को महत्व दिया है ।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार महाकाव्य की कथा वस्तु बिखरी हुई किन्तु प्रत्येक अंग सौन्दर्यपूर्ण हो । महाकवि युग को, समाज को लेकर चलता है इसलिये उसकी कल्पना शक्ति नियंत्रित होनी चाहिए तथा प्रत्येक के अंतरतम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं तक पहुंचने की शक्ति होनी चाहिए । महाकाव्य में युग चेतन से संबद्ध जीवन के सार्वभौमिक शाश्वत सत्य का प्रतिपादन हो । इसलिये विद्वान `एवरक्रोंबी`[१] का मत है कि महाकाव्य की कथा सामग्री सच्ची या लोक विश्रुत होनी चाहिए । केवल कल्पना पर आधारित महाकाव्य की

१-

The prime material of the epic-poet, then, must be real and not invented --- The reality of the Central subject is, of course, to be understood broadly. It means that the story must be founded deep in the general experience of men.

The Epic; L. Abercrombie P. 55

रचना उचित नहीं है ।

'स्वरक्रान्वी' के महाकाव्य की भाषा शैली पर भी बल दिया है और आदि से अंत तक एक ही छंद का होना अनिवार्य माना है ।[१]

महाकाव्य का कथानक लोक प्रसिद्ध महत्वपूर्ण होना चाहिए । वह कवि की कोरी कल्पना न हो कवि अपने विचारों आदर्शों के अनुसार उन्हें परिवर्तित कर सकता है । कोई सच्ची ऐतिहासिक अथवा लौकिक विश्रुत वृहद् कथा वर्णित होनी चाहिए ।[२]

कथानक के विषय में कुछ आचार्यों का मत भिन्न है । विद्वान केम्स ने प्राचीन लुकन ने अर्वाचीन और तैस्सो नेन प्राचीन और न पूर्ण रूप से अर्वाचीन, ऐसे विचार प्रकट किया है । लार्ड 'केम्स' के मत से वीरतापूर्ण कार्यों का भव्य मनोरम शैली में वर्णन ही महाकाव्य है ।[३]

महाकाव्य के कथानक में नाटक की जैसी धारावाहिकता नहीं होती वह मंथर गति से आगे बढ़ता है । महाकाव्यकार गौण चरित्रों की अवतारणा, विविध घटनाओं की सृष्टि, उपाख्यानों की योजना और विविध दृश्यों के चित्रण द्वारा अपने कथानक को समृद्ध बनाता हुआ पाठकों के हृदय को मुग्ध

---

1. It will tell its tale both largely and intensely and the diction will be carried on the volume of a power-ful flowing metre;
   The Epic L. Abercrombie P. 61
2. To do this he takes some great story which has been absorbed, into the prevailing consciousness of his people. As a rule, though not quite invariably, the story will be of things which are or seem, so far back in the past, that anything may credibly happen in it, so imagination has its freedom, and so significance is displayed.
   The Epic L. Abercrombie P. 48

३- देखिये - :हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य:डा० गोविंदराम शर्मा पृ०-३४ (थीसिस)

करता है । कथा प्रवाह में तीव्र वेग के न होते हुए भी कथानक के विविध घटनाओं में एक सूत्रता रहती है । वे सारी एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है।[१]

विद्वान डिक्सन[२] ने इस पर विशेष रूप से अपने विचार प्रकट किये हैं[२] । आलोचक हाब्स ने प्रकथनात्मक काव्य को ही महाकाव्य माना है ।[३]

संकलनात्मक[४] महाकाव्य में वीर पुरुषों की वीर गाथाओं का वर्णन स्वाभाविक सरल शैली में होता है । होमर के इलियड ओडिसी को संकलनात्मक महाकाव्य कहा है । संस्कृत के महाभारत और रामायण महाकाव्य को भी इस कोटि में रक्खा जा सकता है । प्राय: ऐसे महाकाव्य में एक ही लेखक जनता में प्रचलित विभिन्न कथाओं को काव्योचित रूप से एक सूत्र में आबद्ध कर प्रस्तुत करता है अन्यथा यह एक व्यक्ति की रचना न होकर अनेक व्यक्तियों की रचनाओं का सुसंबद्ध रूप होता है ।

१- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य : पृ०- ३५ (थीसिस)
-डा० गोविंद राम शर्मा

2. where as in epic the action moves slowly, with a kind of unhurried state lines and can only achieve elevation grandure by the mass of volume of its interests* by the inctroduction of numerous subsidiary characters only the diversity of its minor incident or by the variety of its episodes or by the romantic charm of its scenry by any or all of these.

English and Heroic poetry
By M.Dixon P. 22.

3. The first (authentic) epics are intended for recitations the literary epic is meant to be read .... L. Abercrombie P. 39. The Epic

4. The heoric poem narrative is called an epic poem "Said Hobbs". The Heroic poem dramatic is tragedy. .... I bid P. 22

कलात्मक महाकाव्य[1] व्यक्ति विशेष की साहित्यक रचना होती है। प्राय: इसमें कृत्रिमता पाई जाती है और विशेष रूप से इसकी रचना पढ़ने के लिये होती है।

महाकाव्य का नायक सर्व गुण संपन्न, विजयी, महान् व्यक्ति होना चाहिए। नायक को विजयी दिखाना चाहिए क्योंकि वह समस्त राष्ट्र[2] का, युग का, और समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इसका समर्थन एम०डिक्सन ने किया है।

पाश्चात्य सिद्धान्तों के अनुसार महाकाव्य के लक्षण :—

पाश्चात्य प्रमुख आलोचकों के विचारों के अनुसार महाकाव्य के कुछ विशेष लक्षण निर्धारित किये गये हैं।

१- महाकाव्य बृहदाकार प्रकथन प्रधान काव्य है।

२- नायक महान व्यक्तित्व वाला युद्ध प्रिय होना चाहिए सारी कथा नायक को लेकर एक सूत्र में बंधी रहती है।

३- पात्र शौर्य गुण प्रधान होते हैं। उनका संपर्क देवताओं से भी रहता है उनके कार्यों की दिशा निर्धारित रहती है जिनमें देवताओं और नियति का हाथ रहता है[3]।

---

1. In the first place, a poem constructed out of ballads composed some how or other, by the folk, ought to be more "Natural" than a work of deliberate art ------ A Literary epic
.... Ibid P. 28.

2. Epic, for instance, one notices, usually depicts a victorious hero. It cannot well do otherwise. For in such a poem the interest is rather national than individual. The hero represents a country or a cause which triumphs with his triumph whose honour would suffer from his defeat.
English Epic and Heroic poetry
By. M. Dixon P. 21.

Hand Book of poetics -- F.B. Gummer P. 15-17.

३- काव्य के रूप : पृ०- ८६
: साहित्य विवेचन : पृ०- ७७
: समीक्षा शास्त्र : पृ०- ७६

४- स्वयं कवि नायक हो जैसे `डिवाइन कामेडी` में दाते स्वयं नायक के रूप में दिखाई पड़ता है ।

५- विषय लोक प्रिय परंपरागत ख्याति प्राप्त हो कवि कथा सूत्र को छोड़कर अपने पथ से दूर न बह जाये ।

६- जातीयता की भावना प्रधान हो । संपूर्ण जाति के क्रिया कलापों का वर्णन हो व्यक्ति की अपेक्षा जाति की प्रमुखता रहे।

७- जातीय संघर्ष का सन्निवेश हो ।

८- एक ही छंद का प्रयोग हो ।

९- शैली में विशिष्ट शालीनता, उच्चता हो व स्पष्टता (Perspienty) उत्कृष्टता (Submity) हो ।

१०- कार्य व्यापार का प्रारंभिक माध्यमिक और अंत एक सूत्र में गुंथा हुआ हो ।

११- चरित्रों में अनेक रूपता और नवीनता हो । साथ ही व्यक्ति वैशिष्ट्य हो (Individuality) । होमर के महाकाव्य इलियड का प्रत्येक चरित्र अपनी कर्मण्यता, वाक चातुर्य के द्वारा अलग अस्तित्व बना लेता है । पाश्चात्य आलोचकों ने इसे महत्व दिया है ।

१२- स्वाभाविक और उदात्त विचार हों, अश्लीलता अस्वभाविकता कृत्रिमता न हो ।

१३- अरस्तु के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु दो प्रकार की है —

(क) ऋजु (Semplex)

(ख) जटिल (Implex)

पिछले पृष्ठ का शेषांक—

: बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य : पृ०- ६-७

: हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य : पृ०- ३४-३५

(क)- जब नायक के भाग्य में स्थिरता हो उसमें किसी प्रकार की गति न हो तो ऋजु कथावस्तु है ।

(ख)- जटिल में भी दो प्रकार हैं —

१- जब नायक के भाग्य की गति विधि में एक रूपता हो या तो उसका भाग्य उसे निरंतर अभ्युदय और वैभव बृद्धि की ओर ढकेलता रहे अथवा पतन के पथ पर सतत घसीटते लिये चले उसे जटिल संज्ञा दी जाती है ।

२- जब भाग्य चक्र नायक को उत्थान पतन की दो भिन्न दिशाओं में घुमाता रहे, कभी उसे दुर्भाग्य के थपेड़ों से मूर्च्छित होना पड़े, कभी भाग्योदय के दिन देखने को मिले तो(Implex)[१] ये कथावस्तु जटिल कहलाती है ।

इस प्रकार उत्थान और पतन के सागर में थपेड़ा खाते हुए नायक को देख कर हमारे चित्त में निरंतर उत्सुकता बनी रहती है । नायक के भविष्य के प्रति कौतूहल बना रहता है । इस प्रकार की कथावस्तु श्रेष्ठ महाकाव्यों के लिये विशेष अनुकूल होती है ।

विद्वान `डेवनान्ट` ने महाकाव्य की कथावस्तु का आधार प्राचीन घटनाओं को लेकर ही माना । क्योंकि इसमें कवि को अपनी शक्ति और व्यक्तित्व को विकसित करने का अधिक अवसर रहता है । सामयिक घटनाओं में तो एक प्रकार का नियंत्रण रखना पड़े ।

फ्रेन्च आलोचक `ल बस्सु` ने भी प्राचीन घटनाओं का चित्रण ही कहा महाकाव्य को । परन्तु `लुकन` ने दोनों के विरुद्ध अर्वाचीन घटना को ही महत्व दिया । इनका विचार है जनता अपने नेत्रों के सन्मुख रहने वाले महत् और सजीव पात्र को अधिक श्रद्धा तथा आदर अर्पित कर सकेगी । अपेक्षाकृत प्राचीन कथा के पात्रों के ।

१- समीक्षा शास्त्र : पृ०- ७६ ।

पाश्चात्य दृष्टि से महाकाव्य के भेद और रूप :—

महाकाव्य को अंग्रेज़ी में Epic कहते हैं काव्य के दो मूल विभाग हैं—

१- विषयि प्रधान - Subjective (भाव प्रधान भी कहते हैं।

२- विषय प्रधान - Objective

विषयी प्रधान के अंतर्गत प्रगीत काव्य को रखते हैं और महाकाव्य (Epic) को विषय प्रधान कहा है। Epic के भी दो भेद किये हैं (

(क) प्राकृतिक अर्थात् संचित महाकाव्य जिसे Epic of growth कहा है जैसे `बाल्मीकि रामायण`, `होमर की इलियड`।

(ख) कलात्मक अर्थात् साहित्यिक महाकाव्य जिसे Epic of Art कहा है जैसे `रघुवंश` `नैषध` `कामायनी` `पैराडाइज़ लास्ट`।

जब महाकवि किसी वीर पात्र की परंपरागत जीवन गाथा को लेकर काव्य में संचित करता है तो उसे संचित महाकाव्य कहते हैं। यह स्वतंत्र गतिपूर्ण और स्वाभाविक रहता है। साहित्यिक महाकाव्य में महत् कार्य और दैवी शक्ति का हस्तक्षेप रहता है, शैली भव्य और उदात्त रहती है, छंद एक ही रता है इसमें `टेनिसन` का `आइडियल्स आफ़ दी किंग` आता है।

साहित्यिक महाकाव्य के भी भेद हैं —

१- प्रमाणित महाकाव्य (Aunthentic epic)

२- रूपात्मक महाकाव्य (Allegory)

३- उपहास महाकाव्य[१] (Mock Epic)

१- बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य : पृ०- १४
-डा० प्रतिपाल सिंह।

पाश्चात्य विकसित महाकाव्य — पाश्चात्य महाकाव्य में विकसित महाकाव्य (Epic of Growth) अनेक कवियों के सहयोग से संपादित होकर युग युगों से संचित अनवरत कथावस्तु को लेकर प्राचीन कथा, कहानी, गाथा, जन गीतों के मिश्रित रूप से निर्मित होता है, छोटी-छोटी कथा आख्यान गीत एक चरित्र के साथ अनुस्यूत हो जाते हैं जैसे यूनानी महाकाव्य इलियड और ओडिसी जो महाकवि होमर द्वारा रचे गये हैं ।

कलात्मक महाकाव्य — (Epic of Art) यह एक ही कवि की प्रौढ़ प्रतिभा की कृति रहती है । अनुसंधान के आधार पर निश्चित प्रणाली और परंपरा को लेकर इसकी रचना की जाती है । इसमें प्राचीनता पांडित्य की गरिमा और अनुकरणात्मक प्रवृत्ति पाते हैं । तो विकसित महाकाव्यों में नवीनता स्वाभाविकता एवं जातीयता मुख्य गुण है । इसके उदाहरण हैं वर्जिल का `इनीड` जो लैटिन महाकाव्य है । इसमें वर्जिल ने `होमर` को आदर्श मान कर रचना की है । `मिल्टन` के `पैराडाइज़ लास्ट` तथा `पैरेडाइस रिगेंड` भी कलापूर्ण महाकाव्यों की कोटि में आते हैं ।

पश्चिमी धारणा संसार के प्राय: सभी देशों के साहित्य के इतिहास का आरंभ वीर गाथा से मानती है । उस काल को वीर युग कहा गया है । वीर युग प्रत्येक देश के महाकाव्यों का उद्भव काल समझा जाता है । भारत में `रामायण` `महाभारत` ग्रीस में `इलियड` `ओडिसी` जर्मन में `नेबुलन गेनालीड` स्पेन में `सिड` इटली में `एनिड` और आंग्ल में `व्युवुल्फ़` वीर युग की ही कृतियां हैं । वीर युग के प्रत्येक वाणी की भावना वीरोन्मुख हो जाती है[१]।

जब वीर युग ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को जन्म देता है जिसमें सृजनात्मक प्रतिभा विद्यमान रहती है तब ये सामान्य उपादान उसके द्वारा कलापूर्ण रूप में संग्रहीत होकर महाकाव्य रूप में प्रकट होते हैं । ये महाकाव्य — जातीय अथवा प्रामाणिक महाकाव्य (Authentic Epic) कहे जाते हैं ।

१- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास : पृ०- ६६ ।

सभ्यता की वृद्धि के साथ कवि सचेत रहता है, कला में उसका व्यक्तित्व प्रमुख स्थान ग्रहण करता है। जब कवि महाकाव्य रचने के ध्येय से बैठता है, परिष्कृत शैली में कलापूर्ण कृति की रचना करता है वह महाकाव्य साहित्यिक महाकाव्य : Literary Epic : की कोटि में आता है। इसमें कृत्रिमता रहती है।

लार्ड कैम्स ने वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में वर्णन ही महाकाव्य माना है। डिक्सन ने इसका समर्थन किया है[१]।

यौरोपीय महाकाव्यों की परम्परागत अवस्था क्रमशः वीर भावना शास्त्रीय, धार्मिक, नैतिक, रोमांचक, आधुनिक स्वच्छंदतावाद की भावना से युक्त रही। प्रथम विकास में होमर दूसरे में 'दाते' कैमास 'मिल्टन', तीसरे में स्पेन्सर 'एरिवास्टो टैसो आदि- चौथे में गेटे, टेनिसन, ब्राउनिंग विक्टर ह्यूगो, हार्डी आदि हैं।

इस प्रकार विकसित और कलात्मक महाकाव्य में सामान्य रूप से जातीय गौरव प्रधानता मानते हुए परम्परानुसार कथावस्तु का कलेवर विशाल रहता है जिसमें जातीय जीवन का चित्र अंकित किया जाता है। वीरता के, शौर्य के, कार्य और प्राचीन घटना के वर्णन में भूतप्रेत देवता का उल्लेख रहता है- उसका सम्बन्ध अलौकिक जगत् से दिखाया जाता है। पाश्चात्य महाकाव्य में साहित्यिक महाकाव्य और महाकाव्य के अन्तर्गत प्रमाणित महाकाव्य :आथेंटिक : रूपकोक्ति महाकाव्य :अलेगोरिकल : परिहास महाकाव्य :माक एपिक : भी आते हैं।

१- As to the general taste there is a little reason to doubt that a work where hereic actions are related in an elavated style will, without, further requisite, be deemed an epic poem.

English Epic and Heroic poetry
By. M. Dixon P. 18.

:३:

पाश्चात्य महाकाव्यों पर एक दृष्टि

: पाश्चात्य महाकाव्यों का कलात्मक धरातल

(ग) पाश्चात्य महाकाव्यों पर एक दृष्टि——

कविता लेखन कला से अधिक प्राचीन है, यह अब निश्चित हो चुका है कि योरोपीय जातियों के लोक गीत जिन्हें आज भी ग्रामीण कृषक बरबस ही गुनगुना उठते हैं, एक शाश्वत परंपरा है ।[1]

कवि के काल्पनिक जगत पर जब एक महापुरुष अधिकार जमा लेता है तथा उसके महत् भावों से प्रभावित होकर उस पात्र पुरुष की प्रतिष्ठापना के लिये कवि वाणी मुखरित हो उठती है तब वह अपनी तूलिका के द्वारा ऐसा चित्र अंकित करता है जो महाकाव्य का रूप धारण कर लेता है । उस महापुरुष के पुनीत और उन्नत भावों से आकर्षित होकर विश्व मुग्ध हो उठता है और वही महाकाव्य का नायक होता है ।

पाश्चात् शास्त्रकारों ने महाकाव्य के लिये महान् कर्म, उदात्त चरित्र एवं ऐश्वर्यशालिनी शैली की अनिवार्यता को ही स्वीकार किया है तथा कार्य-व्यापार की एकता, आदि, मध्य, अंत अपेक्षित है । इसमें अलौकिक घटनाओं का समावेश संभावित रूप से होना चाहिए । महाकाव्य की कथावस्तु लोक विश्रुत हो, गंभीर वर्णनात्मक और सरस हो ।

महाकवि होमर के 'इलियड' 'ओडिसी' आदर्श महाकाव्य माने जाते हैं । अन्य महाकाव्य वर्जिल का 'इनियड' 'मिल्टन' का 'पैराडाइज लास्ट' इन्हीं के नमूने पर बने हैं । 'इनियड' में रोम के संस्थापक रोम्यूलस के पिता के साहसपूर्ण कार्यों का वर्णन है उसमें होमर की दोनों पुस्तकों की कथा का योग सा है । 'पैराडाइज लास्ट' में ईश्वर के विरुद्ध शैतान का विद्रोह, आदम का बहकाया जाना मनुष्य के पतन और ईश्वर के द्वारा उसके उत्थान का वर्णन है, उसमें किसी जाति विशेष के भाग्य का निर्णय नहीं वरन् ईसाई धर्म के अनुकूल सारी मानवता का उत्थान है इसका उद्देश्य ईश्वरीय न्याय का उदाहरण है ।[2]

---

1. Poetry is far older than writing
   The out line of Literature (1948)
   By Drinkwater.

२- काव्य के रूप : पृ०- ८६ ।

महाकवि होमर का इलियड औडिसी —

इलियड :— इस महाकाव्य का वर्ण्य विषय युद्ध है जो विश्व सुंदरी हैलेन के अपहरण से प्रारंभ होता है । यहां ऐगामेम्नन् और आर्किलस में युद्ध होता है जो बाद में ग्रीक और यूनानी युद्ध का रूप धारण कर लेता है, जिसमें असंख्य प्रासंगिक कथाएं संकलित कर दी गई हैं ।

महाभारत में द्रौपदी के अपमान ने कौरवों का सर्वनाश कर दिया । रामायण में सीता हरण के कारण राम-रावण का युद्ध हुआ । ट्राय नरेश के पुत्र `पैरिस` ने "स्पार्टा" के अधिपति मैनीलास की परम सुंदरी पत्नी (हैलेन) का अपहरण किया और कई वर्षों तक ट्रोजन युद्ध चलता रहा । `मैनीलास` ने ग्रीक राजाओं की सहायता से ट्राय पर आक्रमण कर दिया । इस भयंकर युद्ध में देवताओं ने भी भाग लिया और सत्य की विजय हुई । हैलेन पुन: अपने महल में पधारी ।

होमर के महाकाव्यों के आधार पर यूनानी लोगों ने अपना जीवन बनाया था, ये उनके इतिहास थे, धर्म थे । यूनानी सभ्यता के ये महानतम प्रयास संपूर्ण आंग्ल यूरोपीय कवियों की प्रेरणा रहे । इन महाकाव्यों की भव्यता, महानता, मानवीय सत्यों की पैठ, इतिहास और संस्कृति का निर्माण अद्भुत है; ये पश्चिमी काव्य धारा के जन्मदाता ही नहीं आज के उत्कृष्ठ कलाकार भी हैं । अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में होमर की चर्चा करते हुए इन्हें महत्वपूर्ण स्थान दिया है ।

औडिसी — बाल्मीकि रामायण की भांति औडिसी का प्रचार भी गाकर हुआ था । गाने वाले `रैपसोडाई` (Rhapsodoy) कहलाते थे । इस काव्य में आदि मानव की मूल ऐतिहासिक आवश्यकताओं का वर्णन है, स्त्री का अनुपम सौन्दर्य सभी का मूल स्त्रोत है । इसमें यूलिसिस के वैयक्तिक साहसों से पूर्ण जीवन, उसके घर आने की उत्कंठा और रक्षा की चिंता मुख्य है ।

इसकी कथा है इथैका के राजा यूलीसिस की यात्रा तथा मार्ग में दैवी दुर्घटनाओं द्वारा उपस्थित विघ्न बाधाओं का निर्भीकता से सामना करना । इसमें यूलीसिस के पत्नी पुत्र आदि के मिलन की उत्सुकता आदि का रोचक और सुन्दर वर्णन है । मैनीलास की मदद करने को ट्रोजन के महायुद्ध में यूलीसिस गया था

ट्राय के पतन के बाद यह एक टापू में कौलिप्सों अप्सरा द्वारा कैद कर लिया गया वर्षों तक रहा, अन्य साथी भी रास्ते में समाप्त हो गये । यूलीसिस की पति व्रता पत्नी पैनीलोव ने धैर्य और साहस से समय व्यतीत किया अंत में पुत्र, पति पत्नी सबका परस्पर मिलन होता है ।

'इलियड' तथा 'औडिसी' दोनों महाकाव्य यूनान की आइप्लोनियम भाषा में रचे गये हैं । यह धार्मिक नहीं हैं; इसकी मूल प्रेरणा वीरोचित कार्य और स्त्री का अनुपम सौन्दर्य है । देवताओं को मानव के समान घृणा, प्रेम, संघर्ष करते दिखाया है, यह अवश्य है कि उनमें कुछ अलौकिकता का सन्निवेश करके उन्हें मानव की श्रेणी से अलग करने का प्रयास किया है ।

प्रत्येक विजय और पराजय में देवता भाग्य और नियति बनकर मानव पात्रों को संचालित करते हैं । इसमें स्वातंत्र्य का जन्य घोष सर्वत्र है ।[१]

<u>होमर का चरित्र चित्रण</u>:— होमर की चरित्र चित्रण की शक्ति विलक्षण है । हैलेन का सौन्दर्य, एकीलीज का पराक्रम, पैरिस की विलासता यूलिसीज़ की असाधारणता सभी का व्यक्तित्व अनोखा है । परिस्थिति योजना में होमर को असाधारण प्रतिभा प्राप्त है । इलियड में स्वच्छंदतावाद का प्रथम रूप दिखाई पड़ता है ।[२]

होमर ने अपने इन महाकाव्यों में अदृष्ट एवं दैवी शक्ति से अलग मानव चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है । इनके पात्रों में गुण दोष का समन्वय भी है, एकलीज़ वीर, सत्यवादी, निर्भीक, उदार हृदय होते हुए भी क्रोधी और क्रूर है । यूलीसिस योद्धा, कष्ट सहिष्णु होकर भी स्त्री के समक्ष दुर्बल और भीरु हो जाता है । पैनीलोप बुद्धिमती, पतिव्रता होते हुए भी दुर्बल है । होमर ने पात्रों के चरित्रांकन में मानव मनोवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है ।

होमर की कल्पना शक्ति अनुपमेय है, दृष्टि सूक्ष्म है । उनमें मानव जीवन की गहनतम अनुभूतियों को परखने की शक्ति है । महाकवि ने भिन्न-भिन्न

१- कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा - पृ०- २२४

२- प्रसाद का काव्य : पृ०- ५१८

चरित्रों की अवतारणा और सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा अपने काव्य में नाटकीय तत्वों का सन्निवेश किया है ।

प्रेम, युद्ध, शौर्य, सौन्दर्य, नीति के वर्णनों से यह काव्य भरा पड़ा है । होमर अनूठी उपमाओं के लिये वैसे ही विख्यात है जैसे कवि कालिदास ।[1]

होमर के महाकाव्य में अंतर्वृत्तियों का अनुरंजन कल्पना की परिष्कृति भावना एवं अभिरुचि की पूर्ण समन्विति दृटिगत होती है । काव्यों की कथाएं वैयक्तिक साहसिक कृत्यों से भरी पड़ी है जिनमें संग्राम और दैवी दुर्घटनाओं का बाहुल्य है, देवताओं की दुर्दम्य शक्ति मनुष्य को खिलौना बना कर खेलती है । होमर के सभी पात्रों का जीवन प्रारब्ध सूत्र में बंधा है वह जैसा चाहता है उन्हें बनाता है और बिगाड़ता है ।[2]

`ओडिसी` में होमर के द्वारा गृह के मधुर वातावरण, आदर्श कान्ता का चित्रण पाते हैं । इलियड के नारी पात्र में कहीं देवांगना के रूप में अथवा नारी के रूप में निर्माण योजना, ध्वंस की क्षमता, शासन प्रतिभा पाते हैं ।

इस प्रकार होमर को अपने पात्रों के चरित्र चित्रण में पर्याप्त सफलता प्राप्त है और इनकी प्रतिभा इस संबंध में बहुमुखी है, इन्होंने अपने यहां के सिद्धांतों को दृष्टि में रखते हुए पात्रों के चरित्र का विकास किया है । इनके कुछ सिद्धांत ऐसे है जो हमारे मत से साम्य रखते हैं जैसे नायक कोई महान कार्य को ही लेकर अग्रसर होता है, नायक और कथावस्तु लोक विश्रुत हो । नायक फल की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है पर उसमें यह अन्तर अवश्य है कि हमारे यहां सुखान्त होना अनिवार्य है जब कि पाश्चात्य मत इसको आवश्यक नहीं मानता ।

इनियड :— महाकवि वर्जिल की अमर कृति है । लैटिन भाषा के इस प्रकांड कवि के साथ-साथ पाश्चात्य कृत्रिम काव्य (Artificial Poetry) का युग आरंभ होता है । कथा का मूल स्त्रोत होमर के महाकाव्यों में है । वर्जिल को होमर की भांति ही देश के प्रति अति अनुराग था इसकी कृति में राष्ट्रीय भावना

१- कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा : पृ०- २२५

२- साहित्य दर्शन : पृ०- ११

-शचीरानी गुर्टू कृत

दिखाई देती है । इन्होंने संपूर्ण रोमन साम्राज्य को एक सुदृढ़ पाश में स्थायी रूप से बांधने का प्रयास किया है, रोम का समस्त वैभव उसमें वर्णित है । महा कवि आरंभ में ही सूचना देता है कि रोम के शक्तिशाली पूर्वजों का यशोगान करने की अभिलाषा रखता है और ट्राय की कथा को लेकर काव्य में अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है । उसका नायक इनियस ट्राय का ही अवशिष्ट प्राणी है । नायक की कथा का आरंभ एक विशाल दावत में बैठ कर होता है । `इनियस` सौन्दर्य की देवी वीनस का पुत्र है ट्राजन के पतन की कथा भी वही सुनाता है । टरनस की समाप्ति उसके हाथों होती है, इसी में काव्य का अंत दिखाया है । वर्जिल ने इस महाकाव्य में धार्मिक, आध्यात्मिक तत्वों का भी समावेश किया है । वीनस अपने पुत्र इनियस के लिये देवी देवताओं से प्रार्थना करती है, देवी देवता समय-समय पर कथानक में आते हैं । `डिडो` का प्रवेश प्रेम भावना को भी स्थान देता है उसकी मानसिक परिस्थिति का भी चित्रण है ।

इस महाकाव्य में प्रासंगिक कथाओं का प्रवेश कथावस्तु में कौतूहल की वृद्धि करता है और निसस `वयूरिएलस` की कथा पालाज़ की सौर चन्द्रमा की देवी की, सारशिना `कैमिलाज़ की कथा ने रसाभिव्यक्ति में शुष्कता नहीं आने दी । इनियड में प्राचीन देवी देवता, मृतात्मा और रोम के ऐश्वर्य का बहुत ही सुंदर वर्णन है । इसमें चरित्र चित्रण साधारण है । यथार्थता और विश्लेषण शक्ति का विकास होमर के काव्य के चरित्र की भांति नहीं हो पाया `डीडो` के चरित्र चित्रण में पर्याप्त सफलता मिली है ।

<u>डिवाइन कामेडी</u> :— यह इटली के प्रख्यात और प्रतिभा संपन्न महाकवि `दांते` की रचना है । इन्होंने भाव प्रवणता और बौद्धिक चमत्कार से सबको चकित कर दिया । दांते की नौ वर्ष की उम्र थी जब वह अपनी समवयस्क सुकुमारी बीट्रिस से मिलता है और बोलता नहीं पर उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और लिखता है "उसी दिन से वह मेरे प्राणों में रम गई ।" बीट्रिस कवि की प्रेरक शक्ति बन गई वे परस्पर जीवन में केवल तीन बार मिले । विवाह के पश्चात् पैतीस वर्ष की अवस्था में बीट्रिस की मृत्यु हो जाती है और दांते का जीवन अंधकारमय हो जाता है । वह लिखता है "मेरे जीवन की सारी खुशी चली गई अब मैं सूना हूं, निरानंद हूं, भग्न हृदय हूं ।" निराश हृदय के समान ही महाकाव्य की

पृष्ठभूमि भी अंधकार की निविड़ता से आच्छन्न है । इस महाकाव्य का आरंभ ही दुःख्य वातावरण से होता है । कवि कहता है `जीवन की जिस पगडंडी पर मानव चलता है, उसी में मैंने स्वयं को पथ भ्रष्ट तथा सघन अंधकार पूर्ण वन में पाया क्योंकि मुझे पथ ही नहीं दिखाई देता था ।`

इसका कथानक गूढ़ है । कवि ही स्वयं नायक है और उसकी प्रेयसी बीट्रिस नायिका है । कथा तीन खंडों में विभाजित है, प्रथम खंड में नर्क का, द्वितीय में पापक्षय भूमि, तीसरे में स्वर्गीय दृश्यों का वर्णन है । काव्य के आरंभ में कवि एक बीहड़ वन में यात्रा करता है पथ भ्रष्ट होकर अनेक संकटों का, हिंसक जीव जन्तुओं का सामना करना पड़ता है । कुछ समय पश्चात् वर्जिल की आत्मा के दिव्य दर्शन होते हैं । उसीसे कवि सत्पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त करता है । द्वितीय खंड में अनुताप है, नायक पश्चाताप की आंच में अपने को भस्म कर दिव्य रूप धारण कर लेता है और तृतीय खंड में उसकी बीट्रिस से भेंट होती है, उसकी सहायता से कवि स्वर्ग में अनंत शक्ति के दर्शन करता है ।

प्रस्तुत महाकाव्य में `दांते` के मानसिक संघर्ष, नैराश्य और हृदय की अंतरतम भावनाओं का चित्रण है । प्रेम के अनुभव ने स्थायी संवेदना का रूप धारण कर लिया । दांते ने वर्जिल को अपना पथ प्रदर्शक गुरु स्वीकार किया है ।

दांते ने प्रेयसी बिएट्रिस को नैसर्गिक दैवी प्रेम के ही प्रतीक के रूप में चित्रित किया है । वर्जिल कवि को ज्ञान दृष्टि देता है और बिएट्रिस अंत में अमर सत्य चिरंतन आनंद की अनुभूति कराती है । वर्जिल पाप पुण्य का समस्त लेखा प्रस्तुत करता है, नर्क की विभीषिका दिखाता है । नर्क में समस्त अधर्मी अनाचारी मिलते हैं पर अंत में सत्य की ही प्रतिष्ठा होती है जो कवि का उद्देश्य था । दांते को अपनी प्रेयसी से नव जीवन प्राप्त हुआ । उस दशा का वर्णन कवि ने डिवाइन कामेडी में किया है —

`मानो हेमंत की शीतमयी निशा के अनंतर सूर्य की प्रथम किरणों के स्पर्श से ही किसी संकुचित अर्द्धनिमीलित पुष्प की पंखुरियां विकसित हो उठी हों ।`

अंत में स्वर्ग का राज दरबार दिखाई देता है । मेरी तथा संत बरनर्ड भी आ जाते हैं । कवि उस अपार अलौकिक आनंद और बियट्रिस की सौन्दर्य माधुरी का वर्णन करने में असमर्थ हो जाता है । वह प्रेम को महान कहता है ।[1]

स्वर्ग के संपूर्ण चित्र में बियट्रिस की अलौकिक छवि और ज्योति प्रस्फुटित होती रहती है । दांते के पात्रों में इटली के राजकुमार, पोप, पादरी, किसान, मजदूर, कवि डाक्टर सभी हैं । नर्क के भीषण दुर्दान्त वर्णन में भी बड़ी प्रतिभा दिखाई गई है ।

दांते के चरित्रों में रंजनकारिणी चित्रमयी कल्पना का बड़ा ही अनूठा विन्यास और भावनाओं की अत्यंत सुकुमार योजना मिलती है । सूक्ष्म मनोविज्ञान और दार्शनिकता की छाया में सौन्दर्य की प्रेम वेदना की विलक्षणता का आभास भी मिलता है । कोई-कोई चरित्र तो इतने ऊपर उठ गये हैं कि होमर को भी शिकस्त खानी पड़ती है ।[2]

पैराडाइज लास्ट :— यह अंग्रेज़ी के महान कवि मिल्टन का अमर काव्य है । इसी में परम्परावादी कविता का पुनर्जागरण हुआ । इस नेत्रहीन कवि ने अपनी कृति में मानवता की विजय को साकार रूप देने में अवर्णनीय सफलता प्राप्त की है । विवेक से देखा जाय तो जो कवि आंतरिक दृष्टि से विधाता की अनुपम सृष्टि का साक्षात् करता है और सूक्ष्म अनुभूति से पार्थिव-अपार्थिव वस्तुओं के मन में गहराई तक पहुंच जाता है वही सच्चा नेत्र वाला है । मिल्टन ने अपने महाकाव्य में ईश्वर, मानव पुण्य-पाप की समस्याओं को लिया है । आरंभ में ही है कि कवि मनुष्य के प्रति ईश्वर के समस्त व्यवहार को न्यायोचित ठहराना चाहता है —

"मैं चिरंतन रक्षा कर सकूं और मनुष्य के प्रति ईश्वर के कार्यों को न्यायोचित बताऊं ।"

१- प्रसाद का काव्य : पृ०- ५२३ -डा० प्रेम शंकर

२- साहित्य दर्शन : पृ०- १२-१३ -शचीरानी गुर्टू

मानवता के आरंभ की समस्या को लेते हुए भी मिल्टन ने अपने महाकाव्य को धार्मिक रूप दे दिया । ईसा के प्रभुत्व का आग्रह अधिक है ।

इस महाकाव्य में आदम ईव मानवता के प्रतीक बनकर आये हैं और आदम के विरोध में `शैतान` विजयी होता है । पाप कर्म के कारण शैतान स्वर्ग से पृथ्वी पर फेंक दिया जाता है और ईश्वर से प्रतिशोध लेने का प्रण करता है- देवता के दूत नई सृष्टि की रचना करते हैं, शैतान धरती पर इनका प्रधान बनकर प्रतिदान लेने की भावना रखता है । इधर यह दिखाते हैं कि अलौकिक शक्ति द्वारा `आदम``इव` को बता दिया जाता है शैतान ही तुम लोगों के पतन का कारण बनेगा,। सावधान रहो ।

मानव होकर यह `ईव``आदम` स्वर्ग के निवासी हैं । एक घटना होती है कि वहां Tree of Knowledge का फल है जो `ईव` खा लेती है और उसके कहने से आदम भी खा लेता है । यह लोग जानते हैं कि इसके खाने से ईश्वर के समक्ष अपराधी ठहराये जायेंगे क्योंकि `ईव` को ईश्वर ने फल खाने को मना भी किया पर ईश्वर ने दोनों को क्षमा कर दिया और दंड रूप में पृथ्वी पर जाने को कहा, इन्हीं से मानवता की प्रतिष्ठापना होती है ।

मानवता के पुजारी इस कवि ने `यडन गार्डन` में विचरते हुए इन दोनों का सुंदर वर्णन किया है और पैराडाइज़ लास्ट में आया है- हाथ में हाथ लेकर वह अतीव सुंदर जोड़ी घूम रही थी । आज तक प्रेम के अंचल में ऐसी अभूतपूर्व जोड़ी न देखी गई थी आदम मनुष्यों में सबसे उत्तम था इव अतीव सुंदर पुत्री ।

मिल्टन ने मानव की शाश्वत समस्या को लेकर अपने काव्य का निर्माण किया । नायक आदम की पराजय के कारण इसे दुखांत कहते हैं पर शैतान की क्षणिक विजय है । आदम की पराजय ही विजय बन जाती है । शैतान असफल है और `आदम` `इव` असफल होकर भी चिर प्रसन्न हैं इसलिये इसे दुखांत न कहा जाय । तात्पर्य यह कि अंग्रेजी आलोचकों ने इसी कारण से इसे सुखांत कहना ही उचित समझा ।`आदम` और`ईव` की सुखानुभूति काव्य को दुखान्त कहने से रोकती है क्योंकि वह असफलता में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं

और उनका चिर आनंद काव्य को सुखांत बना देता है ।इसके लिए पाश्चात्य विद्वान ने अपना विचार प्रकट किया है ।

काव्य में गंभीरता है । कारण उसका मुख्य स्त्रोत और धरातल साहित्यिक और सांस्कृतिक है । चिंतन पक्ष प्रौढ़ और परिमार्जित रूप में प्रस्तुत हुआ है । कवि पाप पुण्य की समस्या के प्राचीन रूप को लेता है और धार्मिकता का पुट देकर काव्य में समावेश करता है । एक विशेषता है कि इसमें रूपकत्व की प्रतिष्ठा हुई है जैसे कामायनी में इसीसे इसमें असंभव घटनायें जो हैं भी वह भावों पर बल भले ही दें पर अनुचित नहीं लगती न काव्य के रसाभिव्यक्ति में ही बाधा डालती हैं । यह मानवता की शाश्वत विजय का प्रतीक है यानी रूपक है । कथावस्तु उस युग से संबंधित है जब मानवता की संस्कृति का विकास भी नहीं हुआ था । बल्कि निर्माण योजना की रेखा मात्र थी ।

इसमें प्रबंधात्मकता के प्रवाह में शिथिलता है, कहा जाता है अनावश्यक घटना, प्रसंगों को विस्तार से वर्णन किया है । कुछ आलोचकों का मत है कि कल्पना महाकवि की निधि है किन्तु कल्पना का अंश इतना होना चाहिए जो युगानुसार बुद्धि ग्राह्य हो साथ ही काव्य में शिथिलता न आने पावे क्योंकि हमारे यहां तो महाकाव्य की कथावस्तु में लोक विश्रुत इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं को ही मान्यता दी गई है ।

मिल्टन के महाकाव्य में बाइबिल की छाया प्रतीत होती है । जहां तक भाव, भाषा, शैली का प्रश्न है उनकी परंपार का अनुसरण अधिक पाया जाता है । चरित्रांकन के संबंध में यह विचार है कि इस महाकाव्य में पाप और मृत्यु जैसे छायात्मक पात्र को प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय हस्तक्षेप करते दिखाया है । आलोचकों के अनुसार इससे महाकाव्य के प्रभाव में बाधा पड़ती है । उसे संकेत रूप में ही उपस्थित करना चाहिए । होमर वर्जिल ने ऐसे पात्रों का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं कराया न सक्रिय रूप में वर्णन किया । दैवी चरित्रों का आगमन भी कथानक के अनुकूल ही रहा, कहीं-कहीं दार्शनिकता रहस्यात्मकता और पांडित्य ने दुरूहता उत्पन्न कर दी है ।

एडीसन ने लिखा है कि पैराडाइज़ लास्ट सुखांत है क्योंकि `आदम` और`ईव` असफलता में भी चिर आनंद की अनुभूति करते हैं ।

भावाभिव्यक्ति और आंतरिक विचारों के स्वाभाविक चित्रण में मिल्टन सराहनीय है और होमर की समता करता है । जिस प्रकार कामायनी के निर्माता जयशंकर प्रसाद ने श्रद्धा को मानव जाति की आदि जननी का रूप देकर एक महान चरित्र की रचना की उसी प्रकार मिल्टन ने अपनी संपूर्ण सहानुभुति `स्व` को अर्पित कर उसे समस्त भावुक और कोमल अनुभुतियों का केन्द्र बनाया । पात्रों के चरित्रांकन में पाश्चात्य महाकवियों ने प्रभावशाली चित्र उपस्थित किया है ।

पाश्चात्य महाकाव्यों का कलात्मक धरातल :—

विश्व के महान कवियों में साम्य पाया जाता है । श्रेष्ठ काव्य के उपादानों को लेकर चलने वाले कवि एक दूसरे के निकट आ जाते हैं उनमें देश काल का अंतर कम रह जाता है । व्यक्तिगत विशेषताओं को लेकर यद्यपि वे अमरत्व प्राप्त करते हैं किन्तु मूलत: उनमें समानता रहती है ।[१]

होमर की `हेलेन` दांते की `विएट्रिस` भवभूति की बाल्मीकि की सीता अपने व्यक्तित्व में स्थायी हैं किन्तु उनमें एक निकटता सुगमता पूर्वक स्थापित की जाती है । `हेलेन` का स्वर्गीय सौन्दर्य ही युद्ध का कारण बना । विएट्रिस नैसर्गिक प्रेम की प्रतिमा बन कर आईं । सीता नारी का सबल रूप लेकर आईं और रामायण में उनका अपहरण ही राम रावण का युद्ध बना । इसी प्रकार पुरुष पात्रों के चित्रण में भी साम्य मिलता है । पेरिस, दांते, राम, फाउस्ट भिन्न-भिन्न देश काल के होकर भी हमारे निकट हैं । सुंदरता पर मुग्ध होने वाला पेरिस अंत तक हेलेन को प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहता है । दांते स्वयं नायक बन कर प्रेम प्रदर्शन करता है । फाउस्ट स्वच्छंद प्रेमी के रूप में आता है । राम का आदर्शवादी रूप भी सीता का सहयोग लेकर चलता है । विरह के समय वो एक सच्चे प्रेमी पति की भांति विलाप करते हैं ।

१- प्रसाद का काव्य : पृ०- ५१५
-डा० प्रेमशंकर ।

प्राय: महाकाव्य को अधिक सुशिक्षित वर्ग ही समझने में सफल होता है, वैसे होमर को यूनान और तुलसी को भारत की सामान्य जनता भी जानती है, लेकिन दांते, मिल्टन, कालिदास, गैटे, शैली आदि का प्रसार विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक होने पर भी सामान्य जनता उनकी रचना का आनंद नहीं ले सकती । जन कवि जीवन की व्यौहारिक समस्या में भी यत्नशील रहता है । महान सांस्कृतिक कवि मानव मन का अंतर्द्वन्द्व अपनी कृतियों में भर देता है, जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिस्थितियों तक पहुंचने का प्रयत्न करता है ।

पांचों महाकाव्य गंभीर वर्णन, उदात्त कार्यों और प्रबंध पटुता में सफल हैं, भाषा-प्रसंगानुकूल ओजस्वी प्रसाद गुण सम्पन्न है । रसों के अनुकूल कोमल कठोर पदों की योजना है, अलंकारों का भी उचित स्थानों पर स्वाभाविक रूप में प्रयोग हुआ है । जैसा कि महाकवि में होना चाहिए । शब्द पर पूरा अधिकार है अपनी भावाभिव्यक्ति के साथ भाषा को भी जैसा चाहा प्रयोग किया । महाकवि होमर की उपमा अनुकूल समय पर प्रयुक्त होने के कारण अत्यन्त स्वभाविक और सरल है, काव्य की सुंदरता में योग देती है । इसी कारण होमर की कालिदास से उपमा दी जाती है । एक विशेषता और है कि उपमाओं को नित्य प्रति जीवन में अतिनिकट रहने वाली वस्तु में से ही लिया है । कवि की उपमायें वास्तव में आभूषण में जड़ित मणियां की भांति कृति को चमत्कृत करती है । फ़र्श पर झाडू की चोट से उठी हुई गर्द की उपमा होमर ने सूप से फटकते हुए धान की उड़ती हुई चोकर से की है, भिन-भिनाती मक्खी की ऐसेम्बली से उठती हुई भीड़ की ध्वनि से की है । ऐसी स्वाभाविक उपमाएं दी हैं ।

'वर्जिल' और 'मिल्टन' ने भी अपने महाकाव्यों में होमर की उपमा उत्प्रेक्षा का अनुकरण किया है । 'दांते' ने भी वही मार्ग अपनाया पर वह चमत्कार, वह वैलक्षण्य और गांभीर्य नहीं है जो होमर की उपमा उत्प्रेक्षा में है । कोई अपनी नवीनता इनमें नहीं है इनके काव्य के स्तर से होमर के महाकाव्य का स्तर कहीं अधिक उच्च है । कवि पोप ने एक स्थल पर लिखा है —

'होमर ने कभी परिस्थितियों से खिलवाड़ नहीं किया ।'

वर्जिल शब्द चयन में अत्यंत दक्ष और प्रवीण है । भाषा पर उसका अबाध अधिकार है । किसी भी श्रेष्ठ कलाकार की भांति उसकी कृतियों में भाषा का चरम उत्कर्ष प्राप्त होता है । कलात्मक विकास में साहित्यिक कवियों को इनसे पर्याप्त प्रेरणा मिली है ।[१]

वर्जिल, होमर, दांते इन महाकवियों में एक विशेषता है । इनकी कृति मानव के हृदयावेगों, भावनाओं, सुख दुखों को प्रकट करने की शक्ति रखती हैं । पाठक को प्रतीत होता है मानो अपनी ही अंतर्वेदना अपना ही अंतर्मुख इन काव्यों में बिखरा पड़ा है । यह शाश्वत साहित्य का सर्व प्रधान और अनिवार्य गुण है जो स्वाभाविकता के स्रोत में सहृदय पाठक को इस प्रकार बहा दे कि वह कुछ क्षण को आत्म विस्मृत हो जाये ।

`महाकवि दांते` के डिवाइन कामेडी में एक ओर हृदय की सुकुमार भावनाओं को पाते हैं दूसरी ओर उदात्त कल्पना । मार्मिकता से परिपूर्ण जीवन की संवेदनात्मक विचार-धाराओं से युक्त यह काव्य मनुष्य को सत्प्रेरणा और पुरुषार्थ के द्वारा समस्त बाधाओं को सहन करने का आदर्श उपस्थित करता है ।

इनकी कृति में हृदय तत्व की प्रधानता है । संयोग-वियोग की धुंधली स्मृतियां रह-रहकर फलकती हैं । अभिव्यंजना की प्रगल्भता और सुकुमार योजना के साथ-साथ प्रेम की तन्मयता और विरह कथा की अंतर्दशाओंका भी सूक्ष्म विश्लेषण है जो कि एक सच्चे प्रेम की उमंग में ही संभव है ।[२]

`दांते ने इटली को एक राष्ट्रभाषा प्रदान की, भाषा का एक स्तर स्थापित किया । दांते के इस काव्य में राजनैतिक षड्यंत्र, कलात्मक पुनरुत्थान आदि साकार हो उठे हैं । इटली में नई परिष्कृत भाषा को जन्म देता है । राज्य समाज का विराट लेखा है यह काव्य । इति वृत्तात्मक अधिक है अपेक्षाकृत प्रतीकात्मक के । काव्य के आधार संसार के लोग और उस तत्कालीन समाज के

१- प्रसाद का काव्य : पृ०- ५१६ - डा० प्रेमशंकर

२- साहित्य दर्शन : पृ०- १० - शचीरानी गुर्टू

वातावरण है। भाषा को नवीन रूप देने के कारण दांते अधिक विख्यात हुए। रूसी लेखिका मेरीयता शागिन्यान कहती है— "दांते ने जनता की सीधी सादी भाषा में लिखने का साहस किया जिसे वे लोग गंवारू भाषा कहते थे। क्या यह बात सच नहीं है कि उस समय के विख्यात लेखकों ने इसी कारण दांते के विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया था। परन्तु वे विख्यात लेखक आज कहां हैं ? इटली की जनता दांते की महती भाषा बोलती है, लिखती है, पढ़ती है।"

मानवीय मस्तिष्क का विराट विश्व ज्ञान कोष दांते के काव्य में है। प्रकृति के विभिन्न वर्णनों, इतिवृत्तात्मक खंडों से पूर्ण व गेय सर्गों और युग-युग की अभिव्यक्तियों के लिये यह काव्य विश्व की अमिट धरोहर है। दांते ही सानैट निर्माण के प्रथम आचार्य थे।[१]

पाश्चात्य और भारतीय महाकाव्यों के मौलिक सिद्धान्तों में समानता —

मैकडेनल डिक्सन ने कहा है कि महाकाव्य सब जगह का एक ही है। पूर्व का हो या पश्चिम का उत्तर का हो अथवा दक्षिण का, क्योंकि स्वभाव प्रकृति और रगों में संचालित रक्त एक ही है। सत्य महाकाव्य का निर्माण एक प्रकथनात्मक काव्य ही है, वह सुसंगठित होता है। महान चरित्रों से और उदात्त कार्यों से युक्त होता है, भाषा शैली भव्य और मनोरम होती है। उसमें पात्रों का और उनके कार्य व्यापारों को आदर्श रूप दिया जाता है। उपाख्यानों से कथानक की समृद्धि होती है तथा एक सूत्रता की रक्षा होती रहती है।

मैकडेनल डिक्सन ने इस मत का पूर्ण रूप से समर्थन किया है।[२]

१- कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा : पृ०- २२६ -शिवकुमार मिश्र

२- Yet heroic poetry is one whether East or west the

शेष—

कुछ चिरंतन सत्य है जो प्रत्येक देश में एक समान ही होंगे, जैसे प्रेम, द्वेष, राग, क्रोध आदि की भावनाओं का प्रस्फुटन अवसर पर सभी प्राणी में समान दृष्टि से अवश्य ही होगा । भारतीय आदर्शों के अनुसार सत्य, निष्ठा आत्म त्याग, उदारता को महत्व देते हैं जबकि पाश्चात्य महाकाव्य संघर्ष प्रधान है और युद्ध संघर्ष होते हुए भी इसमें नीति तत्वों का समावेश है, पौरस्त्य महाकाव्य त्याग, वैराग्य प्रधान है ।

दैवी शक्ति का हाथ पाश्चात्य महाकाव्य में प्रत्यक्ष है पर भारतीय महाकाव्य में अप्रत्यक्ष । जहां होमर के इलियड ओडिसी में देवता मानव चरित्रों के कार्य व्यापार में प्रत्यक्ष स्पष्ट रूप से हस्तक्षेप करते हैं— पर महाभारत रामायण में देवता आकाश से फूल बरसा कर, आकाशवाणी करके नायक के दुख सुख की परिस्थिति में सहयोग प्रकट करते हैं ।

हमारे यहां जातीयता का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया, पर नायक को जिस आदर्श रूप में उपस्थित करते हैं वह जाति का ही नहीं युग का भी प्रतिनिधित्व करने की सामर्थ रखता है जबकि पश्चिमी महाकाव्य में जातीय भावना, जातीय संघर्ष को विशेष रूप से बल दिया गया है । हमारे आचार्यों ने इस विचार को माना है कि नायक की श्रेष्ठता और इतिहास प्रसिद्धि, युद्ध, यात्राओं आदि के वर्णन द्वारा महाकाव्य जातीय जीवन से संबद्ध हो जाता है । बाल्मीकि रामायण में उसके वर्ण्य नायक के अपेक्षित गुण बताये गये हैं, वे गुण भारत की जातीय मनोवृत्ति के घोतक हैं ।[१]

पिछले पृष्ठ का शेषांक—

the North or south its blood and temper are the same, and the true epic where ever created, will be a narrative poem, organic in structure dealing with great actions and great characters in a style commens-urate with the lordliness of its theme, which tends to idealise these characters and actions and to susta-in embellish its subject by means of episode and amplifications.

English Epic and Heroic Poetry
By M. Dixon P. 24.

१- काव्य के रूप (भाग २) : पृ०- ७७ ।

रघुवंश के आरंभ में भी रघुवंशी राजाओं के उदात्त गुणों का उल्लेख किया है कि `जो त्याग के लिये धन संचय करते थे, सत्य के लिये थोड़ा बोलते थे, यश के लिये विजय की इच्छा करते थे, पितृ ऋण के शोध के लिये विवाह करते थे । बाल्यकाल में विद्याभ्यास, यौवन विषय भोग में, बुढ़ापे में मुनिवृत्ति वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करते थे- ऐसे रघुवंशी का वर्णन करता हूं ।`

इस वर्णन में भारतीय मनोवृत्ति का पूर्ण चित्र आ गया है इस प्रकार हमारे यहां जातीयता का स्पष्ट उल्लेख न करके व्यंजित किया गया है ।

शैली की स्पष्टता तथा उत्कृष्टता का महत्व दोनों स्थानों में है । छंद की रचना में भारतीय आचार्य एक सर्ग में एक ही छंद रखते हैं जबकि पाश्चात्य महाकाव्य में आदि से अंत तक एक छंद रक्खा । हमारे यहां जीवन पर्यन्त सचेष्ट एवं गतिशील रहते हुए भी संसार के अनंत आवर्तों के आकर्षण से पृथक रहने का आदेश दिया गया है । कर्मण्यता के साथ-साथ त्याग एवं धर्म तत्व की सूक्ष्म व्याख्या भी मिलती है । जिस प्रकार पाश्चात्य काव्यों में सौन्दर्य एवं कला का अभूतपूर्व सामंजस्य है उसी प्रकार पौरस्त्य महाकाव्यों में कर्म और वैराग्य का । वहां कला की सत्ता पर ज़ोर दिया गया है । यहां जीवन के उदात्त लक्ष्य पर । वहां की प्रवृत्ति बहुरूपी और बहुमुखी है यहां की प्रवृत्ति एक रस और अंतर्मुखी है ।[१]

पश्चिम में कलापक्ष पर ज़ोर दिया है हमारे यहां अभिव्यक्ति पक्ष पर परन्तु महाकाव्य में वर्णित विषय का उचित परिपाक, व्यंजना की प्रधानता, छलकता रस प्रवाह होना चाहिए जिसमें उत्कृष्ट व्यंजना वैलक्षण्य और महाकवित्व नहीं वह आकार में बड़ा होने पर भी महाकाव्य कहलाने का अधिकारी नहीं है ।

दोनों सिद्धान्तों के अनुसार महाकाव्य एक बृहदाकार प्रबन्ध काव्य है । विषय लोक विश्रुत और परंपरागत हो, कथानक प्रसिद्ध और ऐतिहासिक हो, छंदोबद्ध हो । यह अवश्य है कि पाश्चात्य महाकाव्य का कार्य सीमित

१- साहित्य दर्शन : पृ०- ११ -शचीरानी गुर्टू ।

समय में रहता है जबकि पौरस्त्य महाकाव्य में समय का बंधन नहीं । रामायण और महाभारत में कई वर्ष की घटना है जबकि `इलियड` `औडिसी` में कुछ सीमित समय का वर्णन है ।

नायक के विषय में दोनों ही मत उसको महापुरुष, शौर्य गुण संपन्न होना आवश्यक मानते हैं, साथ ही नायक जातीयता का प्रतिनिधित्व करने वाला, आदर्श की प्रतिमूर्ति होता है निरंतर महत् कार्यों के लिये प्रयास करता है, अंत में विजयी होना आवश्यक होता है जबकि पाश्चात्य महाकाव्यों में अंत में पराजय भी हो जाती है जैसे `पैराडाइज़ लास्ट` में । यद्यपि संघर्ष की ही प्रधानता रहती है और होमर के इलियड के नायक के बाहुबल और वीरता का वर्णन है फिर भी सर्वत्र सदा विजय ही अनिवार्य नहीं है । भारतीय महाकाव्यों में आत्म बल, धर्म बल, त्याग, सत्य, निष्ठा को अधिक महत्व दिया है । रामायण और महाभारत की यही विशेषता है । इन्हीं गुणों से युक्त होने के कारण रामायण का पात्र निखर कर आज भी हमारे सामने चिरंतन सत्य की भांति विद्यमान है । हमारे यहां श्रृंगार, वीर, शान्त, तीनों रसों में से किसी एक को प्रमुख करते हैं । पाश्चात्य महाकवियों ने वीर रस को ही प्रधानता दी, महाकाव्य को Heroic Poetry भी कहा ।

इस प्रकार महाकाव्य के विषय की व्यापकता, चरित नायक की महानता, विविधता, पूर्ण मानव जीवन की अभिव्यक्ति, जातीय आदर्शों तथा भावनाओं की व्यंजना और भाषा शैली की गरिमा को पाश्चात्य और भारतीय दोनों ही स्वीकार करते हैं ।[१]

१- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य : पृ०- ३७

- डा० गोविंद राम शर्मा ।

पूर्वी और पश्चिमी आचार्यों के विचार — एक तुलनात्मक दृष्टि —

साधारण दृष्टिकोण से देखने पर लक्षणों में विशेष अंतर नहीं है क्योंकि महाकाव्य में प्रधानता नायक की है, जहां तक नायक का प्रश्न है दोनों ही मत से नायक प्रख्यात होता है । कथावस्तु भी इतिहास प्रसिद्ध होना आवश्यक है । एक विशेषता यह है कि पाश्चात्य महाकाव्यों में कथावस्तु में जातीय गौरव की प्रधानता को माना है । भारतीय आचार्यों के अनुसार नायक शूर, युद्धवीर सत्कुलोत्पन्न होता है, जातीयता के गौरव और आदर्श को लेते हुए उसके असाधारण कार्यों को प्रदर्शित करते हैं । यह तो स्वाभाविक सत्य है कि इतिहास प्रसिद्ध नायक के होने से उसके उदात्त गुणों, महत् कार्यों के प्रति सुविधापूर्वक स्वत: ही लोक हृदय सम्मान, सहानुभूति प्रकट करता है । दोनों ही दृष्टिकोणों से नायक में वीरत्व की स्थापना, अलौकिक कार्यक्षमता, शौर्यपूर्ण कार्यों का आदर्श रक्खा जाता है । रचना शैली उत्कृष्ट हो, छंदविधान के अंतर्गत हो, भाषा की विशेषता, अलंकारों का समुचित प्रयोग इस संबंध में भी बहुत कुछ साम्य है । पूर्वी मत से रस, चतुर्वर्ग फल प्राप्ति, वस्तु वर्णन आवश्यक है और सर्गों की संख्या सानुबंध कथा का होना भी अनिवार्य है । यद्यपि लक्षणों के निर्धारण के समय कठोर प्रतिबंध लगाये गये हैं, पर व्यौहारों में आते तक नियम शिथिल हो जाते हैं । जैसे मानस में आठ से कम सर्ग, प्रत्येक कांड में छंद नहीं बदलता । संपूर्ण कथा दोहा चौपाई में होने पर भी मानस एक उत्कृष्ट महाकाव्य है ।

भारतीय महाकाव्य में रसात्मक बोध का प्राधान्य है । इसके विपरीत पाश्चात्य महाकाव्य में जीवन के घात प्रतिघात, संघर्ष एवं चरित्र चित्रण को अधिक महत्व दिया गया है । `मिल्टन` रचित `पैराडाइज़ लास्ट` और `पैराडाइज़ रिगेंड` इसके अच्छे उदाहरण हैं ।[१]

१- आधुनिक हिन्दी काव्य के परंपरा तथा प्रयोग :- पृ०- ६३

- गोपाल दास सारस्वत ।

पाश्चात्य और भारतीय महाकाव्यों के मौलिक सिद्धान्तों के अनुसार मानव हृदय का आवश्यक स्थान ——

मानव स्वभाव की महत्वाकांक्षा व्यष्टि को समष्टि में, निज को विश्व में, भाव को भाषा में, अंतराल को बाह्य में परिवर्तित कर देना तथा उसको चिरस्थायी बना देना है।

रूसी आलोचक की उक्ति कितनी सत्य है — 'सत्कवि अतीत का गौरव गायक, वर्तमान का चित्रकार और भविष्य का सूक्ष्म दृष्टा है। इसके अतिरिक्त मानव का स्वभाव, प्रकृति, आत्मा तो सभी स्थान पर एक ही है इसका प्रमाण व्यास, बाल्मीकि, होमर, वर्जिल और दांते के पात्रों का अवलोकन करके प्राप्त कर सकते हैं। हजारों मील जल-थल की सीमा, देशकाल को पार कर महाकवियों की सुंदर कल्पना एक सी होकर कौतूहल का विषय बन जाती है।

बाल्मीकि की सीता का सौन्दर्य, महाभारत में द्रौपदी की सुषमा और सुकुमारता अवर्णनीय है। होमर के इलियड में हैलेन अत्यन्त सुंदरी चिर यौवना है। उसकी सुंदरता स्वर्ग की अप्सराओं को लज्जित करती है। वर्जिल और दांते की नायिकायें भी अत्यन्त सुंदर हैं। तात्पर्य है कि विभिन्न स्थानों के ये सभी महाकवि दिव्य सौन्दर्य और प्रेम के सरोवर में एक समान ही डूबे हैं। लंकापुरी में अशोक के नीचे बैठी हुई विरहिणी सीता का अश्रु, वनों में भटकती साध्वी द्रौपदी की करुण आहें, और ट्राय के महलों में आंसू बहाती तड़पती सुंदरी हैलेन के उच्छ्वासों में अंतर नहीं है।

कुछ शाश्वत सत्य है जो प्रत्येक स्थान में एक ही है- महाकवि उन्हें अपनी लेखनी से सार्वजनीन बनाकर प्रकट करता है। महाकाव्य युग के यथार्थवाद से निकलने वाली प्रेरणाओं को ग्रहण कर उन्हें नई दिशा प्रदान कर, नई शोभा से मंडित करता है। मानवता के निर्बल क्षणों की कहानी, परिस्थितियों का खिलौना, बुलबुले की भांति विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाने वाले यथार्थ को लेकर त्याग और उत्सर्ग की प्रेरणा देने वाले- यथार्थ से काव्य की रचना नहीं होती, पर यह भी है कि उषा की स्वर्णिम रेखाओं से वस्त्र नहीं बन

सकता अर्थात् ऐसा आदर्श काव्य श्री को प्रकाशित मात्र ही कर सकता है वह मानव हृदय को प्रोत्साहन नहीं दे सकता जो महाकाव्य का प्रमुख उद्देश्य है ।

हम महाकाव्य में यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय पाते हैं । अनुभूतियों का संबंध आदर्शवाद से है मनोवृत्तियों का यथार्थ से, इसमें जीवन का ऐसा परिष्करण ऐसा ऊर्जस्वीकरण पाते हैं जिससे मनुष्य को भविष्य में बल मिलता है । महाकाव्य संवेदनाओं का सार है पर उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि वह कल का `संबल` बन सके, केवल आज का मनोरंजन मात्र ही न रह जाये ।`

महाकाव्य के स्वरूप विवेचन के पश्चात् इसके कुछ प्रमुख अंश सन्मुख आते हैं जिसका विस्तृत अध्ययन आधुनिक महाकाव्य में पाते हैं वह इस प्रकार हैं—

१- मानव जीवन तथा समाज की समस्याओं का श्रृंखलाबद्ध विस्तृत रूप निरूपण

२- चरित्रों के निगूढ़तम रहस्य का उद्‌घाटन

३- प्रकृति का तद्रूप वर्णन

४- क्रिया कलाप तथा संघर्षों का चित्रण

५- विश्व के विस्तृत प्रांगण के अंतराल में रसात्मक सृजन ।

६- जीवन और युग का आंतरिक और बाह्य विश्लेषण ।

इस प्रकार महाकाव्य के स्वरूप की एक सरल रूप रेखा प्रस्तुत होती है । मानव जीवन की विविध परिस्थितियों, युग की समस्याओं, प्रकृति की विभिन्न दशाओं का वर्णन, रसों का अनूठा सम्मिश्रण और वस्तु वैभव का विस्तृत चित्रण महाकाव्य में दृष्टिगोचर होता है । महाकाव्य समग्र मानव जीवन का सर्वांगीण चित्रण है ।

अध्याय २

महाकाव्य में नायक की स्थिति

नायक की परिभाषा (संस्कृत लक्षण ग्रन्थ तथा हिन्दी-साहित्य के अनुसार तथा उसकी व्याख्या)

आधुनिक दृष्टिकोण

नायक के कार्य

सत्य धर्म न्याय की सुरक्षा

समष्टि के कल्याण की भावना

जीवन के मूल्यों का स्थिरीकरण

नायक :- महाकाव्यों में चरित्र-चित्रण एक प्रमुख तत्व है । प्रधान पुरुष पात्र ही नायक है ,नायक कथानक को फल की ओर ले जाता है । नायक के रूप में एक महान् चरित्र की सृष्टि के लिए ही कवि महाकाव्य का सृजन करता है ।हृदय में एक महान् पुरुष के लिये उन्नत भाव उठते हैं और कवि के कल्पना जगत् के चारों ओर मंडराने लगते हैं तब उस परम पुरुष की प्रतिमा की प्रतिष्टापना होती है उससे प्रभावित होकर उसकी महत् भावनाओं से मुग्ध होकर, उसकी पुण्य किरणों से अभिभूत होकर विश्व उसके चरणों में श्रद्धा के फूल चढ़ाता है - वही होता है महाकाव्य का नायक । यद्यपि आज के युग में दृष्टिकोण में परिवर्तन होन अनिवार्य है परन्तु सत्य में आस्था,त्याग में श्रद्धा प्रेम में बलिदान चिरन्तन भाव हैं जो प्रत्येक देश में प्रत्येक काल में मान्य हैं ।

प्राचीन आचार्यों के मतानुसार मानवोत्तर व्यक्ति ही नायक हो सकता है । नायक को उच्च और उदार गुणों से सम्पन्न होना चाहिए,विनयशील,सुन्दर, त्यागी,कार्य-कुशल,मृदुभाषी,लोकप्रिय ,शुद्ध,भाषण-पटु,उच्चकुलोद्भव,स्थिरचित्त युवा,बुद्धिमान,साहसी,तीव्र स्मृति,प्रज्ञावान,[1] कलाकार,स्वाभिमानी,वीर,तेजवान और शास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए ।

आज के बौद्धिक युग में दूसरी विचारधारा आकरप्रवेश कर गई है । किसी मनुष्य के भद्र पुरुष होने के कारण उसका किसी उच्च कुल में जन्म होना अनिवार्य नहीं है,कीचड़ से कमल और कोयले से हीरा उत्पन्न होता है ।

नायक अभिमानी त्यागी,तरुण,लोक कलाप्रवीन,भव्य,दात्री,सुन्दर,धनी, शुचि,त्वस्स उत्साही और कुलीन होना चाहिए । यही लक्षण हमारे प्राचीन आचार्यों ने माने हैं उसी परम्परा को रीतिकालीन हिन्दी आचार्यों ने भी स्वीकार किया है । संस्कृत आचार्य तथा हिन्दी के लक्षणकार विश्वनाथ[2] ,

----

१- नेता विनीतो मधुरस्त्यागी,दक्ष:प्रियंवदः
रक्त लोक:शुचिर्वाग्मी रूढ़वंश:स्थिरो युवा
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञा कलामानसमन्वित:
शूरो दृढ़श्च तेजस्वीशास्त्र दक्षश्चधार्मिक:।। -दशरूपक (२।१२)

२- त्यागीकृती कुलीन:सुश्रीको रूप यौवनोत्साही
दक्षोऽनुरक्त लोकस्तेजो,- वैदग्ध्यशीलवान्नेता।।३०।।-साहित्यदर्पण-पृ०८५

केशव,[1] रहीम[2] ने नायक को इन्हीं गुणों से विभूषित माना है ।

इस प्रकार प्राचीन मतानुसार नायक को धर्म धुरंधर ,वीर, बलशाली, सुन्दर,शीलवान होना चाहिए । हिन्दी आचार्यों ने संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों को पूर्णतया अपनाया है उसी के अनुसार उन्होंने काव्यों की रचना भी की है, उनके नायक वीर,युवा,सुन्दर और उच्चकुलोत्पन्न हैं और उनके द्वारा वैसा ही आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया है अपवाद स्वरूप रीतिकालीन कवियों ने महत् चरित्रोंको भी साधारण नायक नायिका के रूप में चित्रित कर दिया है। सामान्य रूप से हिन्दी के लक्षणकारों ने संस्कृत के लक्षणकारों के पथ का ही अनुसरण किया है किन्तु आधुनिक आलोचकों ने इसमें यत्किंचित परिवर्तन किया है। उदाहरण के लिए उनकी आस्था नायक की उच्चकुलोत्पन्न गरिमा में नहीं है तथा मानवता के उदात्त गुणों को ही दृष्टि में रक्खा है ।

प्राचीन आचार्यों ने रूप यौवन संपन्न पुरुष को नायक कहा है और उसके शील को विशेष महत्व दिया है। रसरत्नाकर के रचयिता ने भी सौन्दर्य,गुण, रूप,यौवन सम्पन्न युवा को जिसे स्त्रियां शृंगार की दृष्टि से देखें और जो काव्य रागरस कावेत्ता हो, नायक माना है[3] ।

हमारे यहां कलाकारों ने नायक के चरित्र में अवगुण या पतन दिखाकर पाठक के नैतिक और आदर्शपूर्ण भावनाओं को आघात नहीं पहुंचाया और आरंभ

१- अभिमानी त्यागी तरुण कोक कला प्रवीन
भव्य चतुर सुन्दर धनी, शुचि रुचि सदा कुलीन।-रसिकप्रिया,पृ०१६

२- सुन्दर चतुर धनिउवा, जातिउ ऊंच
केलि कला परविनवा, सील समूच ।।-बरवै नायिका भेद -पृ० ६६

३- नायक गुण मंदिर युवा, युवति रीझहि देख
ललकि रही व्रज नायिका, निरखि श्याम को भेख ।।-रस रत्नाकर,पृ०४१-४२
सुंदर गुण मंदिर युवा ,युवति विलोकै जाहि
कविता राग रसज्ञ जो, नायक कहिए ताहि ।।-जगद्विनोद - पृ० ७६

(शेष)

से ही नायक के गुणों को विकसित करने का प्रयास किया है । रसाभिव्यक्ति को महाकाव्य के तत्वों में प्रमुखता दी गयी है, उसमें शृंगार,करुण,वीर रस प्रधान है इसके उद्घाटन में धीर और उदात्त नायक की आवश्यकता आरम्भ से ही मानी गई, नायक नये गुणों को ग्रहण नहीं करता । प्राचीन मत के अनुसार लोकविश्रुत व्यक्ति ही को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गयाहै क्यों कि लोकप्रतिष्ठित नायक के प्रति हमारा आकर्षण स्वत: हो जाता है और वह साधारणीकरण का आधार बनता है ।

नायक के भेद :-

नायक चार प्रकार के होते हैं[१] ऐसा हमारे आचार्यों का मत है ।धीरोदात्त,धीर-ललित,धीरप्रशांत और धीरोद्धत । नायक सभी धीर होते हैं क्योंकि उनका सर्व प्रकार श्रेष्ठताओं से सम्पन्न होना वांछनीय है, श्रेष्ठता केलिए धीरता आवश्यक है जो धीर नहीं है वह न तो वीर ही होसकता है न उसे प्रेमी ही कहना ठीक होगा ।श्रीरामचन्द्र जी नायक के दृष्टिकोण से धीरता के आदर्श माने गये हैं[२] ।

शेष- धर्मधुरंधर धीर वर ,वीर विजयि बलवान
सुंदर शील उदार अति , नायक ताहि बखान ।
तानदार बांसुरी,प्रमानदार वात जाकी
सानदार साहिबी न ऐसी लोक लखिया
कहत बिहारी छविदार मूर्ति मोहिनी पै
बिना मोल विवस बिकानी ब्रज सखियां
जोर वारो यौवन सुरूप चित चोर वारो
मोर वारो मुकुट मयूर वारी पखियां
जंगभरी जुलफें उमंग भरी चाल बांकी
रंगभरी हेरन अनंग भरी अंखियां ।।-साहित्यसागर-कविभूषण कविराज
बिहारीलाल भट्ट पृ०२३७

१- धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च
धीर प्रशान्त इत्ययमुक्त: प्रथमश्चतुर्भेद: ।।३४।।-साहित्यदर्पण- पृ० ६५ तृतीय परि.

२- प्रसन्नतांयो न गताऽभिषेक तस्तथा
नमम्लौ वन वासदु:खत:

(शेष)

शोक क्रोधादि से अविचलित जिसका अंत:करण है,अत्यन्त गंभीर,क्षमावान आत्म-श्लाघा न करने वाला अहंकार शून्य और दृढ़व्रत अर्थात् अपनी अंगीकृत बात का निर्वाह करने वाला पुरुषधीरोदात्त नायक कहलाता है । अधिकांश रूप से आचार्यों ने इस मत को मान्यता दी है ।[1]

आधुनिक युग के प्रतिनिधि कवि हरिऔध जी ने इन्हीं विचारों का अनुसरण करते हुए कहा है कि रूप यौवन सम्पन्न, उत्साहशील,उदार,कुलीन,सुशील,जन अनुराग-भाजन,चतुर,बुद्धिमान,तेजस्वी और महान् हृदय पुरुष नायक कहलाता है और इन्होंने स्वभाव के अनुसार चार भेद माने हैं जैसा कि संस्कृत के आचार्यों ने माना है वह इस प्रकार हैं-- धीरोदात्त, धीरोद्धत,धीरललित तथा धीरप्रशान्त[2] ।

धीरोदात्त:- क्षमावान,धीर,गंभीर, स्थिर प्रकृति,महान् चेता,हर्ष शोकादि में अविचल चित्त,दृढ़व्रत,विनयी और उदार हृदय पुरुष धीरोदात्त कहलाता है[3] । आधुनिक और प्राचीन[4] दृष्टिकोण से धीरोदात्त नायक की यही परिभाषा है ।साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने धीरोदात्त नायक के विषय में कहा है जो अपनी प्रशंसा न

शेष- मुखाम्बुज श्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु
सा मंजुल मंगल प्रदा । -रामचरितमानस ,अयोध्या कांड

१- महासत्वोऽतिगंभीर: क्षमावान विकत्थन:।
स्थिरो निगूढ़ाहंकारो धीरोदात्तो दृढ़व्रत:।। --दशरूपक - (२।४,५)

२- रसकलश , पृ० १५७

३- सूधो सधो उदधि गंभीर धीर वीर है जो
जाकी धी मै घर वधु रनिता है निवसी
सबल सुसील सत्य संघ साहसी है जौन
सरद सिता सी जाकी साधना है विकसी
हरिऔध लोकहित ललित वनत जाते
विपुल विभूति जाके लोचन ते निकसी
मोहि मांहि परम महान सोई मानव है
जाके मंजु मानस मैं मानवता विलसी ।।-- रसकलश,पृ० १५७

४- अविकत्थन:क्षमावानतिगम्भीरो महासत्व:।
स्थेयान्निगूढ़मानो धीरोदात्तो दृढ़व्रत:कथित:।।३२।साहित्यदर्पण -पृ०६५ तृतीय परि

करने वाला ,क्षमायुक्त,अतिगंभीर,हर्ष-शोकादि से अपने स्वभाव को नहीं बदलने वाला ,स्थिर प्रकृति,विनययुक्त,गर्व न रखने वाला और दृढ़व्रत अपनी बात का पक्का और आन का पूरा है ऐसा पुरुष धीरोदात्त कहलाता है जैसे रामचन्द्र जी ,युधिष्ठिर आदि ।

धीरोदात्त के लक्षण पर दी हुई दशरूपक की टीका में दिया है जीमूतवाहन ने नाग को बचाने के अर्थ अपना शरीर गरुड़ के खाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक दिया, कहा-

'मेरी शिराओं से रुधिर चू रहा है,अभी मेरे शरीर में मांस है हे महान् जब तक तुम्हारी पूर्ण तृप्ति नहीं होती तब तक तुम खाने से क्यों विराम लेते हो ।'

यहां नायक ने ~~मीसोदम्ब~~ धीरप्रशान्त कहलाने योग्य कर्म किया किन्तु राजा होने के कारण इस गौरव को प्राप्त न कर सके और धीरोदात्त की कोटि में रक्खे गये ।

धीरललित :- अति कोमल स्वभाव सुखान्वेषी कलाविद् निश्चिन्त सदा नृत्य गीतादि कलाओं में प्रसन्न नायक को धीरललित कहा है । शृंगारप्रधान कृतियों में नायक ~~को~~ ऐसे ही रहते हैं, यह अपना राजकाज योग्य मंत्रियों पर छोड़ देते हैं , और प्रजा भी दुखी नहीं रहती ।साहित्य दर्पणकार[1] और दशरूपककार[2] का भी यही मत है ।

धीरप्रशान्त :- त्यागी,कृती इत्यादिक कहे हुए नायक के सामान्य गुणों से अधिकांश युक्त,ब्राह्मणादिक,को धीरप्रशान्त नायक की कोटि में रक्खा गया है । यह क्षत्रिय नहीं होता क्योंकि क्षत्रियों में संतोष नहीं पाया जाता । धीरप्रशान्त पुरुष परम संतोषी होता है परन्तु महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होता है[3] ।

१- निश्चिन्तो मृदुरनिशंकलापरो धीरललित:स्यात् ।३३।। -साहित्यदर्पण,पृ० ८६ तृतीयपरिच्छेद

२- निश्चिन्तो धीरललित:कलासक्त:सुखीमृदु:।।~~३४++~~ २१३।।--दशरूपक

३- सामान्यगुणैर्भूयान्द्विजादिको धीरशान्त:स्यात् ।३४।।

--साहित्यदर्पण,पृ० ८६ तृतीय परिच्छेद

सामान्यगुणयुक्तस्तुधीरशान्तो द्विजादिक: ।२१४।।दशरूपक

धीरोद्धत :-

मायावी, प्रचंड चपल, घमंडी, अपनी तारीफ के पुल बांधने वाला नायक धीरोद्धत कहलाता है जैसे भीमसेन।[1]

यह नायक आत्म प्रशंसा परायण तथा स्वभाव से प्रचंड धोखेबाज़ और चपल होता है अहंकार दर्प से भरा रहता है ऐसा दशरूपककार का मत है।[2] जहां धीरोदात्त नायक में आत्मश्लाघा का अभाव रहता है वहां धीरोद्धत में उसका प्राधान्य रहता है।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने इनमें से प्रत्येक के चार-चार उपभेद किये हैं:-
(१) अनुकूल (२) दक्षिण (३) धृष्ठ तथा (४) शठ[3]

इस प्रकार इनके सोलह भेद हुए हैं। इसमें अनुकूल नायक पर विद्वानों का क्या मत है इस पर विचार करना है।

अनुकूल:- जो नायक एक ही नायिका में अनुरक्त रहे उसे अनुकूल नायक[4] कहा है। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ[5] केशव का यही विचार है तथा जगद्विनोद[6] में सुन्दर

१- माया परः प्रचंडश्चपलोऽहंकार दर्प भूयिष्ठः
आत्मश्लाघानिरतो धीरो धीरोद्धतःकथितः ।।३३।-साहित्यदर्पण-पृ०६१ तृतीयपरि०

२- दर्पमात्सर्यभूमिष्ठो माया छद्म परायण
धीरोद्धत सवहंकारी चलश्चडो विकत्थन । -दशरूपक- २।५६

३- एभिर्दक्षिण धृष्टानुकूल शठरूपिभिस्तुषोड शाधा ।।३५।।-साहित्यदर्पण पृ०६६ तृतीयपरि०

४- अनुकूल एकनिरतः --साहित्यदर्पण- पृ० ८७

५- प्रीति करै निज नारि सों परनारी प्रतिकूल
केशव मन वच कर्म करि सो कहिए अनुकूल ।।३।।-रसिकप्रिया-पृ०१६

६-एकहि सेज पै सोवत है पद्माकर दोऊ महासुख माने
सपने में तियमान कियौ यह देखि पिया अतिही अकुलाने
जागि परै पै तऊ यह जानत पौढ़ी रही हम सों रिस ठाने
प्राण पियारी के पांपरि के करि सौंह गरे की गरे लपटाने
मनमोहन तन घन सघन रमण राधिका मोर
श्रीराधा मुखचन्द्र की गोकुल चंद चकोर -- जगद्विनोद- पृ० ८८

दृष्टान्त देकर समझाया गया है । साहित्य सागर के रचयिता कवि भूषण पं० बिहारीलाल भट्ट[1] का भी ~~अनुमन्न~~ अनुकूल नायक के संबंध में यही विचार है ।

केशव ने अनुकूल आदि के भी भेद किये हैं जैसे प्रकाशअनुकूल कहा है । इसके उदाहरण में कृष्ण के स्वभाव की सुन्दर अभिव्यंजना की गई है ।[2]

अनुकूल नायक के उदाहरण में तोषनिधि जी श्रीरामचन्द्रजी को कहते हैं:-

' नैनन ते सीय रूप सिवाय चितौंय न भूलेहुं चित्र कीवा में'

राजसूय यज्ञ में श्री राम ने सीता की स्वर्णमयी मूर्ति से कार्य चलाया था-

'मैथिली समेत तौ अनेक दान में दियौ
राजसूय आदि पै अनेक यज्ञ में कियौ
सीये त्याग पाप ते हिये सुहौं महा डरौ
और एक अश्वमेघ जानकी बिना करौं

+ +

करिये मत भूषण रूप रयौ
मिथिलेश सुता इक स्वर्णमयी
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लियौ
सीय सों सब यज्ञ विधान कियौ ।[3]

दक्षिण नायक :- अनेक स्त्रियों पर समान प्रीति रखने वाले पति को हमारे प्राचीन

१- जो परनारी न चहै सपनेहू मैंभूल,कवि कोविद कविता रसिक ताहि कहै अनुकूल ।।
'बैठहि संग उठे तब संग चलै तब संग रमै तब तैसी
बाग में संग बिहारभैसंग चहै रसरंग लहै रुचि जैसी
छोड़त साथ नहीं घन एकहु प्रीत न देखी सुनी कहु ऐसी
राधिका मोहन की ब्रज में हम रीति लखी सारस कैसी --साहित्यसागर-पृ०२३७

२-कैसव सूधी बिलोचन सूधी बिलोकनि को अविलोकै सदाई
सूधि यौं बात सुनै समझै कहि आवत सीधयों बात सदाई
सूधी सुहासी सुधाकर सो मुख,शोध लई वसुधा की सुधाई
सूधे स्वभाव सबै सजनी वश कैसे किये अति टेढ़ कन्हाई।।-रसिकप्रिया-पृ०१७

३- रामचन्द्रिका , (३५,२१४)

आचार्यों ने दक्षिण नायक कहा है उदाहरणार्थ- प्रतिहारी की किसी से उक्ति है--

' मैंने अंत:पुर की सुन्दरियों का समाचार जान कर जब महाराज से निवेदन किया कि आज कुन्तलेश्वर की पुत्री ऋतुस्नान करके निवृत्त हुई है और दिन आज ~~कुन्तलेश्वर-क~~ अंगराज की बहिन के यहां जाने का नियत है एवं कमलाने आपसे आज की रात्रि जुएं में जीत ली है और रूठी हुई महारानी को आज मनाना भी है तो इस बात को सुनकर वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर दो-तीन घड़ी तक चुप होकर बैठे रहे इससे राजा का सब रानियों में समान अनुराग प्रतीत होता है यदि किसी में विशेष अनुराग होता तो इतने सोच विचार की आवश्यकता नहीं थी, कारण सभी के यहां जाना अकेले राजा कहां कहां जाय, इसी की चिन्ता है[१]।'

इस दृष्टान्त से प्रकट होता है कि राजा अनेक रानी से समान प्रीति करता है और यह दक्षिण नायक की कोटि के अन्तर्गत आता है । आचार्य केशव ने दक्षिण नायक के लक्षण[२] की चर्चा अपने ग्रन्थ में की है, यह अवश्य है कि उन्होंने दक्षिण का भी प्रच्छन्न दक्षिण उत्तर, प्रकाश दक्षिण दो भेद बताकर दृष्टांत के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है । अधिक विस्तार में न जाकर मैंने संक्षेप में उस पर दृष्टि डालने का प्रयत्न किया है आचार्यों ने कहा है कि दक्षिण नायक एक से अधिक पत्नियां रखता हुआ भी प्रधान महिषी का आदर करता है, यथा संभव सबको प्रसन्न रखना उसका एक विशेष गुण है किन्तु वह इस बात का ध्यान रखता है कि उसका अन्य स्त्री प्रेम प्रधान महिषी पर प्रकट न हो जाय । श्रीकृष्ण जी के इस भाव को पद्माकर[३] ने सुन्दर रीति से प्रकट किया है । इस प्रकार बहुत

१- एषु त्वनेक महिलासमरागो दक्षिण:कथित:।।३५।।-साहित्यदर्पण-पृ०८६

२- पहिली सो हिय हेतु उर, सहज बढ़ाई कानि।
चित्त चले हू ना चले, दक्षिण लक्षण जानि।।
हरि हेतु सो प्रेम भूलहू न कीजे मान हातो
करि हिय हू सो होत हित हानिये
लोक में अलोक आली कहू लगावत है
सीता जी को भूत गीत कैसे उर मानिये

-शेष

स्त्रियों पर समान प्रेम करने वाले पुरुष को आचार्यों ने दक्षिण नायक के अन्तर्गत रखा है[1]।

रसकुसुमाकर के रचयिता[2], साहित्यसागर के कविभूषण[3] ने भी अनेक

शेष- आश्विन जो देखियत सोई सांची
केशव राह कानिन की सुनि सांची कबहूं मानिये
गोकुल की कुलटायें मोही उलटावत हैं आज लौ
तौ वैसे ही है काल्हि कहा जानिये ।।

: चित चोप चितै वै की तैसियै है
अरु तैसियै भांति हरात घने
अरु तैसी इहो सविलास सबै हुते
तैसेइ केशव को न जने
सखि तू कहो आनवधू के अधीन है
साचरती के किधौं सपने ।।६।। -रसिकप्रिया, पृ०१८ ; काव्य के रूप-पृ०४१

३- निज निज मन के चुनि सबै फूल लेहु इक बार
यह कहि कान्ह कदंब की हरषि हिलाई डार ।।-जगद्विनोद, छं०सं०२६०

१- जू रहै तियन को सुखद सम, सो दक्षिण गुणखान ।।२८६।।
- जगद्विनोद -पद्माकर पंचामृत, पृ० १४२

२- वादि छवी रस व्यंजन खाइवो वादि नवो रस मिश्रिम खाइवो।
वादि जराय प्रजैक विधाय प्रसून घने वरियाइ लुटाइवो
दास जू वादि जनेस घनेस फनेस रमेस कहाइवो
या जग में सुखदायक एक मयंक मुखनिको अंग लगाइवो।।-रसकुसुमाकर-पृ०१५६

३- जो बहु नारिन से करैं सब मिलि प्रीति समान
ताको दक्षिण कहत है जो कवि बुद्धि निधान ।
: विलोकि के पूरन चंद छटा जमुना तट आन जुरी ब्रजबाला
विहार वहां हरि रास रच्यो निरतै मिलि फांफ बजै डफ ताला
तहां प्रति गौरी लसै प्रति श्याम बनी सुखमा उपमा यो विसाला
या जग मोहिबे मैन रची नई नीलम और पुखराज की माला

--साहित्यसागर, पृ० २३६

स्त्रियों के साथ समान प्रीतिकरने वाले पुरुष को दक्षिण नायक कहा है। ये नायिका को प्रसन्न करने के हेतु प्रेमयुक्त वचन बोलते हैं और सभी के प्रति समान प्रेम दर्शाते हैं। झुंड की झुंड व्रज बालाओं के प्रेम का उत्तर कृष्ण किस प्रकार देते हैं इसका सुन्दर वर्णन पद्माकर[1] ने किया है और दक्षिण नायक के स्वरूप की एक झांकी प्रदर्शित किया है, नायक अपने वाक्चातुर्य से प्रेयसी को सन्तुष्ट करता है।

धृष्ट नायक :-

जो अपराध करके भी नि:शंक रहे, झिड़कियां खाने पर भी लज्जित न हो, जो दीख जाने पर भी झूठ बोलता जाय, वह नायक धृष्ट कहलाता है[2]। दृष्टान्तों के द्वारा धृष्ट नायक का स्वरूप आचार्यों ने अत्यन्त ही स्पष्ट कर दिया है। केशव[3] ने इस पर विचार करते हुए इसके प्रच्छन्न धृष्ट और प्रकाश

१- देखि पद्माकर गोविंद को अनंद भरी
आई सजि सांझ ही है हरष हिलोरे में
ये हरि हमारेई हमारे चलो झूलन को
हेम के हिंडोरन में झूलन के झकोरे में
या विधि वधून के सुवैन सुन वन माली
मृदु मुसुक्याइ कढ़यो नेह के निहारे में
काल्हि चलि चलौं तिहारेई तिहारी सौंह
आजु तुम झूलो हो हमारेई हिंडोरे में ।।-पद्माकर पंचामृत-जगद्विनोद-पृ०८८

२- कृतागा अपि नि:शंकस्तर्जितोऽपि न लज्जित:
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्ट नायक:।।३६।।
-साहित्यदर्पण, पृ० ८७
: धृष्ट कलंकी निलज पुनि करै दोष निश्शंक
ज्यौं ज्यौं बरजत ताहि तिय त्यौं त्यौं लागत वेक ।।-रसरत्नाकर-पृ०४४

३- लाज न गारी मार की छांड दई सब त्रास
देख्यो दोष न मानही धृष्ट सु केशवदास ।।
: नेह मैं ले ले भाजत भाजन कौन गनि दधि दूध मिठाये
गारी दये तेहू बरषे घर आवत है जनु बोल पठाये
लाजकि और कहा कहि केशव जो सुनिये गुण ते सबठाये

घृष्ट दो भेद किये हैं। मतिराम[1] ने भी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं और घृष्ट नायक के चरित्र, गुण, स्वभाव पर प्रकाश डाला है। अत्यन्त अपमानित होने पर भी नम्र, लज्जाहीन, अधम पति को घृष्ट नायक कहा है। वह खुले खुले दुराचरण करता है,[2] प्रधान महिषी को भी दुखाने में नहीं चूकता और उसकी

शेष- भामी पिये इनकी मेरी माई को है हरि आठहु गांठ दृढ़ाये ।।१५।।
मनसा वाचा कर्मणा बिलसन चितवत लेष ।
चलन चातुरी आतुरी आगे गांठ विशेष ।।१६।।
: सौह को सोच संकोचन पांच को डोलत शाहु भये कर चोरी
नैनन वंचकताई रची रति नैनन के संग डारे यै डोरी
लाज करे न डरे हित हानि ते जानि अरे जिय जानि के गोरी
नाहिने केशव शाख जिहिन कि केतिन सो दुख वे सुख कोरी।।१७।।
-रसिकप्रिया -पृ० २१-२२

१- बरजो न मानत हो बार बार बरजो मैं
कौन काम मेरे इस भौन में न आइये
लाज को न लेश जग हांसी को न मन डर
हंसत हंसत बहुबात न बनाइये ।।५१।-रसराज, पृ० ७५

२- द्वार ते दूरि करो बहु बारान हारनि बांधि मृनालनि मारो
छाड़त न अपनो अपराध अखेोंधि सुभाइ आध निहारो
बैरनि मेरी हंसे सिगरी जब पांय परै सुन टरे नहिं टारो
ऐसी अनीति सोई ठिक है, यह दीठ बसीठन ही को निगारो
-रसकुसुमाकर, पृ० १५६
: ज्यों बरजो तरजों कपटी कंह, त्यों हंसिइ के गहें बांह हमारी
बार हजार हटावरी हांथन, तऊ न छोड़त छांह बिहारी
केतिक नैन दिखाव अली, अरु केतिक बोल कुबोल कहो --
--साहित्य सागर, पृ० २४०
: बरज्यो न मानत हो बार बार वरज्यो मैं ---- :देखिए-पादटिप्पणी नं० १
: धरे लाज उर में न कछु, करे दोष निस्संक
टरे न टारे कैसहूं, कह्यो घृष्ट सकलंक ।।- मतिराम ग्रन्थावली, पृ०५४

ताड़ना की परवाह नहीं करता, निर्लज्ज होता है। उसकी पत्नी खंडिता नायिका की कोटि में आती है। पद्माकर[1] ने धृष्ट नायक की उदंडता और निर्लज्जता का वर्णन किया है कि किस प्रकार वह अपमानित होने पर भी प्रणय की कामना करता है।

शठ नायक :-

वह नायक शठ[2] कहलाता है जो अनुरक्त तो किसी अन्य से हो परन्तु प्रकृत नायिका में भी बाहरी अनुराग दिखलाये प्रच्छन्न रूप से उसका अप्रिय करे। उदाहरणार्थ-

" नायिका की चतुर सखी का वचन नायक से है --' हे शठ! दूसरी नायिका की कांची मणियों :करधनी के रत्नों: के शब्द सुन कर इस नायिका के आश्लेष के समय ही जो तूने भुजबंद शिथिल किया था यह बात किससे कहूं। मिले हुए शहद घी के समान चिकनी-चुपड़ी, मीठी-मीठी, किन्तु विषमय तेरी बातों से विमोहित यह सुखी कुछ नहीं समझती। घी-शहद बराबर पिलाने से विष हो जाता है, यह यद्यपि खाने में मीठा स्निग्ध होता है पर परिणाम

१- ठामे मजा अपने मन की, उर आवै न रोषहु दोष दिये को
त्यों पद्माकर यौवन के मद में मद है मधु पान पिये को
राति कहूं रमि आयो घरै, डर मानै नहीं अपराध किये हु को
गारि दै मारि दै भावति भावती, होत है हार हियो को
--जगद्विनोद, पृ० ८६

२- शठोऽयमेकत्रबद्ध भावो यः, दर्शितबहिरनुरागोविप्रियमन्यत्रगूढ़माचरति।।३७।।
- साहित्यदर्पण, पृ० ८८

में मादक या मारक होता है[१]।"

आचार्य केशव का भी यही विचार है, विशेषता यह है कि इन्होंने शठ के भी दो भेद माने हैं - प्रच्छन्न शठ, प्रकाश शठ तथा दृष्टान्त के द्वारा इसे समझाने का प्रयास किया है। रस रत्नाकर[२] में भी शठ नायक के यही लक्षण दिये गये हैं। रसकुसुमाकर[३] में शठ और इसके अतिरिक्त अनभिज्ञ नायक

१- मुख मीठी बातें कहै, निपट कपट जिय जान।
जाहि न डर अपराध को, शठ कर ताहि बखान।।
: रुचि पंकज चंदन कंचन चम्पक रंचन रोचनहू फिरयो
कहिए किंहि कारण कोई ते लायक कायर भामिनि मोंह नचो
अनुमान तहाँ अंखियां लखि लाल ये नाहि ने राति के रोष रचो
तन तेरे वियोग तयो तरुणी तिहि मानहुं यो हिय माह तचो।।१२।।
: कान रंग रंगे मैन भिनह के डोलैं संगनासा अंग रसना के रस ही समान है
और गूढ़ कहा कहौं मूढ़ हौं जू जान जाहु प्रौढ़ रूढ़ के शोदास वीके कर जाने हो
तन आन मन आन कपट निधान कान्ह सांची कहो मेरी आन काहे को डराने हो
वे तो हैं बिकानी हाथ मेरे हौं तिहारे हाथ तुम ब्रजनाथ हाथ कौन के बिकाने हो।।१३।।

-रसिकप्रिया, पृ० १९-२०

२- शठ साधत निज काज मुख मीठो हिय कपट मम
प्यारी गारी आज, मिसरी ते मीठी लगी -रसरत्नाकर, पृ० ४४

३- हो तो निरदोषी दोष काहे को लगावे मोहि
जैसी तोहि भावे मोपे सपथ कराय लै
त्रिवली त्रिवेनी नाभिसर मैं स चाप देखु
सीफो तो निहाल मान को होई घटाय लै
कंचुकी कुटी मे दोय तपसी विराजमान
ताको शीश छ्वाय चोर साह निपटाय लै
कोप करि पावक कपोल गोला लाल लाल
लाख लाख बार मोपै जीमन चटाय लै ।। -रसकुसुमाकर, पृ० १५७

शेष-

का वर्णन आता है । छलपूर्वक अपराध को छिपाने में चतुर पति को शठनायक कहा है । अनभिज्ञ नायक शृंगारादि रसानुकूल क्रियाके यथार्थ बोध में असमर्थ रहता है । रस रत्नाकर[1] में भी इसका वर्णन आया है । पद्माकर[2] ने शठ नायक को मधुरभाषी और कपट रखने वाला कहा है ।साहित्यदर्पणकार ने इन सोलह

शेष- : मीठी बातें सठ करै करि कै अधिक बिगार
धृष्टहि लाज न आवही देहु कितक धिक्कार
कंज कर कोमल कपोल कर बैठी रूठ,
जात न बिलोकी कछू बात न बनाय लौ
कहत बिहारी हौ कियौ न अपराध ऐसौ,
दीजै वृथा दोष लली लगन लगाय लौ
एतै पै प्रतीत जौ न होयप्रान प्यारी तौ पै
कंचुकी निवार नयौ संसय मिटाय लौ
उन्नत उरोज ईस सीस पै धराय हाथ
सुंदरी सहस्र बार सपथ कराय लौ ।।-साहित्यसागर,पृ०२४०

: कैसरि सौ उबटै सब अंग, बड़े कुंतलानि सौ मांग संवारी
चारु सौ चंपक हार हियै, अरु औछे उरोजन की छवि न्यारी
हाथ में हाथ गहै कवि दैव, जू नाथ तिहारीयै साथ निहारी
हा हा हमारी सौं सांची कहौ, वह को हतो छोहरी छवि वारी
--रसकुसुमाकर, पृ० १५८

१- नहिं बूझत अनभिज्ञ है नारि विलास अनेक
करि हारी सब जतन तउ बलम न समझै नैक ।।-रसरत्नाकर, पृ०४४

२- पद बिन वैन उचारियत गहि निबाहि तु बांह
तदपि गरैहैं परत है गजब गुनाहौ नाह
सहित काज मधुरी मधुर नैनन कहै बनाय
उर अंतर पट कपट मय, सो शठ नायक आय ।।६३।।
-जगद्विनोद, पृ० ६०

प्रकार के नायकों के उत्तम, मध्यम, अधम-तीन भेद माने हैं। इस प्रकार नायक के अढ़तालीस भेद माने गये हैं[1]।

इसके अतिरिक्त कुछ आचार्यों ने धर्मानुसार नायक के तीन भेद माने हैं -- १- पति २- उपपति तथा ३- वैसिक।

अवस्थानुसार नायक के दो भेद[2] माने हैं- मानी तथा प्रोषितपति। पति के भी पांच भेद अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ और अनभिज्ञ माने गये हैं। साहित्य सागर[3] के रचयिता ने नायक के तीन भेद माने हैं। तात्पर्य यह कि आचार्यों ने नायक की कोटियों के विभाजन में पर्याप्त साम्य रक्खा है। उपपति के वचन, चतुर, क्रियाचतुर, वैशिक, मानी आदि भेद किये गये हैं। परदारानुरक्त पुरुष को उपपति कहा है[6] इसका वर्णन जगद्विनोद[4], रसरत्नाकर[5] और रसकुसुमाकर[6] में भी आया है। मतिराम ने भी उपपति का दृष्टान्त दिया है।

१- एषां च त्रैविध्यादुत्तममध्याधमत्वेन
उक्ता नायक भेदाश्च त्वारिंशत्तथाष्टौ च ।।३८।।साहित्यदर्पण-पृ०८८

२-रसकुसुमाकर-पृ० १५४

३- त्रिविध भेद नायक बहुरि, कविजन करत बखान
प्रोषित मानी चतुर हू, यथा योग्य अनुमान
प्रोषित रहत विदेश में मानी ठाने मान
चतुराई तिय मिलन में करो तु उसी जान।।२४३।साहित्यसागर

४- उपपति ताहि बखान ही, जु परवधू को मीत
वारि वधुन को रसिक सो वौसिक अलज अभीत ।-जगद्विनोद -पृ० ६०

५- उपपति ताहि बखानिये जो पर तिय को मीत
काहु प्रथा जिन निरमई करी बड़ी अनरीति ।रसरत्नाकर- पृ०४५

६- ज्यों ज्यों बादत विभावरी विलास त्यों त्यों चंद्रिका प्रकास जग जाहिरै करत हो
द्विजदेव की सों कछु आनन अनूप ओप आधे आरविन्दन की आभा निदरत है।
आज कौन नारि सो मिलाय करिबे के काज चन्द्र से गोपाल इते-मांबरे भरतु है।।
-रसकुसुमाकर-पृ०१५६

७- सुंदरि सरस सब अंगनि शृंगार सजि, सहज सुभाव निशि गेह कछु के गई
कवि मतिराम विहसी लसे कपोल पोल बोलने अमोल इतोई दुख दै गई
निपट निकट ह्वै के कपट कुबाइ अंग लाइ कैसी लपट लपेटि मन लै गई
-रसराज - पृ० ७५

: परनारी को रूप सुनि अभिरुचि करै महान
यहै प्रीति परनारि मन उपपति ताहि वखान ।साहित्यसागर-पृ०२४१

वचन चतुर :- वचन चातुरी से पराई स्त्री से प्रीतिसाधने वाले को वचन चतुर कहते हैं। कुछ आचार्यों ने इस भेद को माना है। उनके दृष्टान्त पर विचार करने से नायक के वचन चातुर्य का स्पष्ट आभास मिलता है। नायक को बुद्धिमान और वाकपटु होना आवश्यक है किन्तु यहाँ पर केवल वाकचातुर्य का प्रदर्शन किया गया है।

१- खाय चराय दियो इन गाय कहा घर में हम जाय कहैंगे
नेक ही सो गिरि दूध गयो हम काहू के कैसो कुबोल सहैंगे
श्री वृषभानु सुताहि सुनाय सखा सों कहै वे हमें जो कहैंगी
आज मनाय ले जाय हैं तोष्ण तमाल के कुंजनि बैठ रहैंगी

--रसकुसुमाकर, पृ० १५६

: वचन चतुर साधत सदा, चतुर उक्ति सों काज
तुव घर पैठ्यो चोर इत, प्रिया फिरत कह आज ।।

- रसरत्नाकर, पृ० ४५

: बाँसुरी आज हिरानी हमारी हमारे बिना वह कोउ न पैहै
साँझ लौ ढूंढन जैबे सखा जन बाग बिहार निहार को लैहै
एक तो साँकरी खोर घनी अरु एक कदंब की कुंज उतैहैं
देखतो ठौर दुहूं चलके जो यहाँ न मिले तो वहाँ मिलि जैहै

-साहित्यसागर - पृ० २४७

: दाऊ न नंद बखान यशोमति न्योते गये कहुं ले संग भारी
हाँ हू इके पद्माकर पौरि में सूनी री अबरी निशि कारी
देखन को कटि तेरे सुखेत दै छाड़ गई छुटि गाय हमारी
ग्वाल सो बोलि गोपाल कह्यो सुग्वालिन पै मन मोहिनी डारी

-जगद्विनोद, पृ० ६३

क्रिया चतुर :- पराई स्त्री से क्रियाचातुरी से प्रीति करने वाले पुरुष को क्रिया चतुर कहा है। कार्य के द्वारा अपनी प्रेयसी की प्रीति को सम्पन्न बनाते हैं अर्थात् साधते हैं। ऐसा कार्य करते हैं जिससे प्रेयसी प्रसन्न हो जाय। कुछ विद्वानों ने इस पर विचार किया है और दृष्टान्त दिया है[1]।

वैसिक :- वेश्यानुरक्त पुरुष को वैसिक कहा है, जो अनेक प्रकार से अपमान तथा कष्ट होने पर भी गणिका के प्रेम को नहीं त्यागता। उदाहरण के लिए कुछ आचार्यों के विचारों पर दृष्टि डालना चाहिए। रसराज के रचयिता मतिराम

१- जमुना तट जल मीन गहि विकल बताई लाल
भर मंजुल अंजुल सलिल सींच हंसी ब्रजबाल
—साहित्यसागर, पृ० २४७

: आई सन्यौति बुलाई भलौ दिन
चारि को जाहि गोपालहि भावै
त्यौं पदमाकर काहू कह्यो कै
चलौ चलि वैगहि सासु बुलावै
सो सुनि रोकि सकै क्यौं तहां
गुरु लोगन सै यह व्यौंत बनावै
पाहुनी चाहैं चल्यो जब ही तबही
हरि सासुहि कौंकत आवै
—जगद्विनोद, पृ० ६४

: रसकुसुमाकर, पृ० १६०

: क्रिया चतुर रचि छल क्रिया
साधन अपनो काजु
नैन मूंदि सूचित कियो
प्रिया सांझ मिल आज
-रसरत्नाकर, पृ० ४५

ने उपपति और वैसिक के लक्षण वर्णन किये हैं।[१]

शेष९- २- कैसी लपेट चपेट दुहून की कैसी कलाकल कोक करिढानै
सीकर भौंह,सकोरन फलकौन कहि कैसे बनाये क बहानै
कैसी विहार कहैं मुख सै अरु को विसवास कहै परमानै
वार वधू के मिलि को मजा वह वारवधू से मिलने सोइ जानै

-साहित्यसागर, पृ० २४३

वारवधुन को रसिक स्वई वैसिक लाज अमीत
बहुत फजीहतहू भये, तजत न गणिका प्रीति

-रसरत्नाकर, पृ० ४६

छैल की छाती में छाप छबीली की धोम मची छतिया छवि छाकी
फीन फगा में फनी फुमका दुति फूमै फुकै फमकै दृगतरकी
ऐंड भर पग पैढै धरै उधरै न कछू मति की गति थरकी
बांकी सी दीठि फिराय कह्यो अहो जाइ जू पै करि कमीन्ह की करकी

-रसकुसुमाकर, पृ० १६०

हेरिह हरनी कांति वह सुनि सीकाति सुभांति
दियो सोचि मन ताहि तहँ घन करि कहा बिसाति

-जाद्विनोद, पृ० ६२

१- जो पर नारिन को रसिक, उपपति ताहि बखानि
प्रीतम जो गणिकानिको, ताको वैसिक जानि ।।

- रसराज, पृ० ७५

मानी :- प्रिया कृतायमान सूचक चेष्टाधारी पुरुष को मानी कहते हैं।[१] प्रिया से किस प्रकार मान करते हैं इसका वर्णन कई आचार्यों ने किया है। सभी ने इसको आवश्यक नहीं माना है।

१- बातहि बात दै पीति पिया, पटिया लगि मान जनावन लाग्यो
तू ज्यों ज्यों करै मनुहारि तिया रुख तौंण सुत्यो त्यों रुसावन लाग्यो
चूक परी सो परी बकसो यह प्रान है रावरै पावन लाग्यो
लीजिय मोहि उठाय हिये विच भावन जोर जड़ावन लाग्यो

--रसकुसुमाकर, पृ० १६१-१६२

: नेक तुम्हारे बुलाये ही से नहि आई
जो बाल कहा भयो दैया
मान हतो पै रहे तुम ठान मै कौन तुम्हारी है तान कन्हैया
रैयत भूल जो जाति विहार तो राजई होत दामा को करैया
राजई रूठ जो जाय कहूं तो प्रजा की पुकार को कोहै सुनैया

-साहित्यसागर, पृ० २४५

: तव रंग रस बस बाल किम अनचल मिलन न लाल
मान करत नाही करत यह कहां करत गुपाल

-साहित्यसागर, पृ० २४६

: बाल बिहाल परी कब की
दबकी यह प्रीति की रीति निहारो
त्यों पद्माकर है न तुम्हें सुधि
कीनो जो पैरो बसंत बगारो
कातें मिलो मन भावती सो बलि
ह्यांते हहा वचमान हमारे
कोकिल की कल बानि सुनै
पुनि मान रहैगो न काहू तिहारो
जात जुराफा है जियत, सज्यो तै बनिज मान
रूसि रहे तुम पूस मैं, हैं यह कौन समान।-काव्यविनोद, पृ०९३

प्रोषित -

प्रिया-वियोग में संतापित पुरुष को प्रोषितपति :नायक:कहा है । 'प्रोषित रहत विदेशमें' ऐसामत हमारे आचार्य पद्माकर[1] ने प्रकट किया है । वियोगिनी नायिका की भांति नायक व्याकुल रहता है

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों ने नायक के व्यक्तिगत सामाजिक जीवन की जितनी भी अभिव्यक्तियां हो सकती हैं उन्हें अनेक भेदों और उपभेदों में परिगणित किया है । पुरुष के

१- जल विहार मिस भीर में लै चुभकी इक बार
चह भीतर मिलि परस्पर दोऊ करत बिहार
व्याकुल होइ जो विरहवश बसि विदेश में कंत
ताही सो प्रोषित कहत, जे कोविद बुधिवंत
--जगद्विनोद, पृ० ६४

: जगद्विनोद, पृ० ६५

: परी तेरे सुमुख सुधाधर की दूति
जावै ललित किशोरी वचनामृत अगाधासों
सेवक त्यों तेरेई उरोज सुधा कुंभानि को
परसि प्रदेश पूरि पूरि मन साधा सो
एरे मन्द पौन ।गौन कीजिये वेगि उतै ऐसे ही
सुनयेगो संदेस मेरी राधा सों
तेरी गुही गरजौन होती बनमाला तो बचावतो
को मोहि विरहानल की बाधा सों । --रसकुसुमाकर,पृ० १६२

: हंस के अंक भरे लई जो बस के तन बैस
ते बसकै बसकै अबै बस कै इत परदेस ।।
-साहित्यसागर, पृ० २४३

चरित्र की जितनी भी चेष्टाएं तथा क्रियाशील मानववृत्तियां मिल सकती हैं उन पर अत्यन्त गहराई से प्रकाश डाला है । इससे ज्ञात होता है कि हमारे प्राचीन आचार्य नायक के संबंधमें कितनी सूक्ष्म दृष्टि रखते थे तथा उसकी अभिव्यक्ति के लिए जीवन के कितने प्रसंग उपस्थित कर सकते थे । पुरुष की नैतिक और अनैतिक दोनों प्रकार की व्यवहार कुशलता के प्रचुर उदाहरण इन लक्षणों में वर्तमान हैं तथा उसके जीवनगत अनुभूतियों की रूपरेखा अत्यन्तविस्तार के साथ स्पष्ट की गयी है ।नायक के लक्षणों के द्वारा मानव-प्रकृति का इतना सूक्ष्म चित्रण किया गया है कि हमे पुरुष की भाव-कोटि तथा आचार कोटि की विस्तृत व्याख्या अनायास ही प्राप्त हो जाती है । इसके उपरान्त आधुनिक विचारकों तथा समीक्षकों ने इस नायक प्रकरण में किस नवीनता का समावेश किया है इस पर आगे विचार किया जायेगा ।

आधुनिक दृष्टिकोण:-

महाकाव्य युग काव्य है, उस पर युग का प्रभाव अवश्यम्भावी है । साहित्य और युग का घनिष्ठ सम्बन्ध है । समय परिवर्तनशील है परन्तु मानव चेतना का परिवर्तन शीघ्रता से नहीं हुआ करता । यह अवश्य है कि कि मानव जीवन का कुछ अंश तो चिरंतन सत्य पर आधारित है और कुछ समय से प्रभावित होता है ।

चिरंतन सत्य जो प्रत्येक युग प्रत्येक स्थान पर एक समान है वह सर्वकालीन और सर्वदेशीय होता है । उदाहरणस्वरूप मां का वात्सल्य चाहे भारतवर्ष हो अथवा अमेरिका या इंगलैंड सर्वत्र एक सा होगा ।संस्कृति सभ्यता का प्रभाव इस पर नहीं पड़ेगा । संतान की मृत्यु का दुख भारतीय मां और अमेरिकन मां दोनों को समान रूप से होगा । इसी प्रकार लौकिक प्रणय प्रेमी और प्रेमिका उसी प्रकार अनुभव करते हैं । तात्पर्य यह कि मनोभावों में परिवर्तन नहीं होता न भिन्नता होती है । सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक

परिस्थितियों के कारण तत्कालीन समस्याओं में अवश्य अंतर हो जाता है । साहित्यकार अपनी कृतियों में इसका निराकरण करता है और इसी कारण आज महाकाव्य का नायक युग पुरुष के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है उसके शील त्याग और उदारता को महत्व दिया जाता है उच्चवंश अथवा कुल को अनिवार्य नहीं माना जाता है । महाकाव्यकार अपनी कृतियों में उन्हीं समस्याओं को स्थान देता है उसी को प्रतिपाद्य विषय बनाता है जिसका संबंध मानव के चिरंतन सत्य से होता है ।

महाकाव्यकार हमारी रागात्मक अंत:प्रकृति को प्रभावित करने वाले मनोभावों को अपनी कृति में सन्निहित करने का प्रयास करता है । मानव जीवन की गहनतम अनुभूतियों और विषमताओं को व्यक्त करने में सफलता प्राप्त करने वाला कलाकार श्रेष्ठतर माना जाता है । महाकाव्य का प्रणय सांस्कृतिक प्रयत्न है ।

युग की समस्याओं का समन्वय करने के लिए इतिहास के पृष्ठों को पलटना आवश्यक है । प्राचीन काल में उपयोगी परिस्थिति यदि आज अनुकूल नहीं है तो उनको कृतियों में स्थान नहीं देना चाहिए बल्कि हमें विज्ञान और दर्शन के द्वारा अपनी युगकालीन समस्याओं का सामंजस्य स्थापित करना चाहिए।

आज का मानव वैज्ञानिक युग का मानव है । प्रत्येक वस्तु विज्ञान की कसौटी पर कसी जाती है, इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मानवता की वृद्धि और मानवता के लिए उपयोगी समस्याओं को काव्य में स्थान देना चाहिए- विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों से परिचित रहना चाहिए ।

मानव की वहिर्मुखी प्रवृत्तियों को जानने के लिये अनेक शास्त्र हैं पर अन्तर्मुखी वृत्तियों की व्याख्या करने के लिए दर्शन ही माध्यम है । सत्य की पराकाष्ठा को प्राप्त करने के लिए चरम सत्य के ज्ञान के लिये अनेक मतों का प्रकटीकरण हुआ है । अतृप्त मानवता को शान्ति और सत्य में ही तृप्ति होती है । कलाकार को मानव जीवन की जटिलताओं, विभिन्न परिस्थितियों तथा प्रेम, उल्लास

ममता आदि मनोभावों की विवेचना करना चाहिए ।अपनी कृति में मानवता का सन्निवेश करना चाहिए तभी उसकी रचना महाकाव्य की कोटि में गिनी जायेगी क्योंकि वैज्ञानिक ऐतिहासिक और दार्शनिक विचारों के समन्वयात्मक दृष्टिकोण से पूर्ण मानवता का सृजन होता है । आज मानव बौद्धिक विकास की ओर अग्रसर है प्रत्येक क्षेत्र में वह जीवन से सम्बन्धित बुद्धि ग्राह्य अर्थात् नैसर्गिक दृश्यों की झांकी चाहता है ।

आधुनिक दृष्टिकोण से नायक के कार्यों पर दृष्टि डालना आवश्यक है । नायक सत्य, धर्म, व न्याय की सुरक्षा के हेतु प्रत्येक कार्य करता है और उसके इस ध्येय में समष्टि के कल्याण की भावना निहित रहती है । मानव-जीवन का वास्तविक मूल्य क्या है यह नायक अपने कर्म के माध्यम से समाज को बताता है, इस पर कुछ विस्तार से विचार करना है ।

नायक के कार्य

सत्य, धर्म, न्याय की सुरक्षा:- महाकाव्यकार अपनी काव्य शक्ति के द्वारा उन सारभूत तत्वों की खोज करता है जो सम्पूर्ण विश्व का आधार है, वह सदैव व अपनी कृति में परम तत्व, अभिन्न सत्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है । एक महापुरुष के उदात्त चरित्र के द्वारा महाकवि अपने उन्नत भावों को व्यक्त करता है इस परम पुरुष की ऐसी प्रतिमा प्रतिष्ठित करता है जो हमारी श्रद्धा का आधार बन जाता है और हम उसकी आराधना करने लगते हैं ।

कार्यक्षेत्र का पथ अत्यंत ही कंटकाकीर्ण है । उसमें सन्नद्ध और कटिबद्ध रहने के लिये कलाकार महान व्यक्ति को ही चुनता है । वही जातीय भावनाओं और आदर्शों का प्रतिनिधि बन कर हमारे सन्मुख उपस्थित होता है । उदात्त गुणों से युक्त वह महामानव विश्व की विराट् रंगस्थली में सत्य, धर्म, और न्याय की सुरक्षा के लिये कार्य करता है । इतिहास तथा साहित्य इसके प्रमाण हैं । जब जब पृथ्वी पर अधर्म की वृद्धि हुई, आसुरी वृत्ति के लोगों ने मानव को कष्ट

देना आरम्भ किया । महामानव का जन्म हुआ और सज्जनों की रक्षा हुई । युगीन समस्याओं का समाधान करने के लिये युग पुरुष अवतीर्ण हुए ।गीता में कहा है —

> " यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ॥"[1]

अर्थात् कृष्ण ने स्वयं कहा है " हे अर्जुन ! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूं अर्थात् प्रकट करता हूं।

नायक का आदर्श ही सत्य की रक्षा करना है । उसका चरित्र दैवी गुणों पर आधारित होकर ही विकास की ओर अग्रसर होता है । समय के परिवर्तन के साथ सिद्धान्तों में परिवर्तन होता है पर कुछ सारभूत चिरंतन तत्व जो सदैव स्थिर रहते हैं जैसे सत्य । सत्य का मूल्य प्रत्येक देश में रहा और रहेगा। राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य की रक्षा के लिये सर्वस्व समर्पण कर दिया ।मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने पिता के सत्य की प्रतिष्ठा रखने के लिये चौदह वर्ष वन में निवास किया । इसी रामचरित मानस के आधार पर बलदेव प्रसाद मिश्र जी ने "साकेत संत" की रचना की है और नीतिपरक सत्य की मर्यादा का पूर्णतया निर्वहण किया है । बड़े भाई को ही राज्य सिंहासन का अधिकारी होना चाहिए, इस सत्य की रक्षाके लिये भरत को कितनी विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, नंदिग्राम में चौदह वर्ष त्यागमय जीवन व्यतीत किया। राम ने पिता के वचन की सत्यता को निभाने के लिये राज्य सुख त्याग कर तपस्वी जीवन व्यतीत किया और अनेक प्रकार के दु:ख सहन किये ।

इस प्रकार नायक सदैव सत्य की, मर्यादा की रक्षा के लिये काम करता है । वह इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए कर्म क्षेत्र में उतरता है और अपने त्यागमय जीवन और महत् कार्यों के द्वारा सत्य की प्रतिष्ठा करता है । उसी सत्य पर आधारित

१- श्रीमद्भगवद्गीता- अध्याय ४, श्लोक ७

होने के कारण ही यह वृत्तियां एक समय की न होकर युग-युग तक शाश्वत रहती हैं। यह सारभूत अलौकिक तत्व सभी उच्चकोटि के महाकाव्यों में निहित हैं।एकलव्य महाकाव्य में आचार्य द्रोण के सत्य -प्रतिज्ञा[1] की मर्यादा की सुरक्षा के लिये गुरु भक्त एकलव्य ने एक क्षण में अपने जीवन भर की साधना को समर्पित कर दिया और अपना दक्षिणांगुष्ठ काट कर गुरु के चरणों में रख दिया[2]।

नायक के कर्म का प्रांगण सत्य धर्म और न्याय के द्वारा निर्मित हुआ है इसी के मध्य उसके चरित्र का विकास होता है।तात्पर्य यह कि नायक का प्रत्येक कार्य कहीं सत्य की रक्षा तो कहीं सत्य की स्थापना और कहीं सत्य की प्रामाणिकता के लिए होता है।महाकाव्यकार नायक का सृजन इन्हीं चिरन्तन तत्वों की आधार शिला पर करता है जो विश्व द्वारा आदर प्राप्त करता है।महाकाव्य का नायक धर्म की स्थापना के लिये सतत् प्रयत्नशील रहता है।काव्यकार

१- अद्वितीयता का वर दिया मैंने पार्थ को
टूटते से स्वर में कहा श्री गुरुदेव ने ।-एकलव्य,पृ० २९५

२- गुरु का हृदय खंड खंड हो असंभव
दक्षिणांगुष्ठ ही हो खंड खंड मेरा जो कि
पार्थ को बना दे अद्वितीय धन्वी विश्व में
गुरु प्रणपूर्ति करें सब काल के लिये
जय गुरुदेव ! यह रही मेरी दक्षिणा
क्षण ही में अर्धचन्द्र मुख वाण वेग से
तूणी से निकाल कर लिया वाम कर में
गुरु मूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना
एक ही अघात में अंगुष्ठ काटा मूल से

---एकलव्य, पृ० २९६

उनका सृजन ही इसी ध्येय को लेकर करता है कि यह धर्म की रक्षा करे, दुष्टों का संहार करे और सज्जनों को सुख पहुंचाये जैसा कि गीता में कहा है -

" परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।८।।[1]

राम और कृष्ण का जन्म इसी हेतु हुआ। उसी दृष्टिकोण को रखते हुए गुप्त जी ने साकेत में धर्म का परिवर्तित स्वरूप चित्रित किया, जो युगवादी विचारों के अनुकूल है - मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहते हैं --

" भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया
नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने आया
संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया[2] ।

धर्मनिष्ठ राम पृथ्वी को ही वैकुंठ बनाने के हेतु आये हैं मानवता में ही ईश्वरत्व की प्राप्ति कराने का संदेश दे रहे हैं । इसी प्रकार हरिऔध जी ने प्रियप्रवास के लोकसेवी कृष्ण के द्वारा धर्म के वास्तविक रूप को चित्रित किया है जो बौद्धिक विकास के युग में भी मान्य है ।

ईश्वर के सम्बन्ध में हरिऔधजी का विचार परिवर्तन हुआ और परम्परागत पूजा, जप आदि धार्मिक कार्यों में भी परिवर्तन हुआ । नवधा भक्ति का जो रूप चित्रित किया है वह अत्यन्त प्रभावशाली और युगानुकूल है-

जी से सारा कथन सुनना आर्त उत्पीड़ितों का
रोगी प्राणी व्यथित जन का लोक उन्नायकों का
सच्छास्त्रों का श्रवण सुनना वाक्य सत्संगियों का
मानी जाती श्रवण अविधा भक्ति सज्जनों में
सोये जागें तम पतित की दृष्टि में ज्योति आवे

१- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४, श्लोक ।८।।

२- साकेत - सर्ग ८, पृ० १६७

भूले आवे सुपथ पर और ज्ञान उन्मेष होवे
ऐसे गाना कथन करनादिक न्यारे गुणों का
है प्यारी भक्ति प्रभुवर की कीर्तनोपाधिवाली
विद्वानों के स्वगुरु जन के देश के प्रेमिकों के
ज्ञानी दानी सुचरित गुणी सर्व तेजस्वियों के
आत्मोत्सर्गी विबुध जन के देव सद्विग्रहों के १
आगे होना नमित प्रभु की भक्ति है वन्दनाख्या ।।

इस प्रकार श्रवण कीर्तन और वन्दना का परिमार्जित रूप स्थापित किया गया आधुनिक महाकाव्यकार जनहित को ही मानव का प्रमुख धर्म मानते हैं और उसी को अपनी कृति में अंकित करने का प्रयास करते हैं। मानवतावादी युग मानव सेवा को ही प्रमुख धर्म मानता है। हरिऔध जी ने अपनी कृति में नवधा भक्ति का जो परिवर्तित रूप वर्णन किया है वह प्राणी की सेवा को अधिक महत्व देता है, दुखी रोगी मनुष्य के कष्ट निवारण को ही सत्संग बताता है।

महाकाव्य का नायक धर्म की स्थापना और उसकी रक्षा के लिए प्रत्येक कार्य करता है, कृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र लोकरंजनकारी धर्म से युक्त है।

न्याय पर दृढ़ रहना महानता का द्योतक है। नायक की प्रत्येक क्रिया न्याय की सुरक्षा के लिए होती है, उसकी आत्मा अन्याय को कुरीति को तथा अत्याचार को कभी सहन नहीं कर सकती, वह अपने प्राणों की आहुति दे देता है पर न्याय पर स्थिर रहता है। दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष सदैव न्याय करेगा और दूसरों से न्याय चाहेगा। युग पुरुष बापू ने न्याय की रक्षा के लिए ही भीषण यातनायें सहन की और जननी जन्मभूमि को परतंत्रता की श्रृंखलाओं से मुक्त कराया।

अनेक आधुनिक महाकाव्यकारों ने अपनी कृति का प्रधान पुरुष पात्र बापू को ही चुना है क्योंकि बापू के चिंतामणि सदृश उज्ज्वल चरित्र के समक्ष वंश कुल परम्परा का महत्व नहीं रह जाता और महामानव, जननायक बापू महात्मा

१- प्रियप्रवास- पृ० २५७- सर्ग षोडश

के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किये गए हैं तथा मानव मात्र के असीम अनुराग और श्रद्धा के आधार हुए । श्री रघुवीरशरण मित्र ने `जननायक` महाकाव्य में राष्ट्रपिता `बापू` के चरित्र पर सुंदर रूप से प्रकाश डाला है । `बापू` न्याय के लिए किस प्रकार विरोध करते हैं और स्वयं यातना सहन करते हैं इसका चित्रण हृदय को द्रवित कर देता है इन सब विषमताओं के आने पर भी महामानव गांधी अपने संकल्प से विचलित नहीं होते । समस्त मानव को अहिंसा का, प्रेम का, एक सूत्र में आबद्ध रहने का पाठ पढ़ाने वाले `बापू` ने शत्रु और मित्र को समान दृष्टि से देखा बापू की सच्चि और दृढ़ धारणा थी कि प्रेम से मानव सब पर विजय प्राप्त कर सकता है --

> चाहे लोहे के बंधन हों
> किन्तु स्नेह से गल जाते हैं
> प्रेमी के नयनों के जल से
> पथ के कांटे जल जाते हैं ।[1]

महात्मा बापू का लक्ष्य था —

> न्याय धर्म है, न्याय नीति है
> न्याय नीति की सदा विजय है
> शत्रु मित्र के लिये बराबर
> गांधी का गौरव अतिशय है ।[2]

महाकाव्य का नायक सदैव न्याय की रक्षा के लिए कार्य करता है । उसके चरित्र के विकास की यही दिशा है तथा इसी पर चल कर यह विश्व भी उसका आराधक बन जाता है । अफ्रीका जाने पर `बापू` को यही असह्यनीय हुआ कि मानव तो सभी

१- जननायक, पृ० १२३ ,सर्ग ८ वां

२- जननायक पृ० १२३, सर्ग ८ वां

समान हैं, सब को सुख से जीवित रहने का समान अधिकार है किन्तु भारत-वासियों की वहां पर जो दशा देखी उससे उनका हृदय व्यथित हो उठा—

नये नये कानून विषैले, लदे अफ्रीका में काले पर
विष फैलाने लगे देश में, श्वेत, सांप, फुफकार मार कर
एक सर्प ने तीन पौंड कर, लदवाया हिन्दुस्तानी पर
अपने गाल सुर्ख कर डाले, गिरमिटियों का खून चूस कर
यम का कर था या पिशाच का, बच्चों तक पर भी वह कर था
मानवता की शव यात्रा में, काले गोरे का अंतर था
खून पसीना बहा-बहा कर भारतीय खेती करते थे
पर भूखे मरते थे काले, गोरे बढ़े पेट भरते थे
गोरे क्या ! उनके कुत्ते भी भारतीय पर घुरीते थे
दूध पिया करते थे गोरे ढोर उन्हीं से चरवाते थे
कहते थे काले जंगली हैं, ये अच्छा खाना कब जाने
इन्हें पहिनना कब आता है, कब अपनी कीमत पहिचाने।
अत्याचारों के विरोध में गांधी ने आवाज़ उठाई[१]।

न्याय की रक्षा के लिये बापू ने इन अत्याचारों का विरोध किया। जन-जन के हृदय में जननी जन्मभूमि के प्रेम की ज्योति जगा दी और एक समय आया जब उसकी पुनीत ज्योति में समस्त अन्याय और अत्याचार भस्मीभूत हो गये और अंत में न्याय की ही विजय हुई। कहने का तात्पर्य यह कि नायक न्याय की सुरक्षा के लिए कर्म करता है।

एकलव्य के रचयिता डा० रामकुमार वर्मा ने इस कृति में नायक एकलव्य के द्वारा न्याय की सुरक्षा का अत्यंत स्वाभाविक चित्रण किया है। युगानुसार

१- जननायक, पृ० १११, सर्ग ७ वां

आज यही विचार मान्य है कि शिक्षा के सभी अधिकारी हैं नीच हो या ऊंच, क्यों कि मानव वंशानुक्रम से तुच्छ और महान नहीं है बल्कि गुण से महान है। एकलव्य अतीव श्रद्धा को लेकर आचार्य द्रोण से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा प्रकट करता है और द्रोण एकलव्य को निषाद पुत्र होने के कारण अस्वीकार कर देते हैं और कहते हैं—

> मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी हैं
> जो कि भूमिपुत्र नहीं, किन्तु भूमिपति हैं
> मृत्तिका के दीपकों का मोह शेष है नहीं
> जो कि उटजों में बुझते हैं एक फूंक से
> मैं सजा रहा हूं मणिदीप राजगृह में
> जिनके समीप झंझा झांक भी न सकता।[१]

ऐसे व्यंग्यपूर्ण वचन को सुन कर भी दृढ़व्रती नायक एकलव्य ने जीवन के लक्ष्य की दिशा नहीं परिवर्तित की और न निराश ही हुआ। उसके हृदय में महत् आकांक्षा का जो अंकुर उत्पन्न हो गया था वह अन्यायपूर्ण मिथ्या दंभ के झंझावातों से भी विनष्ट नहीं हुआ, वह अपनी धारणा पर दृढ़ रहा और गुरु द्रोण की मृत्तिका की मूर्ति बनाकर उसी के समक्ष अटूट लगन से साधना आरम्भ किया और अंत में अद्वितीय धनुर्धारी हुआ। महाकाव्यकार की इस रचना में यह सिद्ध किया गया है कि मानव गुण से महान है जातिकुल वंश से महान नहीं है। मानव मात्र को शिक्षा का समान अधिकार है। इसका वर्णन आपने बहुत ही तार्किक रूप से किया है, कहते हैं —

> " शिक्षा तो सरस्वती की धारा है, प्रशान्त है
> है अनंत जो बही है सृष्टि के आरम्भ से
> कौन इसे रोक सका और किस मन को
> इसने पवित्र किया नहीं स्पर्श मात्र से ?

१- एकलव्य, पृ० १२६ सर्ग

जाति भेद नहीं वर्ग वंश भेद भी नहीं
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं
सूर्य की किरण भी क्या जाति भेद मानती है ?
अग्नि क्या विशेष जीव धारियों की श्रेणी में
सीमित है ? और वायु की तरंग उठती
केवल विशिष्ट व्यक्तियों को सांस देने में ?
फूल फूलते हैं वे न घोषणा यूं करते
साधु ही सुगन्धि के विशेष अधिकारी हैं
और जो असाधु हैं वही दुर्गन्धि बन जायेगी ?
शिक्षा की त्रिवेणी का पवित्र तीर्थराज तो
सृष्टि में समस्त मानवों की कर्मभूमि है ।[१]

इन पंक्तियों में मानव धर्म का वास्तविक और सत्य रूप चित्रित किया गया है । सृष्टि की प्रत्येक वस्तु सभी के लिए समान रूप से उपयोगी है और उसमें भेद भाव नहीं रहता । इसी प्रकार शिक्षा के अधिकार में भेद भाव कैसा है ? मानवमात्र को शिक्षित होने का समान अधिकार है, इसी न्याय की रक्षा एकलव्य के चरित्रांकन के द्वारा की गयी है और प्रमाणित किया गया है कि पुरुषार्थ से मानव सब कुछ प्राप्त कर सकता है और उसकी सत्य साधना, कठोर त्याग के सन्मुख आर्य कुलभूषण पार्थ और गुरु द्रोण को नत होना पड़ा ।

समष्टि के कल्याण की भावना:-

सत्कवि युग द्रष्टा होता है । हरिऔध जी भी युग के साथ थे उन्होंने समाज सेवा जाति सेवा को अपने साहित्य की रचना का लक्ष्य बनाया । प्रियप्रवास के नायक कृष्ण को जाति हितैषी समाज सेवी के रूप में चित्रित किया है । यहीं

१- एकलव्य, पृ० २२३

कल्याणकारी भावना पराकाष्ठा पर पहुँच कर विश्वकल्याण के रूप में विकसित होती है। हरिऔध जी के नायक का प्रमुख कर्तव्य समष्टि का हित है, वह अपने सुख और अपने कल्याण के लिए कोई कार्य नहीं करते बल्कि सर्वभूत के हित की ही कामना निरन्तर करते हैं, उनके इस कथन में लोकहित की भावना अन्तर्निहित है--

सशक्त होते तक एक लोम के
किया करूंगा हित सर्वभूत का।[1]

सम्पूर्ण काव्य में लोकमंगल की भावना ही प्रमुख रूप से प्रदर्शित की गयी है और नायक कृष्ण समष्टि के हित के लिए अपने सुख की कभी चिन्ता नहीं करते। समाज उद्धारक कृष्ण काली नाग के दहन के लिये तत्पर होते हैं और कहते हैं-

स्वजाति और जन्मधरा निमित्त मैं
न भीत हूंगा विकराल काल से
+ +
कभी करूंगा अवहेलना न मैं
प्रधान धर्मांग परोपकार की।।[2]

एक-एक शब्द से देश के प्रति, जाति के प्रति प्रबल प्रेम की भावना व्यक्त होती है। महाकाव्य का प्रधान पुरुष पात्र नायक युग पुरुष होता है और विश्व का हित उसके जीवन का उद्देश्य रहता है-इसी उद्देश्य में सफल होने वाला महापुरुष जनता की श्रद्धा का पात्र होता है और नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है। नायक के सन्मुख 'स्व' की भावना लुप्त हो जाती है और मानव मात्र की सेवा प्रमुख हो जाती है। मानव के सुख और हित के लिये कार्य करने वाला ही महान कहलाने का अधिकारी बनता है। पौराणिक साहित्य, ऐतिहासिक साहित्य

१- प्रियप्रवास, पृ० १३० सर्ग एकादश, छंद संख्या २७
२- वही // // छंद संख्या २६

सभी में महापुरुषों के द्वारा किये गये कार्यों के दृष्टान्त विद्यमान हैं और इससे हम उनकी लोकहितकारी भावनाओं का अनुमान कर सकते हैं। राम, भरत, कृष्ण, गौतमबुद्ध, गांधी आदि ऐसे महामानव हैं, जिन्हें हम ईश्वर के समान पूजते हैं। समष्टि के हित की भावना ही इन महान् आत्माओं के जीवन का लक्ष्य रहा। नायक कर्मक्षेत्र में विश्व कल्याण का बाना पहिन कर उतरता है उसका प्रत्येक कार्य मानवता की प्रगति के लिए होता है।

वर्तमान युग में राष्ट्रपिता बापू का चरित्र जनकल्याण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसके रोम रोम में विश्व कल्याण के भाव भरे हुए थे। गांधी जी ने समष्टि के हित के लिए व्यष्टि के सुख का मूल्य नहीं किया। मानव मात्र को सुख से जीवन यापन करने का समान अधिकार है इसमें नीच और ऊंच की कोई विभाजन रेखा नहीं है इसी संकल्प की पूर्ति के लिए बापू ने सत्याग्रह के पथ पर कदम बढ़ाया और अपनी आत्म शक्ति के द्वारा बिना रक्तपात के जननी जन्मभूमि को परतंत्रता के बंधन से मुक्त करा दिया। बापू ने जन सेवा को ही सर्व प्रमुख कर्तव्य माना, रघुवीर शरण मित्र ने अपने महाकाव्य में अपने राष्ट्रनायक गांधी की सेवा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। एक कुष्ठ रोग से ग्रसित व्यक्ति आता है और बापू स्वयं अपने हाथ से उसके घावों को धोते हैं उसकी सुश्रूषा करते हैं --

> कोढ़ चूता द्वार उनके एक दिन आया भिखारी
> भीख दे बाबा। मुझे कुछ, प्रश्न यह लाया भिखारी
>
> \+ \+
>
> धोने लगे घाव कोढ़ी के अमर भगीरथ गंगाजल से [१]

तात्पर्य यह कि नायक के हृदय में मानव मात्र को सुख पहुंचाने की भावना इस प्रकार विकसित हो जाती है कि उसमें अन्य विचारों के लिये स्थान नहीं रह जाता और वह विश्व के हित के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। गांधी जी

१- जननायक, पृ० १३२, ६ वां सर्ग

ने प्रेम सेवा और त्याग से सबको वश में कर लिया । जनवाणी स्वतंत्रता के गीत में मुखरित हो उठीं, भारत मां के पैरों की बेड़ियां टूटीं, राष्ट्र स्वतंत्र हो गया, यह युग पुरुष बापू के समष्टि कल्याण की भावना का पुनीत परिणाम था । मिश्र जी ने अपने महाकाव्य 'जननायक' में गांधी जी के जीवन के मार्मिक स्थलों का चयन कर उनको अंकित करने का प्रयास किया है उनके प्रत्येक कर्म में जग कल्याण की पवित्र विचारधारा प्रवाहित हो रही है-

" जो कुछ भी देखा गांधी ने उसमें सारा जग व्यापक है
विश्व एक में, एक विश्व में प्राणी ईश्वर का बालक है[1]।

बापू का विश्व के प्रति इतना महान् भाव था और प्राणिमात्र में ईश्वर का अंश देखते थे । विश्व का हित चाहने वाले बापू ने देशवासियों की दीन दशा देख कर संकल्प कर लिया कि मानव कल्याण के लिये जितनी भी यातनाएं सहन करना पड़े, करूंगा, यह जीवन जन-सेवा में अर्पित है और उसी को चरितार्थ किया ।

" देख कर देश को नंगा लंगोटी बांध ली तन पर
देश के ढांपने को तन वही तो बुन रहा खद्दर
तड़पता भूख से देखा कि उसने कर दिया अनसन
किसी को दु:ख में देखा कि उसने दे दिया तन मन[2]।

समष्टि कल्याण की भावना महापुरुषों के जीवन का प्रधान लक्ष्य है । पौराणिक नायक कृष्ण तथा समसामयिक नायक गांधी के जीवन चरित्र पर एक दृष्टि डाल कर विश्व कल्याणकारी नायक का दृष्टांत प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । नायक जनहित के निमित्त ही कार्य करता है इसी के माध्यम से वह सदैव के लिये अमर होकर महार्घ चरित्र की कोटि में पहुंच

१- जननायक, पृ० १६० सर्ग ११ वां

२- ,, पृ० २२६ सर्ग १५ वां

जाता है । जितने भी महान् पुरुष विश्व की इसविराट् रंगस्थली में अवतरित हुए उन्होंने लोक हित की पुनीत भावना को अपने जीवन का ध्येय बनाया । महाकाव्य का नायक एक युग, एक देश का न होकर सर्व-देशीय सर्वकालीन होता है इसी कारण उसकी विचारधारा संकुचित न होकर विश्व में व्यापक रूप धारण करती है ।

जीवन के मूल्यों का स्थिरीकरण:-

महाकाव्य किसी देश का युगकाव्य होता है और महाकाव्यकार उसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करने का प्रयास करता है परन्तु वह यथार्थ आदर्श पर आधारित रहता है । मानसकार ने रामचरितमानस में उस समय के समाज का ऐसा चित्र खींचा है और भारतीय जीवन का ऐसा आदर्श वर्णन किया है जो सदैव मान्य है क्यों कि उसमें चिरंतन सत्य को लेकर ही किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है ।

वास्तव में जीवन के मूल्यों का स्थिरीकरण मानवता का मूल मंत्र है । यदि जीवन का महत्व, उसका मूल्य समाप्त हो जाय, तो विश्व के इतिहास में मानवता के पृष्ठ सदैव के लिए बंद हो जाय । मानव जीवन को सभ्य और सुसंस्कृत रूप से व्यतीत करने के लिए समाज ने उसको अनेक सम्बन्धों में विभाजित किया है । कुछ संबंध ईश्वर प्रदत्त माने जाते हैं जैसे माता और पुत्र, पिता और पुत्र, कुछ सम्बन्ध व्यावहारिक अर्थात् सांसारिक होते हैं । पिता का सम्मान पुत्र न करे, गुरु का आदर शिष्य न करे -इन नियमों का पालन न हो तो समाज में आराजकता फैल जाये, मानव नृशंस बन जाये, क्रूर और स्वार्थी बन जाये । प्रेम, सेवा और त्याग की प्रतिमूर्ति मानव अपनी मानवता का विध्वंस कर के पशुता की कोटि में आ जाय, यह तो प्रमाण सिद्ध है । मानवता का निर्वाह करने वाले महान् व्यक्तियों ने पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी आदि के सम्बन्धों का मूल्य ऐसे उदात्त और पावन दृष्टि से आंका है कि उस पर सांसारिक नश्वर, वस्तुओं का बलिदान कर दिया, भौतिक जगत् को छोड़ कर ये महामानव

आध्यात्मिक लोक में पहुंच गये ।

गुरुभक्त एकलव्य ने अपने आचार्य द्रोण की प्रतिज्ञा पूर्ति की रक्षा के लिये अपने जीवन भर की साधना को एक पल में समर्पित कर दिया । ऐश्वर्य विभूति, यश, कीर्ति, आदि सांसारिक वैभव का एकलव्य की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं रहा और आज भी गुरु-शिष्य का यह आध्यात्मिक सम्बन्ध मानवता के इतिहास में अमर है । निषाद पुत्र एकलव्य अपने शील और त्याग से महामानव की कोटि में पहुंच गया उसने गुरु के महत्त्व को समझ कर उसे संसार के सन्मुख प्रकट किया । इसी प्रकार पिता-पुत्र के पवित्र और सम्मानित संबंध का दृष्टान्त रामचरित मानस में अत्यन्त ही स्वाभाविक रूप से चित्रित किया गया है । राम ने पिता के वचन का निर्वाह करने के लिए क्षण भर में राज्यसिंहासन को त्याग दिया और आज भी राम का स्मरण आज्ञाकारी पुत्र के दृष्टान्त देने के लिए किया जाता है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने पिता के सत्य की प्रतिष्ठा के लिये अपने सुख का त्याग करके एक आदर्श पुत्र के कर्तव्य का निर्वहण किया और पिता के जीवन के मूल्यों का स्थिरीकरण किया । जनकनंदिनी सीताने पतिपत्नी के पुनीत और अटूट संबंध का महत्वपूर्ण आदर्श समाज के सामने प्रस्तुत किया । चौदह वर्ष पति के साथ वन में भटकती रहीं । महत् चरित्र की यही विशेषता है कि वह अपने कर्मों के द्वारा ऐसा आदर्श उपस्थित कर देते हैं जिसके द्वारा पृथ्वी का धर्म क्षेत्र और कर्तव्य क्षेत्र स्थिर है ।

मानव जीवन में यदि विशिष्ट संबंधों की पवित्रता और महत्ता पर दृष्टि न डाली जाय तो मानवता का विनाश हो जाय, विश्व में प्राणी एक दूसरे के संहार की ज्वाला से जल उठे और परस्पर प्रेम हित की भावना विनष्ट हो जाय । मानवता के विस्तृत क्रीड़ास्थल में समाज के प्राणी अपने जीवन का अभिनय खेलते हैं और समष्टि के कल्याण का ही प्रयास करते हैं । उनका प्रत्येक पग लोक-हित के ही लिए उठता है । कहने का तात्पर्य यह कि मानवता

के द्वारा ही जीवन का मूल्य आंका जा सकता है । नायक अपने त्यागपूर्ण जीवन में विशिष्ट सम्बन्धों के मूल्यों को स्थिर बना देता है और वही सदैव के लिए अमर होकर समाज में पथ प्रदर्शक बन जाता है जैसे पितृ भक्ति में राम, गुरुभक्ति में एकलव्य, राष्ट्र भक्ति में गांधी आदि महान् आत्माओं का उत्सर्ग आज भी हमें प्रेरणा देता है । मनुष्य के व्यवहार और पद का मूल्य न किया जाय तो मानवता विनष्ट हो जाय, समाज में अराजकता फैल जाय । जीवन के मूल्यों का स्थिरीकरण मानवता के क्रोड़ में ही होता है।

अध्याय - ३

संस्कृत महाकाव्यों में नायक के विविध गुणों का विश्लेषण और निष्कर्ष

संस्कृत महाकाव्यों का आरम्भ :-

महाकाव्य का रचना-वैभव संस्कृत साहित्य में प्रचुर रूप से पाया जाता है । कथावस्तु नायक और रस की विविध परिस्थितियां संस्कृत के महाकाव्यों में हुई है । इतने विशाल साहित्य का प्रभाव हिन्दी के महाकाव्यों पर विविध रूपों में पड़ना स्वाभाविक है । यह प्रभाव देखने के लिए यह आवश्यक है कि संस्कृत के ऐसे महाकाव्यों का संक्षिप्त अनुशीलन किया जाय जिनसे हिन्दी महाकाव्यों को सामग्री ही नहीं प्राप्त हुई बल्कि महाकाव्य समृद्ध हुआ है । अत: यहां संस्कृत के विविध महाकाव्यों का परिचय देकर यह स्पष्ट किया जायेगा कि प्रत्येक महाकाव्य की क्या मौलिक देन है और उनके द्वारा महाकाव्य के नायक के चरित्र चित्रण में क्या सहायता प्राप्त हो सकी है ।

संस्कृत के महाकाव्यों का बीज स्पष्ट ही ऋग्वेद के ३२ वें सूक्त में इन्द्र और वृत्र के युद्ध के रोचक आख्यान में पाते हैं ।[१]

ब्राह्मण ग्रंथों के कथानकों में भी महाकाव्य के बीज पाये जाते हैं । सूक्त की शैली महाकाव्य की शैली के समान ही उदात्त है । सूक्त का विकसित रूप आख्यान है । इनके विकास की एक दिशा का परिचय गाथा नाराशंसी कोटि की रचनाओं में हुआ है । विंटरनिज ने लिखा है कि " पुरुषों से सम्बद्ध ये स्तुति गीत ऋग्वेद की दानस्तुतियों के तथा अथर्ववेद के कुंताप सूक्तों के समकक्ष पड़ते हैं । परवर्ती युग के आख्यान काव्य रामायण और महाभारत का रूप विन्यास इन्हीं के आधार पर हुआ । जिस परंपरा के अवशेष ये हैं उसकी विकास सरणी में अनेक आख्यान काव्य रहे होंगे । इनकी धारा वैदिक सूक्त आख्यानों से विच्छिन्न हुई है बीच के आख्यान साहित्य का पता नहीं ।

रामायण महाभारत परवर्ती युग के महाकाव्यों के पूर्व रूप कहे जा सकते हैं ।संस्कृत के प्राचीन महाकाव्यों में इनका स्थान महत्वपूर्ण है ।भारतीय परम्परा के अनुसार रामायण को आदि काव्य महाभारत को इतिहास अथवा आख्यान कहा ।

१- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- पृ० ४३ -डा० रामजी उपाध्याय

पाश्चात्य विद्वानों ने महाभारत को महाकाव्य के तत्व होने के कारण महाकाव्य ही सिद्ध किया । उन्होंने इसे 'Epic within epic' कहा । रामायण व महाभारत को संकलनात्मक कुमार संभव, रघुवंश को कलात्मक महाकाव्य कहा । महाकाव्य तत्वत: एक बृहद काव्य है जिसमें नायक के पुरुषार्थ का उल्लेख होता है ।

पुराण विशेषज्ञ पार्जिटर महोदय के अनुसार राम रावण युद्ध १६०० ई० पू० में हुआ था जब कि कौरव पांडव युद्ध ११०० ई०पू० में हुआ परन्तु भाषा शैली की दृष्टि से महाभारत अधिक प्राचीन जान पड़ता है । रामायण की काव्य शैली अपने युग की साहित्यिक प्रगति के अनुसार परिमार्जित और अलंकृत है । महाभारत में शैली की प्राचीनता तथा अस्त व्यस्तता पाते हैं ।

इस प्रश्न पर बहुत मतभेद है । रामायण की उपलब्ध प्रति में २४००० श्लोक हैं सात कांड, सब में रामायण पाठ एक सा नहीं है । पाठ भेद की दृष्टि से देवनागरी (बंबई) बंगीय (कलकत्ता) कश्मीरी या पश्चिमोत्तरीय संस्करण[१] यह तीन प्रचलित है ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है- "शताब्दियों पर शताबिदयां बीतती चली जाती हैं किन्तु रामायण और महाभारत का स्रोत भारत में नाम को भी शुष्क नहीं होता, प्रति दिन गांव-गांव घर-घर इनका पाठ होता रहता है । क्या बाजार की दूकानों पर क्या राजद्वारों पर सर्वत्र उनका समान भाव से आदर होता है । ये दोनों महाकवि धन्य हैं जिनके नाम तो काल के महा प्रान्तर में लुप्त हो गये हैं पर जिनकी वाणी आज भी करोड़ों नर-नारियों के द्वार-द्वार पर अपनी निरंतर प्रवहमान धाराओं से शक्ति और शांति पहुंचाती है और सैकड़ों प्राचीन शताब्दियों की उपजाऊ मिट्टी को प्रतिदिन बहा कर भारत की चित्त भूमि को उर्वरा बनाये हुए है ।"

१- पश्चिमोत्तरीय संस्करण लाहौर से प्रकाशित

शाश्वत साहित्य की भांति आज भी रामायण में चिर नवीन आनंद की उपलब्धि होती है । काव्यत्व के सौष्ठव का निर्वाह करते हुए रचना को बोध गम्य बनाना साधारण प्रतिभा का कार्य नहीं है ।

रामायण —

महाकाव्य का आरंभ बाल्मीकि रामायण से माना जाता है उसमें मुख्य कथा के साथ अन्य घटनाओं का सुन्दर समन्वय है और भाषा शैली में भी एक रूपता है ।

यह ग्रंथ ६४५ सर्गों में विभाजित है २५००० श्लोक हैं । इसमें राम कथा का विस्तृत वर्णन स्थानों, नदियों, तीर्थों, महर्षियों की महिमा के आख्यान है । कहीं-कहीं राजवंशीय परंपरा का वर्णन नाम मात्र की पौराणिकता का आभास देने लगता है । वास्तव में यह उच्च कोटि का महाकाव्य है ।

रामायण के नायक राम को महाकवि ने मानव रूप में; मर्यादा पुरुषोत्तम रूप में चित्रित किया है- देवता रूप में नहीं । हम अपने समीप राम के जीवन के कृत्यों को देखने का प्रयास करते हैं । इसमें एक परिवार का आदर्श उपस्थित किया गया है । समाज का कल्याणकारी दृष्टिकोण लेकर कवि ने पात्रों के सुख दुख, राम विराम का सुन्दर सामंजस्य दिखलाया है । राम का महान त्याग, लक्ष्मण भरत का भ्रातृ प्रेम सराहनीय है । सीता के पातिव्रत धर्म ने गृहस्थ जीवन की उत्कृष्ट झांकी प्रदर्शित की है । कल्पित कथा कदाचित श्रद्धा का स्थान न ग्रहण कर पाती । प्रसिद्ध कथा और पारिवारिक जीवन का आदर्श स्थापित करने के कारण यह काव्य इतना लोकप्रिय रहा ।

बाल्मीकि का यह महाकाव्य पृथ्वीतल को विदीर्ण कर उगने वाला उस विराट वट वृक्ष के समान है जो अपनी शीतल छाया से भारत के समस्त मानवों को आश्रय देता हुआ प्रकृति की विशिष्ट विभूति के समान अपना मस्तक ऊपर उठाए हुए खड़ा है ।[१]

१- संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ०- ८० श्री बलदेव उपाध्याय

रामायण का काव्य सौष्ठव —

रामायण की शैली उदात्त है । इसमें अलंकार, रस व्यंजना और छंद का सफल प्रयोग किया गया है । भाषा में अति प्रचलित शब्दों का प्रयोग होते हुए चारुता और स्वाभाविकता है । काव्यगत सौन्दर्य इसकी विशेषता है । मानव स्वभाव के चित्रण में आदि कवि की प्रतिभा असाधारण है । प्रकृति पर्यवेक्षण शक्ति भी अपूर्व है । किष्किन्धा कांड में वर्षा शरद का वर्णन अति सजीव और नैसर्गिक है । काव्य शैली की जो सुंदरता इसमें पाते हैं बाद में नहीं पाते । कथा वस्तु का कलात्मक विन्यास भाषा का समप्रवाह, छंदों की कोमल कमनीयता किसी महाकवि की ही कृति में संभव है । रामायण का अध्ययन करते समय वही आनंद आता है जो अच्छे से अच्छे महाकाव्य में कहीं उपलब्ध हो सकता है ।

रामायण को इतिहास और महाकाव्य के बीच की रचना कहा है । महाकाव्य में कथावस्तु के कलात्मक विन्यास की प्रधानता होती है और इतिहास में घटनाओं से संबद्ध आख्यान की प्रधानता होती है ।[१]

रामायण मनोरम उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का एक विराट भव्य प्रासाद है, परन्तु उसके वाह्य आवरणों में उसका विशुद्ध रसमय हृदय भली भांति फलक रहा है ।

आनंद वर्धन ने स्पष्टत: रामायण में करुण रस की प्रधानता कही है । आरंभ भी करुण रस से होता है । राम के सामने सीता के पृथ्वी के भीतर अन्तर्धान होने के दृश्य से अंत होता है यह भी करुण से ही होता है[२]।

१- क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर: ए०बी० कीथ पृ०- ४३

२- ध्वन्यालोक, उद्योत ४ पृ०- २३७ ।

नायक राम:—

अनेक वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी आज राम के पावन चरित्र के प्रति मानव मात्र के हृदय में अपार श्रद्धा है । नायक के प्रति उत्सुकता अथवा आकर्षण होना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि उसके चरित विकास में ऐसी घटनाओं का समावेश होता है जो हृदयग्राही होती है, उसका प्रभाव स्थायी होता है तथा आदर्श के साथ ही यथार्थता का आभास होता है ।

मानवता को अपनी ओर आकृष्ट करने की योग्यता राम के उदार व्यक्तित्व में ही संभव थी । रामायण के अनुसार राम नियतात्मा वाग्मी, श्रेष्ठ, धनुर्धर शरीर से बलिष्ठ सुन्दर प्रतापवान, शुभलक्षण, सत्य संध, प्रजा के हित में रत, यशस्वी, ज्ञान संपन्न, शुचि समाधिमान, जीव लोक के रक्षक, धर्म के रक्षक, वेद वेदांग के तत्वों के जाने वाले, सभी शास्त्रों के अर्थ तत्व को जानने वाले, स्मृति मान, प्रतिभाशाली, सर्वलोकप्रिय, विचक्षण, सज्जनों में सर्वदा मिलने वाले, आर्य सबके लिये समान प्रिय दर्शन सभी गुणों से संपन्न, गांभीर्य में समुद्र के समान, धैर्य में हिमालय के समान बल में विष्णु के समान, दान देने में कुबेर के समान थे ।

सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बाल्मीकि ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में लिया है । देवता रूप में नहीं लिया । समस्त महान् गुणों का केन्द्र बनाकर इतना स्वाभाविक चित्रण करना महाकवि की ही प्रतिभा है । नायक के महत् गुणों की प्रतिष्ठा मानव रूप राम के चरित्र में अत्यंत स्वाभाविक और प्रभावशाली किया है ।

राम का शील कितना मधुर है वे सदा दान करते हैं कभी दूसरे से प्रति ग्रह नहीं लेते । वे अप्रिय कभी नहीं बोलते साधारण स्थिति की बात नहीं प्राण संकट उपस्थित होने की विषम दशा में भी राम इन नियमों का उल्लंघन नहीं करते ।[१]

दद्यान्न प्रति गृह्णीयान्न ब्रूयात् किंचिदप्रियम
अपि जीवितहेतोर्वा राम: सत्य पराक्रम: ।।[२]

१- संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ८२ श्री बलदेव उपाध्याय

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर भ्रातृप्रेम के विषय में जो उद्गार निकले बहुत ही मर्म स्पर्शी हैं —

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे चबान्धवा: ।
तंतु देशे न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदर: ॥[1]

ऐसा देश नहीं जहां सहोदर भ्राता पुन: मिल सके इसीका अनुकरण गोस्वामी तुलसीदास ने भी किया है `बहुरि न मिलहिं सहोदर भ्राता` ।

मानवता की कसौटी- चरित्र ही है । रामायण का उद्देश ही चरित्रवान मनुष्य की खोज और उसका वर्णन है । बाल्मीकि ने नारद से यही जिज्ञासा प्रकट की है- `चारित्रेण च को युक्त:` । यह अनुभव सत्य है कि चरित्र ही मानव को देवता बनाता है । इस चरित्र का पूर्ण विकास मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र में दृष्टिगोचर होता है । रामचरित्र ही आर्य चरित्र का आदर्श है । वह मानवता की चरम अभिव्यक्ति है ।[2]

इस समय राम में धैर्य का चूडान्त हमें मिलता है —

न वनं जन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराय
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ।।[3]

धीरोदात्त राम का चरित्र सदैव के लिये अमर है ।

शेषांक:—

२- बाल्मीकि रामायण - ५।३३।३६ ।

१- लंकाकांड— बाल्मीकि रामायण

२- संस्कृत साहित्य का इतिहास - पृ०- ८६ -बलदेव उपाध्याय

३- अयोध्याकांड - बाल्मीकि रामायण — १०६।३

महाभारत —

The Mahabharata is not only the largest, but all the grandest of all epics, as contains throughout a lively teaching of all morals under a glorious garment of poetry.

सिल्वन लेवी ने पी०सी० राय के नाम पत्र में लिखा महाभारत की इस प्रवृत्ति को दृष्टि में रखकर जीवन दर्शन महाभारत का एक अभिनव प्रतिपाद्य विषय है ।

महाभारत में प्राचीन काल के अनेक प्रसिद्ध राजाओं के इति वृत्त का वर्णन करना ही ग्रंथकार का उद्देश है । प्रधान घटना कौरवों पांडवों का युद्ध है पर इसके साथ-साथ प्राचीन काल की अनेक कथायें कथान्तर रूप से दी हुई हैं जो मुख्य घटना से कम महत्व नहीं रखतीं । महर्षि व्यास की प्रतिभा का परिचायक उनका युद्ध वर्णन है जिसमें पुनरुक्ति कहीं नहीं दीख पड़ती है । व्यास जी का अभिप्राय केवल यही नहीं बल्कि इस भौतिक संसार की असारता प्रकट कर जीव को मोक्ष के लिये उत्सुक बनाना है । इसीलिये इसका मुख्य रस शांत है ।[2] वीर तो अंगीभूत है । आदरणीय वीरों की पुण्यमयी गाथा होने के कारण ही इसे इतिहास कहा कुछ आलोचकों ने । व्यास ने इसे स्वयं समस्त कवियों के लिये उपजीव्य बतलाया है । बाद के कवियों ने महाभारत से बहुत कुछ लिया ।

महाभारत के पात्रों में एक विचित्र सजीवता भरी है । सदा से यह धर्मशास्त्र के रूप में ही गृहीत होता आया है । व्यास ने अपना संदेश इस रूप में दिया है कि मानव सच्चे सुख का [illegible] अभिलाषी है तो धर्म का सेवन करे ।

१- Letter dated 17.3.1888

जीवन के ऐकान्तिक वर्णन के लिये देखिये-महाभारत वनपर्व २,१९-५०

२- ध्वन्यालोक ४ उद्योत :मोक्ष लक्षण: पुरुषार्थशान्तोरसश्चमुख्यतयाविवक्षित:

धर्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण है । अर्थनीति, राजनीति, अध्यात्म शास्त्र के सिद्धांतों का सारांश इस ग्रंथ रत्न में है । यह भारत के धर्म तथा तत्व ज्ञान का विश्वकोष है । व्यास कर्मवादी आचार्य है । कर्म ही मनुष्यता का पक्का लक्षण है कर्म से पराङ्मुख मानव मानव के पद से वंचित रहता है भव्य भारतभूमि कर्मभूमि है फल भोगने का स्थान तो स्वर्ग है । मनुष्य ही इस विश्व का केन्द्र है- उसके कल्याण के लिये प्रत्येक वस्तु की व्यवस्था होती है- मानवता का उन्नायक तत्व पुरुषार्थ ही है ।

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित[1]

इस विशाल ब्रह्मांड में मानव ही सर्व श्रेष्ठ है उसी के लिए सृष्टि की रचना होती है ।

व्यास जी ने मानव का आध्यात्मिक कल्याण इन्द्रिय निग्रह से ही होता है- ऐसा विचार प्रकट किया- उसके सूक्ष्म विवेचन में नहीं गये ।

राजमूलो महाप्राज्ञ ! धर्मो लोकस्यलक्ष्यते
प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम्
मज्जेद् धर्मः त्रयी न स्याद्यदि राजा न पालयेत्[2]

महर्षि की सारगर्भित उक्ति है कि वेद का उपनिषत रहस्य है सत्य, सत्य का दम- दम से इंद्रिय दमन- इंद्रिय दमन का रहस्य है मोक्ष । समग्र अध्यात्म शास्त्र का यही निचोड़ है ।[3]

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः
दमस्योपनिषद् मोक्षः एतत् सर्वानुशासनम् ।।[4]

अध्यात्म की उच्च भावना निहित है इसमें ।

१- महाभारत शांतिपर्व (१८०।१२)

२- महाभारत शांतिपर्व ६८ वं

३- संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव प्रसाद उपाध्याय पृ० १०४

४- महाभारत शांतिपर्व (२९९।१३)

आधुनिक महाकाव्यकारों ने मानवता तथा पुरुषार्थ के सिद्धान्तों का अनुसरण महाभारत आदि से किया है ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार "महाभारत उज्ज्वल चरित्रों का विशाल वन है । इस ग्रंथ में ऐसे पात्र बहुत कम है, कहना अधिक ठीक है जो महलों में पलकर चमके हों । सबके सब एक एक तूफ़ान के भीतर से गुजरे हैं । उनका विकास कवि की सुनियंत्रित योजना के इशारे पर नहीं हुआ है, बल्कि अपने आपकी भीतरी शक्ति के द्वारा हुआ है; जैसे महावन का विशाल वनस्पति हो जो तूफानों और शिला वृष्टियों की चोट सहकर भी पार्श्ववर्ती वनराजि की भयंकर प्रति द्वन्दिता को पछाड़कर आकाश में शिर उठाता है । इन पात्रों ने अपना रास्ता स्वयं निकाला है; अपनी ही रची हुई विपत्ति की चिता में ये हंसते-हंसते कूद गये हैं । महाभारत का अदना से अदना चरित्र भी डरना नहीं जानता; आत्म विश्वास की ऐसी उज्ज्वल धारा सर्वत्र नहीं मिल सकती । सबके चेहरे पर अकुतो भय भाव है, अविश्वास की छाया कहीं नहीं पड़ी, भीति की शिकन से कोई विकृत नहीं हुआ । सब निर्भीक साहसी तेजस्वी । महाभारत पढ़ते समय पाठक एक जादू भरे वीरत्व के अरण्य में प्रवेश करता है; जहां विपत्ति ही है पर भय नहीं है, असफलता तो है पर निराशा नहीं है जीवन की गलतियां तो हैं पर उनके लिये अनुताप नहीं है । सरल तेज, अकृत्रिमदर्प, निर्भीक वीरत्व विवेकयुक्त कर्तव्य और निष्कपट आचरण महा भारतीय वीरों के चरित्र के मूल स्वर हैं ।"

महाभारत के पात्रों के चरित्र विकास की एक झांकी द्विवेदी जी के इन शब्दों से मिलती है । वास्तव में इस ग्रंथ में पात्र मानव रूप में आदर्श और उदात्त गुणों से सुशोभित हैं ।

मनुष्य का महान गुण विपत्ति में भी धैर्यवान, बनकर निरंतर आगे आगे बढ़ना है । कर्मण्य और पुरुषार्थी पुरुष के लिये सब कुछ प्राप्य है । वीतराग, तपोनिष्ठ, महामुनि वेद व्यास जिन्होंने बदरी वन में तप साधना ही किया- मानव के लिये पार्थिवाद के ओज पूर्ण संदेश देते हैं ।[१]

१- शांतिपर्व महाभारत (१७०।११-१२)

बुद्ध चरित :-

बुद्ध चरित अश्वघोष का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है । आज जो संस्करण उपलब्ध है उसमें तेरह सर्ग और १४ सर्ग के चार पद्य पाये जाते हैं । विद्वान शान्तिकुमार नानूराम व्यास[१] का कथन है कि उसमें सत्रह सर्ग उपलब्ध हैं । इसका अनुवाद चीनी और तिब्बती भाषा में हुआ है वह सुरक्षित भी है उसी के आधार पर इसके सर्गों की संख्या २८ मानी जाती है ।

कालिदास रसवादी कवि है, भारवि, माघ और श्री हर्ष चमत्कार वादी या अलंकारवादी हैं । अश्वघोष का कलात्मक दृष्टिकोण निश्चित ही उपदेशवादी या प्रचारवादी है । वे काव्यानंद को, रस को साधन मानते हैं । कालिदास उसे साध्य । तभी तो अश्वघोष, अपनी रचना का एक मात्र लक्ष्य `शांति` मानते हैं । बौद्ध धर्म के मोक्ष परक[२] सिद्धांतों को सामान्यबुद्धि व्यक्तियों के लिये काव्य के बहाने निबद्ध करते हैं ।

संस्कृत के साहित्य जगत् में यह रचना अद्वितीय है । अश्वघोष के महाकाव्यों का रूप विन्यास,काव्य कौशल स्वरूप की परिपक्वता देखने से प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती युग के महाकाव्यों की परंपरा अवश्य रही होगी । भले ही वह उपलब्ध न हो अथवा सुरक्षित न हों ।

इसमें महात्मा बुद्ध के जन्म काल से लेकर उनके निर्वाण प्राप्त करके धर्मोपदेश देने तक की चरित गाथा सांगोपांग विधि से वर्णन की गई है । इस काव्य का जो रूप है उसमें बुद्ध के मारविजय और ज्ञान प्राप्ति तक की कथा आती है ।

१- संस्कृत क और उनका साहित्य पृ०-५८

२- संस्कृत कवि दर्शन : पृ०- ५७-५८

-डा० भोलाशंकर व्यास ।

कथासूत्र इस प्रकार है कि कपिलवस्तु जनपद के शाक्य वंश में महाराज शुद्धादेन की महारानी माया को लुम्बिनी वन में पुत्र हुआ । वृद्ध महर्षि असित ने राजा से कहा पुत्र ऋषि होगा या सम्राट; बालक बोध के लिये उत्पन्न हुआ है । बालक का नाम सर्वार्थसिद्ध रक्खा आरंभ से ही संसारिक भोग विलास में आसक्त रखने का प्रयत्न किया जाता है । यशोधरा सुंदरी से विवाह होता है । महल के अंदर ही उसे रक्खा जाता है उसके पुत्र राहुल का जन्म होता है ।

वे विहार यात्रा को निकले- देवता उन्हीं के देखने को वृद्ध पुरुष खड़ा करते हैं उसे देखकर इन्हें ग्लानि हुई और ये लौट आते हैं, फिर जाने पर रोगी और पुनः शव के मिलने पर वह लौट आते हैं । इनकी इच्छा के विरुद्ध भी विहार यात्रा में पहुंचा दिया गया पर इन्हें सुंदरियों के प्रति कोई आकर्षण न लगा । अंतिम विहार यात्रा में सन्यासी को देखते हैं जिसने बताया कि जन्म मरण के भय से सन्यास लेलिया है । सर्वार्थसिद्ध ने भी पिता से सन्यास की आज्ञा मांगी : आज्ञा न मिलने पर- सारथि छंदक को लेकर कंथक घोड़े की पीठ पर बैठकर अर्ध रात्रि में निकल गये कहा जन्म मृत्यु का पार देखे बिना कपिल नाम की नगरी में फिर प्रवेश नहीं करूंगा- इसकी सिद्धि के लिये कई स्थान पर जाते हैं । गयाश्रम में जाकर तप करते हैं वहां भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ।

तब समाधिस्थ होते हैं- काम की सेना के रूप में लौकिक प्रलोभनों की प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ता है । यहां मार से इनका युद्ध होता है । ध्यान के माध्यम से सफलता मिलती है यही उनका अविनाशी पद था और वे सर्वज्ञ हुए-

इसी कथा के आधार पर इस महाकाव्य की रचना हुई और उसका विकास हुआ ।

बुद्ध चरित में कवि ने सरसता और प्राँजलता लाने का प्रयास किया है । पात्र के चरित विकास में स्वाभाविकता है । काव्योचित गुणों से युक्त श्रेष्ठ काव्य है । केवल धर्म कथा नहीं है जो निर्वेद और संसार की निस्सारता पर आधारित हो । इसमें मानव के मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है सहृदय कवि की दृष्टि से काव्य की रचना की है ।

महारानी सीता की भांति अश्वघोष की यशोधरा भी पति के घर के परित्याग के पश्चात् नारी हृदय की स्वाभाविकता का परिचय देते हुए चिंतित हैं।

'जो अब तक विशुद्ध स्वर्णमयी शय्या पर शयन करते थे और जिन्हें तुरही का घोष नींद से जगाता था व्रतों से बंधे मेरे वह पति आज जमीन पर चटाई बिछा कर कैसे सोयेंगे ?'

बुद्धचरित का महाकाव्यत्व:—

नायक के चरित्र चित्रण में महाकवि ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है । शान्तरस की प्रधानता है और श्रृंगार तथा वीर अंगरूप में हैं ।

विविध दृश्यों का मनोरम चित्रण किया है । समस्त काव्य में वैराग्य को प्रधानता देने पर भी सांसारिक दृश्यों के वर्णन में भी कवि सफल रहा है । नगर यात्रा, सुंदरियों की काम क्रीड़ा, काम व राज कुमार का युद्ध- इन दृश्यों का वर्णन अत्यन्त आकर्षक और काव्य गुणों से युक्त है ।

वर्णनात्मक उपादानों से कथावस्तु को सजाने का प्रयास किया । कवि ने काव्य में रसाभिव्यक्ति की पूरी योजना की है इसके पीछे कवि और नायक के व्यक्तित्व का द्वन्द्व प्रतिष्ठित है ।

अश्वघोष मानवता को मोक्ष और अभ्युत्थान का संदेश देना चाहते थे । उनकी रचना में उनके भावों और व्यक्तित्व की छाप है, गरिमा से युक्त अपने निजी भाव और विचारों को जन साधारण में व्यक्त करने का प्रयत्न किया । गौरव और काव्यत्व के सामंजस्य की अनोखी प्रतिभा अश्वघोष के ही काव्य में मिलती है।

सौन्दरनंद:—

इसका कथानक अंशत: बुद्धचरित से मिलता जुलता है, पर इसकी शैली अधिक प्रौढ़ और परिपक्व है । काव्य का परिमार्जित तथा विकसित स्वरूप प्रकट करता है कि यह बुद्ध चरित के बाद की रचना है । इसका वस्तु विन्यास भारतीय काव्य साहित्य में अनुपम है, मुख्य विषय है बुद्ध के उपदेश से उसके सौतेले भाई नंद का सन्यास ग्रहण । नंद अपनी परम सुंदरी पत्नी के प्रेम में आसक्त है पर अंत में बुद्ध की प्रेरणा से विरक्त हो वैराग्य ले लेता है ।

इसकी कथा अट्ठारह सर्गों में विभाजित है । महाकाव्य की दृष्टि से सौन्दर नंद एक उच्च कोटि का काव्य है । इसमें शांत रस की प्रधानता है । बुद्ध का उपदेश नायक नंद को जिस समय वैराग्य की ओर खींचता है पत्नी की प्रेम लिप्सा भोग की ओर उस समय का अंतर्द्वन्द कवि ने हृदयग्राही शब्दों में वर्णन किया है ।[१]

नंद के बौद्धधर्म ग्रहण की कथा को कवि ने अपनी अद्भुत सृजन शक्ति द्वारा महाकाव्य के स्वरूप के योग्य बनाया । कथानक में अन्विति और वेग है । कथा के प्रवाह में सुचारुता है ।

सौन्दरनंद के अंतिम श्लोक से ज्ञात होता है कि अश्वघोष सुवर्णाक्षी का पुत्र साकेत निवासी था । उपाधियां थी भिक्षु, आचार्य, महन्त महाकवि महावादी । उसके उपदेश को सुनने के लिये घोड़े भी अपना आहार छोड़ देते थे ऐसी वाक्शक्ति थी । उनका नाम इसी विलक्षणता से अश्वघोष पड़ा ।[२]

अश्वघोष की काव्य कला:— इनके महाकाव्यों में राजकीय वातावरण का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । इससे पहिले के महाकवि साधारणत: वन वासी महर्षि थे जैसे व्यास, वाल्मीकि आदि, इन महाकवियों का राज सभा से संबंध नहीं था । इन्होंने समाज को प्रधानता दी इसी कारण इनके काव्यों का रूप विशाल था । अश्वघोष ने राज सभा की ओर ध्यान दिया और इनका क्षेत्र सीमित था । इनकी भाषा में सरलता तथा नैसर्गिक भव्य सौन्दर्य है और प्रवाह के अनुकूल है । भावों की अभिव्यक्ति में कवि सफल रहा । शैली में वैदर्भी रीति को लिया है इनके काव्य में अप्रचलित दुरूह शब्दों का अभाव है, भाषा सुकुमारता से युक्त है साथ ही प्रसाद गुण की प्रमुखता है ।

१- तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुराग: पुनराचकर्ष
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरंस्तरंगेष्विव राजहंस: -सौन्दरनंद-
सर्ग-४, ४२

२- संस्कृत साहित्य का इतिहास - पृ० १०० - बी० वरदाचार्य

काव्य में अलंकार का प्रयोग उपयुक्त स्थान पर हुआ है और स्वाभाविक है, काव्य सौन्दर्य में बाधक नहीं है । उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा का प्रयोग भी सफल रूप से हुआ है । यदि कहीं अनुप्रास का चमत्कार दिखलाया है तो भावों की अभिव्यंजना नष्ट नहीं होने पाई । प्राय: चमत्कार पूर्ण अलौकिक घटना के वर्णन में कवि पांडित्य प्रदर्शन की चेष्टा में स्वाभाविकता से दूर चले जाते हैं पर अश्वघोष ने ऐसे स्थलों पर भी अपने को सतर्क रक्खा और काव्य के नैसर्गिक सौन्दर्य की रक्षा की । कवि ने वर्णनीय विषयों के सिद्धान्तों का निर्वाह किया है जिससे प्रकट होता है कि इसकी परंपरा निश्चित हो चुकी थी । काव्योचित शैली में वर्णन करके काव्य सौष्ठिव की संवर्धना की गई है साथ ही इस प्रकार के काव्य को दर्शन और धर्म के व्याख्यान के लिये उपयोगी बना लेना कवि की अपनी निजी विशेषता है वे अपनी कविता को धर्म प्रसारार्थ मानते थे और स्पष्ट कहा है मुक्ति की चर्चा करने वाली यह कविता शांति के लिये है विलास के लिये नहीं है । काव्य रूप में इसीलिये लिखी गई है कि मन विषयों की ओर न दौड़े और श्रोता जन इसको पढ़ें । महाकवि अश्वघोष के बाद महा काव्य की परंपरा कुछ समय तक विच्छिन्न रही । बुद्धघोष ने दस सर्गों की कृति `पद्य चूड़ामणि` की रचना की ।

मीम या मीमक:—

बुद्धघोष के बाद महाकवि मीम या मीमक ने २७ सर्गों की एक कृति `रावणार्जुनीय` या अर्जुनरावणीय` की रचना की । इसका प्रभाव आगे चलकर भट्टि के `रावणवध` पर पड़ा ।

भर्तृमेंठ:— मेठ नामक महाकवि ने `हय ग्रीववध` नाम का महाकाव्य लिखा था । तत्कालीन राजा मातृगुप्त को सुनाया । एक भी शब्द प्रशंसा में न सुनकर राजा की विद्वानों की विद्वता के प्रति प्रेम में अविश्वास हुआ- पर लपेटते समय ग्रंथ के नीचे स्वर्ण पात्र रखवा दिया राजा ने कवि संतुष्ट हो प्रसन्न हुए -[1]

१- राजतरंगिणी - कल्हण - पृ० ३।२६०-२६२ ।

राजशेखर का कथन है कि पुरा काल में उत्पन्न बाल्मीकि कवि ही अवांतर में मूर्तमेंठ मूर्तमेंठ से भवभूति और भावभूति से राजशेखर नाम से हुए ।[1]

संप्रति उपलब्ध नहीं । सूक्ति संग्रहों में श्लोक बिखरे मिलते हैं ।[2]

कुमारसंभव—

संस्कृत साहित्य के पांच महाकाव्यों में कुमारसंभव की भी गणना है ।

इसके रचयिता महाकवि कालिदास हैं । इसमें कालिदास ने शिव पार्वती के विवाह और उनके पुत्र कार्तिकेय द्वारा तारकासुर के वध की कथा लिखी है । हिमालय कन्या पार्वती को नारद तप करने का उपदेश देते हैं । वह शिव को पति रूप में बरण करने के लिये कठोर तपस्या करती हैं । ब्रह्मा द्वारा देवताओं को विदित हुआ कि उनके शत्रु तारक का वध शिव पार्वती का पुत्र ही कर सकता है । इन्द्र ने शिव की तपस्या भंग करने के लिये कामदेव को भेजा । शिव की क्रोधाग्नि में काम को भस्म होना पड़ा सफलता भी नहीं मिली ।

तृतीय सर्ग में बसन्त पुष्पों से सजी सुंदरी युवती के रूप में पार्वती शिव के हृदय में स्थान न पा सकी - यहां पंचम सर्ग में तप के द्वारा कृश शरीर से वीतराग शंकर को अपने वश में कर विजय प्राप्त करती हैं । वासनाजन्य प्रेम को कलुषित दिखाकर कवि ने उसे तपस्या की अग्नि में तपाकर शुद्ध करके पवित्र बना दिया । प्रेम का वह शांत और उत्कृष्ट रूप दिखाया जो भारतीय गृहस्थ जीवन का गौरव है । बाह्य सौन्दर्य पर आश्रित प्रेम कलंक है शोभा नहीं । उसमें कल्याण नहीं हो सकता अमंगल है- कुछ समय पश्चात् कुमार कार्तिकेय का जन्म हुआ । घोर संग्राम में तारक का वध हुआ ।

महाकाव्य संबंधी विशेषतायें इस रचना में वर्तमान हैं । कुमार संभव में रघुवंश जैसा काव्य सौष्ठव भले ही न हो पर इसका स्थान महत्वपूर्ण है ।

१- राजशेखर- बाल रामायण - पृ० १०५

२- संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला : पृ०- ८५१

कुमार संभव में सत्रह सर्ग पाये जाते हैं प्रथम आठ सर्गों की प्रामाणिकता तो निश्चित ही है परन्तु अंतिम नौ सर्गों को भारतीय व पाश्चात्य विद्वान कालिदास की रचना मानने में संकुचित हैं ।

काव्य का जो उत्कृष्ट रूप आरंभ में है वह अंत तक नहीं है । `कुमारसंभव` नाम सिद्ध करता है कि कुमार की उत्पत्ति ही मुख्य विषय है पर आठ सर्गों तक शिव पार्वती ही नायक नायिका के रूप में आते हैं । पुत्र कुमार को नायक होना चाहिए । कथा का निर्वाह भी आठ सर्ग तक सुसंबद्ध रूप में है । क्यों ऐसा रहा, कारण अभी-तक अंधकार में है । बहुत सी हस्त लिखित पोथियों में विवाह के पश्चात् सात सर्ग में समाप्ति हो जाती है अन्य पोथियों में दस सर्ग और है ।

कवि आठवें सर्ग में कामशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार विवाहित दंपत्ति के आनंद प्रमोद का वर्णन करता है । ऐसी स्पष्टवादिता पाश्चात्य रुचि के लिये वैरस्योत्पादक है पर कालिदास द्वारा रचित होने में जो संदेह उपस्थित किये गये हैं वे पूर्णत: निराधार हैं ।[१]

इस सर्ग से भारवि, कुमारदास, माघ निश्चित रूप से परिचित जान पड़ते हैं । अलंकार शास्त्र के लेखकों की अन्य कृतियों में इससे उद्धरण मिलते हैं ।[२]

कुमारसंभव की काव्य कला:—

महाकवि कालिदास की काव्य कला के संबंध में मैक्डानेल साहब[३] का कथन है— भाव सामंजस्य भी है तथा कहीं भी विरोधी भावनाएं न आ पाईं ।

१- संस्कृत साहित्य का इतिहास : कीथ पृ०- १०६

२- Walter Indica iii 21,25

कालिदास ने कुमारसंभव के आठवें सर्ग के ६३वें पद का प्रयोग विक्रमोवर्शी के तृतीय अंक के छठे पद में किया है ।

३- ए हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर : पृ०-३५३ : -एम०ए० मैक्डानेल

आवेग में सुकुमारता है । अनुराग भी मर्यादा या सीमा कानहीं लांघता । प्रेम का पथिक निरंतर संयमी है और ईर्षा घृणा से रहित हो सन्मुख आता है । भारतीय प्रतिभा का उत्कृष्ट रूप कालिदास के काव्य में पाते हैं । ऐसा समन्वय अन्यत्र नहीं पाते ।

महाकवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण करना तथा उसकी प्रतिभा को आंकना कठिन है । उसकी काव्य कला ही उसका व्यक्तित्व है ।

विश्वकवि[1] के शब्दों में —"भारतीय शास्त्रों में नर-नारियों का संयत संबंध कठिन अनुशासन के रूप में आदिष्ट हुआ है और वही कालिदास के काव्यों में सौन्दर्य के सामानों से सुसंगठित हुआ है, यह सौन्दर्य श्री ही और कल्याण से उद्भाषित है; गंभीरता की ओर से नितांत एकाकी, और व्याप्ति की ओर से विश्व का आश्रय स्थल है, वह त्याग से परिपूर्ण दुख से चरितार्थ और धर्म से ध्रुव निश्चित है ।"

कुमार संभव में काव्यशास्त्र में प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों का निर्वाह हुआ है । प्रथम आठ सर्गों में कथावस्तु का सुबंद्ध रूप पाते हैं पर मुख्य विषय की ओर ध्यान देने से ये आठ सर्ग काव्य के प्रति पाद्य विषय की भूमिका मात्र कहे जा सकते हैं । काव्य का वह उत्कृष्ट रूप जो इन आरंभ के आठ सर्गों में है बाद में नहीं पाते ।

सर्ग रचना, छंदों की योजना, प्रकृति वर्णन महाकाव्य की निश्चित शैली के अनुसार हुआ है । कवि की प्रकृति वर्णन की शक्ति का परिचय प्रथम सर्ग में ही पाते हैं । हिमालय का स्वाभाविक और सजीव चित्रण पाते हैं ।

प्रकृति वर्णन में महासागर, महानद, लताओं, वृक्ष से सुशोभित पर्वतराज का सौन्दर्य चित्र खींचा है । कवि की सबसे बड़ी विशेषता है इनसे मानव का संबंध स्थापित करा देना- मानवता के लिये आनंद प्राप्ति का साधन है । हिमालय के हिमाच्छादित शिखर पर विचरण करते हुए मृग, रात्रि को उजाला देने वाली औषधियां, शांति तपोवन का पुनीत जीवन, भागीरथी का पुलिन तट इनका चित्रण अत्यंत ही मनोहारी और काव्य कला से परिपूर्ण है ।

१- प्राचीन साहित्य - पृ०- ३६ - श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

तृतीय सर्ग में रतिराज काम का साम्राज्य, ऋतुराज वसंत की शोभा से युक्त शंकर का आश्रम, पार्वती की कठोर साधना इन सबका उत्कृष्ट चित्रण कवि कालिदास की अपूर्व प्रतिभा के द्योतक हैं । विविध वर्णन कथावस्तु में कहीं भी बाधक न होकर प्रवाह में सहयोग देते हैं ।

कुमारसंभव में शिव के चरित्र में दो विरोधी गुणों का अनोखी रीति से समावेश अनुराग और विराग का सम्मिश्रण कालिदास की ही प्रतिभा है । यह अवश्य है कि शंकर का चरित्र अंत में मानवीय चरित्र का आभास स्पष्ट रूप से देने लगता है ।

पार्वती के चरित्र का विकास स्वाभाविक रूप में हुआ है । गंभीरता के साथ संयमित रहना और दूसरी ओर स्त्री सुलभ चंचलता का होना दोनों गुण हैं । पिता के घर ~~कुछ~~ व तपोवन में भी सखियों के साथ पार्वती के चरित्र का विकास अनुकूल परिस्थितियों में उचित रूप से हुआ । त्याग, लज्जा, धैर्य के साथ अनुराग की साकार प्रतिमा है पार्वती ।

रघुवंश —

संस्कृत के कलात्मक महाकाव्यों में रघुवंश का स्थान सर्वोत्कृष्ट है, यह सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ । महाकाव्य शैली का सर्वांगीण विकास और परिपक्व रूप इस रचना में मिलता है । रघुवंश की कथा का आधार बाल्मीकि रामायण है अन्य पुराणों से भी सामग्री ली है । इसमें रघुवंश के राजाओं का वर्णन है । यह काव्य कई चरित्रों की चित्रशाला है । दिलीप्प से लेकर अग्निवर्ण तक के अनेकों चरित्र का चित्रण किया है । रघु तथा राम के पश्चात् दिलीप के गंभीर चरित्र को महाकाव्यकार ने प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत किया है । अज का मधुर और उदार व्यक्तित्व अधिक आकर्षक है ।

इसके प्रधान पात्र राम हैं । रघुवंश नाम को चरितार्थ करने के लिये काव्य में पहिले सूर्य वंशी इक्ष्वाकु ~~वंश~~ राजाओं के इतिहास का वर्णन किया गया है । इक्ष्वाकु वंश का नाम ऋग्वेद में मिलता है और उनका वंश रामायण तथा पुराणों में विख्यात है ।

इसमें उन्नीस सर्ग हैं । प्रत्येक सर्ग का नाम करण मुख्य विषय के आधार पर है । रघुवंशकार ने वीर रस को प्रधानता दी है; शृंगार, करुण और शांत रस सहायक हैं । छंद का भी नियमानुसार प्रयोग हुआ है । संयोग, वियोग, युद्ध, विवाह, नगर आदि का वर्णन परंपरागत लक्षणों के अनुकूल ही हुआ है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फलों की प्राप्ति रघुवंशी राजाओं का लक्ष्य है जो भारतीय जीवन का आदर्श है ।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्तेतनुत्यजाम् ॥[1]

रघुवंश का पुत्र अज होता है । पंचम सर्ग में परिवर्तन होता है । रघु अचानक निर्धन हो जाते हैं और तत्पश्चात् योगी हो जाते हैं और पत्नी की मृत्यु के बाद शरीर त्याग देते हैं, भारतीय मत के अनुसार पुर्नजन्म में विश्वास करके दूसरे जन्म में अपनी रानी इन्दुमती को प्राप्त करना चाहते हैं । ग्यारहवें सर्ग में राम के चरित्र का पूरा वर्णन है । सीता का पुन: ग्रहण उनका पृथ्वी में समा जाना, राम का स्वर्गीय विमान पर बैठकर चले जाना यह समाप्ति के लिये उचित स्थान था परन्तु कथा आगे बढ़ती है।कुश कुशावती में स्वप्न देखते हैं अयोध्या दीन दशा में है और तब वह स्वयं आते हैं अपने पुरुषार्थ से उसे समृद्ध बना देते हैं । रघुवंश के अवशिष्ट भाग में रोचकता कम हो जाती है, कालिदास के पास उन अयोग्य राजाओं को छोड़कर कुछ भी बतलाने को नहीं जिनकी अभिरुचि अंत:पुरों तक ही सीमित थी ।

अट्ठराहवें, उन्नीसवें सर्ग की कथा में आकस्मिक समाप्ति विदित होती है इसका कारण कुछ विद्वानों ने कालिदास की मृत्यु कहा । रघुवंश के

शेषांक:—

१- संस्कृत साहित्य का इतिहास : कीथ पृ० ११४

१- रघुवंश, सर्ग १, ८

बाद की रचना मानी पर रघुवंशीय राजाओं की कीर्ति क्षीण हो चुकी थी इसीलिये इससे आगे वर्णन नहीं हुआ यह कारण भी संभव हो सकता है । रघुवंश के प्रारंभिक श्लोक कवि को नवागान्तुक प्रकट करते हैं । `रघुवंश` की तुलना में `कुमारसंभव` का श्रृंगार वर्णन श्रेष्ठ है इस आधार पर श्री वी० वरदाचार्य एम०ए० रघुवंश को कुमारसंभव के पहिले की रचना मानते हैं ।[१]

रघुवंश का कला सौष्ठव:—

इस कृति में कवि कालिदास की काव्य कला का विकसित और निखरा हुआ रूप है । विषय बहुत ही ~~का~~ व्यापक है पर कई स्थान पर कवि ने मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है । कथावस्तु का प्रवाह वर्णनों के बीच भी अक्षुण्ण बना रहा । कवि ने नियमानुसार चले विषय को नवीनता के प्रकाश में चमकाने का प्रयत्न किया है ।

इसमें रामायण महाभारत जैसे महाकाव्यों की सी सरलता है, सुगमता है- तथा इलियड ओडिसी के समान कला सौष्ठव है । यह कवि की प्रतिभा का परिचायक है ।

रघुवंश की भाषा परिमार्जित प्रांजल और प्रौढ़ होने पर भी सरलता और स्वाभाविक प्रवाह शीलता लिये हुए है । कवि ने अलंकारों का प्रयोग कर भावों को व्यक्त करने में अधिक शक्तिशाली बना दिया । छंदों की विविधता कथानक को मनोरम बना देती है । इन्द्रवज्रा का प्रयोग अधिक किया है ।

प्रकृतिवर्णन में स्वाभाविकता फलकती है । कवि की सूक्ष्म दृष्टि यहां स्वत: रमणीयता ला देती है —

सपल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि ।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ।।

१- संस्कृत साहित्य का इतिहास : पृ०- ६८-६६ -वी० वरदाचार्य

अर्थात् राजा दिलीप हरे वनों को देखते जा रहे थे[1] जिनमें छोटे-छोटे जलाशयों से बाराहनिकल कर आ रहे थे जहां मोर अपने निवास वृक्ष की ओर उड़ रहे थे हिरण हरी घास पर बैठे हुए थे ।

अपने पात्रों को राजकीय अथवा कृत्रिम वैभव से युक्त करके सात्विक मानवता की पृष्ठभूमि पर लाकर उसकी उत्कृष्टता का अंकन कराने की प्रतिमा कवि कालिदास में ही थी । कवि को प्रिय है राजा को चरवाहा बनाकर उससे संसार को चमत्कृत कर देना । राजा का ऐश्वर्य वनियों की विभूति कवि को प्रभावित नहीं कर सका । दिग्विजयी रघु का मृणमय पात्र में अर्घ्य लेकर कौत्स का स्वागत, यह दृश्य- भारतीय साहित्य में एक गर्व की वस्तु है । कौत्स और रघु को समान स्तर पर लाना महाकवि की ही क्षमता थी । कवि ने अपने महा काव्यों में मानव जीवन का उदार पक्ष उपस्थित किया है जो उसको संकीर्णता की सीमा से उठाकर अनंत की ओर अग्रसर कर देता है; रघुवंशी राजा दिलीप रघु, अज, दशरथ, राम के चरित्र में महान् गुणों का समावेश किया है । इस काव्य में त्याग, आत्मसंयम, उदारता, धैर्य आदि की प्रधानता के साथ ही भोग विलास त्याग विभूति, शौर्य कोमलता, का अनोखा समन्वय पाते हैं । नायक को राजवेश में उत्पन्न होने पर भी जीवन के सरल सादे क्षणों में भी पाते हैं ।

पात्रों के चरित्र का अंकन कवि की पर्यवेक्षण शक्ति का परिचायक है- विरोधी भावों का समन्वय अति कुशलता से दिखाया है वन से लौटने पर महारानी सीता अपने पति के साथ आनंदमय जीवन की कल्पना करती है पर प्रारब्ध वश वन वासिनी होना पड़ता है- इसका वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है ।

अपने जीवन में देखी हुई वस्तु को कवि ने उदार दृष्टि से ही देखा, अपने अस्तित्व की सफलता के लिये लोक कल्याण के निमित्त अपरिग्रह में है ।

१- रघुवंश- २-१७

दृष्टि के स्वाभाविक निर्बाध गति को मौलिक साधन तत्व को कवि ने पहचाना था और अपने दर्शन को काव्य रूप में अमर प्रतिष्ठा देने में सफल हुए ।[1]

किरातार्जुनीय

संस्कृत के महाकाव्यों में आचार्यों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षणों की कसौटी पर खरा उतरने वाला सर्व प्रथम महाकाव्य किरातार्जुनीय है । इसी कारण साहित्य जगत में इसका सम्मान है ।

इस महाकाव्य के रचयिता भारवि का प्रादुर्भाव पौराणिक परंपरा में विलसित ६ वीं शताब्दी में हुआ । इसी कारण कथानक पौराणिक आख्यानों से संबद्ध है ।

भारतीय विद्वानों की सम्मति में इस महाकाव्य में अर्थ की प्रधानता है ।

'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम

नैषधे पदलालित्ये माघे सन्तित्रयोगुणाः ।।'

महाभारत में से कथानक लेकर इसमें कवि ने मौलिक उद्भावनाओं को भी स्थान दिया है तथा यत्र तत्र नवीनता लाने का प्रयत्न किया है ।

प्रथम सर्ग में ही युधिष्ठिर के गुप्तचर का प्रवेश कवि की अपनी कल्पना है । दूसरे सर्ग में भीम और द्रौपदी के वार्तालाप में भीम की वाकपटुता में कवि की मौलिक रचना शक्ति का परिचय मिलता है । चतुर्थ सर्ग से ग्यारहवें सर्ग तक प्रकृति वर्णन में कवि ने स्वतंत्र कल्पना शक्ति से काम लिया । अंत में स्कंद के सेना पतित्व में शिव की सेना के साथ अर्जुन के युद्ध का वर्णन भी कवि की मौलिकता है । प्राचीन कथानक को नवीन और मौलिक विचारों के सहयोग से काव्योचित बनाया है ।

१- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : - पृ० ५६

- रामजी उपाध्याय

महाकवि भारवि का काव्य कौशल:—

इस युग में काव्यात्मक कल्पना की अतिव्याप्ति का प्रदर्शन करने के लिये प्रकृति की मनोरम विभूतियों को अपनाया गया है ।

काव्य के माध्यम से समाज तथा पारिवारिक जीवन में आदर्श उपस्थित कर उसे सुसंस्कृत बनाने का कार्य बाल्मीकि और कालिदास ने किया । काव्य सौष्ठव की दृष्टि से भारवि की यह रचना उत्कृष्ट है । महाभारत में व्यास के माध्यम से अर्जुन को शिक्षा दी गई है । भारवि ने नायक के गुण और महत्व को बढ़ाने के लिये व्यास का स्वयं आदेश देना दिखाया है । शिव बचाने का प्रयत्न करते हैं तो अर्जुन पैर पकड़ लेते हैं- महाभारत में ऐसा नहीं है- नायकत्व को प्रधान बनाने के लिये, अर्जुन को उदात्त प्रकट करने के लिये ऐसा किया है ।

प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में कवि की वर्णन शक्ति सराहनीय है । राजनीति नैपुण्य, मुनि सत्कार, हिमालय, जलक्रीड़ा, पानगोष्ठी, अप्सराओं का अर्जुन के पास जाना, अर्जुन की तपस्या, चंद्रोदय आदि का वर्णन कल्पना कुशलता और उत्कृष्टता का आभास देती है ।

शैली अर्थान्तर न्यास के द्वारा समलँकृत है । अर्थ गौरव के होते हुए भी रचना में दुरूहता नहीं आने पाई । शैली में प्रभावशीलता, प्रांजलता, गंभीरता, ओजस्विता के साथ स्वाभाविकता नष्ट नहीं होने पाई ।

भारवि अनेक विषयों के महान पंडित थे जिनका ज्ञान किरातार्जुनीय जैसा महाकाव्य लिखने के लिये अपेक्षित है । इनकी दूरदर्शिता अनुपमेय है । इनका पांडित्य प्रदर्शन भी सराहनीय है । पन्द्रहवें सर्ग में अनेक बंधों के चित्र विचित्र श्लोक हैं । एक श्लोक के दो तीन अर्थ निकलते हैं । एक श्लोक में एक ही व्यंजन का प्रयोग हुआ है । सभी छंद मनोरम रसाभिव्यक्ति के अनुकूल हैं । इंद्रवज्रा की उपजाति पुष्पिताग्रा आदि भारवि के प्रिय छंद हैं । श्लोक छंद का भी सुन्दर आयोजन किया है ।

इसमें अर्थगौरव की ही विशेषता है इसी कारण हृदय पर एक व्यापक प्रभाव पड़ता है । कुछ देर के लिये पाठक स्वयं एक आदर्श लोक में विचरण करने लगता है ।

भारवि के प्रशंसक मल्लिनाथ के शब्दों में किरातार्जुनीय की विवेचना—

नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणांशजः—
तस्योत्कर्षकृते त्ववर्ण्यततरो दिव्यः किरातः पुनः।
श्रृंगारादिरसोऽगमत्र विजयी वीर प्रधानो रसः
शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्र लाभः फलम् ।।[१]

उपरोक्त श्लोक से स्पष्ट हो जाती है ।

सभी रसों का चित्रण उचित हुआ है । अलंकारों का प्रयोग रसव्यंजना, भावोद्रेक में बाधक नहीं होता । पर यह है कि अंगी इसमें वीररस है अन्य रस अंग अर्थात् सहायक रूप में हैं ।

नायक के चरित्र में त्याग, शौर्य, संयम गंभीरता आदि का समन्वय दिखाया है साथ ही व्यक्तिगत विशेषताओं को भी प्रकट किया है । चरित्र चित्रण के दृष्टिकोण से भी महाकवि ने अपने काव्य कौशल तथा उच्च अनुभूति का प्रदर्शन किया है । द्रौपदी सती साध्वी सहनशील होने के साथ ही शक्ति का स्वरूप भी धारण करती है । युधिष्ठिर को स्वयं युद्ध के लिये प्रेरणा देती है अपने स्वाभिमान को दलित होते देख वह क्षोभ से पीड़ित होती है और कौरवों के साथ संघर्ष करने को उत्साहित करती है । चरित्रांकन में महाकवि की विलक्षण काव्य प्रतिभा अद्भुत पांडित्य का प्रदर्शन होता है । अर्जुन को तप करने के लिये जाते देख कर द्रौपदी उन्हें प्रसन्नतापूर्वक बिदा देती है और स्वयं धैर्य रखती है । महाभारत के भीम की भांति भारवि के भीम केवल गदा चलाने में हीपारंगत नहीं- राजनीति में भी निपुण है । उस समय के अनुसार यह महाकाव्य की शैली का सफल दृष्टांत है और उच्च कोटि का महाकाव्य है । `भारवेर्थ गौरवम्` की उक्ति प्रसिद्ध है । काव्य का सबसे विशेष गुण अर्थ गौरव इस महाकाव्य में है । इसकी उत्कृष्टता को समाहित करने के लिये चिरंतन

१- मल्लिनाथ- घंटापथ, किरातार्जुनीय - सर्ग प्रथम,
श्लोक- ४६

सत्य को अपनी सूक्तियों के माध्यम से प्रकट किया है । नायक अर्जुन की धीरता का निदर्शन इस प्रकार किया है --

> ततः किरातस्य वचोभिरुद्धतैः
> पराहतः शैल इवार्णवाम्बुभिः।
> जहौ न धैर्यं कुपितोऽपि पाण्डवः
> सुदुर्ग्रहान्तःकरणा हि साधवः ॥[१]

अर्थात् किरात की उद्धत बातों में वैसे ही प्रहार मिला जैसे सागर की लहरें पर्वत पर आघात करती हैं। फिर भी कुपित होने पर अर्जुन के चित्त में कोई विकार नहीं आया । महापुरुष का अन्तःकरण आसानी से विकृत नहीं होता ।

रावण-वध या भट्टिकाव्य --

इसके रचयिता भट्टि का आविर्भाव सातवीं शती में हुआ । इनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि रामकथा के साथ ही व्याकरण और अलंकार की व्याख्या की है । यह कार्य तो काव्यशास्त्र के ज्ञाता और वैयाकरण होने के कारण ही कर सके हैं । इनकी प्रतिभा का प्रदर्शन अत्यन्त स्वाभाविक और कलात्मक रूप से हुआ है । यह अवश्य है कि रचना सर्व बोधगम्य नहीं है मर्मज्ञ और व्याकरण में निपुण लोगों के लिये यह रचना आनन्ददायिनी है अन्यथा व्यर्थ ही है । अतः यह कहना चाहिए कि यह सर्वसाधारण के लिये उपयुक्त न हो सकी । इस रचना को संस्कृत महाकाव्यों में उत्कृष्ट स्थान मिला है ।

इसकी कथा वाल्मीकि रामायण से ली गयी है । राम कथा का आधार लेकर काव्य को विकसित किया है घटनाप्रवाह का संयोजन अस्वाभाविक

१- किरातार्जुनीय - श्लोक० -८ सर्ग - १४

नहीं हुआ । मुख्य कथा में नीरसता नहीं आने पाई- यह कवि का कौशल है । कवि व्याकरण के नियमों की व्याख्या करता है साथ ही उदाहरण भी देता जाता है और कथा क्रम भी चलता जाता है । यह महाकवि के पांडित्य का प्रभाव है । व्याकरण ऐसे विषय को भी रोचक बना लेना `भट्टि` की ही प्रतिभा थी । यद्यपि रस व्यंजना में कुछ व्यतिरेक उपस्थित हो ही जाता है परन्तु कथा प्रवाह निरंतर चलता है ।

भट्टि के उपमा अलंकार का प्रयोग:—

हिरण्मयी साललतेव जंगमा च्युता दिव: स्थास्नुरिवा चिरप्रभा ।
शशांककान्तेरधिदेवताकृति: सुता ददेतस्य सुताय मैथिली ।।

अर्थात्- राजा जनक ने दशरथ के पुत्र रामचन्द्र के लिये चलती फिरती स्वर्ण साललता के समान सुंदर, आकाश से गिरी हुई स्थिर विजली के समान देदीप्यमान तथा चन्द्रकांति की मूर्ति अधिष्ठात्री देवी के समान अह्लाद दायक सीता को दे दिया`

भट्टि के `सेतुबंधन` १३वें सर्ग पर प्रवरसेन के सेतुबंध महाकाव्य का प्रभाव है ।

अलंकारों के प्रयोग में अपनी काव्यशास्त्र की मर्मज्ञता प्रकट की है । कहीं `स्वाभाविकता में बाधा पड़ती है परन्तु व्याकरण के मर्मज्ञ होते हुए भी उच्चकोटि के कवि हैं यह उनकी विशेषता है । इन्द्रवज्रा, पुष्पिताग्रा, मालिनी, वंशस्थ आदि छंदों का प्रयोग हुआ है पर श्लोक जैसे छोटे-छोटे छंद का ही प्रयोग किया जिससे काव्य का सरल स्वाभाविक गुण नष्ट नहीं होने पाया।

इन्हीं के आदर्श पर अनेक रचनाओं में काव्य और व्याकरण का सुंदर सामंजस्य पाते हैं । यह भीम की रावणार्जुनीय ऐसी ही रचना है ।

१- भट्टिकाव्य- दशम सर्ग ।। २-४७ ।।

भारवि में कालिदासोत्तर काव्य की पाण्डित्य प्रदर्शन प्रवृत्ति और कलात्मक सौष्ठव का एक पक्ष दिखाई देता है तो भट्टि में दूसरा । भारवि मूलत: कवि हैं जो अपनी कविता को पंडितों की अभिरुचि के अनुरूप सजा कर लाते हैं , भट्टि मूलत: वैयाकरण,अलंकार शास्त्री हैं जो व्याकरण और अलंकार शास्त्र के सिद्धान्तों को कुत्सित्सु सुकुमारमति राजकुमारों तथा भावी काव्य मार्ग के पथिकों के लिए काव्य के बहाने निबद्ध करते हैं । भारवि तथा भट्टि के काव्यों का लक्ष्य भिन्न-भिन्न है । ठीक वही भेद है जो कालिदास और अश्वघोष में । कालिदास रसवादी हैं तो भारवि कलावादी । अश्वघोष दार्शनिक हैं, उपदेशवादी हैं तो भट्टि व्याकरणशास्त्रोपदेशी कवि हैं ।[१]

शिशुपाल-वध

शिशुपाल-वध की गणना संस्कृत के वृहत्रयी में है । महाकवि भट्टि के प्रभाव वर्णन के आदर्श पर माघ ने शिशुपाल वध का प्रात:काल वर्णन किया है- तात्पर्य यह कि माघ की रचना में भी व्याकरण कौशल का समावेश भट्टि के काव्य के आधार पर ही हुआ है ।

माघ का समय सातवीं शती माना है । भारवि और भट्टि की रचना का प्रभाव माघ की रचना पर यह सिद्ध करता है कि इनका समय उन दोनों कवियों के पश्चात् हुआ है ।

काव्य का मुख्य विषय है युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर कृष्ण द्वारा चेदी के राजा शिशुपाल का वध । किरातार्जुनीय की भांति इसकी कथा भी महाभारत से ली गयी है पर यह कथा महाकाव्य की कथावस्तु के लिए उपयुक्त न होने पर भी कवि ने अपनी प्रतिमा से तरह-तरह के मनोरम वर्णनों से इसे बचा लिया । यही कारण है कि इसमें अधिकांश मौलिक हैं ।

१-संस्कृत कवि दर्शन - पृ० १४० - डा० भोलाशंकर व्यास

प्रथम सर्ग में कृष्ण नारद का संवाद है । नारद शिशुपाल के अत्याचारों का वर्णन करते हैं । द्वितीय सर्ग में कृष्ण, बलराम, उद्धव का राजनीति पर विवाद कवि की निजी उद्‌भावना है । कृष्ण को युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का निमंत्रण मिलता है, कृष्ण सेना सहित रैवतक पर्वत पर पुष्पावचय, जलक्रीड़ा पानगोष्ठी करते पहुंचते हैं, उन्हें अर्घ्य दिया जाता है, शिशुपाल कृष्ण को इस सम्मान के योग्य नहीं मानता और युद्ध होता है शिशुपाल मारा जाता है । इस बीच में दूतों द्वारा पांडवों व शिशुपाल में संधि वार्ता कवि की मौलिकता है । सभापर्व के युधिष्ठिर नारद का मिलन माघ के महाकाव्य में कृष्ण नारद मिलन से साम्य रखता है ।

पानगोष्ठी, रात्रि क्रीड़ा, सायंकाल चन्द्रोदय प्रभात, यमुना मार्ग की ग्रामीण प्रकृति युद्ध वर्णन, द्वारका नगरी, बलदेव कृष्ण की मंत्रणा द्वा: ऋतु का वर्णन इस सबसे कथावस्तु की योजना में सहायता मिलती है ।

दंडी और विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य के लक्षणों को पूर्ण रूप से माघ के इस महाकाव्य पर घटाया जा सकता है[१] और वह सफल महाकाव्य कहा जा सकता है । कथानक इतिहास प्रसिद्ध, नायक भगवान कृष्ण, सर्ग बीस है । श्रृंगार रस अंग रूप में है और वीररस अंगी रूप में किन्तु श्रृंगार प्रधान होने लगता है मध्य भाग में काव्य 'श्रृंगार काव्य' लगता है और अंगीरस की चर्वणा में बाधक हो जाता है । महाकवि वीर और श्रृंगार दोनों रसों का चित्रण करने में सफल हैं पर वीर रस की अभिव्यंजना वीर रसात्मक रूढ़ियों से प्रभावित लगती है । छंदों की विविधता है और अगले सर्ग की सूचना प्रत्येक सर्ग के अंत में दी जाती है । मनोरम वस्तु के वर्णन द्वारा काव्य में प्रचुर रूप से सौन्दर्य लाने का प्रयास किया है ।

१- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य - डा० गोविंद राम शर्मा : पृ०-५७

२- संस्कृत कवि दर्शन : - डा० भोलाशंकर व्यास - पृ०- १७८ ।

माघ की काव्य कला—

शिशुपाल वध महाकाव्य में २० सर्ग १६५० श्लोक हैं । प्रौढ़ एवं उदात्त शैली के पांडित्य और प्रतिभा का एक असाधारण उदाहरण है । इसमें अलंकार वर्णनो की पूर्ण छटा है, मिलती है शब्द भंडार विलक्षण हैं, ललित और परिमार्जित शब्दों की कमी नहीं । अलंकृत काव्य शैली के पोषकों में महा कवि माघ का स्थान प्रमुख है । शब्द क्रीड़ा का विचित्र उदाहरण है इसमें `भंर` के अतिरिक्त कोई तीसरा अक्षर नहीं है :—

भूरिभिर्भारिभिर्भीराभूभारैरभिरेभिरे ।
भेरीरेभिभिरभ्राभैरभीरू भिरिभैरिभा: ।।[१]

इसका अभिप्राय है हाथियों का द्वन्द्व युद्ध आरंभ हो गया था हाथी हाथी में गुथ रहा था । उनकी संख्या बहुत थी उनकी पीठ पर पताका एवं अन्यान्य युद्ध सामग्री लदी हुई थी देखने में भयानक मेघ जैसे काले और महाकाय होने के कारण भूभार की तरह जान पड़ते थे ।

कहीं-कहीं माघ के अलंकार प्रदर्शन की मात्रातीत रुचि लंबे, बोझिल वर्णन तथा श्रृंगार रस का अतिरेक क्लिष्टता और रसहीन के भी सूचक हैं । यदि एक ओर अलंकार से काव्य की शोभा बढ़ती है तो आधिक्य खटकने लगता है । विद्वान लोग इन पर भारवि की तुलना में आगे बढ़ने की भावना का आरोप करते हैं ।

पांडित्य में माघ को कालिदास भारवि, भट्टि श्री हर्ष से अधिक श्रेष्ठ कहते हैं । कालिदास कविमूलत: भारवि राजनीति के व्यवहारिक ज्ञाता भट्टि को वैयाकरण, श्री हर्ष का पांडित्य भी विशेषत: दर्शन में अधिक किन्तु माघ सर्वतन्त्र स्वतंत्र पांडित्य लेकर उपस्थित होते हैं । व्याकरण, राजनीति, सांख्ययोग, बौद्धदर्शन वेद, पुराण, अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र, संगीत और अश्वविद्या, हस्तिविद्या के भी ज्ञाता थे ।[२]

१- शिशुपाल वध - १६।६६ ।।

२- संस्कृत कवि दर्शन : भोलाशंकर व्यास - पृ०- १७५ ।

उनमें कवित्व भी कम नहीं पर पांडित्य की सहयोजना निरंतर रहती है ।

व्याकरण के मर्मज्ञ होने के कारण इनकी कृति में पांडित्य और काव्यत्व का सामंजस्य पाते हैं, भाषा पर अधिकार है उक्ति वैचित्र्य अलंकार योजना, कल्पित उद्भावनाओं का अद्भुत वर्णन है । काव्य का कथानक कहीं-कहीं धीरे-धीरे अग्रसर होने लगता है, उपमा अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रदर्शन स्थान-स्थान पर पाते हैं । इस आचार्यत्व में कहीं-कहीं भावोद्रेक में व्यतिरेक उत्पन्न हो जाता है । फिर भी नैसर्गिकता और माधुर्य गुण वर्तमान हैं ।

माघ राज सभा को सुशोभित करने वाले महाकवि थे अतः कविता से राजदरबारी संस्कृति का आंकना अनिवार्य था । कहीं-कहीं सामन्त वर्ग के जीवन के चित्रण का आभास मिलता है जैसे ऋतु वर्णन में कामुकता से संबंधित सौन्दर्य पक्ष का चित्रण शिशुपाल वध के छठे सर्ग में है । रामायण से तुलना करके देखने से ऋतुओं का एक पक्षीय वर्णन स्पष्ट प्रकट होता है । प्रकृति में ऋतु सौन्दर्य केवल कामोद्दीपन ही तो नहीं है । कदाचित कविता कामिनी का राज सभा की नर्तकी रूपका अनुकरण ही आगे यत्न कर देव विहारी ने भी किया होगा।

माघ के समक्ष पूर्ववर्ती भारवि की रचना किरातार्जुनीय थी । नारद का द्वारका में कृष्ण के पास आना इन्द्र का संवाद सुनाना कि चैदि नरेश शिशुपाल का वध मानव कल्याण के लिये करना है, इन दो नवीन उद्भावनाओं के कारण कवि को किरातार्जुनीय के वर्णनों के लिये अवसर मिल गया कृष्ण के इंद्रप्रस्थ प्रदेश का वर्णन- अश्वघोष, कालिदास की तुलना में माघ का अधिक सफल हुआ है । महाभारत की अपेक्षा शिशुपाल वध में विवाद छोटे हैं- युद्ध के प्रयत्न में नायक और प्रति नायक के बदले दूत भाग लेते हैं ।

संस्कृत काव्य साहित्य के लिये उपर्युक्त अनुकरण पद्धति अत्यन्त ह्रास जनक सिद्ध हुई है । अपने कथानकों के लिये महाभारत रामायण आदि इतिहास पुराणों पर पूरा अवलंबित होना अपने काव्य के वर्णनों को पूर्ववर्ती कवियों के वर्णनों के अनुरूप बनाना छंद अलंकार और काव्य बंध की सनातन परंपरा को अपनाना काव्य के ऐसे शाश्वत तत्व से बन गये कि नवीनता का नाम मिट गया।[१]

१- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा० रामजी उपाध्याय पृ०- ७१

माघ पर पूर्ववर्ती प्रभाव

महाकवि माघ पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव ही नहीं अनुकरण की आलोचनात्मक दृष्टि डाली जाती है । निश्चित रूप से इस पर कालिदास, भारवि, भट्टि की कविता का प्रभाव पाते हैं ।[1] अन्य लेखकों ने भी इसकी आलोचना की है जिनमें डा० रामजी उपाध्याय[2] डा० कपिलदेव द्विवेदी, वाचस्पति गैरोला हैं । `यह भारवि के किरातार्जुनीय के अनुकरण पर बनाया गया है । दोनों का प्रारंभ भी श्रिय: (श्री) शब्द से होता है ।[3] माघ के कवित्व में कालिदास के भाव, भारवि का अर्थ गौरव, दंडी की कला, भट्टि की व्याकरण परक पांडित्य शैली का सामंजस्य है ।[4]`

माघ के एकादस, त्रयोदश सर्ग पर कालिदास की वर्णन शैली का प्रभाव है । इनका प्रभात वर्णन कालिदास के रघुवंश के प्रभात वर्णन से केवल आकार में अंतर रखता है । माघ का वर्णन ६७ पदों का और कालिदास का दस पदों का है । हाथियों के दोनों ओर करवट बदल कर सोने का वर्णन, घोड़ों की निद्रा का वर्णन दोनों काव्यों में स्वभावोक्ति के सुंदर चित्रों में से है । त्रयोदश सर्ग का पुरसुन्दरियों का वर्णन कुमारसंभव और रघुवंश में शिव अज को देखने के लिये लालायित स्त्रियों के वर्णन से निश्चित रूप से प्रभावित है । अश्वघोष का भी वर्णन इसी तरह पाते हैं पर उसमें नीतिवादिता है जबकि कालिदास में सरसता तो माघ में विलासिता है ।

`माघ``भारवि` के बहुत अधिक ऋणी हैं । दोनों के महाकाव्यों में राजनीति का वर्णन, पर्वत का वर्णन मदिरा पान तथा अंत में युद्ध वर्णन क्रमश: है

१- संस्कृत कवि दर्शन: डा० भोलाशंकर व्यास - पृ० १६७

२- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: रामजी उपाध्याय - पृ०७१-७३

३- संस्कृत साहित्य का इतिहास: वी० वरदाचार्य, अनु०-कपिलदेव द्विवेदी, पृ०१८८

४- संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला -पृ०- ८५७

माघ ने `किरातार्जुनीय` की भांति ही युद्ध वर्णन के सर्ग में शब्दालंकारों का प्रयोग किया है । कहीं पर भारवि से भी अग्रणी हो गये । `माघे संति त्रयो गुणा:` उपमा अर्थ गौरव लालित्य तीनों गुण माघ में मानते हैं ।

भारवि और माघ पर तुलनात्मक दृष्टि:—

माघ ने भारवि से विशेषता प्राप्त करने को पद-पद पर उनका अनुकरण किया । भारवि शैव थे माघ वैष्णव संभव है धार्मिक मतभेद में उच्चता सिद्ध करने को महाकाव्य का यह रूप हो गया हो । दोनों में कथा की गति विधि और चित्रकाव्य का विन्यास बहुत कुछ मिलता है । वर्णनों में असंयोजन क्रम भी मिलता जुलता है । माघ का काव्य स्तर प्राय: भूतल पर है भारवि का प्राय: स्वर्गलोक में । माघ ने काव्य की उन सौष्ठव विधायिनी सीमा की ओर ध्यान नहीं दिया जो भारवि के द्वारा उपयुक्त हो चुकी थी ।

श्रृंगार प्रियता शब्दाडंबर, चित्रबंध और ग्रंथियां भले ही युगानुरूप हो पर अन्य देश के इतिहास में गौरव न प्राप्त होगा ।[१]

`जानकी हरण`

इसके रचयिता `कुमारदास` का समय सातवीं शताब्दी मानते हैं । इसका विभाजन २५ सर्गों में हुआ है जिसके अब १५ सर्ग ही उपलब्ध हैं ।

इसका कथानक संक्षिप्त है । रामायण के अनुरूप ही राम चरित है । राम के जन्म से लेकर रावण विजय तक का वृतांत है । दक्षिण भारत में इसकी हस्तलिखित प्रतियां प्राप्य है जिसके आधार पर ग्रंथ उपलब्ध है । स्थान-स्थान पर कवि ने अपनी मौलिक शक्ति का परिचय दिया है ।

१- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : पृ०- ७२
डा० रामजी उपाध्याय ।

कालिदास के रघुवंश की रचना का कथानक भी इसी कथा का आधार लिये हुए है । इस पर बाल्मीकि और कालिदास का भी प्रभाव पाते हैं । इसमें कई स्थानों पर कालिदास की शब्दावली और शैली को पाते हैं, भावाभिव्यंजना रीति पर कुमारसंभव व रघुवंश की छाप मिलती है ।

'कुमारदास' की गणना कालिदास, भारवि और माघ की श्रेणी में की जाती है । काव्य शैली के माध्यम से राम चरित के मनोरम वर्णनों का गुंफन किया गया है- राजशेखर ने कुमार दास की प्रशस्ति की है । वह इस प्रकार है- 'जानकी हरणं कर्तुं रघुवंशे स्थितेसतिकवि: कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ' । अर्थात् रघु वंश के होने पर जानकी हरणका उपक्रम करने में कवि कुमारदास और रावण ही समर्थ हो सके ।

काव्य कौशल :—

कालिदासीय शैली की सरलता और माघ का वर्णन कौशल भारवि का पांडित्य कुमारदास की रचनामें पाते हैं पर ~~कुमारदास~~ अंधानुकरण नहीं किया । राम सीता के श्रृंगार वर्णन में कुमारसंभव के शिव पार्वती के श्रृंगार का प्रभाव स्पष्ट है । राम सीता का चरित्र साधारण नायक नायिका के रूप में है । राम सीता की काम क्रीड़ा का भी वर्णन कवि ने किया ।

यह महा काव्यों की परंपरागत शैली पर आधारित है । सर्गों का विभाजन, नायक का चरित विकास,रसाभिव्यक्ति, छंदों का प्रयोग, मनोरम दृश्यों का वर्णन, अलंकारों के प्रयोग में भी कवि ने अपनी प्रतिभा दिखाया है । उपमा रूपक अर्थान्तर न्यास आदि का प्रयोग है पर शब्दों के चमत्कार में कवि ने भावव्यंजना में बाधा नहीं डाली । इसी प्रकार इन्द्रवज्रा रथोद्धता, प्रतिमाक्षरा आदि छंदों का प्रयोग कर अपने काव्यत्व का प्रदर्शन किया ।

भाषा पर पूर्ण अधिकार है । व्याकरण ज्ञान उनके काव्यत्व को और प्रखर करता है । वे ~~क~~व्याकरण के प्रकांड पंडित थे ।

कुमारदास ने परंपरागत रूढ़ि को अपनाते हुए वर्णन शक्ति का परिचय दिया है । प्राकृतिक दृश्यों का, राजा दशरथ का अपनी रानियों के साथ जल क्रीड़ा का और राम के युद्ध का वर्णन सुंदर है । यह इनकी काव्य प्रतिभा की उत्कृष्टा का उदाहरण है पर कथानक के प्रवाह क्रम और विकास में कोई विशेष सहयोग मिलता दृष्टिगोचर नहीं होता । फिर भी काव्य में सजीव चित्रण का अनेक स्थानों पर आभास मिलता है ।

कालिदास भारवि माघ की काव्य कला का आदर्श रखने पर भी स्वतंत्र प्रतिभा का परिचय दिया । कुमारदास को महाकवियों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है ।

नैषधीय चरित:—

बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में 'नैषधीय चरित' की रचना श्री हर्ष ने की । इनके काव्य से प्रकट होता है कि यह कान्य कुब्जेश्वर के सभा पंडित थे और अतिशय सम्मान के पात्र थे क्योंकि महाराज कान्यकुब्जेश्वर[1] प्रतिदिन इन्हें अपने हाथ से आसन और पान के दो बीड़े देते थे ।

नैषध चरित श्री हर्ष के उत्कृष्ट काव्य कौशल का ज्वलंत प्रमाण है ।[2]

यह रसों के परिपाक से पूर्णरूपेण समुन्नत है काव्य के बहुविध उपादान, अलंकार व्यंजना, गुण, रीति आदि इसमें वर्तमान हैं । काव्योचित कल्पना का उत्कर्ष है । कवि ने इसे श्रृंगार रूपी अमृत का चंद्रमा कहा है । इसकी कथा वस्तु महाभारत के नलोपाख्यान से संकलित की गई है । ~~विदर्भ~~ निषध

१- ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः-

-कान्यकुब्जेश्वरात् ।

नैषधीय चरित - २२।१५३

२- संस्कृत साहित्य का इतिहास : पृ०- ८६५ -वाचस्पति गैरोला

: संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : -पृ०- ७७

-रामजी उपाध्याय

के राजा नल के रूप गुण को सुन कर विदर्भ के राजा भीम की कन्या दमयंती अनुरक्त हो गई । नल भी परिचय पाकर प्रेम करने लगा । वन विहार में सुनहला हंस देखकर दमयंती के पास संदेश जाता है फिर स्वयंबर की रचना होती है । देवता भी जाते हैं और रास्ते में नल को पाकर अपना दूत बना लेते हैं पर दमयंती स्वयंवर में मुर्छित होने लगती है तब नल प्रकट होते हैं- देवता धर्म वेष धारण कर नल का चार रूप करते हैं- अंत में दमयंती नल को देवमुख के लक्षणों से रहित देखकर पहिचान लेती है और जयमाल डाल देती है । देवता अपनी हार के कारण मार्ग में कलि के मिलने पर नल की दुर्गति करने को कहते हैं । विवाह के बाद नल आनंदनिमग्न है, कलि अवसर ढूंढ़ता है, काव्य यहीं समाप्त हो जाता है ।

इसे साठ सर्ग का मानते हैं, २२ ही उपलब्ध हैं ।[१] इसकी कथा भी अपूर्ण सी लगती है । श्री हर्ष के प्रशंसकों ने कहा `माघ` और भारवि को छोड़ कर श्री हर्ष की रचनाओं का पाठ करो `उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व भारविः।`

कवि का काव्य जगत अनुपमेय है शव्द भावों का भंडार कवि की विलक्षण प्रतिभा का धोतक है `नैषधं विद्वदौषधम्` अर्थात् विद्वानों को भी इसका रहस्य ढूंढना होगा । कल्पना की बिचित्र विधि को देखिये और मौलिक उद्भावनाओं की भी कमी नहीं है । कथानक को काव्य मय बनाने के लिये महाभारत के नल दमयन्ती के प्रकरण में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है ।

हिन्दी में भी दमयन्ती महाकाव्य की रचना की गई है । कल्पना के जगत में इनकी पर्यवेक्षण शक्ति सराहनीय है —

१- संस्कृत साहित्य का इतिहास : अनु०- डा० कपिलदेव द्विवेदी : पृ०-१५१

- वी० वरदाचार्य ।

मृशमविमरुस्तारा: हाराच्च्युताइव मौक्तिका:,
सुर सुरतज क्रीड़ालूनाद् धु सद्वियदंगणम्
बहुकर कृतोत्पात: सम्मार्जनाद धुनाधुन
निरुपधिनिजावस्थालक्ष्मी विलक्षणमीक्षते ।[1]

अर्थात् रात में देवताओं की रति क्रीड़ा के समय टूटे तारे के मोती ही तारों के रूप में उनके गगनांगण में फैले थे अब प्रभात बेला में सूर्य रूपी मृत्य ने अपनी किरणों की कूची से उन्हें बटोर दिया जिससे देव प्रांगण आकाश फिर से पूर्ववत स्वच्छ दिखाई दे रहा है ।

संसार के असाधारण और मनोरम दृश्यों का वर्णन करने के लिये कवि अनूठे शब्दों का प्रयोग करता है । इनकी काव्य निर्झरिणी के प्रवाह में सहृदय को अपना अस्तित्व भुला देना पड़ता है । कल्पना शक्ति की सर्वोच्च झांकी कवि के अर्थालंकारों में मिलती है । उदाहरणार्थ दमयंती कहती है 'चन्द्रमा अपनी किरणों से मेरे अंगों को जला कर उसकी भस्म से अपने कलंक को मिटाना चाहता है । हां उसके ऊपर वधूवध का एक नया कलंक और लग जायेगा' । कवि की कल्पना सराहनीय है चन्द्र की दशा देख कर ही मानो सूर्य ने सन्यास ले लिया है, सूर्य दंडी स्वामी की भांति दंड लेकर सब दिशाओं में भ्रमण करता रहता है । अब सन्ध्या के समय मानो समुद्र में स्नान करके सन्ध्या कालीन आकाश के काषाय को धारण कर रहा है ।

संस्कृत के प्रमुख महाकाव्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो गया कि प्रत्येक महाकाव्य में मानव चरित्र की समीक्षा जीवन की विविध परिस्थितियों में करते हुए जीवनगत व्यवहार और आदर्श में संतुलन उपस्थित करने में है ।

१- नैषधीय चरित : -१९, १३ ।

यह संतुलन तभी संभव है जब चरित्रों में प्रधान नायक नीरक्षीर विवेक के द्वारा सत्य का अनुसंधान करे । जिस अनुपात में यह सत्य मुखर होगा उसी अनुपात में नायक में महापुरुषत्व की प्रतिष्ठा हो सकेगी । इसी कारण विविध प्रवृत्तियों के साथ नायक का 'धीर' होना आवश्यक है जब तक वह धीर नहीं होगा तब तक वह विपत्तियों के वात्याचक्रों में स्थिर नहीं रह सकेगा । यदि वह स्थिर नहीं रहा तो वह विवेक पूर्वक परिस्थितियों का विश्लेषण नहीं कर सकेगा और समाज के समक्ष कोई विशिष्ट आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सकेगा । इस भांति सभी संस्कृत महाकाव्यकारों ने नायक को मानवता के भव सागर में एक विराट ज्योति स्तंभ के रूप में प्रस्तुत किया ।

अध्याय - ४

नायक की लोकोत्तर प्रतिभा

१- प्राचीन हिन्दी महाकाव्यों में नायक निरूपण

२- मानवतावादी युग में नायक की स्थिति:—

क- निरन्तर प्रगति का प्रेरणा-सूत्र

ख- संस्कृति में आस्था के द्वारा उदार-
दृष्टि की परिव्याप्ति

ग- आध्यात्मिक दृष्टिकोण

प्राचीन हिन्दी महाकाव्यों में नायक-निरूपण

भारतीय महाकाव्यों की जो परम्परा संस्कृत में विकास की पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी वह प्राकृत, अपभ्रंश में परिवर्तित होकर भी प्रवाहित रही । इसके पश्चात् हिन्दी के प्राचीन महाकाव्यों के रूप में वह महाकाव्यों की परंपरा पुन: नवचेतना से प्रेरित होकर युग की समस्याओं को समेटती हुई प्रस्तुत होती है । महाकवि की महाशक्ति के द्वारा मानव के विराट् रूप का दिग्दर्शन कराया जाता है क्योंकि काव्य की उदात्त गंभीरता एवं दार्शनिकता लोकोत्तर है, सहज मानव वृत्ति के परे है ।

प्रत्येक महाकाव्य अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि काव्य होता है ।उसमें अपने युग की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सभी दशाओं का सजीव चित्रण रहता है । महाकाव्य व्यक्ति परक न होकर समष्टि से सम्बन्ध रखता है । महाकाव्यकार की वाह्यार्थी निरूपिणी प्रतिमा जातीय जीवन और आदर्शों का समग्र रूप में उद्घाटन करती है । युग की विविध समस्याओं और राष्ट्रीय जीवन की अनेक विशेषताओं के साथ सशक्त और मनोरम अभिव्यक्ति साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा महाकाव्य में अधिक होती है इसीलिए महाकाव्य को व्यक्ति विशेष की नहीं, सारे समाज या राष्ट्र की सम्पत्ति माना जाता है । यह निर्जीव समाज में नवीन चेतना भर सकता है और उसका सच्चा प्रतिनिधि बन कर उसे प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा दे सकता है ।[१]

पृथ्वीराजरासो:-

महाकाव्यों का उद्भव एक विशिष्ट युग में ही हुआ करता है । यही कारण है कि किसी भी साहित्य में हमें युग की शक्तियों को परखने की प्रेरणा मिलती

१- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- पृ० ११४-११५ डा० गोविन्दराम शर्मा

है । समय के बाह्य स्वरूप और प्रवृत्तियों में परिवर्तन होता रहता है अतएव साहित्य के सिद्धान्तों और मानव के हृदय में भी वही प्राचीन परम्परागत आदर्श और रूढ़ियों में आस्था न रह कर परिवर्तन होता रहता है । तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण की सापेक्षता को दृष्टि में रख कर महाकवि अपने काव्य का निर्माण करता है । यह चिरन्तन सत्य है कि महान् कृतियां जनरुचि की भावना से अनुप्राणित होने के कारण ही मंगलमयी और समृद्धिशालिनी होती है । विश्वजीवन की जटिलता और विविधता को महाकवि जितनी सूक्ष्म दृष्टि से हृदयंगम करता है और अधिक से अधिक विस्तृत रूप का स्पर्श करता है उतना ही सफल होता है ।

आदिकाल में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्य लिखे गये । प्रबंध काव्यकार अपने व्यक्तित्व को अपने इष्ट और आश्रयदाता के व्यक्तित्व में मिला देता है । साहित्य का जनता से सम्पर्क था, लोक भावना का बाहुल्य था, कवि राज्याश्रित थे, पर केवल धन की लोलुपता में नहीं राज्य के लिए प्राण भी समर्पित करने को तत्पर रहते थे । चंदबरदाई ने कलम और तलवार से पृथ्वीराज की सेवा की ।

इस काल में वीरगाथाएं प्रबन्ध काव्य के रूप में मिलती हैं । यह प्रथा प्राय: सभी साहित्य में प्राचीन समय से चली आ रही है । यूनान के प्राचीन साहित्य शास्त्रियों ने महाकाव्यों की रचना का आधार युद्ध ही माना, वीर रसात्मकता को स्वीकार किया ।

हिन्दी में प्रथम वास्तविक महाकाव्य चंदवरदाई का 'पृथ्वीराजरासो' कहा जाता है । पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता में विद्वानों में मतभेद है । यह वृहद् ग्रंथ ६६ अध्यायों में है लगभग ढाई हजार पृष्ठ हैं । इसमें आए हुए संवतों तथा घटनाओं के आधार पर इस ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्णय में रायबहादुर गौरीशंकर ओझा, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने बहुत खोज किया और एक निश्चय न हो सका ।

इस स्वाभाविक विकासशील महाकाव्य में वीर भावना के साथ शृंगार का भी पर्याप्त पुट है । देवताओं की भक्ति, मुक्ति की स्तुति सांस्कृतिक पक्ष की द्योतक है चौहानवंश की उत्पत्ति के साथ क्षत्रियों के अन्य छत्तीस वंशों की उत्पत्ति आदि की कथा का वर्णन है ।[1]

पृथ्वीराज पर यह ग्रन्थ केन्द्रित है उनके युद्धों, विवाह, आखेट, का वर्णन है । चौहानवंश की ही प्रधानता है इसके निर्माण में चंद के पुत्र जल्हन का भी हाथ है ।

इसमें कुछ प्रसंग कवि -कल्पित हैं, कुछ ऐतिहासिक तत्वों पर आधारित हैं परन्तु वर्णन मार्मिक है । पृथ्वीराज का अनंगपाल द्वारा गोद लिये जाने पर दिल्ली अजमेर के राज-सिंहासन का अधिकारी होकर कन्नौज के राजा जयचंद से द्वेष के कारण राजसूय यज्ञ में न आकर उसकी कन्या संयुक्ता का हरण जयचंद और अन्य क्षत्रिय राजा से युद्ध, अफगानिस्तान के शहाबुद्दीन के आक्रमण का सामना करना व सफलता, कई बार उसे कैद करके छोड़ देना आदि आदि घटनाओं का काव्यगुणों से युक्त वर्णन है ।

युग काल की स्पष्ट झलक इस रचना में पाते हैं । यह वीरगाथा युग की महत्वपूर्ण रचना है । एक विशेषता है कि वीर-गीतों के समान इस कृति में संकीर्णता या एकरूपता नहीं पाते कारण पूरी जीवन गाथाओं के वर्णन का सन्निवेश है, नवीन कथानकों का ही आधिक्य है । रामचरितमानस की भांति भावों की अभिव्यंजना सुन्दर रूप में हुई है, कहीं-कहीं मर्मस्पर्शी उक्तियां काव्य में चमत्कार उत्पन्न करती हैं और रसात्मकता की दृष्टि से यह उत्कृष्ट काव्यों की श्रेणी में आ सकता है ।

१- काव्य के रूप - भाग २, पृ० ८५

भाषा की दृष्टि से इसमें साहित्यिक सौन्दर्य पाते हैं, छंदों का विस्तार है । उस समय के अन्य ग्रन्थों में यह नहीं है । भाषा की प्राचीनता के कारण यह आज साधारण लोकभावना में दुरूह हो गया ।

इस महाकाव्य पर घटनाओं के एक दूसरे से असम्बद्ध होने के कारण कथानक की शिथिलता का आरोप लगाया जाता है और न इसमें की समस्त घटना में एक आदर्श की प्रतिष्ठा हो पाई है जो महाकाव्य का आवश्यक गुण है । दूसरी बात, पृथ्वीराजरासो में न कोई एक प्रधान युद्ध है न किसी महान् परिणाम का ही वर्णन है । ऐसी अवस्था में पृथ्वीराज रासो को महाकाव्य न कह कर विशालकाय वीरकाव्य कहना असंगत न होगा ।

नायक :-

पृथ्वीराज धीरोदात्त नायक है और धीरोदात्त नायक के सामान्य गुणों की अभिव्यक्ति पृथ्वीराज के चरित्र में हुई है पर उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं को प्रकाश में लाने का अधिक प्रयास कवि ने नहीं किया । नायक पृथ्वीराज धर्मपरायण, संयमी, त्यागी, आत्माभिमानी और दयालु है किन्तु वीरता और शौर्य ही अधिक उज्जल रूप धारण किये है। राजपूत जाति की आदर्श वीरता पृथ्वीराज के सम्पूर्ण चरित्र में फलकती है ।शरणागत शत्रु को अभयदान देकर नायक की उदारवृत्ति का परिचय दिया गया है, किन्तु काव्यकार को नायक के चारित्रिक विकास में सफलता नहीं मिली, अन्य पात्रों के चरित्र को उभारने में कवि और भी असफल रहा और इससे यह स्पष्ट है कि कवि ने चरित्रचित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया ।

भक्तिकाल के निर्गुण पंथियों में कबीर आदि ने मुक्तक गीत ही लिखे। उनका शुद्ध निर्गुण प्रेम काव्य का विषय बन सका पर महाकाव्य का विषय बनने योग्य न था ।

इसके पश्चात् सूफी काव्य परम्परा में मसनवी शैली पर लिखे गये 'मृगावती' 'मधुमालती' 'मुग्धावती' और 'प्रेमावती' आदि महाकाव्य की रचना हुई । इसी श्रेणी में प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' की रचना की । यह ई०सन् १५२० :६२७हिजरी: में लिखा गया ।

पद्मावत में अलाउद्दीन और पद्मावती के ऐतिहासिक आख्यान को लेकर लोक पक्ष और अध्यात्म पक्ष दोनों का सूक्ष्म सम्मिश्रित रूप प्रस्तुत किया गया है । यद्यपि कवि का झुकाव कथात्मकता की ओर है पर अन्तर्जगत् के नाना भावों का भी उद्घाटन सुन्दर रूप से किया है । इन्होंने कथा और रूपक के द्वारा अलौकिक तत्वों की व्यंजना की है भारतीय संस्कृति से पूर्णत: परिचित थे, इसका प्रमाण है कि इनके काव्य में भारतीय अन्तर्कथाओं और धार्मिक परम्पराओं का सन्निवेश हुआ है । पृथ्वीराज रासो में जो पद्मावती की प्रेम कथा वीर रस के आश्रित गौण थी, वह पद्मावत में मुख्य बन गई ।

प्रबन्ध कल्पना पर विचार करने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि कवि घटनाओं को किसी आदर्श पर ले जाकर तोड़ना चाहता है अथवा स्वाभाविक गतिपर छोड़ना चाहता है यदि कवि का उद्देश्य सत और असत् के परिणाम दिखा कर शिक्षा देना होगा तो प्रत्येक पात्र का परिणाम वैसा ही दिखायेगा जैसा न्याय नीति की दृष्टि से उसे उचित होगा ।[१]

पद्मावत के कथानक से यह स्पष्ट है कि घटनाओं को आदर्श परिणाम पर पहुंचाना लक्ष्य नहीं है, ऐसा होता तो राघव चेतन का बुरा परिणाम दिखाये बिना ग्रन्थ समाप्त न करता इसमें स्वाभाविक गति का चित्रण है, न सत्पात्र का परिणाम बुरा न कुपात्र का परिणाम शुभ दिखाया कि पाठक को अरुचि पैदा हो । मानव जीवन का पर्यवसान शान्ति है, करुण क्रन्दन से आत्मा को

१- हिन्दी साहित्य समीक्षा- पृ० ८६-८७ रामचंद्र शुक्ल

द्रोह नहीं करना चाहते । राजा रत्नसेन के मरने पर रानी पद्मावती नागमती विलाप नहीं करती अपितु दूसरे लोक में मधुर मिलन की तैयारी करके सोलह शृंगार करके पति के साथ सहर्ष चिता में बैठजाती हैं ।पद्मावत प्रबन्ध काव्य के गुणों से सुसज्जित है फिर भी प्रत्येक लक्षण को उसी रूप में नहीं पाते हैं । पूरा पद्मावत ५७ खंडों में विभाजित है यह सर्गों में विभक्त विशालकाय काव्य है ।

पद्मावत का पूर्वार्द्ध काल्पनिक है , उत्तरार्घ ऐतिहासिक । ऐतिहासिक कथा के केन्द्र नागमती, पद्मावती, अलाउद्दीन, सिंहल, चित्तौड़, दिल्ली हैं ।नागमती चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की विवाहिता पत्नी है.पद्मावती पहिले रत्नसेन की प्रेयसी, फिर विवाहिता ।अलाउद्दीन पद्मावती से वासनात्मक प्रेम के मार्ग को पकड़ता है । ढाल और तलवार से इच्छापूर्ति करना चाहता है । कथा प्रसिद्धि और ख्यातवृत्त पर आश्रित है । घटना प्राय: सभी इतिहास परिचित मनुष्यों के बीच प्रसिद्ध है । हां, कल्पना का समावेश कवि शक्ति की परिचायक है,इससे ऐतिहासिकता पर व्याघात नहीं आने पाता ।

नायक :-

काल्पनिक कथा का नायक रत्नसेन है दूसरी कथा का राघव चेतन ।राघव चेतन को खलनायक भी कह सकते हैं । उसी ने अलाउद्दीन को बहकाया था ।क्यों कि इसकी वृत्ति उग्र और हिंसापूर्ण है वह विरोध की बाट जोहता है । कथा का दूसरा नायक रत्नसेन है, प्राचीन पद्धति के अनुसार आदर्शवादी है पर वह आदर्श गहरे और सच्चे प्रेम का है । नायक के कुछ व्यक्तिगत स्वभाव का भी आभास मिलता है जैसे अदूरदर्शिता, बुद्धि की अतात्परता, राजपूतों की प्रतिकार वासना, परन्तु प्रधानता आदर्श व्यवहारों की है । उसकी धीरोदात्त वृत्तियां साहस, कष्ट सहिष्णुता नम्रता कोमलता त्याग आदि है । महाकाव्य के नायक की उदात्तता रत्नसेन के प्रति पाठक के हृदय में श्रद्धा और सहानुभूति उत्पन्न कर देती है ।

इसमें शृंगाररस की प्रधानता है नागमती वियोग और पद्मावती संयोग शृंगार के प्रतीक हैं -वीर, रौद्र, वीभत्स, शान्ति आदि गौण रस हैं कथा की रसात्मकता

में प्रौढ़ता है । छंद परिवर्तन भी एक आधार है । इसमें सात-सात अर्द्धालियों के पश्चात् दोहा पद्धति को अपनाया है उसी परम्परा में आगे चल कर रामचरित मानस के महाकाव्य लिखा गया । रुचि-परिवर्तन के लिए हरिगीतिका, सोरठा, उल्लाला आदि छंद भी रखे हैं ।

महाकाव्य की विशेषता है कि वह सर्वयुगी, सर्वकालीन, सार्वजनिक रहे। भाषा ऐसी हो जो जनता अपना सके । जैसे रामचरितमानस, ऐसा उत्कृष्ट महाकाव्य सभी का कण्ठहार है । पद्मावत की भाषा ठेठ अवधी है । लोकभाषा का मौलिक रूप हमें पद्मावत में देखने को मिलता है । कहीं कहीं कुछ अव्यवस्था भी आ गयी है किन्तु अलंकारों का अस्वाभाविक प्रवाह नहीं है कि पाठक के सामने भी समस्या बन जाये । इस प्रकार पद्मावत को महाकाव्य कहना अनुचित न होगा ।

एक विशेषता इसमें यह है कि कवि ने प्रतीकों द्वारा लौकिक प्रेम कथा को आध्यात्मिक प्रेम कथा बना कर महान् संदेश दिया । अपभ्रंश के चरित काव्यों की शैली का विकास एक अनुपम ढंग से हुआ । लोक पक्ष को अध्यात्म पक्ष पर घटाया है —

तन चित उर मन राजा कीन्हा
हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा
गुरू सुआ जेइ पंथ दिखावा
बिनु गुरु जगत को निर्गुन पावा
नागमती यह दुनिया धंधा
बाचा सोइ न एहिम चित बंधा
राघव दूत सोई सैतानू
माया अलादीन सुल्तानू

शेष-

प्रेम कथा एहि भांति विचारहु

बूझि लेहु जो बूझै पारहु[1]।"

यह कवि की विलक्षण प्रतिभा का द्योतक है किस प्रकार प्रेममार्गी कवि ने सांसारिक प्रेम को पारलौकिक तत्त्व में मिला कर इसकी महत्ता को बढ़ा दिया ।

भक्तिकाल में राम-भक्ति शाखा के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदास का अभूतपूर्व वृहद् महाकाव्य `रामचरितमानस` है । इस समय तक लोक जीवन की धारा में अधिक वेग दिखाई पड़ने लगा था उसका सहज स्वरूप ही उभर कर मानस में प्रस्तुत हुआ । काव्य की गरिमा के भीतर काव्यशैली का उत्कृष्ट रूप भी प्रकट हुआ पर स्वाभाविक गति को कहीं व्याघात नहीं पहुंचा । राम काव्य के नायक के जीवन में पर्याप्त अनेकरूपता थी जो प्रबन्ध काव्य का विषय बन सकती थी ।

मानस में आदर्श प्रबन्धकाव्य का-सा कथानक और भावना का संतुलन है स्वाभाविकता और कला का सामंजस्य है । राम कथा के तीन कहने वाले होते हुए भी उसकी प्रबन्धात्मकता में अंतर नहीं हाने पाया । वाल्मीकि रामायण और प्रसन्नराघव से भी सामग्री ली है किन्तु सब सामग्री को एक प्रबन्ध में बांध कर एक रस कर लिया है ।

नायक :- पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि तुलसी के मानस में नायक राम के चरित की जो शील शक्ति सौन्दर्यमयी स्वच्छ धारा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुंच कर भावना के स्वरूप का प्रतिबिंब झलका दिया । रामचरित की इसी व्यापकता ने तुलसी की वाणी को

१- पद्मावत -उपसंहार दोहा १

राजा, रंक, धनी, दरिद्र, मूर्ख, पंडित सब के हृदय में सब दिन के लिए बसा दिया । किसी स्थिति का हिन्दू हो वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है । यह महाकवि की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है । हमारे यहाँ महाकाव्य के नायक में यही विशेषता है कि जो महान् गुणों से युक्त होकर भी हमारे जीवन के समीप है अति समीप है आदर्श होकर भी यथार्थता की परिधि के भीतर है । नायक का जीवन गृहस्थ परिवार के मध्य अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए विकास को पाता है। नायक राम ने पिता का प्रण, माता का सम्मान, पत्नी की प्रेम निष्ठा, भाई ओं का स्नेह, सब का निर्वाह करते हुए अपनी मर्यादा की निरन्तर रक्षा की । यद्यपि तुलसी के राम दशरथ कुमार ही नहीं परब्रह्म राम के साक्षात् स्वरूप हैं पर महाकवि के कौशल ने कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने दिया ।

नायक राम धीरोदात्त हैं । उन्हीं में केन्द्रीभूत करके तुलसीदास जी ने दार्शनिक, चिन्तन, लोक कल्याण की भावना, उज्ज्वलतम उदात्त कल्पना, विलक्षण अनुभूति, रमणता और युग युग के शाश्वत सत्य को अपने महाकाव्य में भर दिया । साक्षात् सत्य रूप राम असत्य पक्ष रावण के बीच होने वाला मानस का युद्ध, असत्य के नाश द्वारा सत्य की विजय, शान्ति की स्थापना तुलसी ने भक्ति द्वारा सम्भव कर दी । केवल लक्षण ग्रन्थों में गिनाये गुणों का रंग भर कर नायक राम का ढाँचा खड़ा कर दिया हो, ऐसी बात नहीं है । मानस का एक एक पात्र आदर्श का प्रतीक बन गया है । नर नारायणत्व, का सुन्दर योग, भक्ति का अनन्य आलम्बन भरत में है + ऐसा भक्ति का मणिकांचन संयोग दुर्लभ है । तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हिंदू समाज के अभूतपूर्व गौरव का चित्र मानस में पाते हैं ।

तुलसीदास के सभी पात्र आदर्श के दृष्टान्त हैं, आदर्श नारी के रूप में जगत् जननी सीता, भ्रातृप्रेम की प्रतिमूर्ति भरत , स्वामी और इष्ट की आराधना के पुजारी अनन्य सेवक के रूप में लक्ष्मण का चरित्रांकन किया है ।

दशरथ का सत्य वचन पर दृढ़ रहना यथार्थ के बीच आदर्श का भाव प्रकट करता है । अनेक प्रसंगों का वर्णन ऐसे कौशल से किया गया है कि काव्य की प्रबन्धात्मकता में तनिक भी आंच नहीं आती न कथानक में शिथिलता होती है ।

मानस का कथानक इतिहास प्रसिद्ध ही नहीं, जनता के श्रद्धा का पात्र रहा । लोक विश्रुत घटना को लेकर गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को पुनः साक्षात् ब्रह्म का अवतार मान कर पृथ्वीतल पर महान् आदर्श की स्थापना की ; भक्ति का एक ऊँचा संदेश दिया जो मध्य युग का एक मात्र जीवन था । इस उच्चतम आदर्श को अभिव्यक्त करने के लिए यथार्थ जीवन के बीच से उन्होंने ऐसे नवनीत रूप राम को निकाला जिनके जीवन की नाना परिस्थितियों के अंकन में प्रबन्ध काव्य का सम्पूर्ण कलेवर महाकवि की उच्च भूमिका पर पहुँच गया है ।[1]

मानस की रचना में संस्कृत काव्यों, अपभ्रंश के चरितकाव्यों, पुराणों की शैली का गुंफन हुआ है । सात कांडों में सम्पूर्ण कथा की रचना है जिसमें आख्यान योजना की, संघर्षण कला की उत्कृष्टता पाते हैं । घटनाओं को भावों के अनुरूप पाते हैं । आरम्भ में वही भूमिका है जैसे चरित काव्यों का रूप दोहे-चौपाई की शैली पद्मावत के आधार पर है, नाना पुराण निगमागमसम्मत है । बालकांड में पुराणों की शैली का आभास है-सती का भ्रम, सती का त्याग, दक्ष यज्ञ में अपमान आदि ।

पुराणों की शैली की रूप-रचना आद्यन्त संवादात्मक रूप में पाई जाती है । शिव पार्वती, कागभुशुंडि गरुड़, याज्ञवल्क्य भरद्वाज, तुलसी संत जन, श्रोता

१- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० ६८
डा० शकुन्तला दुबे

बनता है । चार संवादों में चार घाट बनाकर सम्पूर्ण कथा प्रबन्ध कौशल का निर्वाह करते हुए ऐसे मनोरम ढंग से आगे बढ़ती है कि कवि की अनोखी प्रतिभा की सराहना करना पड़ता है । संवादों का इतना सुन्दर संगठन अन्यत्र नहीं मिलता जितना मानस में है ।

भाषा की शक्ति, शब्द योजना पर अधिकार, अलंकारों की योजना रसव्यंजना की महत्ता इसमें कोई तुलना नहीं की जा सकती । प्रबन्ध प्रवाह का सौन्दर्य चरित्रों के मार्मिक परिस्थिति की योजना एवं महत् उद्देश्य आदि कुछ तत्व ऐसे हैं जो इसे महाकाव्य की उच्च भूमिका पर पहुँचा देते हैं ।

मानस में रसों का पूर्ण उन्मेष है, शैली की योजना भी है । प्रत्येक कांड के आरम्भ में अन्य स्थलों पर भी मंगलाचरण, सूक्तियां हैं, खल निन्दा सज्जन प्रशंसा का भी प्रसंग है, छंद योजना भी अपूर्व है । वर्षा, शरद, एवं बसंत, गिरि, वन, नदी, विवाह, युद्ध, प्रस्थान मंत्र आदि का वर्णन भी स्वाभाविक और हृदयाकर्षक है । प्रबन्धात्मकता में तुलसीदास जी को बहुत अधिक सफलता मिली है ।

काव्य के उत्कर्ष और समुचित विकास के लिए जितने उपकरणों जीवन के संश्लिष्ट चित्रों और कल्पना वैभव की अपेक्षा है उतने भाव रसों और शांत क्लांत भावनायें इस महाकाव्य में बिखरी हुई हैं[१]।

भक्तिकाल के अन्त होते होते हिन्दी काव्य धारा में सहसा राजनीतिक परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे । संस्कृत काव्य शास्त्र का प्रभाव पड़ने के कारण यह काल आचार्यत्व और अलंकारप्रियता के लिए प्रसिद्ध हो गया इसी भावना को ले कर केशवदास ने "रामचन्द्रिका" का ३९ प्रकाशों में प्रणयन किया, इस प्रवाह में सम्बन्ध निर्वाह और कथा के मार्मिक स्थलों का ध्यान ही नहीं किया गया।

१- साहित्य की पृ० २४ शचीरानी गुर्टू

जीवन के अंतरंग पहलू, उदात्त कोमल भावना और प्रकृति की सौन्दर्य सुषमा के प्रति उनका विशेष आकर्षण न था यही कारण है कि उनमें काव्य का समुन्नत और व्यवस्थित रूप देखने को न मिला । काव्यशास्त्र के विषय नख-शिख वर्णन में इस प्रकार उलझ गये कि प्रबन्ध की शृंखला के टूटने का ध्यान न रहा । मुक्तक की-सी स्फुटता विद्यमान है ।कथाओं में न तारतम्य है न अनुपात, रामवनवास की सारी बात ३ एक छंद में चलती कर दी जाती है -

यह बात भरत्थ की मात सुनी
पठऊं बन रामहि बुद्धि गुनी
तेहि मंदिर मो नृप सो विनयो
वर देहु हुतो हमको जु दयो
(कैकेयी)नृपता सुविसेस भरत्थ लहैं
वरषै बन चौदह राम रहैं[1] ।

इस मार्मिक घटना-स्थल का वर्णन इस प्रकार कितना अस्वाभाविक लगता है । कहीं-कहीं प्रसंग शीघ्र बदलते हैं, कहीं-कहीं प्रमुख प्रसंगों की नियोजना इनमें नहीं हुई-राम-वन-गमन के पहिले मंथरा कैकेयी का प्रसंग कितना महत्वपूर्ण है जिस पर अचानक राजतिलक के समय वन-गमन की घटना गोस्वामी जी कितने स्वाभाविक रूप से दिखाते हैं । उसे केशव दास जी ने रक्खा ही नहीं, बस वन-गमन आ गया ।प्रबन्ध की शृंखलाबद्धता मुख्य तत्व है इसके अभाव में रामचन्द्रिका पर असफल महाकाव्य का आरोप लगाया जाता है ।

घटना का समयानुकूल न होना भी एक दोष है- रामचन्द्र भगवान होते हुए भी कौशिल्या के पुत्र ही नहीं आदर्शपुत्र थे, मर्यादा[2] पुरुषोत्तम राम थे- वे क्या कभी अपनी माता को वैधव्य का आचार बताते । इस प्रकार

१- रामचन्द्रिका- केशव : नवम प्रकाश , पृ० ८४

२- आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग(शोध-प्रबन्ध)पृ०६०
-डा० गोपालदास सारस्वत

चमत्कार चारुता, अलंकार, छंद के बीच कवि नायक की वैयक्तिक विशेषता को उभारने में पूर्णतया असफल रहा । यह तो वशिष्ठ जी के द्वारा कहलाना युक्तसंगत लगता ।

छंदों और अलंकारों की बहुलता ने रामचन्द्रिका के प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया । केशव का प्रमुख भाव था-

`भूषन बिन न राजई
कविता वनिता मित्र`[१]

अत: अपनी कृति में अलंकारों की प्रधानता का परिचय देना ठीक ही था । कहीं कहीं यह वर्णन अस्वाभाविकता की सीमा बन गया । गांव की अपढ़ स्त्रियां सीता जी के मुख सौन्दर्य की उपमा देती हैं-

वासो मृग अंक कहैं तो सो मृगनैनी सब
वह सुधाधर तुहूं सुधाधर मानिये
वह द्विजराज तेरे द्विज राजि राजे
वह कलानिधि तुहू कला कलित बरवानिये[२] ।

छंदों के विषय में स्वयं ही कहा है `रामचंद्र की चन्द्रिका वर्णत हों बहु छंद` रामचन्द्रिका का विषय भले ही भक्ति है पर वह शैली के अनुसार रीतिकाव्य के रूप में प्रकट है । रूपक की दृष्टि से रामचन्द्रिका सफल प्रबन्धकाव्य नहीं है यह कहना अनुचित न होगा ।

---

१ - रामचन्द्रिका - भूमिका

२- ,, नवम प्रकाश , छंद ४१ पृ० ६२

ने संस्कृत के महाकाव्यों से प्रेरित होकर चमत्कार चारुता एवं रचना शिल्प की ओर अधिक ध्यान दिया । कथा, प्रबन्ध के उचित विकास में बाधा पहुंचाती है । संस्कृत के महाकाव्य के प्रभाव और राज्याश्रित जीवन दोनों के कारण केशव को अभिजात वर्ग का वर्णन अधिक रुचिकर रहा[१]। राम जैसे नायक के चारित्रिक विकास की योजना में कवि का प्रयास सफल न हो सका ।

इस प्रकार महाकाव्य का वास्तविक उद्देश्य रामचंद्रिका की रचना के द्वारा अपूर्ण रहा । नायक के चरित का विकास स्वाभाविक रीति से नहीं हुआ, कथा के प्रवाह में अनेक स्थलों में शिथिलता आ गई, घटनाक्रम का भी अव्यवस्थित रूप रहा केवल अलंकारों, रूपकों और छंदों का घटाटोप रहा । रामचंद्रिका को सफल महाकाव्य की कोटि में नहीं रक्खा गया ।

मानवतावादी युग में नायक की स्थिति :-

मानवतावादी युग में महाकाव्य की रचना समष्टि के कल्याण के लिये होती है । महाकाव्यकार मानवता के उत्थान के लिये लोक मंगल को ही अपना लक्ष्य समझता है, उसे नायक के चरित्र-चित्रण के द्वारा प्रकट करता है । नायक का प्रत्येक, कार्य मानव कल्याण के लिए होता है वह सत्य की, न्याय की, धर्म की विजय के लिए निरन्तर प्रगतिशील रहता है । आधुनिक महाकाव्यों में परम्परागत प्राचीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया गया । नायक को उच्चवंश में उत्पन्न क्षत्री या देवता होना अनिवार्य माना । आज का युग मानवगुणों का आराधक है ।

मानवता वह इकाई है जिसमें ऊंच-नीच, धर्म-सम्प्रदाय, जाति-पांति का महत्व नहीं रहता । यह स्वत: सिद्ध है कि भेद दृष्टि सामूहिक शक्ति को

१- आधुनिक हिन्दी काव्य में परंपरा तथा प्रयोग- पृ० ६०
डा० गोपालदास सारस्वत

क्षीण करती है और समाज तथा राष्ट्र अवनति के गर्त की ओर चला जाता है। विश्वबन्धुत्व की भावना उन्नति के शिखर पर पहुँचने का सुन्दर माध्यम है और यह भावना तभी स्थायी रह सकती है जब भेद दृष्टि का विनाश होगा। मानवता की उदात्त भावना में भेद-भाव का अंत हो जाता है।

वर्तमान युग के महाकवियों ने इस विचार को प्रमुखता दी है। प्राचीन कथावस्तु पर आधारित नवीन कृतियों के नायक का चरित्र मानवता के क्रोड़ में विकास पाता है और युगीन महापुरुषों के जीवन का सर्वांगीण चित्रण भी लोकमंगल की भावना से युक्त है उसके समक्ष अन्य किसी विचार को इतना महत्व नहीं दिया गया। युगपुरुष बापू का सम्पूर्ण जीवन मानवता का प्रतीक है और अनेक रचनाकारों ने बापू को नायक रूप में चित्रित किया है। वर्ग भेद को मिटाने के लिए उन्होंने कितना प्रयत्न किया इसका वर्णन श्री रघुवीरशरण 'मित्र' ने एक स्थानपर मार्मिक शब्दों में किया है --

" मानवता के उस मंदिर में
ऊंच नीच की बात नहीं थी
वह थी दीपमालिका आली
जिसमें काली रात नहीं थी
दुनिया में इन्सान एक से पर
वह भंगी यह चमार है
वर्ण-भेद का खड्ग चल रहा
शोणित की बह रही धार है
वही रक्त है, वही मांस है
वही रूप है, वही देह है
किन्तु भेद कितना भारी है
पानी में बह रहा स्नेह है

ये भी भारत माँ के बच्चे
वे भी ईश्वर के बालक हैं
हम उनको दुतकार रहे हैं
वे सच्चे आज्ञापालक हैं ।[1]

यह मानवता है जो वर्गभेद मिटा कर हमारे हृदय में एकता की, बन्धुत्व की समता की भावना उत्पन्न करती है । ईश्वर के यहाँ से हम सब एक ही रूप में उसी रक्तमांस से बन कर आये फिर कैसी भिन्नता, कैसी विषमता! जो हमारी सेवा, सुश्रूषा और स्वच्छता का कार्य कर के हमको सुख-सुविधा देते हैं, उन्हें हम दुतकारें और अछूत कहें, यह मानवता नहीं, पशुता है, नृशंसता है । महाकाव्यकार अपने महाकाव्य में मानवता को प्रश्रय देते हुए ऐसे महा-पुरुष को अपनी कृति का नायक बनाता है जो मानवता के साँचे में ढाला जा सके और अपने उदात्त आचरण द्वारा जनता के हृदय में स्थान पा सके केवल श्रद्धा का ही पात्र न बने, उनसे गले मिल कर उनकी दु:ख-सुख की कहानी सुने और उसका समाधान करने का प्रयत्न करे । आज का युग ऐसे ही नायक ऐसे ही महापुरुषों को अपने सन्मुख देखना चाहता है । महाकाव्यकार 'मित्र' जी ने एक स्थान पर कहा है --

'धन्य ! धन्य ! वह अमर पारखी
जिसने परखी है मानवता
मानवता की दिव्य ज्योति में
मनु सी बदल गई दानवता ।[2]'

मानवताकी अलौकिक ज्योति में प्रत्येक प्रकार की विषमताओं का अंधकार विलीन हो जाता है ।

१- जननायक -पृ० ९८५ - सर्ग १२
२- ,, पृ० १६४ सर्ग ११

निरन्तर प्रगति का प्रेरणासूत्र :-

प्रेरणा प्रगति का प्रथम सोपान है । आदि मानव के हृदय की स्वर्णिम कल्पना और ज्वलंत प्रेरणा ने प्रगति का आधार लेकर मानवता के उच्च सौध को प्राप्त किया । प्रेरक शक्ति हमारे संकल्प और हमारे निश्चय को क्रियात्मक रूप में परिवर्तित करती है । प्रेरणा का सूत्र निर्दिष्ट लक्ष्य की पूर्ति में सहायक है और उस पथ की विघ्न बाधाओं को दूर करता है। मानवता के विशाल क्षेत्र में निरन्तर प्रगति की प्रेरक शक्तियाँ निहित हैं इसमें किसी प्रकार का अवरोध है ही नहीं-मानवता को परखने वाला महामानव समष्टि के कल्याण का उद्देश्य लेकर जीवन पथ पर अग्रसर होता है,इस दृष्टिकोण से उसके हृदय में एक ऐसी स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है जिसकी शक्ति से टकराकर बाधाओं के बड़े-बड़े चट्टान भी टूट जाते हैं, नदियों का प्रवाह रुक जाता है, वह निरन्तर प्रगति के पथ पर निर्भय बढ़ता जाता है, एक दिन अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है और समाज के सन्मुख महा-पुरुष अथवा युग पुरुष का आदर्श प्रस्तुत करता है । मानवता के समक्ष सब शक्तियां नत हो जाती हैं और मानवता का उदात्त दृष्टिकोण हमें जीवन के महान् उद्देशों की पूर्ति में प्रेरणा देता है और उसी के द्वारा हमारे अंतस्तल में जागृति की ऐसी भावना उत्पन्न होती है जो हमें युक्त बनाकर छोड़ती है, किसी गन्तव्य स्थान पर पहुँचा कर ही निश्चिंत होती है । संकल्प के समक्ष प्रगति मूर्तिमान होकर खड़ी हो जाती है ।आत्मकल्याण को लोक कल्याण का ही एक अंश माना है । अखिल लोक के कल्याण की भावना का प्रेरणा सूत्र समभावना के भाव में निहित है । यही सम्वेदना और सहानुभूति महापुरुषों की विभूति है जो उन्हें समष्टि कल्याण के पथ पर अग्रसर करती है । समष्टि के हित का यह ददिव्य भाव मानवता के क्षेत्र में उज्ज्वल मणि की भांति दैदीप्यमान है । यह मानवता 'स्वान्त:सुख' में नहीं, बल्कि मानस के अनुसार, 'कहत सुनत सब कर हित होई' इसमें व्याप्त है जिसमें सब को सुख शान्ति मिले वही लोक-धर्म है इसीलिए नायक जो भी कार्य करता है लोक धर्म के लिए,लोक

कल्याण के लिए । यह भावना, यह प्रेरणा उनको मानवता के उदात्त स्रोत से प्राप्त होती है क्योंकि मानवता और लोककल्याण एक दूसरे के पूरक हैं ।

मानवता की उच्च भूमि में ही गांधी को स्वतंत्रता का सूत्र मिला। देश के बालकों को भूख से व्याकुल, देशवासियों को घर से हीन और वस्त्र हीन देख कर युगपुरुष गांधी के हृदय में राष्ट्र प्रेम का वह अमर दीप प्रकाशित हुआ है, जिसने मानव मात्र को जीवित रहने का अधिकार दिलाया और उन्होंने अपनी खोई हुई शक्ति को पुन: प्राप्त किया ।समष्टि का सुख, लोक का हित इसी उद्देश्य ने गांधी को मदहोश बना दिया जिसकी मादकता में उन्होंने स्वयं को भुला दिया और लोककल्याण को ही अपना लक्ष्य समझा ।

संस्कृति में आस्था के द्वारा उदार दृष्टि की परिव्याप्ति :-

सत्कवि युगद्रष्टा होता है वह ऐसे महाकाव्य का सृजन करता है जिसका नायक विविध गुणों से युक्त होता है उसका व्यक्तित्व महान् होता है । विशेषता यह रहती है कि नायक ऐतिहासिक अथवा जातीय महापुरुष होता है जो सब का प्रतिनिधित्व करता है । उसके जीवन में समस्त जाति तथा राष्ट्र के विशाल जीवन का चित्र रहता है । यही नहीं, परंपरागत रीति, नीतियों, व आदर्शों को अपनी भावनाओं और अनुभूतियों के साथ प्रतिबिंबित करता है । आधुनिक महाकाव्यकार मानवता के दृष्टिकोण को प्रमुखता देते हैं इसी कारण उनको संस्कृति में भी विश्वास और आस्था की भावना को प्रकट करना पड़ता है क्योंकि देश की संस्कृति और सभ्यता में आस्था रखने के ही कारण उदार और मधुर दृष्टि का उदय होता है । मानवता के समक्ष संस्कृति का मूल्य स्थाई एवं सर्वकालीन होता है ।

यह विचार स्पष्ट है कि किसी भी महाकाव्य के द्वारा उस देश के उस समय की संस्कृति, सभ्यता, सामाजिक अथवा धार्मिक दशा को पूर्णरूपेण

जाना जा सकता है ।` एकलव्य` के निर्माण के द्वारा भारत के `महाभारत के समय की संस्कृति का आभास नहीं मिलता बल्कि पूर्णतया सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण मिलता है । किस प्रकार आचार्य द्रोण राजकुल के गुरु बन कर राजपुत्रों को ही धनुर्विधा की शिक्षा देते हैं -निषादपुत्र एकलव्य को अस्वीकृत कर देते हैं, इससे उस समय की जाति-पांति की संकीर्ण भावनाओं का परिचय मिलता है । गुरु शिष्य की परम्परा का उस समय कितना महत्व था, यह प्रकट होता है । ऐश्वर्य विभूति में मत्त राजा द्रुपद अपने दरबार में मित्र द्रोण को आया देख कर अपमानित करता है । डा० रामकुमार वर्मा ने उस समय के राजदरबार की शोभा का वर्णन करके तत्कालीन संस्कृति का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है और अभिमानी नरेश का दंभ दिखाया है ।

`साकेत संत` में मिश्र जी ने मानस की उसी परम्परा और आदर्श को अपनाने का पूर्णतया प्रयास किया है । बड़े भाई को राजसिंहासन देने की प्रथा थी, राजा दशरथ इसी के अनुसार करते हैं परन्तु कैकेयी की कुमति द्वारा राम को चौदह वर्षों के लिए वनवास देना पड़ता है -इस दुःख से दशरथ प्राण त्याग देते हैं पर वचन का पालन करते हैं, यही सत्य प्रतिपादन की घटना आज भी उस समय की संस्कृति का परिचय देती है । पात्रों को यत्र तत्र अलौकिक गुणों से युक्त दिखाया है जिससे वह अतिमानवता की श्रेणी में पहुंच जाते हैं परन्तु महाकाव्यकार भरसक प्रयत्न करता है कि चमत्कारपूर्ण घटनाओं का प्रस्तुतीकरण बुद्धिग्राह्य हो, युगानुकूल हो । महाकाव्य कलाकार की शाश्वत कृति है और इसमें संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने की प्रवृत्ति निहित रहती है । संस्कृति में विश्वास और आस्था हृदय की वृत्तियों को कोमल और उदार बनाकर समाज के सम्मुख उपस्थित करती है यह मानवता का प्रधान अंग है । आधुनिक महाकाव्यों में विशेषरूप से तत्कालीन संस्कृति को चित्रित करने का प्रयास किया गया है पर मानवता के निर्वाह और उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया गया है । मानवता की उच्चभूमि पर महाकाव्य का भव्य प्रासाद निर्मित किया गया है ।सत्य, न्याय, धर्म के आधार पर महाकाव्य के नायक का चारित्रिक विकास होता है और महाकाव्य की गणना शाश्वत साहित्य की कोटि में होती है ।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण :-

चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद । दार्शनिक विषय के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, बंधन, मोक्ष आदि का विचार है । यह ज्ञान का विषय है फिर भी काव्यों में जीव, ईश्वर के संबंध की मधुर कल्पना का प्रचुर वर्णन पाया जाता है । परम सत्ता के सौन्दर्य का चित्रण अव्यक्त के प्रति प्रेम, जिज्ञासा, कुतूहल, जगत की अनित्यता, अद्वैतवाद, मायावाद तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है ।

आज के युग में मानव बुद्धि द्वारा प्रताड़ित होकर आनंद सुख तथा शांति की खोज में भटकता है । बुद्धि द्वारा अनेक प्रकार के आविष्कार करके मनुष्य ने सभी प्रकार के विलास के साधन उपस्थित किये फिर भी उसकी आत्मा अशान्त ही रही । हमारे यहां बुद्धितत्व सदैव से गौण रहा, अध्यात्म तत्व की प्रधानता रही और निगम आगम पुराण सभी ने इसका समर्थन किया । इसकी छाया हम अपने यहां के कुछ प्रमुख महाकाव्यों में पाते हैं जैसे महाकवि प्रसाद का विश्वास है कि संसार की ज्वाला से संतप्त व्यक्ति श्रद्धा का आश्रय लेकर आनंद और सुख की प्राप्ति कर सकता है, इस संदेश को उन्होंने अपने युग काव्य `कामायनी` में प्रभावशाली रूप में व्यक्त किया है ।

प्रसाद जी आनन्दवादी कवि हैं उनका लक्ष्य स्वत: उस आनन्द का उपभोग करना नहीं है वे संसार को भी उसकी अनुभूति कराना चाहते हैं । यही लक्ष्य कामायनी में साध्य बन कर उपस्थित होता है । प्रसाद जी 'तैत्तरीय उपनिषद्' के 'अयमात्मा परानन्द' के अनुसार आत्मा को आनन्द स्वरूप मानते हैं । अपने महाकाव्य के नायक मनु और नायिका श्रद्धा के चरित्र द्वारा बताया है कि जीवन किस प्रकार आनन्दमय हो सकता है ।मनु श्रद्धासे वियुक्त होकर आनन्द की खोज में भटकते हैं । मन के सुख - दुख की छाया जब आत्मा पर पड़ती है तो हम आत्मानंद के स्वरूप को भूल जाते हैं और आत्मस्वरूप

के ज्ञान के द्वारा ब ही शांति प्राप्त होती है । ज्ञान का दौत्र सुख-दुख से परे है श्रद्धा मनु को बताती है —

> प्रियतम ! यह तो ज्ञान दौत्र है
> सुख दुख से है उदासीनता,
> यहां न्याय निर्मम चलता है
> बुद्धि चक्र, जिसमें न दीनता ।[१]

आत्मा और विश्वास के समीकरण में ही आनन्द की स्थिति निहित है ऐसा महाकवि प्रसाद का विचार है । जब हमारी अन्तर्मुखी और वहिर्मुखी प्रवृत्तियां एकाकार हो जाती हैं तभी आनन्द :आत्मानंद: की प्राप्ति होती है । प्रसाद जी की कामायनी में समरसता का यही रूप मिलता है निर्जन प्रदेश में नायक मनु बैठे हैं श्रद्धा आकर समरसता के सिद्धान्त द्वारा मनु की व्यथा कम करती है । `दर्शन` सर्ग में श्रद्धा जगत् के स्वरूप की विवेचना करती है —

> चेतनता का भौतिक विभाग
> कर, बांट दिया जग को विराग
> चिति का स्वरूप यह नित्य जगत
> वह रूप बदलता है श शत शत
> कण विरह मिलन मय नृत्य निरत
> उल्लास पूर्ण आनन्द सतत ।[२]

कवि प्रसाद का विश्वास है कि आनन्द अथवा सुख ही चिरन्तन है तथा दु:ख दाणिक है सुख को प्रकाश में लाने के लिए दु:ख आता है सुख के ऊपर एक नीला आवरण पड़ा रहता है, `एक परदा यह झीना नील, छिपाये है जिसमें सुख गात` जो कि समरसता के सिद्धान्त द्वारा सहज ही हटाया

१- कामायनी - पृ० २६८, सर्ग रहस्य

२- ,, पृ० २४२ सर्ग दर्शन

जा सकता है। कवि ने श्रद्धा द्वारा इच्छा कर्म और ज्ञान का समन्वय कराया है। यही आनन्दवाद का आध्यात्मिक स्वरूप है —

स्वप्न, स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।[१]

मानव दृष्टि बाह्य पदार्थों के आकर्षण में आबद्ध है। वेदान्तियों ने इसे 'मृग तृष्णा' कहा है। बाह्य पदार्थों के प्रति आकर्षित होने के कारण ही मनुष्य आनन्दस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता। इस आत्मानंद की प्राप्ति का एक मात्र कारण श्रद्धा बताया है, बुद्धि नहीं। इस प्रकार अन्य किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं रह जाती। कामायनी के नायक मनु अखंड आनन्द के द्वारा पूर्ण शान्ति प्राप्त करते हैं —

'समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था[२]

कामायनी में साहित्य और दर्शन का सुन्दर सामंजस्य स्थापित कर आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की गयी है। आनंद सर्ग में कैलाश यात्रा के उपदेश में उसी अनिर्वचनीय आध्यात्मिक ज्ञान का सुन्दर विवेचन है।

चेतन समुद्र में जीवन
लहरों सा बिखर पड़ा है
कुछ छाप व्यक्तिगत अपना
निर्मित आकार पड़ा है।

... ...

१- कामायनी-पृ०२७३, सर्ग रहस्य :२- वही, पृ० २८६, सर्ग आनन्द

अपने दुख सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर ।
सब की सेवा न पराई है
वह अपनी सुख संसृति है
अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है ।[१]

अध्यात्म क्षेत्र में पहली अवस्था का साधक विश्व के प्रति जिज्ञासा, कुतूहल और आश्चर्य के भाव रखता है । इसके पश्चात् अव्यक्त सत्ता में आस्था हो जाने पर साधक अखिल विश्व में उसी के विराट् स्वरूप को देखता है । सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में उसीका सौन्दर्य दिखायी पड़ता है, उससे मिलने के लिए साधक के हृदय में प्रेम का आविर्भाव होने लगता है । हरिऔध जी के प्रियप्रवास में प्रसंग आया है—

'विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो है उसी के,
सारे प्राणी सरि गिरि लता वेलियां वृक्ष नाना ।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा,
भावोपेता परम प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है ।'[२]

जिज्ञासु की भी यही भावना रहती है उसे ईश्वर का विराट् स्वरूप जगत के कण-कण में दृष्टिगोचर होने लगता है ।

हृदय की मुक्ति साधना के लिए महाकवि की वाणी शब्द विधान करतीआई है और अपने से परे समस्त विश्व के मानव के मनोवेगों का विस्तृत रूप अभिव्यक्त करती रही । महाकाव्यकार का भावुक हृदय अनुभूति लहरियों का हृदयग्राही चित्रण करता है । रहस्योन्मुख आध्यात्मिकता में विभोर हो कर

१- कामायनी : पृ०- २८८-२८९, सर्ग आनंद

२- प्रियप्रवास : छंद ११७ पृ०-२५६, सर्ग षोडस

उसके अन्तर से जो वाणी निकलती है वह आत्मा की परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय वेदना का अलौकिक चित्रण प्रस्तुत करती है हम उसके माधुर्य और आनन्द का रसास्वादन करते हैं । सत्य की खोज में व्याकुल प्राण, विश्व की जटिलता से कातर मन निरन्तर दग्ध होता है उसका चित्रण हिन्दी काव्य जगत् की चिन्तनशील भावुक कवियत्री सुश्री महादेवी वर्मा के मार्मिक शब्दों में सुन्दर हैं --

' अविराम जला करता है, पर मेरा दीपक सा मन'

हृदय एक अज्ञात पीड़ा से पीड़ित रहता है वह आनन्द की प्राप्ति के लिए व्यग्र रहता है किन्तु सत्य पथ नहीं खोज पाता और भौतिकता में ही लीन रहता है । हमारे आधुनिक महाकाव्यकारों ने इस वैज्ञानिक युग में आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाया है और यत्र तत्र अपनी कृतियों में आध्यात्मतत्व का निरूपण किया है, उनके नायक केवल भौतिक जगत् के वासी नहीं हैं बल्कि अध्यात्म तत्ववेत्ता हैं । आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति महाकाव्यकार की प्रेरक शक्ति है जिसके द्वारा वह लोकोत्तर नायक का सृजन करता है --

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'साकेत संत' में राजा दशरथ के दिवंगत होने पर जगत की अनित्यता और परिवर्तनशीलता का वर्णन किया है । शोकाकुल भरत के प्रति वशिष्ठ के ज्ञानोपदेश में जीवन, मरण, आत्मा की अमरता, आनन्दमयता, जगत की नश्वरता पर विचार प्रकट किया गया है --

' नश्वर तन है क्षणिक पंच तत्वों का मेला
जिसको पाकर जीव एक दो पल कुछ खेला
जिस द्वारा आया काल उसी द्वारा मेला टूटा
एक एक परमाणु अपरिचित सा हो छूटा ।[1]

१- साकेत संत - सर्ग पंचम, छंद ६ -पृ० ६६ - बलदेवप्रसाद मिश्र

इस प्रकार वशिष्ठ के द्वारा अध्यात्म पर प्रकाश डलवाया है । श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र के कृष्णायन महाकाव्य में आरोहण कांड में मैत्रेय के प्रति भगवान कृष्ण के उपदेश में अध्यात्म तत्व का सम्यक् निरूपण हुआ है । संसार का स्वरूप उसकी अनित्यता, आविर्भाव, तिरोभाव, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ आत्म -अनात्म, बन्ध-मोक्ष, जड़-चेतन, निर्गुण-सगुण, जीव-ईश्वर इत्यादि विविध आध्यात्मिक विषयों का रहस्य निरूपित है --

देह-क्षेत्र संचालक ये ही
मैं क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रज्ञाति, देही
जगत दृश्य, मैं देखन हारा
ज्ञाता ययहि ज्ञेय संसारा[1]

... ...

सगुण समष्टि कहावत ईश्वर
तासु व्यष्टि ही जीव मुनीश्वर
जब लगि अहंकार अभिमाना
निज ईश्वरत्व जीव नहिं जाना ।[2]

श्री रघुवीरशरण 'मित्र' ने अपने जननायक महाकाव्य में गांधी जी की माता के स्वर्गवास का शोकाकुल समाचार सुनाने के पश्चात् संसार की निस्सारता का हृदयग्राही वर्णन किया है । जीवन नश्वर है और संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है पर अज्ञानी मानव उसी में लिप्त रहता है --

क्षण भंगुर दुनिया में नश्वर
अधिक ठहर ही क्या सकता है

१- कृष्णायन - आरोहण खंड, पृ० ७८८-८९ द्वारकाप्रसाद मिश्र
२- ,, ,, पृ०७९३ ,, ,,

एक दिवस सबको जाना है
चार दिनों का यह मेला है
पानी की लहरों के ऊपर
क्षणिक बुलबुलों का रेला है
बच्चों जैसा खेल जिन्दगी
जिससे हम भूले रहते हैं
हम प्रभात के तारे हैं पर
व्यसनों में फूले रहते हैं
प्रतिपल खेल यही होता है
कोई रोता आता कोई
अर्थी के ऊपर सोता है
मन मोहन ने शान्त कर लिया
आत्म ज्ञान से मार मृत्यु को
मन में जीवन दीप धर लिया ।[१]

किसी का जन्म होता है कोई जीवन लीला समाप्त करता है, क्षणभंगुर जीवन में भी मानव मोह वश भूला रहता है, पानी के बुलबुले की भांति किसी भी क्षण यह जीवनसमाप्त हो सकता है । ऐसे विचार हृदय में कुछ क्षण के ही लिये विरक्ति उत्पन्न कर देते हैं ।

तात्पर्य यह कि किसी न किसी रूप में आधुनिक महाकाव्यों में आध्यात्मिक तत्त्व का निरूपण किया गया है । वैसे भी हमारा देश आध्यात्मिक देश है, यहां की संस्कृति और साहित्य को आज भी उससे अलग नहीं किया जा सकता । यद्यपि बौद्धिक विकास के कारण तथा वैज्ञानिक प्रगति के कारण युग भौतिकता को अधिक महत्त्व देता है किन्तु आदि काल से पूर्वजों द्वारा प्राप्त आध्यात्मिक

१- जननायक - पृ० ६६ , सर्ग ४

शक्ति का पूर्णतया ह्रास नहीं हुआ है । साहित्यकार विशेष रूप से महाकाव्यकार जीवन की गहनता में झांक कर अपनी अनुभूतियों को प्रौढ़ता और विलक्षणता प्रदान करता है इस कारण उससे यह अध्यात्म का महत् क्षेत्र अछूता नहीं रह सकता । साधना का पथ परिवर्तित हो गया है, परन्तु लक्ष्य वही है । बुद्धि के द्वारा भौतिक ऐश्वर्य को एकत्रित करके भी अशान्त मानव शान्ति और सुख के लिए व्याकुल है । आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा प्राप्त अखंड आनन्द से ही मानव को पूर्ण शान्ति मिल सकती है ।

--

अध्याय- ५

क १- आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों के अन्तर्गत नायकों के वैविध्य का निरूपण

सन् १९१० से सन् १९६० तक

:प्रियप्रवास से एकलव्य तक:

ख २- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन —

नायक की दृष्टि से

प्रियप्रवास में नायक

: १९ १४ :

बीसवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत अनेक महाकाव्यों की रचना हुई । इन महाकाव्यों की विशिष्टता न केवल कथावस्तु के विन्यास की योजना में रही है प्रत्युत नायक के विविध चारित्रिक पार्श्वों को उद्-घाटित करने में रही है । इस विविधता के कितने कारण हो सकते हैं इस पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक है ।

क- सांस्कृतिक दृष्टिकोण:- महाकाव्य अपने व्यापक विस्तार में जीवन की अनेक परिस्थितियों को ग्रहण करते समय सांस्कृतिक परम्पराओं से प्रभावित होता चलता है । महाकाव्य समाज और राष्ट्र का प्रेरणा स्रोत है इसलिए वह मानवमात्र के लिए उन विकासोन्मुखी जीवन शक्तियों का आकलन भी करता है जो संस्कृति का मेरुदंड बनती है । अत: महाकाव्यों के नायक सदैव उन संवेदनाओं का स्पर्श करते हैं जो संस्कृति के मूल में निवास करते हैं ।

ख- बुद्धिवादी प्रभाव:- किसी भी महाकाव्य की कथा में ऐसे अंश अवश्य वर्तमान रहते हैं जो युगों से जनता के विश्वास में पोषित होते रहे हैं यह विश्वास दो प्रकार के होते हैं -पहिला प्रकार--अलौकिक वस्तु कल्पना में है ।

दूसरा प्रकार --कुछ अन्य परम्पराओं में है ।

बुद्धिवादी दृष्टिकोण इन दोनों को बड़े कौशल से हमारी अनुभूति के क्षेत्र में स्वाभाविकता प्रदान करते हुए प्रस्तुत करता है वस्तुत: यही बुद्धिवादी प्रभाव बीसवीं शताब्दी के महाकाव्यों में विशेष रूप से सक्रिय रहा है ।

ग- मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि:- महाकाव्यों के नायक किन्हीं मान्य तथ्यों के प्रवर्तन एवं प्रसार में सक्रिय रहे हैं, अधिकतर रसात्मक बोध ही उनके व्यक्तित्व का सूचक रहा है आधुनिक युग में चरित्र का सौन्दर्य केवल आनन्द की भाव भूमि पर ही स्थापित नहीं किया जा सकता वरन् उसके सौन्दर्य को हृदयंगम करने के लिए मानसिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के सौन्दर्य के उद्घाटन की भी

आवश्यकता है । इसी संघर्षशील भावात्मक परिणति में चरित्र का सौन्दर्य स्पष्ट रूप रेखाओं में उपस्थित होता है और नायक के कार्यव्यापार का बुद्धि कौशल हमारी दृष्टि के सामने उपस्थित होता है वस्तुतः यही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आधुनिक महाकाव्यों में नायक की क्रियाशीलता का द्योत्र है ।

घ- समसामयिक प्रभाव:-

कुछ महाकाव्यों की रचना परिस्थिति एवं सामयिक प्रभावों के फलस्वरूप देखी जा सकती है, विविध प्रकार के धार्मिक आन्दोलन, सामाजिक क्रान्तियां, मानवता के नये मूल्य महाकाव्यों में नायक के चारित्रिक आयामों में प्रतिफलित होते हैं । महाकाव्यों के अनेक कवि युग बोध के लिए भी अपने महाकाव्य के नायक के चरित्र का प्रस्तुतीकरण नवीन दृष्टियों से करते हैं । दूसरे शब्दों में प्राचीन कथावस्तु के नायक जैसे अपनी समस्त चारित्रिक प्रखरता से आधुनिक युग की समस्या को भी सुलझाने का एक प्रारूप उपस्थित करते हैं ।

उपर्युक्त चार प्रभावों को दृष्टि में रखते हुए आधुनिक महाकाव्यों के नायक निरूपण के प्रमुख तत्वों का विश्लेषण किया जासकता है । प्रिय प्रवास:१९१४: साकेत :सन् १९२९:, कामायनी :सन् १९३५:, कृष्णायन :सन् १९४३: साकेत संत :सन् १९४६: जननायक :सन् १९४९: एकलव्य :सन् १९५८: आदि ऐसे महाकाव्य हैं, जिनमें नायक का प्रस्तुतीकरण एक विशिष्ट दृष्टि से किया गया है ।यूं तो सन् १९१४ से लेकर सन् १९५८ तक की अवधि में कुछ अन्य महाकाव्यों की भी रचना हुई है किन्तु यहां केवल उन्हीं महाकाव्यों पर विचार किया जायेगा जिन्होंने विशिष्ट प्रकार से नायक के चारित्रिक विकास में जीवन के मूल्यों की नवीन स्थापनायें की हैं । प्रियप्रवास में श्रीकृष्ण के समस्त पौराणिक परिवेश से लोक नायकत्व की प्रतिष्ठापना हुई है, तो साकेत में अपेक्षित एवं लांछित पात्रों के मध्य में भगवान राम की व्यावहारिक लोकादर्श की भावभूमि स्थापित की गयी है ।कामायनी में नायक मनु की ऐहिक एषणा के मध्य नायकत्व एवं दर्शन संवलित समरसता का दायित्व कामायनी को सौंपा गया है । साकेत संत में भरत की भक्ति के परिवेश में आत्मोत्सर्ग का मनोवैज्ञानिक

सत्य उद्घाटित किया गया है । कृष्णायन में कृष्ण की राजनीतिक अंतर्दृष्टि के प्रकाश में ही कृष्ण चरित्र के विविध प्रसंगों को गुंफित किया गया है । 'जननायक' में सत्य और अहिंसा के व्यावहारिक आदर्शों में बापू को मानवमात्र के नायकत्व का अपूर्व गौरव प्रदान किया गया है तथा एकलव्य में वर्गहीन समाज में मानव धर्षित मानवता की प्रतिनिधित्व देकर एकलव्य को आत्मोत्सर्ग का प्रतीक समझा गया है इस प्रकार प्रत्येक महाकवि ने सांस्कृतिक दृष्टिकोण बुद्धिवादी प्रभाव, मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, समसामयिक प्रभाव में से किसी एक या अधिक प्रभावों को लेकर महाकाव्य के नायक निरूपण में एक विशिष्टता रखी है और मानव मूल्यों के संग्रह में नवीन चारित्रिक सौन्दर्य उपस्थित करने की चेष्टा की है इस नायक निरूपण के विशिष्ट कौशल पर हम क्रमशः विस्तार पूर्वक विवेचन करेंगे ।

प्रियप्रवास के नायक श्रीकृष्ण:-

आधुनिक काल में महाकाव्यों का आरम्भ पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के प्रियप्रवास से समझना चाहिए क्योंकि भारतेन्दु युग संघर्ष काल था सभी क्षेत्रों में नवीन और प्राचीन का संघर्ष चलता रहा इस परिवर्तन काल में महाकाव्य जैसी महान रचना का रचा जाना सर्वथा अस्वाभाविक था । कुछ स्थिरता आने के पश्चात् इधर दृष्टि डाली गयी । तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों का द्विवेदी युग के साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा । राष्ट्रीय चेतना ने प्राचीन गौरव की ओर सब का ध्यान आकर्षित किया गौरवमय अतीत के सहारे वर्तमान और भविष्य को उज्ज्वल बनाने की चेष्टा होने लगी ।अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त ने प्रियप्रवास और साकेत जैसे सफल महाकाव्यों का सृजन किया । अतीतोन्मुखी वृत्ति द्विवेदी युग की प्रमुख प्रवृत्ति बन गयी हिन्दू संस्कृति के उच्चतम प्रतीक कृष्ण और राम के महामहिम चरित्रों के आधुनिक युग के अनुरूप चित्र उपस्थित हुए । रचनाकाल की दृष्टि से हम सर्वप्रथम प्रियप्रवास के कृष्ण के उदात्त चरित्र की विवेचना करने का प्रयास करेंगे ।

'हरिऔध' जी ने राधा कृष्ण के प्रेम के परम्परागत आदर्श का निर्वाह करते हुए प्रियप्रवास की रचना की है । प्रख्यात और इतिहाससम्मत कथानक को लेकर सत्रह सर्गों में इसको लिखा है ।श्रीकृष्ण को युग पुरुष महाननेता और महात्मा के रूप में अंकित किया है । कृष्ण के लोकरंजनकारी स्वरूप का चित्रण करते हुए भी अवतारी पुरुष की देव सुलभ प्रवृत्तियों को प्रकट किया है उन्हें ईश्वर मानते हुए भी मानव रूप दिया है ।आधुनिक युग के बौद्धिक विकास के अनुसार हरिऔध जी ने कृष्णचरित्र की अलौकिक घटनाओं, अद्भुत चमत्कार को स्वाभाविक और बुद्धिग्राह्य बनाने का प्रयास किया है । जैसे असुरों के वध तथा कालियदमन आदि घटनाओं की बुद्धिसम्मत व्याख्या की है । 'हरिऔध' जी ने प्राचीन कथानक को बोधगम्य बनाने के लिए उसमें नवीन तत्वों का समावेश किया है और वर्तमान को उज्ज्वल बनाने के लिए प्राचीनता का सहारा लिया है । युग की समस्याओं से प्रभावित होकर महाकाव्यकार ने प्रियप्रवास में लोक सेवा, देश भक्ति, विश्वप्रेम जैसे विचारों को प्रमुखता दी है । कृष्ण ~~मैं~~ और राधा दोनों का चरित्र इसकी पूर्ति करता है ।[1]

कवि ने नायक कृष्ण के जीवन में व्याप्त लोकोत्तर समाजसेवा, जननी जन्मभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा, दुराचारी के प्रति विद्रोह का चित्रण इस प्रकार किया कि प्राचीन परंपरागत घटनाएं आज के विज्ञान और बुद्धिवाद के तर्क सम्मत युग में बुद्धि ग्राह्य और संभाव्य बन जायें, और इसमें कवि को सफलता भी मिली । कहीं कहीं पर श्रीकृष्ण के अतिमानवीय चरित्र को मानव जीवन के अति निकट लाने का ऐसा प्रयास किया है जो अस्वाभाविक हो गया । भारतीय संस्कृति की उज्ज्वल झांकी का प्रदर्शन किया है और मानवता के आदर्श का चित्रण युग को साथ लिए हुए किया है ।[2]

१- सच्चे स्नेही अवनि जन के देश के श्याम जैसे
 राधा जैसी सदय हृदया विश्वप्रेमानुरक्ता
 हे विश्वात्मा भरतभुव के अंक में और आवें
 ऐसी व्यापी विरह घटना किन्तु कोई न होवे ।प्रियप्रवास-सर्ग १७-५४ पृ.२६८

२- प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन - पृ० १०९-डा० द्वारिकाप्रसाद मिश्र

भागवत में कृष्ण को अलौकिक घटनाओं से सम्बन्धित करते हुए ब्रह्म रूप में चित्रित किया है, भक्तकालीन कवियों ने मनुष्यता की कोटि से ऊपर देवता के रूप में रखा, रीतिकालीन कवियों ने साधारण नायक के रूप में प्रस्तुत किया किन्तु 'हरिऔध' जी ने कृष्ण को एक लोकरक्षक महापुरुष के रूप में चित्रित किया है। कृष्ण में नायक के प्रधान लक्षण सौन्दर्य, शील शक्ति का समन्वय दिखाया गया है। कृष्ण परम सुंदर, ललित, कलाप्रिय, सहृदय, दयालु पराक्रमी, लोकसेवा निरत महापुरुष है।[1]

<u>कृष्ण में सौन्दर्य</u> :- 'प्रियप्रवास' के आरम्भ में ही कृष्ण की अपार सुन्दरता का मनोरम चित्र अंकित किया गया है वह सौन्दर्यशील और शक्ति के साथ अधिक प्रभावशाली हो गया। कृष्ण के आकर्षक और अलौकिक रूप को देख कर ब्रजवासी किस प्रकार मुग्ध होते हैं नायक कृष्ण मधुर भाषी भी थे,

मधुरता मय था मृदु बोलना, अमृत सिंचित-सी मुस्कान थी
समद थी जनमानस मोहती कमल लोचन की कमनीयता।[2]

रामकृष्ण के चरित्र की कुछ विशेषताएं ऐसी हैं जिनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। हरिऔध जी ने कृष्ण के सुन्दर स्वरूप का जो चित्र अंकित किया है वह हमारे सम्मुख मनमोहन कृष्ण को उपस्थित कर देता है जिसका अवलोकन करते ही गोप गोपी वृंद आत्मविभोर हो उठते थे, वही कल्पना हमारे मानस पटल पर आज भी अमिट रूप से अंकित है। यद्यपि कृष्ण के रसिक बिहारी रूप को परिवर्तित करके लोक रंजनकारी रूप में प्रस्तुत किया है। परन्तु सौन्दर्य की वही झांकी अंकित किया है जो हमारी कोमल और मधुर भावनाओं को उद्बुद्ध करता है।

१- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- पृ० १४० डा० गोविन्दराम शर्मा
२- प्रियप्रवास सर्ग १, पृ० ५, छंद २२

नवल सुंदर श्यामशरीर की सजल नीरद-सी कल कांति थी
अति समुत्तम अंग समूह था मुकुट मंजुल औ मनभावना
सतत थी जिसमें सुकुमारता सरसता प्रतिबिंबित हो रही
विलसता कटि में पटपीत था रुचिर वस्त्र विभूषित गात था
लस रही उर में बनमाल थी कल दुकूल अलंकृत कंध था
मकर केतन के कलकेतु से लसित थे वर कुंडल कान में
धिर रही जिनके सब ओर थी विविध भावमयी अलकावली
मुकुट मस्तक का शिखि पक्ष था मधुरिमामय था बहु मंजुल
असित रत्न समान सुरंजिता सतत थी जिसकी वर चंद्रिका
विशद उज्ज्वल उन्नत भाल में विलसती कल केशर खौरथी
असित पंकज के दल में यथा रज सुरंजित पीत सरोज की[१]

शीलवान कृष्ण:- 'हरिऔध' जी ने केवल सौन्दर्य को महत्व नहीं दिया बल्कि शील और शक्ति के साथ सौन्दर्य का ऐसा समन्वय किया है जो उसे अधिक आकर्षक बना देता है। इस प्रकार कृष्ण के व्यक्तित्व में अनुपम शील का दर्शन होता है। वह नम्रता और विनयशीलता से सबसे मिलते हैं, उनमें नाम मात्र को दर्प नहीं है यही कारण है कि सारा ब्रज उन पर न्यौछावर है। शील गुण से संपन्न कृष्ण की विनम्रता का चित्रण उस समय किया है जब वह मथुरागमन करते हैं -

आज्ञा पाके निज जनक की मान अक्रूर बातें
जेसे भ्राता सहित जननी पास गोपाल आये
छू माता के पग कमल को धीरता के साथ बोले
जो आज्ञा हो जननि अब तो यान में बैठ जाऊं[२]।'

१- प्रियप्रवास- पृ० ४ सर्ग ५, छंद ४२ १६
२- ,, पृ० ५२ सर्ग ५ छंद ४२

मर्यादा का पालन करने वाले कृष्ण माँ की आज्ञा व के बिना प्रस्थान नहीं करते हैं ।

<u>शक्तिशाली कृष्ण</u>:- कृष्ण के अंग प्रत्यंग सुगठित है उनको देखते ही सहज शक्ति का अनुमान होता है -

> सबल जानु विलम्बित बाहु थी अति सुपुष्ट समुन्नत वक्ष था
> वय किशोर कला लसितांग था मुख प्रफुल्लित पद्म समान था[१]

कृष्ण द्वारा असुरों का वध, कालिय दमन, दावाग्नि, प्रशमन, गोवर्द्धन धारण आदि घटनाएं उनके अपार बल और पराक्रम की अभिव्यक्ति करती है । यद्यपि कवि ने उनको स्वाभाविक और विश्वसनीय बनाने का प्रयत्न किया है । इसके अलौकिक तत्वों को बड़ी ही चतुरता से हटाकर बुद्धिगम्य बनाया है और पूर्व जन्म के पुण्य संस्कारों के फलस्वरूप बालकृष्ण की असुरों से रक्षा हो जाती है ऐसा भाव प्रकट किया है, पूतना के विषपान करने के पश्चात् भी कृष्ण के जीवन की रक्षा हो जाती है और कवि कहता है —

> 'पर किसी चिर संचित पुण्य से
> गरल अमृत अर्भक को हुआ ।[२]

इसी प्रकार गोवर्धन धारण की अलौकिक घटना का लोप नहीं किया बल्कि उसके प्रस्तुत करने की रीति परिवर्तित कर दिया । उंगली पर पर्वत को धारण करने का अभिप्राय सब ब्रजवासियों को वश में कर लिया है और ब्रजवासियों की रक्षा के हेतु पर्वत के बीच में स्थान निकाल कर खड़े हैं —

> 'लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में ब्रज धराधिप के प्रिय पुत्र का
> सकल लोग लगे कहने उसे रख लिया उंगली पर श्याम ने ।[३]

१- प्रियप्रवास- पृ० ५ -सर्ग प्रथम छंद २३

२- वही पृ० १६ -सर्ग द्वितीय छंद ३५

३- वही पृ० १६४- सर्ग द्वादश छंद ६७

अर्थात् कृष्ण ने ब्रज के निवासियों को संकट से उबारा और वह सब इनके वश में हो गये । आज के तार्किक युग में एक उंगली पर गोवर्धन उठा लेना मान्य नहीं है और इसी कारण रचनाकार ने इस अलौकिक घटना को ऐसा चित्रित किया जो बुद्धि संभाव्य हो । कृष्ण ने कालियदमन के समय केवल बांसुरी की तान से उसे मुग्ध करने की अपेक्षा नाना उपाय और कौशलों से उसका नाश किया है —

> ' सुकौशलों से वर अस्त्र शस्त्र से
> उसे निपाता ब्रज भूमि रत्न ने[१]।'

इस प्रकार प्रत्येक अलौकिक घटनाओं का सन्निवेश किया गया है । नायक कृष्ण की अपार शक्ति का परिचय अनेक स्थान पर मिलता है क्योंकि बाल्यावस्था से ही कृष्ण के जीवन में ऐसी घटनाओं का समावेश किया गया है । कृष्ण गोपवंशी थे इस कारण आरम्भ से ही इनके चरित्र में अलौकिक तत्वों का सन्निवेश किया गया है क्योंकि उनमें ईश्वरत्व का प्रवेश कराकर उसे धीरोदात्त नायक के लक्षण के अनुसार देवता की कोटि में लाना था । परन्तु कृष्ण के लिए वंश का प्रश्न ही नहीं उठता । राम क्षत्रियवंशी थे । उनके चरित्र में रचनाकार को बाल्यावस्था से ही अलौकिक गुणों को प्रवेश कराने का प्रयास नहीं करना पड़ा क्योंकि वह प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार धीरोदात्त नायक के अनुकूल थे ।

<u>लीला</u>:- हरिऔध जी ने कृष्ण को समाज की, मर्यादा की रक्षा करने वाले महापुरुष के रूप में चित्रित करने के लिए परम्परागत कृष्ण काव्य की प्रमुख घटनाओं को उसी रूप में चित्रित करने के लिए परम्परागत कृष्ण काव्य की प्रमुख घटनाओं को उसी रूप में स्थान नहीं दिया । चीरहरण और गोपियों

१- प्रियप्रवास - पृ० १७६ सर्ग १३ छंद ५४

के साथ हास विलास संबंधी लीलाओं को प्रश्रय नहीं दिया । इस बौद्धिक युग में प्रतिनिधि कवि के रास लीला के वर्णन में भी कृष्ण केवल गोपियों के ही साथ नहीं गोपवृन्द के साथ भी लीला करते हैं । गोप गोपियां सब पुष्प वर्षा करते हैं, मनोविनोद करते हैं । प्रकृति की अनुपम छटा का मग्न हो पान करते हैं । गोपों की तथा गोपियों की टोलियां विहार कर रही हैं, ज्योत्स्ना निकुंजों और रमणीक दृश्यों के सौन्दर्य में विभोर हैं, कृष्ण भी सम्मिलित हैं और परस्पर हास विलास हो रहा है । उसी समय कृष्ण सती महिमा का वर्णन कर के आनन्दित हो रहे हैं । कृष्ण की वंशी की मधुर ध्वनि सुन कर गोपवृन्द भी व्याकुल हो जाते हैं और इसका वर्णन हरिऔध जी ने सुन्दर किया है --

' वंशी निनाद सुन त्यागा, निकेतनों को
दौड़ी अपार जनताति उमंगिता हो
गोपी समेत बहु गोप तथांगना में
आईं विहार रुचि से वन मेदिनी में ।[1]'

कृष्ण समस्त ब्रजवासियों के आंखों के तारे हैं, अत्यन्त ही लोकप्रिय हैं, दर्शन मात्र से हृदय में उत्साह का संचार होता है --

' बहु युवा युवती गृह बालिका
विपुल बालक वृद्ध वयस्क भी
विवश से निकले निज गेह से
स्वदृग का दुख मोचन के लिये ।[2]'

१- प्रियप्रवास - सर्ग १४, पृ० २०६ छंद १००

२- वही - सर्ग प्रथम पृ० ३ छंद १३

हृदय में कृष्ण के प्रति अत्यन्त प्रेम और श्रद्धा है । ~~ब्रज के सखियों के कृष्ण~~ दीन, दुखियों, अनाथों और वृद्धों के सहायक हैं । जब वह ब्रजवासियों को छोड़ कर जाने लगते हैं तब कितने व्याकुल हो उठते हैं यह उस समय के चित्रण से प्रकट होता है, ब्रज के निवासी पूछते हैं-

'सच्चा प्यारा सकल ब्रज वंश का उजाला
दीनों का है परम धन और वृद्ध का नेत्र तारा
अबलाओं का प्रिय स्वजन और बन्धु है बालकों का
ले जाते हैं सुर तरु कहां आप ऐसा हमारा[1] ।'

लोकसेवा:- कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों के द्वारा कृष्ण के परम्परागत भगवद्रूप और उनके अद्भुत शील सौन्दर्य का जो वर्णन किया गया है वह लोकातीत है इसी कारण हरिऔध जी ने लौकिक और अलौकिक दोनों का समन्वय करते हुए कृष्ण के लोक हितकारी रूप का चित्रण किया है । गोप गोपी कृष्ण के रूप हास-परिहास और केलि क्रीड़ा में ही नहीं लीन हैं बल्कि उनकी सेवा से भी प्रसन्न हैं । कृष्ण घर घर में घूम घूम कर दूसरों की सेवा करते हैं महाकाव्यकार ने कृष्ण को जनसेवी रूप दर्शाया है—

रोगी दुखी विपत्त आपत्त में पड़े की
सेवा अनेक करते निज हस्त से थे
ऐसा निकेत ब्रज में न मुझे दिखाया
कोई जहां दुखित हो पर वे न होवे[2] ।

१- प्रियप्रवास - सर्ग ५ पृ० ५९ छंद ३८

२- ,, सर्ग द्वादश पृ० १६७ छंद ८७

दावानल की ज्वाला में दग्ध होते ग्वाल बालों को देख कर कृष्ण का हृदय जातीयता की भावना से भर जाता है और उनकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं और कहते हैं— जाति को संकट से उबारना मानव का धर्म है —

> विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का, सहाय होना असहाय जीव का
> उबारना संकट से स्वजाति का, मनुष्य का सर्व प्रधान कृत्य है ।[1]

हरिऔध जी ने अपने नायक कृष्ण के हृदय में देश प्रेम और मानव हित की भावना का सन्निवेश किया है वह प्रेम के लिए बैठ कर आंसू बहाने वाले नहीं हैं बल्कि राष्ट्र कल्याण के लिए प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग करने वाले समाज सेवी हैं । कृष्ण ने कर्तव्य को भावना से ऊंचा स्थान दिया । पल भर में प्रेयसी राधा को लोक हित के लिए छोड़ कर चले जाते हैं और मथुरा में रहते हैं । हरिऔध जी ने नायक के लोकसेवी रूप के साथ नायिका के जीवन को भी सेवा और त्याग की अग्नि में तपा कर स्वर्ण के सदृश्य तेजोमय बना दिया ।

राधा का अनुराग विराग में बदल जाता है निराशा आशा की अंतिम दवा वैराग्यपूर्ण निर्वेद की घूंट पीकर उनकी प्यार की मधुरिमा साधना की कठोरता में परिणत हो जाती है, वे वियोगिनी से राधिका और राधिका से लोकसेविका बन जाती है शनै: शनै: वे उस सतह तक पहुंच जाती है जहां प्रिय के वियोग की कथा उनके कोमल हृदय को प्रतिकंपित न कर एकात्म भाव स्थापित करती है । महाकवि ने लोक सेवा की भावना को निरन्तर महत्व दिया है ।[2]

कृष्ण को व्रज जनों का परम अनूठा रत्न बताकर उनके अभाव में व्रज वासियों की दीन दशा की ओर इंगित किया है । कृष्ण यहां केवल गोपियों के प्राण नहीं हैं । कृष्ण ने भी उद्धव से जब संदेश भेजा है तो उसमें स्वार्थ त्याग की

१- साहित्यिकी : पृ०- १५, शचीरानी गुर्टू

२- प्रियप्रवास : पृ०- २४४, सर्ग षोडश, छंद ४२

भावना निहित है जो इन पंक्तियों से व्यक्त होती है -

> जो होता है निरत तप में मुक्ति की भावना से
> आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्मत्यागी
> जी से प्यारा जगत हित औ लोकसेवा जिसे है
> प्यारी सच्चा अवनितल में आत्मत्यागी वही है ।[1]

हरिऔध जी ने अपने नायक का मुख्य उद्देश्य विश्वकल्याण ही दर्शाया है और उन्हें एक महान् पुरुष, समाज सेवक, मानव मात्र के शुभचिन्तक लोक रंजनकारी नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है, यद्यपि कृष्ण के परंपरा गत चरित्र में नायक के समस्त गुण विद्यमान हैं । राम और कृष्ण के भगवदीय स्वरूप की जो झांकी कवियों के हृदय पट पर अंकित है उसके संस्कार पूर्ण रूप से मिटाये नहीं मिट सकते । यहां भी राधा के द्वारा कृष्ण के परब्रह्म को दर्शाया है -

> जो आता है न जन मन में जो परे बुद्धि के है
> जो भावों का विषय न बना नित्य अव्यक्त जो है
> है ज्ञाता की न गति जिसमें इंद्रियातीत जो है
> सो क्या है मैं अबुध अबला जान पाऊं उसे क्यों ?[2]

प्रियप्रवास में युगानुसार धर्म का परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया गया है और उसमें भी लोक सेवा को प्रमुख धर्म कहा है । दुखी पीड़ितों की सेवा करना, उनके कष्ट का निवारण करना इसे नवधा भक्ति के अन्तर्गत अत्यन्त प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त किया है -

---

१- प्रियप्रवास - पृ० २४४- सर्ग षोडश छंद ४२

२- वही पृ० २५४- सर्ग षोडश छंद १०६

जी से सारा कथन सुनना आर्त उत्पीड़ितों का
रोगी प्राणी व्यथित जन का लोक उन्नायकों का
सच्छास्त्रों का श्रवण सुनना वाक्य सत्संगियों का
मानी जाती श्रवण अभिधा भक्ति सज्जनों में [1] ।

हरिऔध जी ने नवीन प्रकार से भक्ति को चित्रित किया है । समाज की बहुमुखी ढंग से सेवाकरना समाज से अन्याय उत्पीड़न, घृणा, द्वेष को दूर करने का यत्न करना जीवन का परम धर्म समझते हैं । तात्पर्य यह कि हरिऔध जी ने अपने महाकाव्य में कृष्ण के लोकरंजक रूप का चित्रण प्रमुख रूप से किया है क्योंकि देश भक्ति को सम्मान दिया है । महाकाव्य युग काव्य है राधा कृष्ण का प्रेमी और प्रियतमा का रूप युगानुकूल नहीं था और इसी कारण दोनों का चरित्र समाजसेवी के रूप में चित्रित किया गया है । द्विवेदी युग के राष्ट्रीय जागरण के समय देश को लोकरंजन कारी कृष्ण की आवश्यकता थी और हरिऔध जी इस प्रयास में सफल रहे क्योंकि कृष्ण के परंपरागत चरित्र को इस रूप में अपनाया गया जो स्वाभाविकता को लिये हुए बुद्धि संभाव्य रहा ।

१- प्रिय प्रवास- पृ० २५६- सर्ग षोडश छंद ११८

'साकेत' में नायक

: सन् १९२९ :

साकेत

आज का युग भारतीय नारी के उत्थान का युग है और नारी को आधुनिक महाकाव्य में प्रधान चरित्र के रूप में चित्रण करने का प्रयास किया गया है। 'साकेत' में उर्मिला 'कामायनी' में श्रद्धा को प्रमुख स्थान दिया गया है। 'मीरा' 'पार्वती' आदि महाकाव्यों में इन आदर्श नारियों को नायकत्व से सुशोभित किया गया है। द्विवेदी युग का दूसरा प्रमुख महाकाव्य साकेत है। गुप्त जी ने महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रेरणा पाकर इसमें उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र को अधिकाधिक उभारने का प्रयत्न किया है। साकेत में नारी जाति में जागृति उत्पन्न करने के लिए कहलाया है -

'स्वत्वों की भिक्षा कैसी ? दूर रहे इच्छा ऐसी
उर में अपना रक्त बहे, आर्य भाव उद्दीप्त रहे
पाकर वंशोचित शिक्षा, मांगेंगी हम क्यों भिक्षा[1]।'

युग के इस प्रतिनिधि काव्य में राष्ट्रीय भावनाओं और सांस्कृतिक आदर्शों का निरूपण किया गया है। साकेत में प्रजा की मांग एक सत्याग्रह का भाव लिए हुए है। प्रजा कहती है -

'राजा हमने राम तुम्हीं को है चुना
करो न तुम यों हाय लोकमत अनसुना।
+ +
जाओ यदि जा सको रौंद हमको यहां
यों कह पथ में लेट गये, बहु जन वहां।'[2]

१- साकेत - पृ० १०१ - सर्ग ४

२- वही पृ० १२९ सर्ग ५

गुप्त जी की मौलिकता भी यत्र तत्र मिलती है । सीता दलित वर्ग की अर्धनग्न बालाओं की स्थिति सुधारने में प्रयत्नशील है इसमें गांधी जी की सेविकाओं की तरह सुधार भावना छिपी है --

> 'तुम अर्धनग्न क्यों रहो विशेष समय में
> आओ हम कातें बुनें गीत की लय में ।'[1]

बाल्मीकीय रामायण और 'रामचरितमानस' पर आधारित साकेत में गुप्त जी ने अपनी अनुकूलता के अनुसार अनेक परिवर्तन किए हैं । इस परिवर्तन से उनकी मौलिकता स्पष्ट प्रकट होती है, आधुनिक युग में गुप्त जी ने राम-काव्य की परम्परा को पुनर्जीवन प्रदान किया है । काव्य में कुशल व्यंजना अभिव्यक्ति, सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण शक्ति आदि गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । जीवन के सत्य को ग्रहण कर विशाल भावभूमि पर साधना के पथ को हृदयंगम कर अनोखी सूझ का परिचय दिया है । श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने प्राचीन कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता की ओर ध्यान आकर्षित किया, अपने लेखों द्वारा इस अव्यक्त वेदना देवी की ओर आकृष्ट किया ।

रामकथा प्रसंग में उर्मिला की पीड़ा और व्यक्तित्व को जो अब तक तिरोहित था गुप्त जी ने नवीन रूप देकर अत्यन्त विलक्षणता से प्रस्तुत किया । साकेत महाकाव्य का प्रासाद उर्मिला के अश्रुओं पर ही निर्मित हुआ है उसी से इस काव्य ग्रन्थ को प्रेरणा मिली कुछ आलोचकों ने साकेत को 'उर्मिला उत्ताप'[2] कहना युक्तिसंगत समझा ।

प्राचीन कवियों की लेखनी को इतना अवकाश ही कहां था कि वे ब्रह्म की सत्ता से परे मानवों के राग विराग पर दृष्टि डाल सकें वह तो ईश्वर

१- साकेत - पृ० २२७ - सर्ग ८

२- साहित्य विवेचन - क्षेमचन्द्र सुमन -पृ० ८३

ईश्वर राम की भक्ति में रसाबोर हो पारलौकिक सुख का अनुभव करने का प्रयत्न करते थे । कदाचित यही कारण है कि बाल्मीकि और तुलसी आदि कवियों को राम सीता वनवास के पश्चात् प्रभु वियोग में दग्ध मैथिली और अयोध्यावासियों के ताप के समक्ष लक्ष्मण उर्मिला के प्रेम, वियोग अथवा त्याग की कल्पना रुचिकर न लगी, किन्तु उर्मिला के पति वियोग की अनंत प्रतीक्षा की नीरव कथा अनुकूल अवसर पाकर प्रकट हो गई ।साकेत के नवम सर्ग में केवल उर्मिला का विरह वर्णन ही है जो कि प्रकृति की सहायता से अति मर्मस्पर्शी हो गया है । विरह में ऐन्द्रिय पक्ष गौण मानसिक पक्ष प्रबल है यह काव्य की विशेषता है ।

'साकेत' में ईश्वर की मानवता के स्थान पर मानव की ईश्वरता का निरूपण किया गया है जो दार्शनिक दृष्टि से ठेठ आधुनिक युग की वस्तु है । साकेत में प्रथम बार मानव का उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर ईश्वर के समकक्ष लाकर रक्खा गया है जो मध्य युग में किसी प्रकार संभव न था । इसी कारण 'साकेत' हिन्दी की प्रथम मानवतावादी या आदर्श मानवतावादी रचना कही जा सकती है[१]।

इस प्रकार 'मानस' की आधार भूमि से 'साकेत' की आधारभूमि की तुलना करें तो साकेत की आधुनिकता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है । साकेत में राम ब्रह्म होते हुए भी मानव हैं जब कि तुलसीदास के राम में नारायणत्व का समावेश कर उन्हें पारब्रह्म बना दिया । गुप्त जी के राम कहते हैं ---

' भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने आया[२] ।'

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य : नंददुलारे वाजपेयी - पृ० ४३-४४

२- साकेत - पृ० २३४ सर्ग अष्टम

गुप्त जी वर्तमान युग की बौद्धिकता से प्रभावित हैं धार्मिक भावनाओं का निर्माण तर्क प्रधान युग में किया है यही कारण है कि उनकी श्रद्धा और आस्था बुद्धिसंगत है । गुप्त जी के राम वैभवशाली काव्योपयोगी राम हैंही गए उनका जन्म 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'[1] ही हुआ है ।

'साकेत' एक चरित्र प्रधान काव्य है इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण चरित्र उर्मिला का है, सभी पात्रों के चरित्र का वर्णन इस ढंग से कियागया है जो उर्मिला के चरित्र विकास में सहायक है ।

साकेत महाकाव्य के नायक की स्थिति पर ध्यान देने से पूर्व यह विचार कर लेना अनुचित न होगा कि साकेत में नायक कौन है । तत्पश्चात् नायक के चरित्र गुण और कार्य की विवेचना की जाय क्योंकि कुछ विद्वानों ने यह समस्या प्रस्तुत की है कि 'भरत, राम, लक्ष्मण के बीच नायक कौन' और इस पर मत प्रकट किया है ।

साकेत में नायक कौन ?

साकेत एक चरित्र प्रधान काव्य है इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण उर्मिला का चरित्र है सभी पात्रों का चरित्र वर्णन इस ढंग से किया गया है जो उर्मिला के चरित्र विकास में सहायक है । पात्रों के चरित्र-चित्रण में गुप्त जी ने मनोवैज्ञानिकता से काम लिया है । विविध परिस्थितियों में पात्रों की मनोवृत्तियों और मानसिक संघर्षों का विश्लेषण साकेत में बहुत अच्छा हुआ है । साकेत के अधिकांश पात्र परम्परागत होते हुए भी अपनी निजी विशेषताओं से जगमगा रहे हैं । उर्मिला, मांडवी का चरित्र साकेतकार की निजी सृष्टि है ही लक्ष्मण, कैकेयी, भरत, शत्रुघ्न आदि अन्य पात्रों के चरित्र में भी बाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस से अधिक आधुनिकता और मौलिकता वर्तमान है[2] ।

१- श्रीमद्भागवतगीता- अध्याय ४, श्लोक ८

२- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य - पृ० १८७-८८

यह स्पष्ट है कि साकेत काव्य की नायिका उपेक्षिता उर्मिला है । पर इसकाव्य का नायक कौन है ? नई साहित्यिक विचारणा यह आवश्यक नहीं समझती कि नायक और नायिका पति पत्नी ही हों अथवा प्रेमी और प्रेमिका हों । वे कोई दो प्रमुख पात्र भी हो सकते हैं, ऐसे दो पात्रों की अवतारणा भी आवश्यक नहीं होती, केन्द्रवर्ती पात्र तो एक ही होता है[1]। उर्मिला और भरत का नायकत्व स्वीकार कर साकेत में पहिले पहल महाकाव्य की वीररस पद्धति की उपेक्षा की गयी है । यहां भरत के नायक के रूप में स्वीकार किया है पर कवि ने नायक रूप में चित्रित नहीं किया अन्यथा भरत को सप्तम सर्ग में प्रथम बार सन्मुख न ले आते और फिर कथांत में दिखाई पड़ते हैं, बीच में दशरथ का मृ दाह संस्कार करते हैं । भरत के नायकत्व का प्रश्न ही नहीं उठता । सम्पूर्ण काव्य में तीन या चार बार भरत को सन्मुख लाते हैं ।

दूसरी विचारधारा राम के विषय में है । राम के भक्त होने के कारण गुप्त जी उन्हें ईश्वरत्व के सिंहासन पर ही आरूढ़ करते हैं और उन्हें गौण स्थान नहीं देते :---

' राम तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?[2]'

किन्तु आज का वैज्ञानिक युग राम को ईश्वर के अवतार के रूप में नहीं अपना सकता बल्कि एक महापुरुष के रूप में ही स्वागत कर सकता है । युग के अनुसार उन्होंने राम के चरित्र में ही मनुष्यत्व को स्थान दिया है । उनकी पितृभक्ति उनका मातृ प्रेम, उनकी कर्तव्य परायणता आदर्शरूप लिए हुए हैं ।गुप्त जी राम के मुख से ही कहलाते हैं-

----

१- मैथिलीशरण गुप्त :व्यक्ति और काव्य- पृ० ४४४ - डा० कमलाकान्त पाठक

२- साकेत --मै मुखपृष्ठ

'मैं आर्यों का आदर्श बताने आया
जन सन्मुख धन को तुच्छ जताने आया
संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।'[1]

नवीनता का आदर्श स्थापित करने के लिए राम अवतीर्ण हुए हैं गुप्त जी ने राम को पारब्रह्मरूप में नहीं अपनाया लेकिन अपने आराध्य देव राम को प्रमुख स्थान दिया और राम साकेत के नायक हैं।[2] ऐसा भी मत है ।

वास्तव में देखा जाय तो गुप्त जी को प्रेरणा उर्मिला के ही द्वारा मिली और उर्मिला तथा लक्ष्मण के चरित्र को ही अधिक उभारा है ।मानस में राम सीता को प्रमुखता दी गयी है तो साकेत में लक्ष्मण और उर्मिला को । साकेत की रचना इसी ध्येय की पूर्ति के लिये की गयी है ।राम का परम्परागत चरित्र अनेक काव्यों में प्रमुख बन कर नायकत्व को ग्रहण कर चुका ।गुप्त जी का लक्ष्य उर्मिला और लक्ष्मण को ही प्रकाश में लाना है ।

प्राचीन और आधुनिक दोनों मतों से नायक के चरित्र के विकास के लिए अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण किया जाता है तथा प्रत्येक घटनाएं नायक की प्रतिष्ठा वृद्धि के लिये संयोजित की जाती है जब कि साकेत का अधिकांश घटनास्थल लक्ष्मण और उर्मिला के चरित्र को समेटे हुए है । प्रथम सर्ग में लक्ष्मण उर्मिला के प्रेम पूर्ण संवाद से काव्य का आरम्भ होता है और निरन्तर लक्ष्मण के चरित्र का प्रवाह निरवरोध चलता है ।आधुनिक दृष्टिकोण से नायक की महानता की परिधि विस्तृत और व्यापक हो गई है विचारों के संघर्ष में विजय प्राप्त करके अपनी निश्चित धारणा की पूर्ति करने वाला कोई भी

१- साकेत - पृ० २३४ सर्ग अष्टम
२- साकेत दर्शन - त्रिलोचन पाण्डेय - पृ० ६५

व्यक्ति महान् समझा जाता है और नायक बनने का अधिकारी है । स्वेच्छा से नववधू पत्नी का त्याग कर के आराध्य राम के साथ वनवासी होने के अनिश्चित कष्ट को लक्ष्मण ने सहर्ष गले लगाया । उर्मिला के चरित्र को उभारने के लिए लक्ष्मण को ही नायक बनाना व उचित और बुद्धिपरक लगता है किन्तु विद्वानों का ऐसा मत है कि भक्त गुप्त जी ने राम को अपना आराध्य माना, उन्हें गौण न बना सके और यह भावना लक्ष्मण के नायकत्व के प्रश्न को संदेहात्मक बना देती है ।

'साकेत' के कथानक की प्रत्येक घटना इस प्रकार संयोजित की गयी है कि लक्ष्मण और उर्मिला के चरित्र को विकसित करती है और उसके चारों ओर गुम्फित है । मानस में राम नायक हैं और प्रमुखता प्राप्त किये हैं पर साकेत में गुप्त जी ने लक्ष्मण के चरित्र को अधिक प्रकाश में लाने का प्रयास किया है । गुप्त जी ने लक्ष्मण, उर्मिला के चरित्र के द्वारा मानववाद और राष्ट्र प्रेम के उच्च विचारों को प्रस्तुत किया है । महाकाव्य के प्रत्येक पात्र का चारित्रिक विकास नायक की प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए होता है । राम का स्थान अवश्य ऊंचा है और घटनाओं का नियोजन लक्ष्मण उर्मिला के चरित्र को उभारता है। जब यह विचार करते हैं कि राम के वृत्त की पूर्ति, राम की प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए लक्ष्मण और अन्य पात्र कार्य करते हैं तो वहीं राम का नायकत्व स्पष्ट हो जाता है ।

गुप्त जी के हृदय में राम के प्रति आस्था तो आरम्भ में ही व्यक्त हो जाती है जब वह घोषणा करते हैं --

'हो गया निर्गुण सगुण साकार है
ले लिया अखिलेश ने अवतार है
किसलिये यह खेल प्रभु ने है किया
मनुज बन कर मानवी का पय पिया ।'[1]

१-साकेत - पृ० १८ - सर्ग प्रथम

इस प्रकार राम की महानता और प्रमुखता निरविरोध स्पष्ट है । यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने नायकत्व के लिए राम को ही चुना है । यह अवश्य है कि रामकथा के मूल से गुप्त जी ने उसी अंश का चयन किया है जो लक्ष्मण उर्मिला के चरित्र का पूर्ण रूपेण विकास करता है और अपने इस ध्येय की पूर्ति के लिए मौलिकता का भी सन्निवेश किया है किन्तु प्रमुख स्थान राम को ही दिया है और राम के वृत्त को निर्विघ्न सम्पूर्ण करने का प्रयास प्रत्येक पात्र करते हैं । लक्ष्मण को तो राम से अलग किया ही नहीं जा सकता ।

नवीन मत के अनुसार भी प्रधान पात्र के चिरत्र के विकास के लिए कथावस्तु की घटनाओं का चयन, प्रकृति चित्रण और रस निरूपण किया जाता है, इस दृष्टिकोण से तो लक्ष्मण उर्मिला के चरित्र की प्रतिष्ठा के लिए महाकाव्य के इन तत्वों को महत्व दिया गया है परन्तु लक्ष्मण का स्वयं कोई व्यक्तिगत महत्व नहीं है जो कुछ भी करते हैं राम की प्रसन्नता, राम की मर्यादा की सुरक्षा और राम के लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही करते हैं । यद्यपि साकेत के लक्ष्मण मानस के लक्ष्मण की भांति अपने अस्तित्व को पूर्णतया समाप्त नहीं करते किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि लक्ष्मण का अपूर्व त्याग राम के संकल्प की रक्षा के लिए रहा और उन्होंने राम को अपना इष्ट माना अत: राम को नायक पद देना न्याय संगत होगा । इस पर आगे विचार किया गया है कि और लक्ष्मण में धीरोदात्त नायक के गुणों का अभाव है इस पर प्रकाश डाला गया है क्योंकि महाकाव्य का नायक सर्वप्रथम धीरोदात्त होना चाहिए।

गुप्त जी ने सीता को उच्च और आदर्श व चरित्र के रूप में अंकित किया है महार्घ आसन पर आरूढ़ किया है और इनके चरित्र की महानता पर कहीं भी व्याघात नहीं पहुंचाता किन्तु सीता को नायिका नहीं कहा जा सकता । 'साकेत' की रचना का ध्येय उर्मिला के उपेक्षित चरित्र को प्रकाश में लाना है किन्तु इसके लिए लक्ष्मण को नायक का स्थान देना अनिवार्य नहीं है क्योंकि आज के सिद्धान्त में पति-पत्नी ही नायक-नायिका हो, ऐसा आवश्यक नहीं है । इसी दृष्टि से साकेतकार ने अपने काव्य की रचना की है, सभी पात्रों का

चरित्र चित्रण और समस्त घटनायें उर्मिला के चारों ओर गुम्फित हैं अत: साकेत का नायक कौन है, इसकी विवेचना करने के लिए लक्ष्मण के चरित्र का अवलोकन करना चाहिए तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण के चरित्र पर तुलनात्मक दृष्टि डाली जा सकती है।

साकेत में लक्ष्मण :-

प्राचीन परम्परा के अनुसार महाकाव्य का प्रमुख चरित्र नायक प्रसिद्ध पुरुष पात्र होना चाहिए। आज युग नारी सम्मान और जागरण का है, चिरकाल से उपेक्षिता नारी को गुप्त जी अपने महाकाव्य में प्रधान रूप में चित्रित किया है। लक्ष्मण की अपेक्षा उर्मिला का चरित्र अधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण है। राम के अनन्य भक्त गुप्त जी राम का स्थान गौण नहीं बना सके।

'साकेत' में गुप्त जी का कवि-हृदय उर्मिला और लक्ष्मण को, किन्तु भक्त हृदय राम और सीता के साथ है। उनके हृदय में राम के प्रति अगाध प्रेम है। कर्तव्यनिष्ठ, वीरपुरुष, निर्भीक, स्पष्टवक्ता, संयमी, उदार, एकपत्नी व्रतधारी लक्ष्मण ने राम के वृत की सफलता के लिए महान् त्याग का आदर्श उपस्थित किया। महाकाव्य में ऐसे महच्चरित्रों की अवतारणा होती है जिनका देश के नैतिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जीवन पर पुष्कल प्रभाव होता है जो सभ्यता और संस्कृति के इतिहास पर प्रभाव डालते हैं। महाकाव्य किसी महान् एवं उदात्त चरित्र की ह कल्पना को साकार करने की शक्ति रखता है। प्रमुख पात्र के माध्यम से कविगण महामना चरित्रों का अंकन करते हैं और उनके सर्व प्रमुख पात्र स्वार्थ की नहीं परार्थ और परमार्थ की साधना करते हैं, उर्मिला समष्टि के लिये व्यष्टि का त्याग करती है। साकेत में गुप्त जी ने सत् की प्रतिष्ठा के द्वारा राष्ट्र में जागरण की धारा प्रवाहित करने का प्रयत्न किया है।

युग धर्म का ज्वलंत संदेश साकेत में प्राप्त होता है। कवि ने राष्ट्र शाश्वत जीवन का, नीति आदर्शों का, विचारों विश्वासों का, आश

आकांक्षाओं का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है । भारतीय जीवन की एकरसता और परमार्थ का प्रतिफल साकेत का वास्तविक उद्देश्य है । उर्मिला के द्वारा भोग के ऊपर त्याग की विजय इसकी अभिव्यंजना की गयी है वह विरहाग्नि की ज्वाला से खेलती है पर प्रियतम के पथ की बाधा नहीं बनती।

'रामचरित मानस' और अन्य प्राचीन ग्रन्थों के लक्ष्मण तथा 'साकेत' के लक्ष्मण में अन्तर है मानस के लक्ष्मण का राम के प्रति भाव है --

'मोरे सबइ एक तुम स्वामी
करुणामय उर अंतर्यामी[१] ।'

इस प्रकार लक्ष्मण का अपना अलग अस्तित्व नहीं है, साकेत में आधुनिकता का पुट है पर लक्ष्मण निस्पृह होकर कर्तव्य नहीं करते बल्कि उर्मिला का ध्यान बराबर करते हैं । लक्ष्मण के कोमल भावुक हृदय का प्रेमालाप प्रथम सर्ग में ही आरम्भ होता है, जब कि मानस में वह प्रत्येक कार्य अपने आराध्य राम के लिए ही करते हैं । लक्ष्मण का प्रेम आधुनिक प्रणयी का सा नहीं है क्योंकि गुप्त जी ने तो स्वीकार किया है कि 'साकेत' में मैंने कालिदास की प्रेरणा से उस प्रेम की एक झलक देखने की चेष्टा की है जो भोग से आरम्भ होकर वियोग झेलता हुआ योग में परिणत हो जाता है । प्रथम सर्ग में उर्मिला और लक्ष्मण का प्रेम भोगजन्य किंवा कामजन्य है उसी को योगजन्य देखने के उद्योग में साकेत की सार्थकता है ।'

अत: लक्ष्मण उर्मिला के इस प्रेमालाप को अश्लीलता की ओर ले जाना अनुचित है । बड़े बड़े मनीषियों के जीवन में भी यह भोग योग का आदि अंत देखने में आता है । आज के युग के अनुसार भी साहित्य में यथार्थ का आदर्श में अवसान होना ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना गया है । जो साहित्य मानवता के प्रति हमारी आस्था को प्रतिष्ठित करता है, हमारे पावन विचारों को उत्तरोत्तर विकसित करता है,

----

१- रामचरितमानस -अयोध्याकांड, दो०७२, चौ०३ ।

परिस्थितियों के घात-प्रतिघात को सहन करके उन पर विजय प्राप्त करने की क्षमता देता है वह निश्चय ही अभिनंदनीय है ।

गुप्त जी के लक्ष्मण-वनगमन के समय ऊपर से शान्त और भीतर से अशान्त लगते हैं मन में कुछ कुछ चुभता है --

'लक्ष्मण का तन पुलक उठा
मन मानों कुछ कुलक उठा ।'[1]

रामचरितमानस के लक्ष्मण के सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवन तन्तु राम में समाहित हैं जिसने अपना समस्त तन मन धन राम के चरणों में समर्पित कर दिया है उसे नारी का प्रेम क्या आकर्षित कर सकता है --

'छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेह
करत न सपनेहुं लखन चित बंधु मातु पितु गेहु ।।'[2]

लक्ष्मण को राम के साथ वनगमन की कोई विवशता नहीं तो भी उनका जीवन तो राम के आधीन है ।

'गुरु पितु मातु न जानउं काहू । कहउ सुभाउ नाथ पतिआहू ।
जहं लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजगाई ।
मोरे सबइ एक तुम स्वामी । दीनबन्धु उर अंतरजामी[3] ।।'

साकेत के लक्ष्मण निस्पृह भी नहीं हैं उर्मिला का ध्यान करते हैं एकान्त में स्मरण हो आता है, सीता-हरण के पश्चात् राम का आर्त विलाप सुनकर उर्मिला के लिए व्यथित हो जाते हैं, हृदय क्षुब्ध हो जाता है और उस घटना का स्मरण करते हैं--

---

१- साकेत - पृ० ११० सर्ग चतुर्थ
२- रामचरितमानस - अयोध्याकांड - दो० १३९ ।
३- वही - अयोध्याकांड - दो० ७२ - चौ० २,३ ।

"मिला उसी दिन किन्तु तुम्हें मैं खोया खोया
जिस दिन आर्या बिना आर्य का मन था रोया
आलों में ही रही अभी तक तुम भी मानी
अंतस्तल में आज अचल निज आसन मानी ।"[1]

उर्मिला के प्रति प्रेम मर्यादा और शिष्टता लिए हुए है अपने राम के लिए सब कुछ त्याग कर सकते हैं । उनका भातृप्रेम सराहनीय है । अपने को राम का एक सैनिक समझते हैं । प्रिया से कहते हैं-

"भावती मैं भार लूं फिर काम का
एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का ।"[2]

लक्ष्मण की वीरता स्वभाव में उग्रता लिये हुए है । यह वही राम के वनगमन के समय दशरथ और कैकेयी के प्रति प्रकट किया है जो उनकी अतिशय चपलता और उग्र स्वभाव का द्योतक है[3] । क्षणिक आवेश में आने वाले वीर है स्वभाव-जन्य क्रोध यत्र तत्र प्रकट हो जाता है जो उनके नायकत्व के "वीर" गुण के विरुद्ध है नायक का वीर होना सर्वत्र अनिवार्य है किसी भी क्षेत्र में व वीर हुए बिना वह सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है । चित्रकूट में भरत के आगमन पर शंका होती है और युद्ध करने को प्रस्तुत हो जाते हैं राम के प्रति प्रेम की पराकाष्ठा अवश्य है उनकी रक्षा के हेतु इतने आतुर हैं कि राम के वचन को भी नहीं सुनते हैं और भरत को अपने शरका लक्ष्य बनाने को तत्पर हैं[4] । जहां

१- साकेत -पृ० ५८६-सर्ग द्वादश

२- साकेत पृ० ३८, सर्ग प्रथम

३- अरे मातृत्व तू अब भी जताती है, ठसक किसको भरत की है बताती
भरत को मार डालूं और तुमको नरक में भी न रक्खूं ठौर तुमको
भला वे कौन हैं जो राज्य लेवें, पिता भी कौन है जो राज्य देवें ।
-साकेत - पृ० ७६ सर्ग ३

४- आये होंगे यदि भरत कुमति वश वन में
तो मैंने यह संकल्प किया है मन में
उनको इस शर का लक्ष्य चुनूंगा क्षण में
प्रतिषेध आपका भी न सुनूंगा रण में। साकेत-सर्ग ८ पृ० २३७

इतना आवेश है, साथ ही स्थायी नहीं है, राम के संकेत मात्र से शांत हो जाते हैं पर साकेत के लक्ष्मण मानस के लक्ष्मण की अपेक्षा अधिक उग्र, अभिमानी और चंचल हैं। इस चंचलता और उग्रता के साथ ही लक्ष्मण आत्मसंयमी हैं, जो उनकी सर्वोत्कृष्ट भावना है, इसका चित्रांकन उस समय किया है जब पर्णकुटी में उर्मिला को अति दीन और दुर्बल दशा में देखते हैं आश्चर्य में पड़ जाते हैं किन्तु कर्तव्य का ध्यान रखते हैं। अपने स्वामी आराध्य राम की सेवा में तत्पर तपस्वी लक्ष्मण सेवापथ से विचलित नहीं होते उसमें अटल रहना ही महानता समझते हैं और कितने सुन्दर विचार व्यक्त करते हैं जो लक्ष्मण के महान् व्यक्तित्व का द्योतक है—

> 'वन में तनिक तपस्या कर के
> बनने दे मुझको निज योग्य
> भाभी की भगिनी तुम मेरे
> अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।[१]

उर्मिला के प्रति भी कितनी उच्च और पावन भावना है अधिकांशतः स्थान पर उसी भाव को प्रदर्शित किया है। गुप्त जी ने कहीं-कहीं अलौकिकता को बुद्धि ग्राह्य बनाने के लिए परिवर्तन किया है जैसे कैकेयी की बुद्धि सरस्वती की प्रेरणा से पलट गयी यह आज का वैज्ञानिक युग मानने को तैयार नहीं इसलिये साकेतकार ने 'भरत से सुत पर भी सन्देह' इन शब्दों की योजना करके मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता ला दी है।

मानस के लक्ष्मण सीता को उत्तर देते हैं अत्यन्त नम्रता के साथ, पर साकेत में वीरोचित गर्व जाग उठता है, जब मायावी कंचन मृग के पीछे राम दूर चले जाते हैं- हा लक्ष्मण हा सीते की आवाज सुन कर सीता उन्हें संकट में समझ कर लक्ष्मण को जाने का आदेश देती है पर लक्ष्मण को राम की अमित शक्ति पर विश्वास है वह सीता को अकेले छोड़ कर जाने को प्रस्तुत नहीं है और सीता उन पर अकर्मण्यता का आरोप लगाती है तब उनका उत्तर उनकी वीरता और साथ ही उग्रता का स्पष्ट उदाहरण है—

१- साकेत : सर्ग ८, पृ०- २५१।

मैं ऐसा दाम्भिक हूँ देवी उसकी तुम क्या समझो देवी
रहा दास मैं और रहूँगा सदा तुम्हारा पद सेवी
उठा लिया है मैं विरुद्ध मैं, किन्तु आओ आओ हो तुम
उसी क्षमा करता हूँ अबला हो आओ तुम।"[1]

पत्नी को त्याग कर आराध्य की सेवा में जीवन के चौदह वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् लक्ष्मण को पति के उत्तरदायित्व और प्र पति-प्रेम का अनुभव होता है। जब सीता जी के विरह में राम को विलाप करते देखा तब लक्ष्मण के हृदय में उर्मिला के प्रति करुणा और स्नेह के भाव जाग्रत हो उठे। उसके पश्चात् हनुमान जी ने सीता की करुण दशा और अंतर्व्यथा का वर्णन किया है उस समय लक्ष्मण उर्मिला के त्याग और सराहनीय जीवन का मूल्य समझते हैं कहते हैं--

" पूर्ण कब से सुनो तुम्हें मैंने कब पाया
जब आर्या का हनुमान ने विरह सुनाया।"[1]

सीता के विरह वर्णन का दुख सुनकर लक्ष्मण का हृदय कांप उठता है और सोचते हैं उर्मिला भी, मेरे वियोग में उतनी ही कातर और दुखी होगी। उर्मिला की याद करके उनका हृदय क्षुब्ध हो जाता है। और कहते हैं-

" आँखों में ही रही अभी तक तुम थी मानी
अंतस्तल में आज अचल निज आसन जानी।"[2]

तात्पर्य है कि लक्ष्मण की दृष्टि में त्याग का अत्यधिक मूल्य है और उनके हृदय में उर्मिला के लिए भी स्थान है मानस के लक्ष्मण की भाँति सब कुछ भुलाकर केवल राम की उपासना नहीं करते बल्कि मर्यादा की सीमा में रह कर पत्नी के

१- साकेत - सर्ग १२ - पृ० ५८६
२- वही - सर्ग १२ पृ० ५८६

प्रति प्रेम, माता के प्रति आदर और विरोधी के प्रति क्रोध सब मानवीय गुणों का परिचय देते हैं जिसका वर्णन गुप्त जी ने किया है ।

अन्त में उर्मिला के योग्य पति बनने की क्षमता प्राप्त करके सच्चे स्वामी के रूप में सम्मुख आते हैं-

" जो लक्ष्मण था एक तुम्हारा लोलुप कामी
कह सकती हो आज उसे तुम अपना स्वामी ।"[1]

इन पंक्तियों में लक्ष्मण की नम्रता और उर्मिला के प्रति सम्मान की भावना का प्रदर्शन किया गया है, साथ ही नायिका की महानता प्रकट होती है, जिसके योग्य पहिले लक्ष्मण नहीं थे किन्तु अब वह उन्हें स्वामी कह सकती है । इस समय लक्ष्मण का स्वरूप त्यागी महापुरुष का है । आरम्भ में प्रिया उर्मिला के प्रति असीम प्रेम को प्रकट करने वाले लक्ष्मण पल भर में उस नववधू का त्याग कर तपस्वी वेश में चले जाते हैं यह उनकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक है। उर्मिला के चरित्र की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए कहीं-कहीं गुप्त जी ने ऐसा विचार प्रकट किया है और भौतिकता का सहारा लिया है ।

अधिकांश का यही मत है कि साकेत का नायक लक्ष्मण है क्योंकि मानवीय दुर्बलता के रूप में उग्रता और उदंडता का चित्रांकन अनुचित नहीं माना गया है किन्तु विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से राम के सम्मुख लक्ष्मण को प्रमुख पात्र -नायक- नहीं माना जा सकता है अत: यह समस्या विचारणीय है ।

<u>राम "साकेत" के नायकत्व के अधिक समीप हैं अथवा लक्ष्मण :-</u>

<u>धीरोदात्त</u> :-महाकाव्य के नायक को धीरोदात्त होना चाहिए राम में सभी गुण विद्यमान हैं जो धीरोदात्त नायक के लिये अनिवार्य कहा गया है । राम के गुणों में कोई भी साहित्यकार परिवर्तन नहीं कर सका ।[2] विनयशील, सुंदर त्यागी, मृदु-

---

१- साकेत - पृ० ५८९- वीं द्वादश

मानी, लोकप्रिय, स्वाभिमानी राम के प्रति गुप्त जी ने आरम्भ में ही अपनी आस्था को प्रकट किया है --

> "हो गया निर्गुण सगुण साकार है
> ले लिया अखिलेश ने अवतार है ।"[1]

यह तो गुप्त जी का आंतरिक भाव था पर युगानुसार उन्होंने राम को एक महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित किया है । साकेतकार ने अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा को राम के चरणों में केन्द्रीभूत कर दिया है और अपनी कृति में उन्हें प्रधानता दी है । यह अवश्य है कि लक्ष्मण की अपेक्षा राम हमारे सन्मुख कम आते हैं पर इससे राम के महान् चरित्र में कोई अवरोध नहीं होता और जब हम यह विचार करते हैं कि राम के ही वृत्त की पूर्ति के लिए गुप्त जी के सभी पात्रों का चारित्रिक विकास हुआ है तो हमारा हृदय राम को नायक रूप में देखने को व्याकुल हो उठता है । पिता के वचन को सत्य सिद्ध करने के लिए राम ने प्रथम ही राजसिंहासन त्याग कर चौदह वर्षों के लिए वनवासी होना स्वीकार कर लेते हैं और इस दुर्गम पथ पर अग्रसर होने के लिए किंचित् मात्र भी चिन्ता नहीं करते बल्कि सहर्ष पितृ आज्ञा का पालन करते हैं । राम के इस महान् वृत्त को पूर्ण करने के लिए सभी प्रमुख पात्र कर्म क्षेत्र के प्रांगण में उतरते हैं और प्रयत्न करते हैं ।

महाकाव्य के नायक का सर्वोत्कृष्ट गुण "धीर" है । प्रत्येक कार्य करने के लिए नायक को धीर होना आवश्यक है । धीरोदात्त नायक के दृष्टान्त के रूप में साहित्यकार राम को प्रस्तुत करते हैं राम के समक्ष उग्र और उद्धत, चपल और चंचल लक्ष्मण को कैसे नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है । "धीरोदात्त" नायक की कोटि में लक्ष्मण को किसी प्रकार नहीं रक्खा जा सकता है । विषम से विषम परिस्थितियों में भी राम के चित्त का संतुलन भाव बना रहता है जब कि लक्ष्मण अत्यन्त उद्दंड हो उठते हैं जिस समय लक्ष्मण को ज्ञात होता है कि कैकयी ने दशरथ से वरदान रूप में राम के लिये चौदह वर्षों का वनवास और भरत के लिये राज्य मांगा है उनके क्रोध की सीमा नहीं रहती और आवेश में आकर उग्र रूप धारण

१- साकेत - पृ० १८ - प्रथम सर्ग

कर देती है, मां कैकेयी को ऐसे अपशब्द कहते हैं जो "धीर" नायक के स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। कहते हैं-

"अरी मातृत्व तू अब भी जताती है
ठसक किसको भरत की है बताती
भरत को मार डालूं और तुझको
नरक में भी न रक्खूं ठौर तुझको ।"[1]

उद्धत प्रकृति लक्ष्मण के क्रोध की पराकाष्ठा का चित्रण इन पंक्तियों में किया गया है जब वह उग्रता की परिधि को लांघ जाते हैं और कह उठते हैं-

"तुम्हें सुत भाग्यिनी सांपिन समझकर
निशा को मुंह छिपाते दिन समझकर
+ +
खड़ी है मां बनी जो नागिनी यह
अनार्या की जनी हतभागिनी यह
अभी विषदन्त इसके तोड़ दूंगा
न रोको तुम तभी मैं शान्त हूंगा ।"[2]

पिता के प्रति भी अनेक अपमान सूचक शब्द कहना लक्ष्मण के प्रति निर्विरोध सम्मान नहीं स्थापित होने देता जब वह कहते हैं -

"बने इस दस्युता के दास हैं जो
इसी से दे रहे वनवास हैं जो
पिता हैं वे हमारे या कहूं क्या
कहो हे आर्य ! फिर भी चुप रहूं क्या"[3]

१- साकेत - पृ० ७६ सर्ग तृतीय
२- वही पृ०७७-७८ सर्ग तृतीय
३- वही पृ० ७८ सर्ग तृतीय

संतुलन की क्षमता:-

इस विकट परिस्थिति में शान्त और धीर वृत्ति राम के आदर्श रूप का दर्शन होता है जहां हृदय स्वयं श्रद्धा से परिपूर्ण हो जाता है मस्तक नत हो जाता है ।, राम शीतल और अमृतमय वचन से लक्ष्मण को शान्त करते हैं कहते हैं-

'रहो, सौमित्र तुम क्या कह रहे हो
संभालो वेग देखो बह रहे हो
+ +
कहा प्रभु ने कि हो बस चुप रहो तुम
अरुन्तुद वाक्य कहते हो अहो । तुम
जताते कोप किस पर हो कहो तुम
सुनो जो मैं कहूं चंचल न हो तुम ।'[१]

बारम्बार राम अपने मन को संतुलित करते हुए लक्ष्मण को समझाते हैं कहते हैं पूज्य पिता के प्रति ऐसे अनादरयुक्त शब्द नहीं उच्चारण करना चाहिए। इस समय जो नीति का उपदेश लक्ष्मण को देते हैं वास्तव में अभिनंदनीय है उनके प्रति हमारे हृदय में आदर्श की भावना स्वत: जाग्रत हो जाती है राम का कथन कितना मार्मिक है --

'तुम्ही को तात यदि बनवास देते
उन्हें तो क्या तुम्ही यों त्रास देते
पिता जिस धर्म पर यों मर रहे हैं
नहीं जो इष्ट वह भी कर रहे हैं
उन्हीं कुलकेतु के हम पुत्र होकर
करें राजत्व क्या वह धर्म खोकर ?
प्रकृति मेरी स्वयं तुम जानते हो
वृथा हठ हाय फिर क्यों ठानते हो

१- साकेत - पृ० ७७-७८ सर्ग तृतीय

बड़ों की बात है अविचारणीया
मुकुटमणि तुल्य शिरसा धारणीया
वचन रक्खे बिना जो रहन सकती
तदपि वात्सल्य वश कुछ कह न सकती
उन्हीं पितृदेव का अपमान लक्ष्मण
किया है आज क्या कुछ पान लक्ष्मण।[1]

राम का शान्तप्रिय स्वभाव प्रशंसनीय है — लक्ष्मण से कहते हैं-

'उऋण होना कठिन है तात ऋण से
अधिक मुझको नहीं राज्य तृण से[2]'

कितना अन्तर है राम और लक्ष्मण के दृष्टिकोण में राम उसी पिता के ऋण से उऋण नहीं हो सकते जिसने राज्य के स्थान पर वनवास दिया और स्थिर प्रज्ञ राम को कण-मात्र भी दुख नहीं है। मुख्य घटना स्थलों पर जब भी विषम परिस्थितियां उत्पन्न हुई राम ने उसे संतुलित किया जो नायक का कर्तव्य है। अत: राम के समक्ष हम उद्धत प्रकृति लक्ष्मण को कैसे महाकाव्य का सफल नायक कह सकते हैं। जीवन पथ पर आने वाली विषमताओं का शान्ति के साथ दृढ़ चित्त होकर सामना करने वाले राम नायकत्व के अधिक समीप हैं अपेक्षाकृत लक्ष्मण के। जब भी कोई ऐसा संकटकाल आया लक्ष्मण ने उग्रता और क्रोध का परिचय दिया और राम ने उसे विवेकपूर्ण विचारों से सुलझाया। भरत जब राम को मनाने के लिये चित्रकूट जाते हैं साथ में सेना और अयोध्यावासियों का अपार जन समूह देख कर लक्ष्मण उग्र रूप धारण कर लेते हैं और बिना विचार किये धारणा बना लेते हैं तथा कहते हैं —

१- साकेत - पृ० ७६-८० सर्ग तृतीय
२- वही पृ० ८० सर्ग तृतीय

'आये होंगे यदि भरत कुमति-वश वन में
तो मैंने यह संकल्प किया है मन में
उनको इस शर का लक्ष्य चुनूंगा क्षण में
प्रतिषेध आपका भी न सुनूंगा रण में।'[1]

राम अत्यन्त ही शान्तपूर्ण मुद्रा में स्थित है और बुद्धिग्राह्य तर्क के द्वारा समझाते हैं-

'पर हम क्यों प्राकृत पुरुष आप को मानें
निज पुरुषोत्तम की प्रकृति क्यों न पहचानें
हम सुमति छोड़ क्यों कुमति विचारें मन की
नीचे ऊपर सर्वत्र तुल्य गति मन की[2]।'

अंत में लक्ष्मण को पराजित होना पड़ता है और कहते हैं-

'बस हार गया मैं आर्य आप के आगे
तब भी तनु में शत पुलक भाव ये जागे[3]।'

शान्त होकर लक्ष्मण समर्पण कर देते हैं। ऐसे अवसरों पर निरन्तर राम की विजय होती है और राम को ही नायक के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना न्यायसंगत लगता है। लक्ष्मण तो प्रत्येक कार्य राम के वृत्त को सम्पन्न करने के लिए करते हैं।

जनकल्याण की भावना-

गुप्त जी का प्रमुख उद्देश्य मानवता का कल्याण वह राम के ही द्वारा प्रसारित किया जाता है। महाकाव्य का युग के लिए जो अमर संदेश है वह राम की वाणी में मुखरित होता है -

---

१- साकेत - पृ० २३८ सर्ग अष्टम
२- वही पृ० २३९ सर्ग अष्टम
३- वही पृ० २३९ सर्ग अष्टम

'संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया [१]।'

राम के समक्ष लक्ष्मण को नायक नहीं माना जा सकता है । साधारण दृष्टि से नायक के पद पर वही महापुरुष शोभा पाता है जिसके प्रति हमारे हृदय में अटूट श्रद्धा, अपार सम्मान की भावना स्थापित हो सके । भले ही हम अपने को नायक के समान न बना सके पर वह हमारे जीवन के पथ प्रदर्शक के रूप में हमारी गुत्थियों को सुलझाने के लिये सदैव हमारे नेत्रों के सन्मुख रहता है । इस प्रकार राम के प्रति हमारे मन में जो पुनीत तथा आदरणीय भाव उत्पन्न होते हैं वह राम को नायकत्व के अधिक समीप पहुँचा देते हैं । 'धीर' राम की तुलना में उद्धत लक्ष्मण को अपना आदर्श पात्र चुनने के लिए हृदय तत्पर नहीं होता ।लक्ष्मण के लिये आदर और सम्मान की भावना भले ही हो पर जहां तक नायकत्व का प्रश्न है वह अधिकार राम को ही देना श्रेयस्कर है, राम साकेत के सर्वोत्कृष्ट पात्र हैं ।

१- साकेत - पृ० २३५ सर्ग अष्टम

कामायनी में नायक

:सन् १९३५:

कामायनी —

आधुनिक युग की बृहतत्रयी में तीसरा महाकाव्य कामायनी है, हिन्दी का उत्कृष्टतम महाकाव्य है । प्रसाद जी ने अपने इस महाकाव्य में मानवीय संस्कृति और मानवीय भावनाओं की व्याख्या की है ।

कामायनी का कथानक ऋगवेद, शतपथ ब्राह्मण छान्दोग्य उपनिषद तथा श्रीमद्भागवत पर आधारित है ।[१]

इसमें मानवीय मूलाधारों की आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या पाते हैं । देव सृष्टि के जल पलावन के दृश्य से इस काव्य का आरंभ होता है । जल पलावन से बचे हुए आदि मानव वैवस्वत मनु एकाकी चिंतित बैठे हैं । अतीत वैभव और सुख की स्मृति एक प्रकार का विषाद उत्पन्न कर रही है सहसा उन्हें उषा का नव आलोक दृष्टिगोचर होता है, उनमें आशा का संचार होता है और वे मानस लोक में पहुंचकर उस विचित्र स्थिति की अनुभूति करते हैं जिसमें रस छलक रहा है पर रसास्वादन की शक्ति होनी चाहिए उसको गृहण करने की क्षमता होनी चाहिए । उसी समय उन्हें काम गोत्रजा श्रद्धा रागमयी अनुप्रेरणा का साकार रूप अचानक मिल जाती है और उनमें अनुराग जगाती है —

> दुख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात
> एक परदा यह भीना नील, छिपाये है जिसमें सुख गात ।[२]

१- साहित्यविवेचन : क्षेमचन्द्र सुमन - पृ०- ८७
:साहित्यकी : शचीरानी गुर्टू - पृ०- २६
:काव्य के रूप : गुलाब राय - पृ०- ६७
:काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास : डा० शकुंतला दुबे -पृ०-७६

२- कामायनी : पृ०- ५३ -सर्ग श्रद्धा

श्रद्धा अत्यन्त सहानुभूति प्रकट करती है, पूछती है —

> तपस्वी । क्यों इतने हो क्लांत
> वेदना का यह कैसा वेग ?[१]

इस वैज्ञानिक युग में महाकवि प्रसाद ने कामायनी का सृजन एक दार्शनिक पृष्ठभूमि पर किया है । कोरी बुद्धिवादी सभ्यता आनंद नहीं प्रदान कर सकती उसके लिये बुद्धि और हृदय, विज्ञान तथा धर्म में सामंजस्य की पूरी आवश्यकता है । इस ऊंचे संदेश को देने के लिये प्रसाद ने भारतीय प्रत्यभिज्ञा दर्शन से समरसता या आनंदोपलब्धि का सिद्धान्त लिया है ।[२]

इसकी सबसे बड़ी विशेषता है प्रसाद जी की मौलिकता जो कुछ लिखा है वह शतप्रतिशत अपनी अनुभूति है । कामायनी की रचना सस्ती भावुकता के प्रेमी पाठकों के लिये नहीं है बल्कि चिन्तनशील सरस हृदय पाठकों के लिये हुई है । इन ऐतिहासिक पात्रों की रूपक रचना भी प्रस्तुत की गई है इड़ा-बुद्धि की प्रतीक है, श्रद्धा हृदय की और मनु मानव का । मनु के चरित्र में आदि मानव का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । प्रसाद जी ने हृदय समन्वित बुद्धि को ही श्रेष्ठतम माना है यही कारण है कि मनु के उद्विग्न मन को अन्त में श्रद्धा वश में कर सकी इड़ा नहीं । मानव की कोमल अंतर्वृत्तियां केवल बुद्धिबल से वश में नहीं की जा सकती है । प्रसाद जी ने चिन्ता, लज्जा, आदि अव्यक्त भावों का चित्रवत वर्णन कर[३] अपनी अद्वितीय कला का परिचय दिया है । लज्जा सर्ग में लज्जा का चित्रण अत्यन्त ही प्रभावपूर्ण है ।

१- कामायनी : पृ०- ५२ - सर्ग श्रद्धा

२- काव्य रूपों का मूल स्रोत और उनका विकास - पृ०- ७५-७६ (थीसिस)
- डा० शकुन्तला दुबे

३- सिर नीचा कर हो गूंथ रही माला जिससे मधु धार ढरे
छूने में हिचक देखने में पलकें आंखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूंजे अधरों पर सहसा रुकती है
संकेत कर रही रोमाली चुपचाप बरजती खड़ी रही
भाषा बन भौहों की काली रेखा सी भ्रम में पड़ी रही ।
-कामायनी - लज्जा सर्ग : पृ०- ९८-९९

मानवीय चित्रण में श्रद्धा के शब्द चित्रण[1] में कला की चरम सीमा है ।

कामायनी निश्चय ही हिन्दी साहित्य के नवयुग का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य और विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है । आनंदोपलब्धि और समरसता की प्राप्ति के लिये प्रसाद जी[2] इच्छा, क्रिया, ज्ञान का समन्वय आवश्यक समझते हैं । आज के यांत्रिक युग में प्रसाद जी ने इस महत् संदेश को देने के लिए मनु और श्रद्धा के पौराणिक आख्यानों को एक नवीन शैली से प्रबंध काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है । संपूर्ण काव्य १५ सर्गों में बड़े ही सुसंबद्ध रूप से नाटकीय शैली में रचा गया है ।

प्रत्येक सर्ग का शीर्षक एक विशेष महत्व रखता है । `चिंता` सर्ग से काव्य आरंभ होता है ।`आशा` सर्ग में प्रकृति का सुंदर चित्रण है । श्रद्धा से घटना क्रम का आरंभ होता है इस सर्ग में मनु श्रद्धा के मिलन का वर्णन है । इसके पश्चात् `काम` `वासना` `लज्जा` के सर्गों में घटना का विकास होता चलता है । `कर्म` सर्ग में पहुंचकर इड़ा में चरम विकास होता है अंतिम सर्ग में इड़ा, कुमार और प्रजा के साथ मानस तट पर मनु श्रद्धा के पास पहुंच जाते हैं और आनंद सागर में थाह सी लेते हुए समरस[3] हो जाते हैं ।

१- नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ वन बीच गुलाबी रंग ।
-कामायनी : श्रद्धा सर्ग, पृ०-४६

२- साहित्य विवेचन : पृ०- ६० -क्षेमचन्द्र सुमन, योगेन्द्र कुमार मलिक

३- समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था ।
चेतनता एक विलसती, आनंद अखंड घना था ।।
-कामायनी : अंतिम सर्ग`आनंद` : पृ०- २६४

द्विवेदी युग के अंतिम काल में `रामचरित चिंतामणि` `नल नरेश` `सिद्धार्थ` की रचना हुई । इसके पश्चात् छायावाद के युग में (गीत काव्य के युग में) कवियों की वृत्ति में अमूल परिवर्तन हो गया, व्यक्तिवाद की लहर दौड़ पड़ी । कवि वाह्य वृत्ति की अपेक्षा अंतर्वृत्ति का निरूपण करने में अधिक रुचि लेने लगा । उसकी वाह्य अभिव्यंजना ने अनुभूति को अधिकांशत: गीतिकाव्य के रूप में संवारा उनके सुख दुख, आशा निराशा का राग उनकी कविता की वीणा में झंकृत हो उठा ।

जब स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की ओर कवियों का अभिज्ञान क्रमश: बढ़ने लगा तो विश्व में अंतर्गत सत्य की ओर कवियों की दृष्टि अधिक गई । कवि आध्यात्मिकता की ओर ले जाने में समर्थ हुआ इसीसे छायावाद के वाद रहस्य वाद की विचारधारा पवाहित हुई । आध्यात्म में करुणा एक आवश्यक उपादान है । जिससे सत्य को हृदयंगम करने में सुविधा हुई । स्थूल के कारण यह आत्मा जब सत्य से परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाती तब करुणा भाव की उद्भावना होती है । छायावादी कवियों ने स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म को लिया । फूल की अपेक्षा सुगंध और लहरों की गतिशीलता को लिया । इन रहस्यवादी कवियों ने सत्य की प्राप्ति के लिये करुणा की सहज भावना, को लिया । छायावादी कवियों ने अंतर्जगत को लिया जिसके द्वारा आनंद की सत्य की प्राप्ति कर सकें ।

नवयुग की देन स्वरूप विज्ञान ने भारतीय आध्यात्मिकता की सुदृढ़ नीव को ही विनष्ट करने की चेष्टा की । ऐसे बुद्धिवादी युग में मानव सभ्यता का संपूर्ण ज्ञान रखते हुए भाव की ऊंचाई पर पहुंच कर जहां `भूमा का सुख` इसी लोक के भीतर दृष्टिगोचर होता है प्रसाद जी ने कामायनी का सृजन किया । वैज्ञानिक युग में किस प्रकार जीवन की जटिलताओं को दूर कर मानव आनंद की ओर उन्मुख हो इसी महान् विषय को लेकर कामायनी का प्रणयन हुआ है । कामायनी का प्रतिपाद्य विषय समरसता और आनंदोपलब्धि है । इस सिद्धांत को पौराणिक आख्यान के बीच इस रूप में गुम्फित किया है कि उसका स्वरूप युगानुरूप अत्यंत व्यावहारिक हो उठा है ।

प्रिय प्रवास और साकेत जैसे महाकाव्य परम्परागत कृष्ण काव्य और रामकाव्य से प्रभावित होने के कारण सर्वथा मौलिक नहीं कहे जा सकते । इनके पश्चात् कामायनी ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसकी मौलिकता में संदेह नहीं हो सकता । प्रसाद जी ने मानव जीवन का चिरंतन और सार्वभौम रूप प्रस्तुत किया है, इसमें विश्व को आत्मसात करने की क्षमता है । आदि पुरुष मनु द्वारा नूतन मानवी सृष्टि की कथा है तथा मानव की चिरंतन मनोवृत्तियों की विश्लेषण है; शाश्वत वृत्तियों और अनुभूतियों की व्यंजना केवल ऐतिहासिक कथन के द्वारा की है । इसमें प्राचीन तथा नवीन महाकाव्यागत सिद्धान्तों का सुंदर समन्वय है तथा मानव जीवन की मनोवैज्ञानिक व्यंजना को कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है । प्रसाद की गहन दृष्टि भौतिक वाद से परे मानवीय जीवन की महत् भावनाओं को खोजकर हमारे सन्मुख प्रस्तुत करती है ।

कामायनी में नायक मनु :—

कामायनी में नायक आदि पुरुष मनु हैं और नायिका आद्या नारी श्रद्धा है । मनु का व्यक्तित्व दो रूप रखता है एक ऐतिहासिक और दूसरा सांकेतिक । मनुष की अपेक्षा श्रद्धा को प्रमुख पात्र के रूप में अधिक महत्व दिया है । कथानक की रूपकात्मक अभिव्यंजना के लिये कवि ने अपने प्रधान पात्रों को मानो वैज्ञानिक रूप से उपस्थित किया है । प्रसाद जी ने हृदय समन्वित बुद्धि को ही श्रेयस्कर कहा है और कोरी बुद्धि पंगु है । जब मन प्रेरणा देता है तभी बुद्धि विचारणीय विषय पर निर्णय देती है- गीता में कहा है—

"श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:"[१]

जब मन श्रद्धा समन्वित बुद्धि द्वारा कर्म क्षेत्र में बढ़ता है तभी इच्छा, क्रिया, ज्ञान का समन्वय जीवन में हो पाता है और तब आनंदोपलब्धि भी होती है ।

१- गीता - अध्याय ४ , श्लोक ३६

यही प्रमुख उद्देश्य है महाकवि का, इसी संदेश को देने के लिये नवीन रीति से मनु के पौराणिक आख्यान को संजोया है ।

नायक मनु के लिये प्रसाद जी ने कहा है कि "मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के युग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गई है इसलिये वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है ।" ऋग्वेद[1] में मनु का वर्णन एक ऋषि और राजा दोनों रूपों में पाया जाता है । श्रद्धा से संबंधित एक सूक्त ही उसमें वर्तमान है । महाभारत आदि पुराणों में भी मनु का उल्लेख है । शतपथ ब्राह्मण[2], छान्दोग्य उपनिषद[3] विविध पुराणों में मनु, श्रद्धा और इड़ा की कहानी है । शतपथ[4] में मनु की नाव का मत्स्य के पंख के सहारे हिमालय में पहुंचना वर्णित है ।

प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार नायक मनु धीरोदात्त गुणों से समन्वित नहीं है । शौर्य, साहस, पराक्रम का वह रूप नहीं पाया गया जो एक महाकाव्य के नायक में अपेक्षित है किन्तु दुर्बलता और परिस्थितियों के चक्र में उलझता हुआ भी जीवन के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और अंत में महान्

१- ऋग्वेद - ८, २७-३१

: इड़ा सरस्वती महीतिस्त्रो देवीर्मयोभुव:

-ऋग्वेद- १०, १५१-१५४ ।

२- मनु वैवस्वतो राजेत्याह ।

-शतपथ ब्राह्मण कांड १३, ४, ३३

: मनवेवेह प्रात: । अवेनेग्यमुदकमाजहुर्यथेदं पाणिभ्यामवने जानाया हरन्त्येवं तस्यावने निजानस्य मत्स्य: पाणीऽआपेदे ।।

-शतपथ ब्राह्मण कांड ११, ४, १५

३- यदावैमनुतेऽथ विजानामत्वा /

-छांदोग्योपनिषद् अध्याय ७, १८

: यदा वै श्रद्धधात्यथमनुतेनाश्रद्धधन्मनुते श्रद्धधदेव

-छांदोग्योपनिषद अध्याय ७, १६

४- इत्यतिथिं तत्समांपरिदिदेश ततिथी समांनावमुपकल्प्यो पासां चक्रे सहोवाचा अपीपरं वैत्वा वृक्षेनावं प्रतिबध्नीष्व । -शतपथ ब्राह्मण कांड,१,८,

हो जाता है । चरित्र चित्रण की दृष्टि से इस मनोवैज्ञानिक युग में मनु का चरित्र अपनी अलग ही विशेषता रखता है । यद्यपि शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार उदारता और परिस्थितियों पर विजय पाने की अपूर्व क्षमता आदि गुण इनमें नहीं हैं । मनु में शौर्य साहस है पर उदात्त भाव नहीं है, उद्धत है । महाकाव्य के नायक को धीरोदात्त होना चाहिए । मनु क्षण क्षण पर चंचल वृत्ति का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । गर्भिणी श्रद्धा को त्याग कर अनिश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं । सारस्वत प्रदेश की सीमा पर इड़ा से प्रेम का प्रतिदान करते हैं । मनु का समस्त कार्य कलाप उद्धत गुण का पोषक है ।

प्राचीन युग में चरित्र चित्रण का महत्व आदर्श स्थापना मात्र ही समझा जाता था किन्तु आज के युग में चरित्र चित्रण ही साहित्य का मुख्य विषय है । प्रसाद जी ने कमायनी में पात्रों की बर्हिमुखी वृत्तियों की अपेक्षा अंर्तमुखी वृत्तियों को महत्व दिया है । अंर्तसंघर्ष के द्वारा वे अपना ही पथ निश्चित नहीं करते वरन् समस्त मानव-जाति के लिये कर्म पथ इंगित करते हैं । प्रसाद जी ने अपने पात्रों के गहराई में डूबे हुए एक-एक स्तर को अपनी कुशल लेखनी से उभारने का प्रयत्न किया है, बाह्य और आन्तरिक दोनों रूप उपस्थित किये हैं, उनकी सूक्ष्म अंर्तभेदिनी दृष्टि चरित्र चित्रण में बर्हिमुखी होने की अपेक्षा अंर्तमुखी अधिक दीख पड़ती है ।

आदि मानव वैवस्वत मनु का सर्व प्रथम दर्शन चिंतित अवस्था में होता है देवसृष्टि के जल प्लावन के दृश्य से काव्य का आरंभ होता है । मनु एकाकी उदास बैठे हैं अतीत के सुख की स्मृति विषाद उत्पन्न कर रही है । सहसा उषा के नव प्रकाश से उनमें आशा का संचार होता है । हृदय में रस की अनुभूति करते हैं उसी समय काम गोत्रजा श्रद्धा (नायिका) अनुप्रेरणा के रूप में मिलती है उनमें प्रेम की भावना जाग्रत करती है । यहां मनु के चरित्र का विस्तृत अवलोकन करना है ।

तेजस्विता :— प्रसाद जी ने आरंभ में ही शरीर संपत्ति का वर्णन करके मनु के व्यक्तित्व में देव अंश की अवतारणा की है —

अवयव की दृढ़ मांस पेशियां
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिराएं स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार ।[१]

मनु का सर्व प्रथम दर्शन प्रथम सर्ग में मिलता है —

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छांह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह ।[२]

उसी समय उन्हें कामगोत्रजा श्रद्धा रागमयी अनुप्रेरणा का साकार रूप अचानक मिल जाती है और श्रद्धा के देखते ही उनके हृदय में प्रेम के भाव उत्पन्न होते हैं—

एक झिटका सा लगा सहर्ष
निरखने लगे लुटे से कौन
गारहा यह सुन्दर संगीत
कुतूहल रहन न सका फिर मौन ।[३]

मनु की वीरता का परिचय उस समय मिलता है जब श्रद्धा को त्याग कर सारस्वत प्रदेश में पहुंचते हैं । यहा की रानी इड़ा से साक्षात् होता है। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं और वासना की तृप्ति का मार्ग ढूंढ़ते हैं । अन्त में बलात्कार कर बैठते हैं । सारस्वत देश की सारी प्रजा विद्रोह कर उठती है, आत्मजा प्रजा के ऊपर बलात्कार होने से सारी देव शक्तियां क्रुद्ध हो उठती हैं । मनु अकेले सामना करते हैं उच्छृंखलता के साथ मनु में तेजस्विता और पौरुष

१- कामायनी : जयशंकर प्रसाद : पृ०-४, सर्ग चिंता

२- कामायनी : जयशंकर प्रसाद : पृ०- १, सर्ग चिंता

३- कामायनी : जयशंकर प्रसाद : पृ०-४६, सर्ग श्रद्धा

भी है । अंत में मनु घायल होकर गिर पड़ते हैं । इस समय के दृश्य का जो चित्रण प्रसाद जी ने किया है उससे मनु की वीरता का प्रमाण मिलता है । सारस्वत प्रदेश की प्रजा कहती है —

ओ यायावर ! अब तेरा निस्तार कहां[1]

समस्त प्रजा से मनु अकेले लोहा लेते हैं और ओजपूर्ण शब्दों में कहते हैं —

तो फिर मैं हूं आज अकेला जीवन रण में
प्रकृति और उसके पुतलों के दल भीषण में
आज साहसिक का पौरुष निज तन पर लेलें
राज दंड को बज्र बना सा सचमुच देखें ।
यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सम्हाला
देव `आग` ने उगली त्योंही अपनी ज्वाला
छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले
टूट रहे नभ धूमकेतु अति नीले पीले

< < < <

किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन वाणों को
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को[2]

इस प्रकार नायक मनु में अपूर्व तेज और शौर्य का प्रदर्शन किया गया है ।

एकान्त प्रेम की उपासना:— कामायनी के मनु एकांत प्रेम की उपासना करते हैं । उन्हें यह सहन नहीं कि उनके प्रणय में किंचित मात्र शिथिलता आये । उन्हें भावी पुत्र से ईर्षा होती है । श्रद्धा उसके लिये पर्णकुटी का निर्माण करती है

१- कामायनी : पृ०- १९९ , सर्ग संघर्ष

२- कामायनी : पृ०- २०० , सर्ग संघर्ष

और मनु से कहती है —

मैंने तो एक बनाया है
चल कर देखो मेरा कुटीर

x x x x

उसमें था फूला पड़ा हुआ
वेतसी लता का सुरुचिपूर्ण[1]

परन्तु मनु अविभाजित प्रेम चाहते हैं। पुत्र को प्रतिद्वन्दी समझ कर उसके प्रति घृणा की भावना रखते हैं। उन्हें यह मधुर कल्पना दुखदायी प्रतीत होती है —

मनु देख रहे थे चकित नया
यह गृह लक्ष्मी का गृह विधान
पर कुछ अच्छा सा नहीं लगा
यह क्यों ? किसका सुख साभिमान ?[2]

नायक मनु के हृदय की ईर्ष्या प्रकट हो जाती है वह कह उठते हैं, मैं किसी प्रकार का विभाजन अपने प्रेमदान में नहीं चाहता मुझे संपूर्ण प्रेम का अधिकार दो, कहते हैं —

यह जलन नहीं मैं सह सकता
चाहिए मुझे मेरा ममत्व
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूं बन एक तत्व
यह द्वैत अरे यह द्विविधा तो
है प्रेम बांटने का प्रकार
भिक्षुक मैं ? ना, यह कभी नहीं[3]
मैं लौटा लूंगा निज विचार।

१- कामायनी : पृ०- १४६-१५० सर्ग ईर्ष्या
२- कामायनी : पृ०- १५० सर्ग ईर्ष्या
३- कामायनी : पृ०- १५३ सर्ग ईर्ष्या

मनु केवल अपना विकास, अपना सुख चाहते हैं न श्रद्धा से मोह, न प्राणी मात्र से संबंध, न लोक कल्याण की ही भावना तभी तो ऐसा विचार प्रकट करते हैं, अपने ही सुख को महत्व देते हैं —

तुच्छ नहीं है अपना सुख भी
श्रद्धे वह भी कुछ है
दो दिन के इस जीवन का तो
वही चरम सब कुछ है -[१]

एकान्त प्रेम की उपासना में मनु इस प्रकार लीन हैं वह श्रद्धा से स्पष्ट कहते हैं तुम्हारे चित्त में केवल मेरा स्थान रहे मुझे ही अपना प्यार दो —

यह जीवन का वरदान मुझे
दे दो रानी अपना दुलार
केवल मेरी ही चिंता का
तव चित्त वहन कर रहे भार
मेरा सुन्दर विश्राम बना
सृजता हो मधुमय विश्व एक
जिसमें बहती हो मधु धारा
लहरें उठती हो एक एक[२]

यह जलन की भावना चरम सीमा पर पहुंच जाती है मनु अपनी जीवन संगिनी श्रद्धा को त्याग कर चले जाते हैं क्योंकि वह उस पर केवल अपना अधिकार चाहते हैं। उन्हें श्रद्धा के भावी संतान की कल्पना असह्यनीय है। मनु अपने निराश जीवन में स्फूर्ति और आशा का संचार करने वाली प्रणय सहचरी को छोड़कर भाग जाते हैं —

१- कामायनी : पृ०- १४७ , सर्ग- ~~[illegible]~~ कर्म

२- कामायनी : पृ०- १४८ , सर्ग- ईर्ष्या

कह ज्वलनशील अंतर लेकर
मनु चले गये थे शून्यप्रान्त
"रुक जा सुन ले ओ निर्मोही
वह कहती रही अधीर श्रांत ।[1]

उच्छृंखलता:—

श्रद्धा का त्याग मनु के जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है, मनु के उद्धत और चंचल स्वभाव इंद्रिय जनित सुख की आकांक्षा का अकाट्य दृष्टांत है। आत्मवादी व्यक्ति के जीवन का अभिशाप यही है कि वह अपने अहं को इस सीमा तक प्रबुद्ध कर लेता है कि उसे सांसारिक भोग विलास की चरम परिणति में ही शरण मिलती है। मनु जीवन में इंद्रिय सुख को महत्व देते हैं, तृष्णा विलास में लीन हैं श्रद्धा के नारीत्व और यौवन से खिलवाड़ करना चाहते हैं, विलास और वासना के नद में प्रवेश करते जाते हैं। भौतिक सुख और वासना की तीव्र भूख पराकाष्ठा पर पहुंचती है जब मनु गर्भवती श्रद्धा से भी काम पिपासा की तृप्ति चाहते हैं और श्रद्धा का कृश शरीर देखकर भी उन्हें कुछ ध्यान नहीं आता—

केतकी के गर्भसा पीला मुंह
आंखों में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी
कम्पित लतिका सी लिये देह

* * *

श्रम बिन्दु बना सा झलक रहा
भावी जननी का सरस गर्व ।[2]

इस प्रकार श्रद्धा में वह पूर्व उल्लास, उमंग और स्फूर्ति नहीं पाते और सोचते हैं—

१- कामायनी : पृ०- १५४ , सर्ग- ईर्ष्या
२- कामायनी : पृ०- १४२-१४३, सर्ग- ईर्ष्या

आती है वाणी में न कभी
वह चाव भरी लीला हिलोर
जिसमें नूतनता नृत्यमयी
इठलाती हो चंचल मरोर[1]

× × ×

इसके अतिरिक्त:—

मनु ने जब देखा श्रद्धा का
वह सहज खेद से भरा रूप
अपनी इच्छा का दृढ़ विरोध
जिसमें वे भाव नहीं अनूप[2]

और जब उन्हें स्पष्ट रूप से यह विदित हो जाता है कि श्रद्धा गर्भवती है तथा अपने भावी पुत्र की कल्पना में आनंद मग्न है तब ईर्षा की ज्वाला से जलने लगते हैं और कहते हैं —

तुम फूल उठोगी लतिका सी
कम्पित कर सुख सौरभ तरंग
मैं सुरभि खोजता भटकूंगा
वन-वन बन कस्तूरी कुरंग

× × ×

तुम अपने सुख से सुखी रहो
मुझको दुख पाने दो स्वतंत्र

× × ×

लो चला आज मैं छोड़ यहीं
संचित संवेदन भार पुंज ।[3]

१- कामायनी : पृ०- १४० , सर्ग- ईर्षा
२- कामायनी : पृ०- १४३ , सर्ग- ईर्षा
३- कामायनी : पृ०- १५३-१५४, सर्ग-ईर्षा

इस घटना से मनु के उच्छृंखल स्वभाव का परिचय मिलता है । इनके जीवन में अनेक अवसर ऐसे आये हैं, जो इनकी चंचल प्रवृत्ति और उद्धत स्वभाव को प्रकट करते हैं । असुर पुरोहित किलात और आकुलि से प्रभावित होकर पशु बलि करने को तत्पर हो जाते हैं, श्रद्धा समझाती हैं पर वह नहीं मानते हैं, सोम और सुरापान से मस्त होकर असुर संस्कृति से देवता मनु प्रभावित हो जाते हैं और पतन की ओर चले जाते हैं, अपनी मर्यादा को विस्मृत कर देते हैं —

पुरोडाश के साथ सोम का
पान लगे मनु करने
लगे प्राण के रिक्त अंश को
मादकता से भरने ।[1]

श्रद्धा से कहते हैं —

देवों को अर्पित मधु मिश्रित
सोम अधर से छू लो
मादकता दोला पर प्रेयसि ।
आओ मिल कर झूलो ।[2]

क्षणिक सुख के लिये उच्छृंखल मनु अपनी देव संस्कृति को विनष्ट कर देते हैं और श्रद्धा को भी विवश करते हैं कि वह भी सोम पान कर ले ।

मनु श्रद्धा को त्याग कर सारस्वत प्रदेश में पहुंचते हैं वहां की रानी इड़ा के सौंदर्य पर मोहित हो जाते हैं और काम वासना की तृप्ति का साधन वहां भी ढूंढ़ते हैं । प्रसाद जी ने इड़ा के साथ बलात्कार करने का जो दृश्य अंकित किया है वह मनु के कामुक स्वभाव और उच्छृंखल वृत्ति का द्योतक है । इड़ा सारस्वत प्रदेश के शासन की बागडोर मनु के हाथ में देकर सुव्यवस्थित शासन का प्रबंध करती है और मनु इससे संतुष्ट नहीं होते, कहते हैं —

१- कामायनी : पृ०- ११७ , सर्ग- कर्म
२- कामायनी : पृ०- १२८ , सर्ग- कर्म

इड़े । मुझे वह वस्तु चाहिए जो मैं चाहूं
तुम पर हो अधिकार, प्रजापति न तो वृथा हूं[1]

और इसके पश्चात् मनु का प्रमाद बढ़ता जाता है —

और एक क्षण वह प्रमाद का फिर से आया
इधर इड़ा ने द्वार और निज वैर बढ़ाया
किन्तु रोक ली गई भुजाओं से मनु की वह
निस्सहाय हो दीन दृष्टि देखती रही वह ।

< < <

किन्तु आज तुम बन्दी हो मेरी बाहों में
मेरी छाती में फिर सब डूबा आहों में[2]

तात्पर्य यह कि मनु वासना के वशीभूत होकर अपने कर्त्तव्य को भूल जाते हैं । इस प्रकार के कर्म पग-पग पर मनु की एच्छृंखलता को प्रकट करते हैं । यद्यपि मनु का यह रूप `कामायनी' के पूर्वार्ध में ही रहता है उत्तरार्ध में वह श्रद्धा के द्वारा प्रेरित होकर जीवन के सत्य पथ की ओर अग्रसर होते हैं ।

कर्मठता:—

सारस्वत प्रदेश की प्रजा द्वारा घायल होकर मनु एकाकी पड़े रहते हैं, श्रद्धा को स्वप्न में मनु की आपत्ति का आभास मिलता है, वह ढूंढ़ती हुई आती है और देखती है—

शून्य राज चिन्हों से मंदिर
बस समाधि सा खड़ा रहता
क्यों कि वहीं घायल शरीर वह
मनु का तो था रहा पड़ा ।[3]

१- कामायनी : पृ०- १६४ : सर्ग, संघर्ष
२- कामायनी : पृ०- १६७-१६८ : सर्ग, संघर्ष
३- कामायनी : पृ०- २०७ : सर्ग, निर्वेद

मनु श्रद्धा को देख कर प्रसन्न होते हैं किन्तु क्षोभ से आंख बन्द कर लेते हैं ।कहते हैं-

हाथ पकड़ ले चल सकता हूं

हाँ कि यही अवलंब मिले ।[1]

यहीं से परिवर्तन होता है और मनु पुरुषार्थी की भांति अपनी जीवन सहचरी के साथ सत्य को खोजने के लिये व्याकुल हो उठते हैं और यह भी सोचते हैं कि श्रद्धा के साथ मैं कदाचित मैं कुछ न कर सकूं और —

तो फिर शांति मिलेगी मुझको[2]

जहां, खोजता जाऊंगा ।

मनु वहां से चुपचाप चल देते हैं । श्रद्धा अपने पुत्र को इड़ा को सौंप कर मनु को खोजने चलती है वहां पहुंचती है और देखती है मनु ध्यान मग्न होकर बैठे हैं —

अंतर्निनाद ध्वनि से पूरित

थी शून्य भैदिनी सत्ताचित्

नटराज स्वयं थे नृत्य निरत

था अंतरिक्ष प्रहसित मुखरित ।[3]

श्रद्धा को देखकर मनु ग्लानि से संकुचित हो जाते हैं, क्षमा याचना करते हैं, स्वयं उसे छोड़ कर पुन: चले जाते हैं पर श्रद्धा उनके पास पहुंच जाती है तब वह कहते हैं —

श्रद्धे ! बस तू ले चल

उन चरणों तक निज दे सम्बल

सब पाप पुण्य जिसमें जल-जल

पावन बन जाते हैं निर्मल

१- कामायनी : पृ०- २१६ : सर्ग निर्वेद

२- कामायनी : पृ०- २३० : सर्ग निर्वेद

३- कामायनी : पृ०- २५२ : सर्ग दर्शन

मिटते असत्य से ज्ञान लेश
समरस अखंड आनंद वेश ।[1]

इसके पश्चात् दोनों पथिक आनंद सुख की अनुभूतियों के लोक में जाते हैं, श्रद्धा शांति की प्राप्ति के लिये मनु को उत्साहित करती है । वही कामुक मनु कर्मठता से जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं —

दोनों पथिक चले हैं कब से
ऊंचे ऊंचे चढ़ते चढ़ते
श्रद्धा आगे मनु पीछे थे
साहस उत्साही से बढ़ते
पवन वेग प्रतिकूल उधर था
कहता 'फिर जा अरे बटोही
किधर चला तू मुझे भेद कर ?
प्राणों के प्रति निर्मोही ।[2]

साहसी मनु प्राण को संकट में डालकर भी अग्रसर होते हैं, भीषण खाई, भयंकर खड्ड पड़ते हैं किन्तु वह भयभीत नहीं होते । क्षणिक निराशा आती भी है तो श्रद्धा अपनी शक्ति से प्रेरणा देती है । प्रसाद जी ने श्रद्धा को शक्ति का रूप दिया है, बिना शक्ति के शिव शव है । तीन आलोक बिन्दुओं को देख कर मनु पूछते हैं, यह कौन नये ग्रह हैं ? तब श्रद्धा बताती है —

इस त्रिकोण के मध्य बिन्दु तुम
शक्ति विपुल क्षमता वाले ये
एक एक को स्थिर हो देखो
इच्छा ज्ञान क्रिया वाले ये ।[3]

१- कामायनी : पृ०- २५४ : सर्ग दर्शन
२- कामायनी : पृ०- २५७ : सर्ग रहस्य
३- कामायनी : पृ०- २६२ : सर्ग रहस्य

इच्छा, क्रिया, ज्ञान के लोक का रहस्य मनु को बताती है कि इसके समन्वय से आनंद की प्राप्ति होती है, अचानक श्रद्धा के अधरों पर बिखरी मुस्कान से आलोक रेखा फूट पड़ती है और तीनों बिन्दुओं को मिला कर ज्योति प्रज्ज्वलित कर देती है और चारों ओर डमरू, श्रृंग का निनाद गूंजता है मनु की आत्मा पवित्र हो जाती है और वह अखंड आनंद में निमग्न हो जाते हैं —

शक्ति तरंग प्रलय पावक का
उस त्रिकोण में निखर उठा सा
श्रृंग और डमरू निनाद बस
सकल विश्व में बिखर उठा सा

× × ×

दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे ।[1]

अंत में इड़ा और कुमार भी पहुंच जाते हैं । मनु यही अनुभव करते हैं कि जीवन में सच्चा सुख और शाश्वत शांति भौतिक उपायों से सुलभ नहीं है और न भौतिक दृष्टिकोण ही जीवन दर्शन को संतुलित बना सकता है । जीवन के यथार्थ विकास के लिये उसे भौतिकवाद का आश्रय छोड़ना ही होगा । कर्मठ मनु अंत में जीवन के वास्तविक आनंद को प्राप्त कर लेते हैं —

समरस थे जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था[2]

दुर्बलताओं के बीच मनु के चरित्र का जिस प्रकार विकास हुआ है वह उनके कर्मशील होने का दृष्टांत है । इंद्रिय लोलुप व्यक्ति किस प्रकार मानवीय दुर्बलताओं का शिकार होता है और अंत में सत्य को प्राप्त कर लेता है । आधुनिक दृष्टि से मनु का चरित्र स्वाभाविकता को लिये हुए चरम सीमा में पहुंचता है ।

१- कामायनी : पृ०- २७३ : सर्ग रहस्य
२- कामायनी : पृ०- २८४ : सर्ग आनंद

मनु और श्रद्धा दोनों के चरित्र में प्रतीकात्मकता का ही आग्रह अधिक है। क्योंकि मन जहां एक क्षण स्थिर न रहने वाला विकार है वहां श्रद्धा या अंत:करण कठिनाई से स्थानान्तरित होता है। श्रद्धा गंभीर है जिसके समक्ष मनु यानी मन पारे की तरह चंचल है। मन कार्यशील है शक्तिशाली है पर इंद्रियों का समुच्चय है। इसी कारण उसमें इतनी चंचलता है, श्रद्धा को गर्भवती समझकर अपने प्रेम पर कोई अन्य अधिकारी का आगमन सोच कर उसे त्याग कर भाग जाता है। आदि मानव की अपेक्षा इन्द्रियों के कारण ही मन चंचल है। संस्कृति तो सब पर प्रभाव बराबर डालती है यदि यही कारण होता तो आधा नारी श्रद्धा तो प्रभावित नहीं है। प्रतीकात्मक रूप ही अधिक ग्राह्य है।

अंत में विलासी मनु की वृत्तियां समरसता के आनंदोपलब्धि में जाकर समाहित हो जाती हैं। सत्य तो यही है कि जीवन का वास्तविक रूप प्रत्यक्ष करने के लिये उदात्त आदर्शों का आश्रय छोड़ना ही पड़ता है, यथार्थ का ही आदर्श में पर्यवसान होता है। जिस प्रकार साकेत में उस प्रेम की झलक दिखाई पड़ती है जो भोग से आरंभ होकर वियोग की अग्नि में तप कर योग में परिणत हो जाता है। उसी प्रकार मनु के चरित्र की भी विशेषता है। नायिका श्रद्धा के प्रति मनु का प्रारंभिक प्रेम, वासनाजन्य ही है। काम को कहना पड़ता है —

> पर तुमने तो पायी सदैव; उसकी सुंदर जड़ देहमात्र
> सौन्दर्य जलधि से भर लाये, केवल तुम अपना गरल पात्र।[1]

लेकिन अंत में आनंदपूर्ण स्वर्ग की ओर उन्मुख वृत्ति का दर्शन होता है —

> सोच रहे थे जीवन सुख है, ना यह विकट पहेली है
> भाग अरे मनु, इन्द्रजाल से कितनी व्यथा न झेली है[2]

१- कामायनी : पृ०- १६३ : सर्ग इड़ा।
२- कामायनी : पृ०- २६४ : सर्ग आनंद।

समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती, आनंद अखंड घना था ।[१]

इस प्रकार प्रसाद जी के इस महाकाव्य में पृथ्वी और स्वर्ग के मिलन की अनुपम झांकी का दर्शन होता है । नूतन युग का यह प्रतिनिधि महाकाव्य युग की चेतना को ही नहीं युग-युग की चेतना को आन्दोलित करता है ।

युग की परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन आवश्यक रहता है । प्रसाद जी की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि अतीत के युग का आश्रय लेकर भी वर्तमान समस्याओं पर पूरा प्रकाश डाला है । विलासी मनु जो अहंवादी स्वार्थी मानव के रूप में सन्मुख आता है उसके चरित्र का विकास दुर्बलताओं के बीच होता है इसी वासनाजन्य प्रेम की परिणति अंत में सामरस्य (योग) में हुई है ।

बड़े-बड़े मनीषियों के जीवन में यह भोग योग का आदि अवसान देखने में आता है । गोस्वामी तुलसीदास नारी के प्रेम पाश में किस प्रकार आबद्ध थे, उसी की प्रताड़ना से रामोन्मुख हुए । इस युग का महामानव भी युवावस्था में भोग से विरक्त न था- उसके अनुपम त्याग ने उसे महात्मा के पद पर आसीन किया । परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों के साथ ही प्रत्येक सिद्धान्त और आदर्शों में परिवर्तन होना आवश्यक है । इस काव्य में प्रसाद जी की अंतर्मुखी वृत्ति, उदात्त गंभीरता और दार्शनिक पुष्टता आध्यात्मिक भूख की तृप्ति का सुन्दर साधन है ।

मनु परंपराभुक्त नायक का आदर्श उपस्थित करने में सफल नहीं है पर चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उन्हें प्रमुखता दी जाती है । महाकाव्य समस्त जातीयता का दर्पण है । कवि अपनी कवित्व शक्ति द्वारा समस्त जातीय संस्कारों को जब काव्य का बाना पहना देता है तब युग काव्य अर्थात् महाकाव्य का सृजन होता है ।

कामायनी का नायक यद्यपि वैदिक और पौराणिक कथाओं से लिया

१- कामायनी : पृ०- २६४ : सर्ग आनंद

गया है तथापि वह किसी विशिष्ट देश और काल से सम्बद्ध तथा सीमित नहीं है। प्रसाद जी ने देवोत्तर सृष्टि के प्रथम उन्नायक मनु को विश्व महाकाव्य के नायक के रूप में सामने रखा है। पौरस्त्य तथा पाश्चात्य सिद्धान्तों की संधि में कामायनी का नायक स्थित है। मनु के भीतर वह विद्रोह, वह विस्फोट और वह ज्वाला पाते हैं जो भारतीय संस्कृति की सीमाओं में बंधी हुई रचना में नहीं पाई जाती। प्राचीन ग्रीक नाटककार ईस्काइलस के `प्रामेथियस बाउंड` `शैली` के `प्रामेथियस अनबाउंड` `मिल्टन` के `पैराडाइज लास्ट` `गैटे` के `फाउस्ट` के नायकों के भीतर उठने वाली तूफानी भाव तरंगों की सी हलचल हम काव्य के प्रारंभ से ही मनु के भीतर पाते हैं। इस तरह की भूकम्पी हलचल किसी भी दूसरे भारतीय काव्य के नायक में देखने को नहीं मिलती है।

अंतर केवल यह है कि जिन पाश्चात्य रचनाओं का उल्लेख ऊपर किया गया है उनके नायक अंत तक अपने भीतर उठने वाले तूफानी झोकों के बहाव में बहे जाते हैं पर कामायनी का मनु विद्रोहात्मक विस्फोटों और अपने अत्यधिक प्रबुद्ध अहम् की विकृतियों के प्रारंभिक प्रदर्शनों के बाद जीवन के यथार्थ पहलुओं पर भी विचार करने का अवसर पाता है और धीरे-धीरे अपने अहम् को जीवन की समधारा में विलीन करने की ओर उन्मुख होता है। `गैटो` के `फाउस्ट` को भी हम अंत में जीवन की इस सामंजस्यात्मक परिणति की ओर किसी हद तक अग्रसर होते पाते हैं पर फाउस्ट की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति पूर्णत: विलीन नहीं हो जाती जब कि मनु अपने अहम् को सामूहिकता में विलीन करके एक ओर बुद्धि और दूसरी ओर श्रद्धा के समन्वयात्मक विकास को ही मानवीय कल्याण के एक मात्र उपयुक्त पथ के रूप में आविष्कृत कर लेते हैं।[१]

इस महाकाव्य का नायक सार्वभौम नायक है। इसका क्षेत्र समस्त मानवता है और उसके विकास की समस्याएं हैं। आज नायक तथा उदात्त चरित्रों

१- वर्ष ५ अंक २५ के `संगम` में प्रकाशित इलाचन्द्र जोशी के निबंध- `आज के युग को प्रसाद जी का संदेश` से उद्धृत।

कीअवतारणा के लिये प्राचीन परंपरा का निर्वाह अनिवार्य नहीं है । संघर्ष की भूमिकाएं भी परिवर्तित हो गई है। संघर्ष स्थल भी बदल चुके हैं । अपने ही मानसिक संघर्ष से जूझने वाले मनस्वी व्यक्ति भी महान होते हैं । उनका चित्रण पश्चिमी देशों के साहित्य में प्रचुर परिणाम में हुआ है । मनु का चरित्र चित्रण अपनी अलग ही विशेषता रखता है । प्रसाद जी ने भौतिक वाद के परे हृदय और बुद्धि के सामंजस्य के द्वारा आध्यात्मिक लोक में जाकर समरसता की प्राप्ति को ही जीवन के सुख शांतिका ध्येय बताया है ।

श्रद्धा में नायकत्व का अधिष्ठान:—

कामायनी के नायक मनु के चरित्र पर दृष्टि डालने के पश्चात् हमें विचार करना है कि भारतीय सिद्धान्त के अनुसार मनु कहां तक नायक के लक्षण में खरे उतरते हैं । भारतीय नायक कभी पराजित नहीं होता यह प्रमुख विचार-धारा है जिसको परिवर्तित मान्यताओं के मध्य भी स्थान मिला है । सफल नायक आजीवन विषमताओं की ज्वाला में तप्त रह कर भी अन्त में विजय श्री को गले लगाता है । कामायनी में मनु को आरंभ से ही पराजित होते देखकर हमारा हृदय विद्रोह कर उठता है कि यह कैसे नायक के पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है, जिसकी इन्द्रियां इतनी काम लोलुप हैं जो अपनी रक्षा करने वाली सारस्वत देश की राजकुमारी इड़ा के साथ बलात्कार करता है । वह कहां से महान और आदर्श पुरुष है । वासना के वशीभूत होकर मनु ऐसा निंदनीय कर्म करते हैं, इड़ा को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपनी भुजाओं में आबद्ध कर लेते हैं-कहते हैं ——

आज तुम बन्दी हो मेरी बांहों में

× × × ×

सिंह द्वार अरराया जनता भीतर आई
'मेरी रानी' उसने जो चीत्कार मचाई ।[१]

१- कामायनी : पृ०- १६८ : सर्ग संघर्ष

एकाकी मनु को सारस्वत प्रदेश की प्रजा के साथ संघर्ष करना पड़ता है और अंत में घायल होकर अचेत हो जाते हैं । `वहीं घायल शरीर वह मनु का तो था रहा पड़ा` क्षोभ और ग्लानि से लज्जित होकर श्रद्धा से कहते हैं —

ले चल इस छाया के बाहर
मुझको देन यहां रहने
मुक्त नील नभ के नीचे या
वहीं गुहा में रह लेंगे ।[१]

भयभीत होकर कर्म क्षेत्र से भागने वाले पुरुष को कैसे महाकाव्य का सफल नायक कह सकते हैं जो भी पुरुषार्थ करने को पग बढ़ाते हैं वह श्रद्धा की सद् प्रेरणा से । उसी स्थान पर श्रद्धा का चरित्र नायकत्व के गुणों से युक्त है । स्वप्न में मनु को घायल देखती है और ढूंढ़ती हुई उसके पास आ पहुंचती है । यद्यपि मनु श्रद्धा को गर्भवती जान कर त्याग आये थे परन्तु श्रद्धा के हृदय में मनु के लिये वही स्नेह और वही सहानुभूति है । प्रतीकात्मकता के कारण मनु जो मन के प्रतीक हैं अधिक चंचल और उच्छृंखल प्रतीत होते हैं । इसके अतिरिक्त प्रसाद जी ने शैव सिद्धान्त की स्थापना के लिये भी शक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध किया है, मनु बिना शक्ति के शव के समान है, श्रद्धा रूपी शक्ति के द्वारा उनमें शिवत्व का आवाहन होता है । संपूर्ण महाकाव्य में श्रद्धा का चरित्र अपनी अलग विशेषता रखता है, वह मनु को निरंतर प्रेरणा देती है और गन्तव्य स्थान तक पहुंचाती हैं । मनु आनंद की उपलब्धि श्रद्धा के ही द्वारा करते हैं ।

मनु स्वयं स्वीकार करते हैं और श्रद्धा की महत्ता का वर्णन अपने मुख से करते हैं —

चिर अतृप्ति जीवन यदि था तो
तुम उसमें संतोष बनी

१- कामायनी : पृ०- २१६ : सर्ग निर्वेद

कितना है उपकार तुम्हारा
आश्रित मेरा प्रणय हुआ
कितना आभारी हूं इतना
संवेदन मय हृदय हुआ ।[1]

मनु अपने हृदय की शून्यता को अनुभव करते हैं और श्रद्धा के समक्ष प्रकट करते हैं—

शापित सा मैं जीवन का यह
ले के काल भटकता हूं
उसी खोखलेपन में जैसे
कुछ खोजता अटकता हूं ।[2]

श्रद्धा के ही द्वारा प्रसाद जी ने आरंभ से मानवता के कल्याण की भावना को यत्र तत्र प्रकट कराया है और श्रद्धा कहती है —

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
बिकल बिखरे हैं हो निरुपात
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय[3]

इसके विपरीत मनु के हृदय में केवल इंद्रिय सुख की कल्पना निहित है, वह सबसे इसी की भीख मांगते हैं । गर्भवती श्रद्धा से भी कामुक मनु अपने भोग की ही याचना करते हैं, कहते हैं दो दिन का जीवन है सुख उठालें और इड़ा से भी यही इच्छा पकट करते हैं —

इस हताश जीवन में क्षण सुख मिल जाने दो
राष्ट्र स्वामिनी यह लो सब कुछ वैभव अपना
केवल तुमको सब उपाय से कह लूं अपना ।[4]

१- कामायनी : पृ०- २२६ : सर्ग निर्वेद
२- कामायनी : पृ०- २२७ : सर्ग निर्वेद
३- कामायनी : पृ०- ५६ : सर्ग श्रद्धा
४- कामायनी : पृ०- १६६ : सर्ग संघर्ष

इड़ा के विरोध करने पर भी उसे आलिंगनपाश में आबद्ध कर लेते हैं जिसका परिणाम अत्यन्त भीषण होता है, काम पिपासु मनु पराजय को प्राप्त होते हैं और कहते हैं —

कहां ले चली हो अब मुझको
श्रद्धे ! मैं थक चला अधिक हूं
साहस छूट गया है मेरा
निस्संबल भग्नाश पथिक हूं ।[१]

ऐसे हताश पुरुष को जिसने अपना साहस धैर्य सब कुछ खो दिया आधा नारी कामायनी अवलंब देती है और मनु श्रद्धा का सहारा मांगते हैं —

श्रद्धे ---------- इन्द्रजाल से मुझे बचाओ[२]

हम किस प्रकार इस पराजित मनु को महाकाव्य का सफल नायक कह सकते हैं । मनु पूर्ण रूपेण अपने आप को श्रद्धा के सन्मुख समर्पित कर देते हैं और अपनी असमर्थता को प्रकट कर देते हैं —

हत चेत पुकार उठे विशेष
यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज सम्बल
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल
पावन बन जाते हैं निर्मल
मिटते असत्य से ज्ञानलेश
समरस अखंड आनंद वेष ।[३]

प्रसाद जी ने स्वयं श्रद्धा की श्रेष्ठता को निरंतर स्वीकार किया है और आनंद सर्ग में कहा है वही विश्व की कल्याणकारी कामना है —

१- कामायनी : पृ०- २५६ : सर्ग रहस्य

२- कामायनी : पृ०- २६१ : सर्ग रहस्य

३- कामायनी : पृ०- २५४ : सर्ग दर्शन

वह कामायनी जगत की
मंगल कामना अकेली
थी ज्योतिष्मती प्रफुल्लित
मानस तट की बन वेली ।[1]

श्रद्धा की ओर अधिक आदर और सम्मान की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक है अपेक्षा कृत मनु के । मनु तो स्वयं ही कहते हैं श्रद्धा तुम सबका दुख दूर करने के लिये कष्ट सहन करती हो तुम कितनी महान् हो ? और —

तुम देवि ! आह कितनी उदार
वह मातृमूर्ति है निर्विकार
हे सर्वमंगले ! तुम महती
सबका दुख अपने पर सहती
कल्याणमयी वाणी कहती
तुम क्षमा निलय में हो रहती ।[2]

संपूर्ण काव्य में श्रद्धा के महत् गुणों का प्रदर्शन किया गया है । श्रद्धा क्षमा, दया, सहिष्णुता त्याग आदि गुणों से विभूषित है जो धीरोदात्त नायक के लक्षण है और इस प्रकार श्रद्धा मनु की अपेक्षा नायकत्व के अधिक समीप है । वह महान् आदर्श स्थापित करती है और मानवता का धर्म मनु को सिखाती है—

औरों को हंसते देखो मनु
हंसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत करलो
सबको सुखी बनाओ ।[3]

कामायनी के हृदय में विश्व कल्याणकारी भावना की ज्योति निरंतर जलती है जब कि मनु केवल अपने इंद्रिय सुख की प्राप्ति को ही अपने जीवनका लक्ष्य बनाते हैं, पराजित होकर अपना व्यक्तिगत महत्व समाप्त कर देते हैं, अंत में अवश्य श्रद्धा के सहयोग से जीवन के वास्तविक आनंद को प्राप्त करते हैं । इस विवेचन

१- कामायनी : पृ०- २८० : सर्ग आनंद
२- कामायनी : पृ०- २४६ : सर्ग दर्शन

के पश्चात् यही कहना उचित लगता है कि श्रद्धा में नायकत्व का अधिष्ठान किया गया है । प्रसाद जी ने इस सिद्धान्त को अपनाया है कि शक्ति के साहचर्य से शिव का महत्व है अन्यथा शिव शव है । इसमें तो किंचित भी संदेह नहीं किया जा सकता कि श्रद्धा का चरित्र मनु के चरित्र से अधिक महत्व शील है । महाकाव्य का नायक समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है; उसे विजयी दिखाना आवश्यक है । मनु का पग-पग पर पराजित और भयभीत होना शोभनीय नहीं है यह भारतीय नायक के लिये सबसे बड़ा दुर्गुण है । मनु अखंड आनंद की उपलब्धि करते हैं वह श्रद्धा के सहयोग और श्रद्धा के पथ प्रदर्शन से अत: वह श्रद्धा की विजय है मनु की नहीं । महाकाव्य का सफल नायक दूसरों को मार्ग बताता है, दूसरों की रक्षा करता है । वह स्वयं शासित नहीं होता बल्कि शासन करता है ।

यह अवश्य है कि हम महाकाव्य के पूर्वार्द्ध में मनु को कर्म प्रांगण में अधिक उत्सुक देखते हैं और पूर्वार्द्ध का नायक मनु को कहा जा सकता है और उत्तरार्ध का नायक श्रद्धा को । कर्म सर्ग तक मनु अपनी कुछ न कुछ विशेषता के साथ सन्मुख आते हैं और उन्हें प्रमुखता मिली है । संघर्ष सर्ग से परिवर्तन हुआ है और श्रद्धा के चरित्र का विकास आरंभ हो जाता है । इस परिवर्तन का कारण मुख्य रूप से प्रसाद जी का शैव मत का अनुयायी होना विदित होता है । इसी कारण इन्होंने शक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । श्रद्धा को शक्ति का रूप माना है और इसीके साहचर्य से मनु चिन्मय आनंद की प्राप्ति करते हैं । महाकाव्यकार ने अपने महाकाव्य के उत्तरार्ध में घटनाओं का चयन इस प्रकार से किया है जो शक्ति स्वरूपा कामायनी के चरित्र को अधिक उज्ज्वल बना देती है । नायक मनु एक लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं और समरसता की उपलब्धि करते हैं किन्तु साथ ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मनु के इस उच्च शिखर तक पहुंचने का समस्त श्रेय श्रद्धा को है । श्रद्धा मनु को वास्तविक सुख की प्राप्ति कराने में सफल होती है । यह अवश्य है कि मनु कर्मठ हैं इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कामायनी महाकाव्य के पूर्वार्द्ध के नायक मनु हैं उत्तरार्ध में नायकत्व का अधिष्ठान श्रद्धा में किया गया है

'कृष्णायन में नायक'

:सन् १९४३:

o

कृष्णायन :

तुलसी दास जी के मानस के पश्चात् अवधी भाषा में महाकाव्य कहलाने का अधिकारी कृष्णायन ही है । राम के संपूर्ण जीवन को प्रकाश में लाने वाली अनेक रचना है बाल्मीकि रामायण, रामचरित मानस, रामचंद्रिका आदि पर कृष्ण चरित का पूर्णरूप से वर्णन जन्म से स्वर्गारोहण तक की संपूर्ण घटनाओं को सुसंबद्ध रूप से चित्रण कृष्णायन में हुआ है ।

इस काव्य की कथा का आधार महाभारत और श्रीमद्भागवत है । जिसमें श्री कृष्ण की जीवन संबंधी घटनायें यत्र तत्र विकीर्ण हैं, किन्तु हिन्दी जगत को मिश्र जी के अथक प्रयास द्वारा श्री कृष्ण चन्द्र का पूर्ण एकत्र चरित्र उपलब्ध हो रहा है ।[1]

इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि तुलसी दास के रामचरित मानस की पुरातन रचना पद्धति को अपनाया है । मानस की तरह कृष्णायन का कथानक सात कांडों में विभक्त है ।

अवतरण कांड

मथुरा कांड

द्वारका कांड

पूजा कांड

गीता कांड

जयकांड

आरोहण कांड

१- बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य पृ०- २३१
-डा० प्रतिपाल शरण

: साहित्य-की - पृ०- ६८

: हिन्दी के आधुनिक महा० पृ०- ३१८

पांडित्य अनुशीलन में बहुज्ञता होते हुए भी इसमें रामायण जैसा भक्ति प्रवाह, सरलता और तल्लीनता नहीं है ।

कृष्णायन में नायक- पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र ने कृष्ण की बाल लीला से आरंभ करके स्वर्गारोहण तक की कथा का सन्निवेश इस महाकाव्य में किया है । कृष्णा-यन के कृष्ण ईश्वर के अवतार हैं ——

बिनु अवलंब मातु पितु जाना
सहसा प्रकट भये भगवाना
निमिषहिं मंह शिशु वेष दुरावा
रूप चतुर्भुज प्रभु प्रकटावा ।।[1]

वे अपनी पौराणिकता को लिये हुए ब्रह्म के अवतार हैं ——

भयेउ कला षोडस सहित
कृष्ण चन्द्र अवतार
पूर्ण ब्रह्म हरि यश विमल
बरनहु मति अनुसार ।।[2]

इसी ईश्वरीय रूप के अनुसार चमत्कार का प्रदर्शन भी हुआ है, कृष्ण ने संदीपनि गुरु के मृत पुत्र को समुद्र से लौटा कर पुनः गुरुपत्नी की इच्छा पूर्ति की मृत परीक्षित को अपनी योग शक्ति द्वारा जीवन दान दिया । कृष्णायन में प्रथम स्वरूप बाल कृष्ण का है दूसरा विलास वैभव और विवाह आदि का तीसरा कर्मयोगी महान् राजनीतिज्ञ के रूप में है । शील शक्ति और सौन्दर्य से युक्त कृष्ण के अनेक रूपों का दर्शन होता है । बाल्यावस्था के कृष्ण मानव सुलभ बाल क्रीड़ा करते हैं, ब्रजवासियों का मनोरंजन करते हैं दूसरी ओर असुरवधादि चमत्कारपूर्ण कृत्यों से उन्हें चकित करते हैं । कृष्णायन में मानवत्व से देवत्व अधिक प्रकट होता है ।

१- कृष्णायन पृ०- १२, अवतरण कांड दो० ३७ ।

२- कृष्णायन पृ०- ३, अवतरण कांड, दोहा ३ ।

धर्म संस्थापक तथा लोककल्याणकारी :—

धर्म की स्थापना, अन्याय और अनीति के दमन के लिये कृष्ण का अवतार हुआ । इस परंपरागत दृष्टिकोण को मिश्र जी ने ग्रहण किया है । अर्जुन युद्ध से विरत हो जाते हैं उस समय कृष्ण उन्हें प्रेरणा देते हैं और भीष्म पितामह द्रोणाचार्य से न्याय के लिये युद्ध करने को विवश करते हैं और दुर्व्यसनी, मद्यपान करने वाले, दूसरों को कष्ट देने वाले अत्याचारियों का संहार करते हैं । लोक हितकारी कृष्ण राजसूय यज्ञ के प्रसंग में कहते हैं —

एकहि नीति तत्व मै जाना
हेतु समष्टि व्यक्ति बलिदाना
स्वजनहि बसत जासु मन माहीं
सघत धर्म हित तेहिते नाहीं ।

चहत करन यदुवंश जो, असुर-शक्ति अवसान
आर्यन -संस्कृति अभ्युदय, पूर्ण धर्म उत्थान ।

आत्मसंमृद्धि यत्न तो त्यागी
होहु भरत कुल-हित अनुरागी ।[१]

धर्म राज्य की स्थापना के लिये कृष्ण युधिष्ठिर को राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित करते हैं । कृष्णायन के कृष्ण लोक कल्याण की भावना को प्रमुखता देते हैं और क्षण भर में राधा तथा गोपियों को त्याग कर मथुरा को प्रस्थान करते हैं । उन्हें प्रगाढ़ स्नेह है किन्तु जनहित के लिये वह सब कुछ परित्याग करते हैं, जिस समय कृष्ण अक्रूर के साथ जाने लगते हैं ब्रजवासियों की दशा कितनी करुण है इसका वर्णन मिश्र जी ने इस प्रकार किया है —

१- कृष्णायन, पृ०- ३७६ -पूजा कांड दोहा १२ ।

हरि केशव गोविंद पुकारे
कहां जात घनश्याम हमारे ?

हिचकिन विलखीं गोपिका, करहु न कान्ह अनाथ,
मुरलीधर गिरिधर रहहु राजहु व्रज ब्रजनाथ ।

प्रेरे सुफलक सुत तुरग, मुख फेरेउ घनश्याम
स्पंदन तल तेहि क्षण गिरी, कोउ विरहिण व्रजबाम ।

राधा ! राधा ! कहि बिलखायी
त्यागेउ रथ श्रीपति अकुलायी
सानुराग भरि हृदय निहारा
नयनन उमहि बही जल धारा
सुधासिक्त राधा अंग सारे
जागी वदन ज्योति नवधारे ।[1]

यहां पर मिश्र जी ने अत्यंत मनोवैज्ञानिक और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है किंतु लोक सेवी कृष्ण अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होते, उनके सामने एक लक्ष्य है उसकी पूर्ति के लिये वह प्रयत्नशील हैं । समस्त व्रज की जनता दुख के सागर में डूबी हुई है और वह चल देते हैं—

बसि स्पंदन ब्रजपतिलखै, बिलखत व्रज नरनारि
लखे राधिका ढिग बहुरि, पोंछत सब दृगवारि[2]
हांके हय सुफलक सुवन, गये कृष्ण बलराम ।

१- कृष्णायन : पृ०- ११६-१७, अवतरण कांड, दोहा १८७-१८८

२- कृष्णायन : पृ०- ११७, अवतरण कांड, दोहा १८९-१९०

धर्म की सुरक्षा और लोक कल्याण के लिये नायक का सृजन होता है और इसी हेतु महापुरुषों को इस महत् पद का अधिकारी बनाया जाता है । इसी प्रकार कृष्णायन के नायक कृष्ण धर्म की संस्थापना के लिये प्रत्येक कार्य करते हैं ।

असुर संहारक, - कर्मयोगी :—

दुष्टों का संहार करके साधु पुरुषों को सुख देने के लिये महापुरुषों का अवतार होता है । कृष्ण का भी प्रादुर्भाव असुरों का संहार करने के लिये हुआ । बाल्यावस्था से ही दुष्टों का दमन करना आरंभ कर देते हैं और आगे चलकर शत्रुओं को निर्मूल करने के लिये कंस, शिशुपाल, जरासन्ध आदि का वध करते हैं । अपने उद्देश्य को स्वयं अपनी माता से कहते हैं —

देश धर्म त्रासक असुर, देहौं जबहि नसाय
करिहौं तनिक विलंब नहि, अइहौं मइया ! धाय[1]

शैशवावस्था में कृष्ण, पूतना, शकटासर, तृणासुर, व्योमासुर आदि का वध करते हैं । इसका चित्रण मिश्र जी ने पूर्व रचित कृष्ण कथा के आधार पर ही किया है :—

कौतुक ही शकटहि हतेउ
प्रकटेउ व्रज नहिं भेद
पहुंचेउ मथुरा वृत जब
मथुरापति उर खेद ।[2]

इसी प्रकार अन्य असुरों का भी संहार किया किन्तु मिश्र जी ने कृष्ण चरित्र की अलौकिकता को अपनाया है तृणावर्त खेलते हुए कृष्ण को लेकर उड़ जाता है और —

१- कृष्णायन : पृ०- २१६ मथुराकांड, दोहा १७१
२- कृष्णायन : पृ०- ३३ अवतरण कांड, दोहा ५३ ।

बढ़ी श्याम गरिमा अकुलाना
हरि खेलाय खल शिला पछारा
चापि ग्रीव हठि जीव निकारा

* * *

खोजत विलपत गोपजन निरखेउ असुर विशाल
मृतक वत्स खेलत लखे दनुज दलन नंदलाल ।[1]

कृष्णायन के बाल कृष्ण खेलते हुए असुर का वध करते हैं तात्पर्य यह कि महाकाव्यकार यही भावना को निरंतर साथ लेकर चलता है कि उसका नायक पारब्रह्म का अवतार है, और इसी हेतु चमत्कारपूर्ण कृत्यों के लिये पर्याप्त स्थान है । कंस के दरबार में भी कृष्ण दुष्टों का दमन करते हैं और अंत में कंस का वध करके वहां सुख शांति की स्थापना करते हैं ।

कृष्ण कर्मयोगी हैं, इन्होंने कर्म को प्रधानता दी है और साथ ही जन कल्याण की भावना को महत्व दिया है । अर्जुन के हृदय में जिस समय बंधु-बांधवों को देखकर मोह उत्पन्न होता है और वह युद्ध करने को प्रस्तुत नहीं होते, कृष्ण उन्हें निष्काम कर्म योग का तत्व समझाते हैं । `फलासंगशून्य` कर्म के आदेश के द्वारा अन्यायी को सुधारने और सत्य मार्ग पर लाने के सिद्धान्त का निरूपण करते हैं । अपने चरित्र के द्वारा भी इसे स्पष्ट कर देते हैं अर्थात् राधा, गोपी के प्रेम में लीन रसिक बिहारी कृष्ण जनता को सुख शांति देने के लिये असुरों का दमन करते हैं किन्तु यह भी कहते हैं —

रक्त-पात नहिं मम उदेशा
उचित न वधब निरीह नरेशा ।[2]

१- कृष्णायन पृ०- ३३-३४ : अवतरण कांड , दोहा ५४
२- कृष्णायन पृ० २२८ : मथुरा कांड, दोहा १८४ ।

तात्पर्य यह कि वह निरीह व्यक्ति का समर भूमि में रक्तपात नहीं चाहते, न्याय और नीति के समर्थक कृष्ण सत्य का अनुसरण करते हैं ।
योगीराज कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश देते हैं उसका चित्रण कृष्णायन में इस प्रकार है ——

गहन धनंजय । कर्मन मर्मा
कर्म माहि जो लखत अकर्मा
लखत अकर्महु मंह जो कर्मा
सर्व-कर्म-कृत योगी सोईं
बुधजन तेहि समरन नहिं कोई
अर्जुन । जेहि ज्ञानाग्नि प्रजारी
दीन्हे निखिल कर्म बिज जारी
सर्वारंभ फलेच्छा विरहित
कहत ताहि ज्ञानीजन पंडित ।[१]

निस्य तृप्त, आश्रय रहित, जो नकर्म फल लग्न
करत कबहुं कछु नाहि सो, कर्मन जदपि निमग्न ।

गीता के आधार पर मिश्र जी ने यहां पर कर्म योग का निरूपण किया है क्योंकि नवीनउद्भावना का सन्निवेश प्राय: नहीं किया गया है ।

गोपीजनवल्लभ

गोपियों के प्रति कृष्ण का प्रेम सात्विकता पर आधारित है, उसमें विलासिता और उच्छृंखलता का सन्निवेश नहीं है । राधा कृष्ण के प्रेम का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है और उसमें कल्याण की भावना निहित है । इनके प्रेम तथा इनकी लीला का चित्रण मर्यादा की सुरक्षा करते हुए ही किया गया है । मिश्र जी ने राधा कृष्ण का पूर्वजन्म का संबंध दिखाकर उस प्रेम को

१- कृष्णायन : पृ०- ५५३ -गीता कांड, दोहा १४६ ।

और भी अधिक पुनीत बनाने का प्रयास किया है । कृष्ण राधा को देखकर आकर्षित होते हैं—

एक दिवस खेलत ब्रजखोरी
देखी श्याम राधिका भोरी
जनु कछु चीर सिन्धु सुधि आई
औंचक मोहित भये कन्हाई ।[1]

एक स्थान पर श्री कृष्ण जी पुन: स्मरण कराते हैं —

एकहि मैं अरु राधिका
द्वैत भाव भव भ्रांति
व्रजजन समुझि रहस्य यह
लहिहैं पुनि सुखशांति ।[2]

राधा और कृष्ण एक हैं इसमें संदेह का प्रश्न नहीं, इस तत्व को सभी परंपरागत काव्यकारों ने लिया है । आधुनिक काव्यकार बुद्धिवादी युग के अनुसार प्रत्येक अलौकिक घटना को बोधगम्य बनाने का प्रयास करता है किन्तु मिश्र जी ने कृष्णायन में कोई परिवर्तन अथवा परिमार्जन नहीं किया ।

चीर हरण लीला में कृष्ण गोपियों के अपराध को बताते हैं —

बारि माहि निवसत वरुण
तिनकै लाज बिहाय
लोक लाज हूं त्यागि तुम
धसत नग्न जल जाय ।[3]

१- कृष्णायन : पृ०- ५५ - अवतरण कांड, दोहा ८८
२- कृष्णायन : पृ०- २२८ - मथुरा कांड, दोहा १८४
३- कृष्णायन : पृ०- ५५ - अवतरण कांड, दोहा ८८

वैसे भी इसका आध्यात्मिक दृष्टिकोण माया के आवरण को दूर कर अभेद ज्ञान का बोध कराना है यहां इस प्रसंग की विवेचना करना उपयुक्त नहीं है। राधा कृष्ण के ईश्वरीय स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया गया है जिस समय रास लीला होने जाती है —

ठिठकेउ विधुबंधि वेणुस्वर,
भयेउ व्योम उल्लास
याम-हीन यामिन भयी
रचै श्याम महिरास।[1]

रास लीला से यह भावना और दृढ़ होती है —

हरि प्रेरित सब वृज नरनारी
धाये इक इक कर धारी
शोभित सकल मंडला कारा
चंचल चरण चपल दृग तारा
राधा माधव मध्यविराजे
छवि विलोक रतिमन्मथ लाजे।[2]

रसिक बिहारी कृष्ण का यह रूप अत्यंत महत्वपूर्ण है परन्तु विशेषता यह है कि वह केवल गोपीजन वल्लभ अथवा राधिका रमण ही नहीं हैं बल्कि अपने कर्त्तव्य और आदर्श का पालन करने वाले राष्ट्र हितकारी तथा कुशल राजनीतिज्ञ भी हैं।

१- कृष्णायन : पृ०- ६६ - अवतरणकांड, दोहा १५५

२- कृष्णायन : पृ०- ६६ - अवतरणकांड,

कुशल राजनीतिज्ञ तथा राष्ट्र हितकारी :—

राजनीति में कुशल कृष्ण ने अनेक राजकुमारियों से विवाह संबंध स्थापित करके उन राज्यों से मैत्री कर लिया और इसमें राष्ट्र का हित हुआ । राष्ट्र की कल्याण भावना से प्रेरित होकर कृष्ण असुरों का दमन करते हैं और भारत में सुदृढ़ शासन की स्थापना करते हैं । नीति कुशल कृष्ण रण विद्या में निपुण होने पर भी अवसर न देख कर युद्ध करने को प्रस्तुत नहीं होते, मगधपति को रण में पराजित करते हैं पर शत्रु की शक्ति को समझ कर द्वारिका चले जाते हैं वहां अपनी शक्ति का संचय करते हैं तब उसका संहार करते हैं ।

राजनीति में कुशल, कृष्ण निरर्थक युद्ध के पक्ष में नहीं हैं,कहते हैं—

उचितन तदपि सदा संग्रामा
युद्ध निरर्थक अहित कामा
केवल बल श्वापद व्यवहारा
बुद्धि युक्त मानव आचारा
बानी मुनिन बहुंविधि नीति
उचित न एक दंह में प्रीती

सोह नृपति जो तेजयुत, देत तदपि नहिं ताप
लरत जे भूपति नित्य उठि, ते वसुधा अभिशाप ।[1]

प्रजा को सुख देने वाला नृप ही वास्तव में सफल शासक है । युद्ध करना उच्च कोटि का कार्य नहीं है तेजस्वी राजा जो किसी को कष्ट न दे उसके प्रति विरोध करना अनुचित है । कृष्ण कुशल राजनीतिज्ञ हैं और सुअवसर देखकर ही युद्ध करने को परामर्श देते हैं ।

१- कृष्णायन : पृ०- २२६ , सर्ग—मथुराकांड, दो०१८८।

समदर्शी और संयमी :—

व्यवहार कुशल कृष्ण में संतुलन की भी क्षमता है और साथ ही आत्म संयम भी है। सबको समान दृष्टि से आंकते हैं, युद्ध में सहायता लेने के लिये अर्जुन और दुर्योधन दोनों आते हैं, एक और स्वयं कृष्ण रहते हैं दूसरी ओर अपनी समस्त सैना का सहयोग प्रदान करते हैं। युद्ध भूमि में दुर्योधन आहत होने पर कृष्ण को जो अपमानजनक शब्द कहता है, साधारण व्यक्ति भी नहीं सहन कर सकता किन्तु समदर्शी, सहनशील कृष्ण ने उसका उत्तर शांति के साथ दिया। मिश्र जी ने इस प्रकार उस प्रसंग का वर्णन किया है। कुरुपति विष के समान वचन त्रिभुवन पति कृष्ण के लिये कहता है —

कंसदास सुत तुम कुल हीना
रहित राज्यपद कपट प्रवीणा-
धर्म व्याज निज मान बढ़ावत
फिरत सबहिं उपदेश सुनावत
दीन पांडुसुत तुम भरमाये
निज वश पै न मोहिं करि पाये
जे यहि जग श्री-हीन, अभागी
गहत धर्म घन अर्जन लागी

× × ×

मोहिं मनस्विन-मार्गहि भावा
गहिहैंहि महीमान मैं पावा।[1]

कृष्ण शीतल, शांत वचन कहते हैं तनिक भी आवेश अथवा उग्रता इनकी वाणी में नहीं है :—

१- कृष्णायन : पृ०- ७६७ - जयकांड

आर्य हृदय अस होत न मोहा
यह दानव-मद तुमहिं न सोहा
संयम सदृश न साधन आना
क्षोभ विहाय तजहु तुम प्राणा
सकै न जिन पै रण जय पायी
सकत नेह तै अवहुं हरायी
अमृत प्रेम, द्वेष विष जानी
नव पथ पथिक होहु नव प्राणी[1]

इस प्रकार कुरुपति को प्रेम का तत्व समझाते हैं और संयम की महिमा बताते हैं, कृष्ण के चरित्र में सहनशीलता और संतुलन की पराकाष्ठा है । कुरुपति का क्रोध अंत समय में भी सीमा के परे हो जाता है और इसके विपरीत इतने कटु शब्द सुनकर भी कृष्ण का चित्त शांत है और तत्व का ही उपदेश देते हैं —

जिये मरे तुम आपु हित
भयेउ नरक संसार
गहहु क्षमा अनुराग पथ
उघरहिं स्वर्ग किवार[2]

धीरोदात्त कृष्ण क्षमाशील, सहनशील और कर्मशील हैं । मिश्र जी ने उनके संपूर्ण चरित्र को एक काव्य में एकत्रित करने का प्रयास किया है । दैवी गुणों से विभूषित कृष्णायन के नायक के चरित्र में उसी रूढ़िगत परंपरा का अनुसरण किया गया है । मानस में राम कथा की भांति इसमें कृष्ण के संपूर्ण जीवन की घटनाओं का संकलन अवश्य किया गया है पर वह एक सूत्रता और रस प्रवाह इसमें नहीं है जो मानस में है । यह अवश्य है कि कृष्ण के चमत्कारपूर्ण अलौकिक कार्यों का वर्णन करने में मिश्र जी को पर्याप्त सफलता मिली है ।

१- कृष्णायन : पृ०- ७६८ -जयकांड

२- कृष्णायन : पृ०- ७६८ -जयकांड , दोहा २५५

गुरुकुल के विद्यार्थी -मातृ पितृ आज्ञाकारी :—

पूर्ण ब्रह्म के अवतार कृष्ण का विद्यार्थी जीवन अत्यंत स्वाभाविक है। सहपाठियों के साथ परस्पर प्रेम व्यौहार, प्रत्येक कार्य में सहयोग देना कृष्ण का ध्येय है। गुरु की सेवा के लिये निरंतर तत्पर रहते हैं और अन्य शिष्यों के साथ जंगल में लकड़ी काटने जाते हैं —

गुरुहु गहन भूमि रैनि बितायी
शिष्य प्रभात मुनीश निहारे
आवत काष्ठ अबहुं शिरधारे
निष्ठा लखत पुलक तनु धाये
आशिष देत नयन भरि आये -[1]

इस प्रकार कृष्ण गुरु निष्ठा का भी आदर्श उपस्थित करते हैं। गुरु प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं और कृष्ण —

यहिविधि नित सेवा करत, सांग सर्व श्रुति ज्ञान
गुरु मुख एकहि बार सुनि सीखेउ ज्ञान निदान
चौंसठ दिवसहिं मांहि ब्रजेशा
लहे सर्व शस्त्रास्त्र अशेषा[2]

कृष्ण के ब्रह्म रूप का चित्रांकन भी महाकाव्यकार उचित अवसरों पर करना नहीं भूलता क्योंकि उन्होंने ईश्वर रूप में कृष्ण का वर्णन किया है। गुरुकुल में दीन सुदामा के साथ कृष्ण ने सदैव मित्रता का भाव रक्खा और उसका अंत तक निर्वाह किया। गुरु भक्ति का सर्वोत्कृष्ट दृष्टांत कृष्ण उस समय प्रस्तुत करते हैं जब गुरु पत्नी के समीप जाते हैं, आज्ञा मांगते हैं और सेवा पूछते हैं तब वह कहती है —

दिव्यपुरुष तुम अमृत राशी
कहत तुमिहिं विभु आश्रम वासी

१- कृष्णायन : पृ०- १८८ -मथुरा कांड
२- कृष्णायन : पृ०- १८८ - मथुरा कांड, दोहा १२०

सकहु तौ तात । वत्स ममतायी
देहु जननि उर दाह मिटायी ।[1]

गुरु भक्त कृष्ण —

सुनत वचन हरि मन अनुरागा
धन्य मातु । सुत जीवन मांगा ।[2]

आज के बौद्धिक युग में गुरु के मृत पुत्रों को पुन: लाकर देना मान्य नहीं है परन्तु मिश्र जी ने इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया और न उसे नवीन उद्‌भावना के द्वारा बुद्धि ग्राह्य बनाने का प्रयास किया । कृष्ण समुद्र में प्रवेश करते हैं और युद्ध आदि के द्वारा गुरु के मृत पुत्रों को प्राप्त करते हैं और जीवित अवस्था में लाकर देते हैं; गुरु पत्नी की अभिलाषा की पूर्ति करते हैं ।

ईश्वर के अवतार कृष्ण माता पिता के सन्मुख बाल लीला करते हैं और पुत्र प्रेम में उन्हें अनुरक्त देखकर यत्र तत्र अपनी अलौकिकता का आभास दे देते हैं जैसे मुख में मिट्टी के माध्यम से ब्रह्मांड का दर्शन कराते हैं । किंतु निरंतर कृष्ण मां की आज्ञा से बन में धेनु चराने जाते हैं और कहते हैं जो आज्ञा होगी उसका पालन अवश्य करूंगा, स्वप्न में भी उल्लंघन नहीं करूंगा । यशोदा भी कृष्ण के बाल-सुलभ कार्यों में सलग्न रहती हैं । कहती हैं —

दूरि लाल । जनि खेलन जावहिं ।[3]

और आज्ञाकारी पुत्र मां का सदैव ध्यान रखता है । एक ओर चमत्कारपूर्ण कृत्य दूसरी ओर बाल क्रीड़ा इस वैज्ञानिक युग के अनुकूल नहीं है इसी कारण वर्तमान कवि उसमें मौलिकता का सन्निवेश कर नवीन रूप देने का प्रयास करते हैं । गुरु के

१- कृष्णायन : पृ०- १६२ -मथुरा कांड
२- कृष्णायन : पृ०- १६२ - मथुरा कांड
३- कृष्णायन : पृ०- ३६ - अवतरण कांड

मृत पुत्रों को अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा ले आने वाले पारब्रह्म कृष्ण माता से कहते हैं ये गोपियां मुझे स्वयं पकड़ती हैं —

मैया । ये सब मोहि बोला वहिं
मैं भागहुं गहि कंठ लगावहिं ।[1]

प्रिय प्रवास में `हरिऔध जी` ने कालिय दमन के प्रसंग में लिखा है कि कृष्ण केवल वंशी ध्वनि द्वारा उस विषधर को नहीं वशीभूत करते बल्कि बुद्धि के द्वारा अस्त्रशस्त्र के प्रयोग से उसका विनाश करते हैं । कहने का तात्पर्य यह कि उसी घटना को हरिऔध जी ने इस ढंग से प्रस्तुत किया जो बोधगम्य है । मिश्र जी ने कृष्ण के ब्रह्म स्वरूप को ही अपनाया है । कृष्ण सर्व शक्ति मान होते हुए भी सदैव मर्यादा की रक्षा करते हैं ।

मर्यादा के समर्थक :—

कृष्ण गंभीर, धीर और वीर हैं तथा अपार शक्ति के स्त्रोत होने पर भी मर्यादा की सदैव रक्षा करते हैं । एक स्थान पर इसका वर्णन आया है । दुर्योधन युद्ध भूमि से भाग कर छिप जाता है और जब बाहर आता है तब भीम के व्यंग बाण उसे असह्य हो जाते हैं और वह कृष्ण से पूछता है —

पूछतपै मैं कृष्ण हि आजू
धर्म तुम्हार कहो यदुराजू
केहि रण नीति नियम अनुसारा
सब मिली एकहि चहत संहारा
युद्धहि एक एक जो आयी
सकल सबहि मैं समर सोवायी ।[2]

1- कृष्णायन : पृ०- ४३ - अवतरण कांड

2- कृष्णायन : पृ०- ७६२ - जयकांड

इतना कहकर उसे संतोष नहीं होता — कहता है :—

पांचहु पांडव, शिनि सुवन सृंजय तुम यदुनाथ
वहत जान यमधाम जो, करहि समर मम साथ[1]

इसका प्रति उत्तर मर्यादा के समर्थक कृष्ण देते हैं —

जदपि भवन, रणभूमिहु माही
पालेउ कबहुं धर्म तुम नाहीं
तमपी तथापि धर्म नरनाथा
तजत न धर्म अधर्मिहुं साथा ।
करिहैं आर्यौचित आचारा
नृपसंग नृपति-योग्य व्यवहारा
निरखहु । देत धर्म नरनाहा
तुमहि शिरस्त्र, हेम संनाहा[2]

नृप के संग नृप का जो व्योहार उचित है वही करेंगे क्योंकि हम लोग धर्म के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकते । अनेक प्रसंगों में कृष्ण के मर्यादा के रक्षक रूप का वर्णन किया गया है । सब स्वरूपों में उनका भक्त वत्सल रूप सर्वाधिक महत्व-पूर्ण है ।

भक्त वत्सल :—

लीला धारी कृष्ण भक्तों को सुख पहुंचाने के लिये उनकी मनोकामना पूर्ण करने के लिये इस कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं । इसी ध्येय की पूर्ति के लिये वह आदि से अंत तक कार्य करते हैं । बाल्यावस्था में नंद यशोदा को सुख पहुंचाते हैं,

---

१- कृष्णायन : पृ०- ७६२ -जयकांड, दोहा २४६
२- कृष्णायन : पृ०- ७६३ -जयकांड

किशोरावस्था में गोपियों के साथ रमण करते हैं और तत्पश्चात् असुर संहार के द्वारा विश्व में शांति की स्थापना करते हैं । कृष्ण भक्त के प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं और दुर्योधन का आतिथ्य स्वीकार नहीं करते । दीन भक्त विदुर के यहां सहर्ष शाक का भोजन करते हैं । दुर्योधन से स्पष्ट रूप से कह देते हैं —

पर विपत्ति अथवा वशप्रीती
खात् परान्न सुजन का रीती ।
मोहिं संग प्रीति तुम्हारी नांहि
विपत्तिग्रस्त मैं नांहि
केहि कारण भोजन करहुं
कस निवसहु गृह मांहि ।[१]

कृष्ण की भक्त वत्सलता का ज्वलंत प्रमाण उस समय मिलता है जब द्रौपदी की लाज बचाते हैं, भरी सभा में वह आर्त होकर पुकारती है- हे कृष्ण मेरी रक्षा करो । द्रौपदी की साड़ी खींचते-खींचते दुःशासन पराजित हो जाता है पर उसकी कुत्सित अभिलाषा पूर्ण नहीं होती वह उसे वस्त्रहीन करने में असफल होता है स्वयं पारब्रह्म जिसकी लज्जा ढंकने को प्रस्तुत है उसकी मर्यादा कभी नहीं जा सकती । इस दृश्य का मिश्र जी ने मर्मस्पर्शी चित्रण किया है —

कर्षी पुनि दुश्शासन सारी
कृष्ण कृष्ण द्रौपदी पुकारी
दीन बन्धु जगदीश्वर स्वामी
गोपी वल्लभ । जन अनुगामी
माधव । मधुसूदन दुखहारी
सकत को तुम बिनु अब उद्धारी[२]

भक्त की आर्त पुकार भगवान सुनकर सदैव व्याकुल हो जाते हैं और उसके दुख का निवारण करते हैं । इसी प्रकार —

१- कृष्णायन : पृ०- ४६० -गीता कांड, दोहा ३८
२- कृष्णायन : पृ०- ४२७ -पूजा कांड,

कर्षत हठि दुश्शासन चीरा
बढ़ेउ बसन लखि चकित अधीरा

गोविंद केशव करति पुकारा
बाढ़ेउ वसन लाग अंबारा
सभा मांहि उमहेउ मनहुं अम्बर पारावार-
बूड़ीनख शिख द्रौपदी 'हरि हरि' भरी पुकार [१]

मिश्र जी ने कृष्णायन में अपने नायक के चरित्र को इस रूप में अंकित किया है जो भारत की प्राचीन संस्कृति तथा नूतन युग की राष्ट्रीय चेतना को मुखरित करता है । यद्यपि पात्र अधिक होने से अन्य चरित्रों का पूर्णरूपेण विकास नहीं हो पाया है । परन्तु कृष्ण चरित्र का अंकन सफल रूप से हुआ है । यह अवश्य है कि रामचरित मानस की भांति ही इस महाकाव्य की रचना हुई पर यह उतनी ख्याति नहीं प्राप्त कर सका जितना होना चाहिए; जब कि भक्तों के हृदय के अधिक समीप लीलाधारी कृष्ण ही हैं अपेक्षा कृत परमब्रह्म राम के ।

कृष्णायन के अवतरण कांड में कृष्ण के बाल चरित्र का वर्णन श्रीमद्भागवत और सूर सागर के आधार पर किया गया है किन्तु मिश्र जी ने वास्तविकता लाने का प्रयास किया है । राधा कृष्ण का प्रेम मर्यादा की परिधि में ही सीमित है । मथुराकांड और अवतरण कांड की असुर संहार संबंधी घटनायें भी भागवत और सूर सागर पर आधारित हैं ।

गुरु सान्दीपनि के आश्रम में कृष्ण के विद्यार्थी स्वरूप का वर्णन कुछ नवीन उद्भावना के रूप में रक्खा गया है । द्वारकाकांड की घटनाओं की परवर्ती घटनाओं के साथ अन्विति स्थापित करने में मिश्र जी की काव्य कुशलता प्रकट होती है । संस्कृत तथा हिन्दी में यह प्रथम रचना है जो महाभारत के कृष्ण

१- कृष्णायन : पृ०- ४२८ - पूजाकांड, दोहा ९६

और द्वारकापति कृष्ण के चरित्र में सामंजस्य स्थापित करती है । अक्रूर कौरव पांडव की गतिविधि का परिचय प्राप्त करने हस्तिनापुरी जाते हैं यह मौलिक उद्भावना द्वारका कांड का अन्य कांडों से संबंध स्थापित करने में सहयोग देती है ।

अब तक कृष्ण की किन्हीं विशिष्ट जीवन कथाओं को लेकर ही काव्यों की रचना हुई किन्तु कृष्णायन में मिश्र जी ने विच्छिन्न कथासूत्रों को पिरोने का प्रयत्न किया है तथा संपूर्ण चरित्र को चित्रित किया है । परंपरागत विचारों से मिश्र जी अलग नहीं रह सके । कृष्ण के जीवन की बहुत सी अलौकिक तथा चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वर्णन उसी प्रकार किया है जैसे आज के बुद्धिवादी युग में ग्राह्य नहीं है और न उसे कवि ने मौलिकता का पुट देकर बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया वैसे प्राचीन मतानुसार नायक की दृष्टि से इसमें दोष नहीं है । कृष्ण नायक हैं तथा सर्व अलौकिक गुणों से विभूषित हैं किन्तु महाकाव्य युग काव्य है इस कारण कहा जा सकता है कृष्णायन के नायक कृष्ण आदर्श लोक के हैं जिससे हम बहुत दूर हैं और आज हमें अपने निकट रहने वाले युग पुरुष की आवश्यकता है जो हमारी उच्छ्वासों को सुनकर हमारे जीवन की समस्याओं को सुलझा सके यद्यपि कृष्ण का कुशल राजनीतिक और समाज रक्षक का रूप भी चित्रित किया गया है पर वह गौण ही रहता है । मानववादी युग मानवता के कल्याण को ही सर्वत्र देखना चाहता है और देवत्व की कल्पना नहीं करता, मानव मात्र में ही देवत्व का आवाहन करता है । कृष्णायन में देवत्व ही अधिक प्रखर हो जाता है ।

'साकेत संत' में भरत

(सन् १९५६ ई०)

`साकेत संत`

महाकाव्य में किसी महापुरुष के जीवन की ऐसी महान् कृतियों का उल्लेख रहता है कि हम उसकी सराहना ही नहीं करते बल्कि आराधना करने लगते हैं और वह हमारे हृदय की गहनता में प्रवेश कर हमारा पथप्रदर्शन करता है ।

साकेत संत की रचना डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने राम चरित मानस के आधार पर की है । मुख्य रूप से इसकी कथावस्तु का आधार, रामायण की अयोध्याकांड की कथा है । `मिश्र` जी का उद्देश्य साधु भरत के पावन चरित्र को ही प्रदर्शित करना है । इसी कारण परंपरागत कथा के उसी भाग को प्रधानता दी है जो भरत से संबंधित है । इस महाकाव्य के सृजन के पूर्व दो प्रमुख महाकाव्य `राम चरित मानस` और `साकेत` की रचना हुई है उसमें भी भरत के अपूर्व त्याग और आदर्श भ्रातृ भक्ति का वर्णन किया गया है, किन्तु वहां भरत को नायक के पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया गया है । मिश्र जी ने इसमें भरत और मांडवी को नायक नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है । प्राचीन परंपरागत लक्षणों के अनुसार भरत एक धीरोदात्त नायक के गुणों से संपन्न क्षत्रिय वंशी राजकुमार हैं । भरत के चरित को मानवतावादी युग के अनुसार ही बनाने का प्रयास किया गया है और अलौकिकता को बुद्धि ग्राह्य बनाकर प्रस्तुत किया है । इस महाकाव्य की यह विशेषता है कि महाकाव्यकार आरंभ से अंत तक अपने नायक के साथ रहता है ।

त्याग तपस्या की प्रतिमूर्ति भरत के चरित्र के द्वारा आदर्श जीवन का दृष्टांत उपस्थित किया गया है । दया, क्षमा, कर्तव्य पालन, सहनशीलता आदि दैवी गुणों की सुंदर व्यंजना हुई है, इस प्रकार भरत का चरित अत्यंत स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से विकसित होता है ।

मर्यादा पुरुषोत्तम:—

सर्व प्रथम परिचय भरत का नव विवाहिता पत्नी मांडवी के साथ प्रेमालाप करते हुए प्राप्त होता है । आत्म संयमी दंपत्ति वार्तालाप में भी शिष्टता का ध्यान रखते हैं मर्यादा की परिधि में ही विचरण करते हैं । मिश्र जी के इन शब्दों में भरत के संपूर्ण जीवन का सार निहित है —

भोगी रहके भी वही योगी
वही यागी है ।[1]

वार्तालाप के प्रसंग में मांडवी पति से कुलवधू के शील और कर्तव्य का निरूपण करती है—

कुलवधू कब रहती स्वच्छंद उसे बस
अपना भवन पसंद
आप के रहें अचल सुख साज
उसे प्रिय अपना स्वजन समाज ।[2]

भरत का पत्नी के प्रति प्रेम आदर्श की स्थापना करता है, उसमें उच्छृंखलता का किंचित मात्र भी समावेश नहीं है, उदार हृदय, समिष्ट कल्याणकारी भरत कहते हैं——

कौन कहता है तुम हो एक
एक होकर भी बनी अनेक
तुम्हारी ही छवि का विस्तार
विश्व में देखूंगा साकार ।[3]

प्रिया के प्रेम को विश्व में व्याप्त देखते हैं अर्थात् उनका संबंध आत्मा से है केवल दैहिक संबंध नहीं है । पति की अर्धांगिनी, पति के मार्ग की सहयोगिनी मांडवी भी अपने सुख की चिंता नहीं करती वह तो पति के लक्ष्य की पूरक है और कहती है —

और मैं ? तुम्हें हृदय में थाप
बनूंगी अर्घ्य आरती आप ।[4]

तात्पर्य यह कि आरंभ से ही युगल दंपत्ति के प्रेम में एक त्याग, एक आदर्श की भावना निहित है । इसके पश्चात् भरत कैकेय देश को प्रस्थान करते हैं

करुण हृदय:— भरत मामा युधाजित के साथ मृगया को जाते हैं, यहां इनकी अहिंसात्मक वृत्ति और करुणा पूरित भावना का दर्शन होता है यह अवश्य है कि यह मिश्र जी

१- साकेत संत : - भूमिका
२- साकेत संत : - पृ०- २२ सर्ग १
३- साकेत संत : पृ०- २६, सर्ग १
४- साकेत संत : पृ०- २६, सर्ग १

की नवीन उद्भावना है । भरत के बाण से एक कस्तूरिका मृग घायल हो जाता है, उसके कातर नेत्रों को देख कर भरत का हृदय द्रवित हो उठता है और कहते हैं आखेट में पशुओं का वध नहीं करना चाहिए—

> कुछ ऐसी कातरता थी
> मृग की आंखों में व्यापी
> शुद्धात्मा भरत कुंवर की
> करुणा पूरित हो कांपी [१]

भरत के चित्त की कोमलता को देख कर युधाजित उनको निर्भय शक्तिशाली शासक होने का ओजपूर्ण व्याख्यान सुनाता है, कहता है मृगया में एक पशु की हत्या हो जाने पर इतना दुख ? यह तो तुम्हारी सफलता है तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए, पशु पर क्या दया करना ? इस मौलिक उद्भावना के द्वारा मिश्र जी ने आज के मानव की स्वार्थी और क्रूर, विलासी और हिंसात्मक वृत्तियों की ओर संकेत किया है । अपने सुख के लिये मानव दानव बनने को तत्पर हो जाता है । युधाजित के उपदेश में शासक के लक्षण का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

> तापस हो क्षमा परायण
> तुम हो तेजस्वी शासक
> दुर्बल के बलिदानों पर
> जीवित है शक्ति उपासक । [२]

भरत को ही अयोध्या का भावी सम्राट बनना है और राज्य सुख भोगना है इसका संकेत युधाजित अत्यंत चतुरता से करता है और भरत को राजनीति तथा कूटनीति की शिक्षा देता है—

> वे मरें यहां जिनको है
> दासत्व भाव में मरना
> है जन्म सिद्ध तुमको तो
> प्रभु बन कर शासन करना
>
> × × × ×

१- साकेत संत : पृ०- १५, सर्ग २

२- साकेत संत : पृ०- ३३, सर्ग २ ।

शोषण का नय तुम सीखो
पोषण तब अपना होगा
यदि उर कोमल कर लोगे
उत्कर्ष कहां कब होगा
क्षुद्रों की बलि वेदी पर
पनपी है सदा महत्ता
निर्धन कुटियों को ढाकर
विकसी महलों की सत्ता ।[1]

'मिश्र' जी ने वर्तमान युग की शोषण वृत्ति की ओर संकेत किया है किस प्रकार पूंजीपति निम्न वर्ग को कुचल कर ऐश्वर्यशाली बनते हैं । युधाजित बारंबार राज्य की ओर ही भरत का ध्यान आकर्षित करता है—

तुम राजवंश के नरवर, तुम राजमुकुट अधिकारी ।[2]

वीतराग:— आरंभ से ही तपस्वी भरत त्याग और शांति का समर्थन करते हैं और उनके दृढ़ स्वभाव में किंचित मात्र भी परिवर्तन नहीं होता युधाजित के इन व्याख्यानों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । भरत का उत्तर मानवता के धर्म से ओत-प्रोत है, वह पशुता और मानवता का अंतर स्पष्ट करते हैं—

अति मानवता कब अटकी
जन के नश्वर भोगों में
मानव पशु ही होता है
पाशव सुख के योगों में ।[3]

सफल और सच्चा शासक वही है जो प्रेम के द्वारा शासित वर्ग के हृदय को विजय कर सके । वह आदर्श शासक नहीं है जो सुहृदों को भी भयभीत बनायें ।

१- साकेत संत : पृ०- ३४, सर्ग द्वितीय
२- साकेत संत : पृ०- ३६, सर्ग द्वितीय
३- साकेत संत : पृ०- ३७, सर्ग द्वितीय

शासक वह क्या शासक है
जो केवल भय उपजाये
जिसके नयनों की ज्वाला
सुहृदों को शत्रु बनाये ।

x x x

निर्धन की कुटिया ढाकर
जो अपना महल बनाते
आहों की फूंकों से ही
वे एक दिवस ढह जाते ।[१]

पूंजीपतियों की ओर गहरा कटाक्ष है, निर्बल और निरीह व्यक्तियों की पीड़ा से विशाल प्रासाद भी ध्वंस हो जाते हैं । राज्य के प्रति भरत को तनिक भी मोह नहीं है और साथ ही राम के लिये हृदय में अपार आदर की भावना है । वह ऐश्वर्य विभूति की ओर विरक्ति की भावना प्रकट करते हैं—

मन की यह नहीं सबलता
सिंहासन पर जा टूटे
वह कौन वीर है जग में
धन धाम न जिससे छूटे ।
कब शांति किसे मिल पाई
काम और धर्म के भ्रम में
सुस्थिर है लोक व्यवस्था
धर्मार्थ काम के क्रम में ।[२]

भरत शांति पथ के अनुयायी हैं, चिंता से मुक्त हैं राज्य का भार राजा राम पर है अपने को सेवक मात्र समझते हैं और युधाजित की सीख उन्हें अप्रिय लगती है—

सीखे जो राजा होगा
वह अर्थ काम की बातें
है राम कृपा से अपने, सुख के दिन सुख की रातें ।[३]

१- साकेत संत : पृ०- ३७-३८ , सर्ग द्वितीय
२- साकेत संत : पृ०- ३६, सर्ग द्वितीय
३- साकेत संत : पृ०- ३६, सर्ग द्वितीय

इस प्रकार भरत को आरंभ से ही राज्य के प्रति लोभ नहीं था और इसके अतिरिक्त वे नीति धर्म को भी महत्व देते थे, अपने ऊपर कलंक आने के पूर्व से इनको राज्य के ऐश्वर्य धन में आसक्ति नहीं थी । और न राज सिंहासन की आकांक्षा थी । जब युधाजित बताता है कि कैकयी के विवाह के पूर्व राजा दशरथ ने उसके औरस पुत्र को गद्दी देने का वचन दिया था और मंथरा को भरत के हित के लिये सतर्क रहने को पूर्व आदेश दिया जा चुका है, उसी क्षण भरत स्तब्ध और विचार लीन हो जाते हैं तथा अवध लौटने का विचार करने लगते हैं । भरत को तनिक भी प्रसन्नता इस समाचार से नहीं होती, उनकी त्यागपूर्ण प्रवृत्ति उन्हें राज्य मद से पूर्णतया विरक्त रखती है।

पितृभक्त:से— अयोध्या से संदेश आता है कि वशिष्ठ जी का आदेश है भरत वापस चले आयें, उनका मन भावी दु:ख की आशंका से चिंतित हो जाता है । भरत अयोध्या पहुंचने पर पिता के लिये पूछते हैं—

मां शीघ्र बताओ कहां पिता हैं मेरे
बेटा उनको रच गये अमरपुर डेरे ।

× × × ×

बस इतना सुन लो अभी
हुए तुम राजा, था वाक्य
कि वह था सर्प दंश सा ताजा ।[1]

इतना सुनते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और पुन: व्याकुल होकर पूछते हैं श्री राम कहां हैं ? वही अब पिता भी हैं और माई भी हैं । कैकयी ने उत्तर दिया—

बन गये राम तज सुहृद गणों की टोली

× × × ×

बनवास राम ने, राज्य तुम्हीं ने पाया ।[2]

जन्म देने वाली मां ने भी पुत्र के हृदय को नहीं देखा और उन्हें विश्वास था कि राज्याधिकार को प्राप्त कर भरत अति प्रसन्न होंगे किन्तु यह शब्द उनको असह्यनीय हो गये उनकी व्यथा का चित्रण मिश्र जी ने इस प्रकार किया है —

झंझा से कांपे, धधक उठे दावा से
क्षण भर में रुक कर अचल हुए आवा से

मस्तक पर सौ सौ गिरी बिजलियाँ आकर
गिर पड़े भूमि पर भरत सुचेत गंवा कर ।[1]

चेतना आने पर भरत के दुख की सीमा नहीं रहती अत्यंत व्याकुल होकर स्वयं को धिक्कारते हैं अपने जीवन सर्वस्व राम को बनवासी होने की कल्पना उन्हें अत्यंत दुख दायी होती है । मां को अपशव्द कह डालते हैं । यह भाव मिश्र जी ने परंपरागत काव्यों से लिया है भरत कह उठते हैं—

पापिनियों तुमने अवध प्राण संहारा
संहार और संहार हुआ क्या थोड़ा
नृप कुल यश सब खा गई न कुछ भी छोड़ा ।[2]

वह मंथरा, युधाजित आदि को भी धिक्कारते हैं । भरत के अपार दुख और आत्मग्लानि का भाव उनके एक एक शब्द से प्रकट होता है और वह कैकयी को अत्यधिक अपमानित करते हैं——

धिक धिक कैकयी की भूमि कुलक्षों वाली
जिसने मन्थरा समान नागिनी पाली
मां ! कहूं मानवी या दानवी नारी
डाकिनी ने दुर्धर मूठ अवध पर मारी

x x x x

किस मुंह से कह दूं उसे कि मेरी मां है
यह घोर राक्षसी निशा कठोर अमा है ।[3]

ऐसे त्यागी तपस्वी भरत के द्वारा मां को अपशव्द कहलाने में मिश्र जी ने भी परंपरागत कथा का ही अनुसरण किया । राज्य के अपार वैभव और ऐश्वर्य को स्वेच्छा से त्याग कर भोगों के बीच योगी की भांति चौदह वर्ष तक तपस्वी जीवन व्यतीत करने वाले भरत में संतुलन का भाव प्रदर्शित करना चाहिए । आधुनिक युग यथार्थवाद के अधिक समीप आ गया है वह आदर्शपूर्ण अलौकिक बातों को सहज ही स्वीकार नहीं करता;इस दृष्टि से

१- साकेत संत : पृ०- ९६ , सर्ग तृतीय
२- साकेत संत : पृ०- ४७, सर्ग तृतीय
३- साकेत संत : पृ०- ४८, सर्ग तृतीय

आंखों से भरत का यह व्यौहार- स्वाभाविक है किन्तु महाकाव्य के नायक के लिये 'धीर' होना अनिवार्य है इसलिये यदि मिश्र जी ने मौलिक उद्भावना के द्वारा ही भरत से राक्षसी डाकिनी, नागिनी आदि संबोधन मां के प्रति न कराया होता तो धीरोदात्त नायक के लिये उचित था । किन्तु यहां मानव सुलभ दुर्बलता का सन्निवेश किया गया है मिथ्या दोषारोपण पिता और भ्राता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, राज्य के प्रति पूर्णतया विरक्ति इन सब मनोभावों ने भरत को संतुलित नहीं रहने दिया और दुख के आवेश में कैकयी को अपशब्द कह देते हैं ।

उदार:— राम के प्रति भरत के हृदय में कितनी दृढ़ आस्था है, कितना अटूट प्रेम है ? वह राम को विश्व नियंता सृष्टिकर्ता परमेश्वर के रूप में मानते हैं और अपना अराध्य मानते हैं, एक क्षण को भी यह विचार सहन नहीं है कि राम को राज्य पर अधिकार न हो—

जो थे मेरे आराध्य हुए वनवासी
जिनको होना था भूप हुए सन्यासी
भारत का स्वामी फिरे ठोकरें खाता
संबल आश्रम से हीन रहे जग त्राता ।[१]

राम के सन्मुख भरत स्वयं को दीन, हीन और अयोग्य सिद्ध करते हैं—

जिन्हें था जन्म सिद्ध अधिकार
प्रजा का जिन पर अनुपम प्यार
सभी विधि जो समर्थ गुणधाम
मनुज के रूप महेश ललाम ।

x x x

कहां वे भैया परम उ महान
न सुख में हृष्ट न दुख में म्लान
कहां यह भरत महामतिहीन
सुयश में पीन कुयश में दीन ।[२]

१- साकेत संत : पृ०- ४८ सर्ग तृतीय
२- साकेत संत : पृ०- ५७ सर्ग चतुर्थ

कर्तव्य में सन्नद्ध:— वशिष्ठ जी बारंबार आग्रह करते हैं कि भरत राज्य को स्वीकार कर ले और कहते हैं —

> करो न सोच विचार भूप की आज्ञा पालो
> शवको मिले शिवत्व, दंड लो मुकुट संभालो ।[१]

किन्तु अपने विचारों में दृढ़ रहने वाले भरत गुरु वशिष्ठ को मार्मिक रीति से उत्तर देते हैं—

> दंडित में क्या शक्ति दंड को वह जो तोले
> जीवित शव हूं प्रभो ! हुआ शिव तो वनवासी
> भूप सत्यता वही नृप श्री जिसकी दासी ।[२]

संत भरत अपने आदर्श से विचलित नहीं होते, राज्य सुख का लोभ उन्हें आकर्षित नहीं कर पाता । वे निश्चय में अटल हैं, राम के प्रति सम्मान और आस्था की पराकाष्ठा है—

> मेरा निश्चय एक राम ही अवधनृपति है
> मैं हूं सेवक एक एक वे मेरी गति हैं ।[३]

प्रत्येक विषम परिस्थिति में मिश्र जी ने भरत की आन्तरिक भावनाओं का मनोवैज्ञानिक प्रदर्शन करने का प्रयास किया है और साधु भरत के चरित्र को अधिक उज्ज्वल बना दिया है। भरत को राम के बन गमन से कितनी अधिक व्यथा है इसका वर्णन मिश्र जी ने इस प्रकार किया है —

> मेरे कारण ही अवध राम ने छोड़ा
> मेरे कारण तनु बंध पिता ने तोड़ा
> मेरे कारण यह दशा तुम्हारी माता
> दानव हूं दानव विपुल व्यथा का दाता ।
>
> * * * *
>
> मैं रहूं कलंकी भले अवध सुख पावे
> वह करो कि भैया पुन: अयोध्या आवे[४]

१- साकेत संत : पृ०- ६९, सर्ग पंचम

२- साकेत संत : पृ०- ७०, सर्ग पंचम

३- साकेत संत : पृ०- ७०, सर्ग पंचम

४- साकेत संत : पृ०- ५२, सर्ग तृतीय

वह अपने को स्वयं दोषी स्वकार करते हैं और अनेक प्रकार से धिक्कारते हैं यहां तक कहते हैं मैं भले ही अपराधी, कलंकी प्रमाणित हो जाऊं मुझे कष्ट उठाना पड़े परन्तु मेरे भइया राम अयोध्या लौट आवें, सुख से रहें, यह भावना राम के प्रति सहज और प्रगाढ़ प्रेम को प्रकट करती है । इन परिस्थितियों के बीच भरत के हृदय में संसार के प्रति उत्कट वैराग्य की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और स्वार्थी मानव की हिंसात्मक वृत्ति का निरूपण करते हैं—

चितायें देख रहा सब ओर
ढो रहा फिर भी कुयश कठोर
हुई नर की यह कैसी बुद्धि
प्रभू ! कब होगी उसकी शुद्धि ।[1]

x x x x

हरे किसका करते नुकसान
वधिक जो लेते उनके प्राण
मृगों का मीनों का आखेट
फलों से क्या न भरसका पेट
स्वार्थ की कितनी दुर्धर आग
जला कर जगत रहा वह जाग
आप के मिथ्या भ्रम में हाय
मनुज मनुजों को ही खा जाय ।[2]

मिश्र जी नायक भरत के हृदय की आंतरिक व्यथा और ग्लानि का चित्रण करते हैं । साथ ही आज के समाज की ओर भी कटाक्ष करते हैं जो अपने विलास और सुख के लिये नृशंस हो गया है ।

नायक भरत नव विवाहिता पत्नी को भी त्याग और सेवा का मार्ग बताते हैं । जब मांडवी पूछती है कि इस दुख में मैं किस प्रकार आपका हाथ बंटाऊं, कैसे आप के कष्ट को कम करूं ? भरत उसे विरहिनी उर्मिला की देख भाल करने का आदेश करते हैं । तपस्विनी मांडवी पति के निकट रह कर मूक वेदना को सहन करती है, सारे विश्व में

१- साकेत संत : पृ०- १८, सर्ग चतुर्थ

२- साकेत संत : पृ०- १५-१६, सर्ग चतुर्थ

अपने स्वामी का दर्शन करती है—

विश्व की सारी कांति समेट
करुंगी एक तुम्हारी भेंट ।[1]

पति परायणा अपने आराध्य को सुखी बनाने के लिये जगत का समस्त आलोक उनके चरणों में समर्पित करने को प्रयत्नशील है ।

आदर्श भ्रातृ भक्त:— भरत के हृदय में राम के प्रति जो आस्था और स्नेह है वह अवर्णनीय है, परम त्यागी ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि राम को मनाने जाऊंगा, साकेतवासी मुक्त कंठ से इस निर्णय की प्रशंसा करते हैं और सब साथ जाने को प्रस्तुत हो जाते हैं । भरत समस्त साज सज्जा और विशाल सेना को लेकर प्रस्थान करते हैं इसका कारण कवि ने यह प्रदर्शित किया है कि राम का अभिषेक करना चाहते हैं—

भूप के अभिषेक के सब साज लो
तीर्थ के जल और पावन ताज लो
छत्र चवर गजादि वाहन संग हो
चक्रवर्ती के सभी वह रंग हो
साथ सेना हो कि सेवा भार ले
साथ पुरजन हो कि प्रभु स्वीकार लें ।[2]

इसमें महाकाव्यकार की मौलिकता का पुट है परन्तु युक्त संगत है । भरत की इस त्याग वृत्ति को देख कर गुरु वशिष्ठ कह उठते हैं धन्य धन्य रघुकुल नंदन भरत तुमने आज संसार को नवीन मर्यादा का पथ दर्शाया । भोग विलास और लक्ष्मी सभी को प्रिय है इसका स्वेच्छा से त्याग करना दुष्कर है—

बोले धन्य वशिष्ठ धन्य है रघुकुल नंदन
इतना दुष्कर त्याग धन्य सज्जन उर चंदन
नय मर्यादा तोड़ नई नय राह दिखाई
तुमसे जग ने आज नई है आभा पाई

१- साकेत संत : पृ०- २६, सर्ग १
२- साकेत संत : पृ०- ४८, सर्ग सप्तम

किसे न प्यारी शक्ति भोग है किसे न प्यारे
यश के साधन छत्र चंवर किसके न दुलारे
आई लक्ष्मी विपुल सामने पा ठकुराई
आखिर तुम हो भरत राम ही के लघु भाई ।[1]

भाई शत्रुघ्न गद्‌गद् हो भरत को देख रहे हैं —

विरति विवेक निधान त्याग को अनुपम व्रत को[2]

<u>आत्म संयमी</u>:— राम को मनाकर वापस लाने के लिये भरत प्रस्थान कर देते हैं, चित्रकूट जाते समय मार्ग में निषाद राज गुह के साथी बाणों के द्वारा मार्ग रोकते हैं क्योंकि वह समझते हैं यह राम से युद्ध करने जा रहे हैं किन्तु भरत के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व सत्य प्रेम और सरल व्यौहार से शीघ्र ही उन्हें यथार्थता का बोध हो जाता है और मित्र बन जाते हैं । भरत की दीनता और आत्म समर्पण के समक्ष निषाद राज का संदेह तिरोभूत हो जाता है—

उनका मुख शांत ललाम लखा
लोगों ने उनमें राम लखा
-- -- -- -- -- मैं भरत राम का दास खड़ा[3]

इस दृश्य को देख कर गुह का विरोध समाप्त हो जाता है और उसे भरत में राम का दर्शन होता है ।

आत्म संयमी भरत ऋषिराज भरद्वाज के आश्रम में आतिथ्य स्वीकार करते हैं । ऋद्धि सिद्धि की साज सज्जा के साथ भरत का सत्कार किया जाता है परन्तु भरत जल में कमल की भांति निर्लिप्त हैं और सब कुछ विस्मरण कर केवल राम के पुन: अयोध्या आने का प्रसंग सन्मुख रखते हैं यही इच्छा बारंबार प्रकट करते हैं ।

इच्छा एक कि प्रभु फिर आवें
अपना अवध पुन: अपनावें ।[4]

१- साकेत संत : पृ०- ७२, सर्ग पंचम
२- साकेत संत : पृ०- ७२, सर्ग पंचम
३- साकेत संत : पृ०- ९६ सर्ग८
४- साकेत संत : पृ०- १०८, सर्ग नवम

ऋषि उन्हें दृढ़वती रहने का आशीर्वाद देते हैं और कहते हैं तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो, आज रात्रि मेरा आतिथ्य स्वीकार करो । भरत डेरे पर आते हैं तो नवीन दृश्य पाते हैं—

बना बसेरा नंदन बन था
इन्द्रजाल सा वह छवि घन था
ऋद्धि सिद्धियां मानो धाईं
हाथ बांध सेवा को आईं
राजस विभवों के सब साधन
जन जन का करते आराधन
थी प्रयाग की अवनी प्यारी
अथवा अलकापुरी पधारी ।।[१]

ऐसा विदित होने लगा मानो कामदेव का साम्राज्य हो, प्रकृति और पुरुष दोनों ने मिल कर अपनी माया का इन्द्रजाल भरत को मोहित करने के लिये फैलाया है, इन्द्र की अप्सरायें भरत को आकर्षित करने का प्रयत्न करती हैं—

रम्भा बढ़ी उर्वशी धाईं
फल रसाल नंदन के लाईं ।
सुख सपनों के जाल सुनहले
योग भोग के माल सुनहले
गूंथ गूंथ कर खूब लुभाया
किन्तु न मोह मुग्ध कर पाया[२]

मिश्र जी ने यह भाव परंपरागत कथा से ही लिया है किन्तु भरत के चरित्र को अधिक उभारने के लिये कुछ नवीन उद्भावना के द्वारा इस घटना को अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है । इस वैभव और विलास का भरत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता—

अचल अटल ही रहा हिमालय[३]

१- साकेत संत : पृ०- १०६, सर्ग नवम
२- साकेत संत : पृ०- १११, सर्ग नवम
३- साकेत संत : पृ०- १११, सर्ग नवम

इस ऐश्वर्य के इन्द्रजाल में भरत को रात्रि व्यतीत करना भी दूभर हो गया है उनकी व्याकुलता और अस्त व्यस्तता का आभास इन पंक्तियों में मिलता है—

व्यंजन विष भरा है सांपिन
फिर भी इनको घातक ही गिन
रात्रि इन्हीं में रहना होगा
दुख सभी यह सहना होगा ।।४८ ।।
मौन भरत ने जल ही पीकर
रात बिताई दुख से जग कर ।।४९।।[1]

महान् से महान् तपस्वी भी ऐसी स्थिति में विचलित हो जाते हैं परन्तु भरत अटल रहकर अपने दृढ़ चरित्र का परिचय देते हैं, इतने सुख भोग के रहते हुए केवल जल पीकर रात्रि व्यतीत करते हैं। भरत साधारण पुरुष नहीं हैं। त्याग की भावना का भी त्याग करने वाले महान् योगी हैं। मिश्र जी ने इसका वर्णन किया है—

माना तप में त्याग भरा है
और त्याग में शक्ति महा है
किन्तु त्याग का भी जो रागी
वह भी एक भोग का भागी[2]

इनके अपूर्व त्याग और संयम की तुलना नहीं की जा सकती। दैवी गुणों से विभूषित भरत के जीवन में कितनी विषम परिस्थितियां आती हैं परन्तु वह दृढ़ता के साथ सब का सामना करते हैं और अपने लक्ष्य में परिवर्तन नहीं करते।

शीलवान तथा विनम्र:— श्री राम को मनाकर अयोध्या वापस लाने के हेतु भरत जा रहे हैं। वह किसी यान के द्वारा जाना उचित नहीं समझते। पैदल, नंगे पैरों चले जा रहे हैं। तन मन की सुध को विस्मृत कर केवल राम का ध्यान करते हुए बिना उपानह के कठोर मार्ग पर चल रहे हैं और विचार करते हैं कि इस पथ पर मेरे आराध्य चलकर गये हैं। उसी पर मैं भी चरण रख कर जा रहा हूं। मेरे लिये क्षोभ की बात है पर विवशता है क्या किया जाय ? मानस में तुलसी दास जी ने दिया है कि भरत

१- साकेत संत : पृ०- ११२, सर्ग नवम
२- साकेत संत : पृ०- १११, सर्ग नवम

कहते हैं इस राह पर मुझे शीश के बल चलना चाहिए। मिश्र जी ने भी उस भाव का अनुसरण किया है। सब लोग समझा कर हार जाते हैं पर वह सवारी पर नहीं बैठते—

बहुत हैं जो चरण रख जा रहे थे
उसी में वे बहुत शरमा रहे थे
मना कर थक गये उनको सभी जन
किया जो स्थिर अडिग उस पर रहा मन
पड़े छाले व्यथा के अश्रु धारे
सहारे दे रहे थे कांटे विचारे
धरा करुणार्द्र थी वे बूंद पाकर
उसांसें ले रही उनको छिपाकर।[१]

ऐसी दीन दशा में चले जा रहे हैं, मन में जो संघर्ष हो रहा है उसका अत्यंत मार्मिक और मनोवैज्ञानिक चित्र अंकित किया गया है—

कहूं वह क्या कि भैया मान जावें
अवध उजड़ा हुआ फिर वे बसावें
मुझे सेवक समझ अपनायेंगे वे
कि लोभी जान दूर हटायेंगे वे।।

अड़ूंगा बस चरण पकड़े रहूंगा
हटूंगा मैं न जब तक हां सुनूंगा
सहायक मां, सहायक गुरु सभी हैं
निठुर ? ना; इस तरह भैया नहीं हैं।[२]

भरत के हृदय में निरंतर यही भाव उठते हैं किस प्रकार राम अयोध्या आ जायें और राज्य का भार वहन करें। उनकी विनम्रता की सीमा नहीं है, अपने को कितना तुच्छ समझते हैं ? कोई अहंकार या दर्प उनके मन में नहीं है कि मैं स्वयं राज्य को त्याग कर जा रहा हूं बल्कि कहते हैं—

मुझे क्या दूर से दुत्कार देंगे
प्रणति का भी न क्या अधिकार देंगे
न पापी हूं भले ही हूं कलंकी
हृदय। क्यों हो रहा है पाप शंकी।[३]

राम और सीता के प्रति कितना आदर है इसकी कल्पना नहीं की जा सकती, उनको अधिक बोलने का साहस नहीं हो रहा है कहते हैं चरण पकड़ कर निवेदन करूंगा और रास्ते में जानकी जी के पायल के स्वर्ण नूपुर पाकर भरत दुख से विह्वल हो जाते हैं—

हुए वे बात करते भाव विह्वल
पुलक तन पर दृगों में भर गया जल
रखा माथे कि जो दो बिन्दु पाये
वहां दो सौ नये दृग से गिराये।[१]

करुणा से हृदय द्रवित हो उठता है आंखों से अश्रुओं की झड़ी होने लगती है सोचते हैं जनक नंदिनी को बन में दुख सहन करना पड़ता होगा। यह सत्य है यदि राम के प्रति इतना अनुराग न होता तो मिले हुए राज्य वैभव का परित्याग भरत के इस प्रकार न करते जैसा कि यहां प्रदर्शित किया गया है—

बिरह होता न होती तीव्रता यों
किसी अनुराग का मिलता पता यों
स्वयं विष पी सुधा जग को पिलाई
भरत ने भी नई गंगा बहाई।[२]

मिश्र जी ने अपनी मौलिक उद्भावना के द्वारा भरत के आगमन की सूचना कोलों से भेज दी जिससे लक्ष्मण को भरत पर संदेह करने का अवसर नहीं प्राप्त होता। पर्ण कुटी का दर्शन दूर से ही मिलने पर भरत को इतना आनंद होता है मानों राम का ही दर्शन हो रहा है। महाकाव्यकार का उद्देश्य भरत के चरित्र की महत्ता को अधिकाधिक विकसित करना है। वशिष्ठ जी कहते हैं, राम वापस लौट चलें और भरत बनवासी होकर वन में विचरण करें, भरत का उत्तर उनके उदार और महान् चरित्र को

शेषांक:—

१- साकेत संत : पृ०- ११६, सर्ग दशम
२- साकेत संत : पृ०- १२०, सर्ग दशम
३- साकेत संत : पृ०- १२०, सर्ग दशम

१- साकेत संत, पृ०- १२२, सर्ग दशम
२- साकेत संत: पृ०- १२२, सर्ग दशम

प्रकट करता है—

खिल उठे भरत कह उठे, अहा । सुन्दर हल

प्रस्तुत हूं मैं बन हेतु राम फिर जावें

हम लोग यहीं बस जायें यहीं सुख पावें ।[1]

भरत चरित्र का सर्वाधिक महत्पूर्ण और मार्मिक घटना स्थल `भरत राम मिलन` है । भरत के मन में दर्शन के लिये कितनी व्याकुलता है इसकी सुन्दर अभिव्यंजना की गई है-

प्रतिपद पर दंड प्रणाम पूत रज माथे

प्रति पुलक परम करुणार्द्र अश्रु से गाथे

प्रति अंगों में वह विरह तीव्रता आई

प्रति धमनी में थी राम राम की ध्वनि छाई ।[2]

करुणा के धाम राम कोलों द्वारा भरत आगमन की सूचना पाकर भाई से मिलने के लिये स्वयं चल पड़ते हैं, प्रेम का सागर उमड़ पड़ता है, ज्ञान और वैराग्य एक हो जाते हैं, राम आगे बढ़ते हैं—

`भैया भैया` कह उभय भुजाएं फूली

वक्षस्थल चिपके क्सीं लतायें फूली

मन बुद्धि अहं तक एक हुए घुल मिल कर

थी एक नीलिमा शेष कहां कुछ अंतर[3]

भरत की सहनशीलता और धैर्य का बांध टूट जाता है अश्रुओं की धारा प्रवाहित होती है उसी से अपने प्रभु का स्वागत करते हैं—

रस धाराओं सी बही अश्रु धारायें

जिनकी बूंदों में बहीं करोड़ व्यथायें

इनमें चरणों की चाह उन्हें उर प्यारा

दोनों को जकड़े पड़ी करों की कारा[4]

१- साकेत संत : पृ०-१२७, सर्ग एकादस

२- साकेत संत : पृ०- १२८, सर्ग एकादश

३- साकेत संत : पृ०- १२६, सर्ग एकादश

४- साकेत संत : पृ०- १२६, सर्ग एकादश

तुलसी दास जी की ही भांति मिश्र जी ने भी प्रत्येक स्थान पर मर्यादा की सुरक्षा करने का सफल प्रयास किया है भरत सीता का दर्शन करते हैं और चरणों पर लकुट समान भरत विह्वल थे—

चरणों पर लकुट समान भरत विह्वल थे
सिर पर सीता के हाथ परम कोमल थे
कानों को आशीर्वाद मिला मन भाया
उन शब्दों में क्या क्या न भरत ने पाया ।[1]

एक नवीन उद्भावना के द्वारा मिश्र जी ने चित्रकूट में वृहत्सभा के पूर्व भरत और राम का परस्पर वार्तालाप प्रदर्शित किया है । दोनों एकांत में एक दूसरे के सन्मुख अपना हृदय खोल कर रख देते हैं, भरत जी अनुकूल अवसर पाकर पूछते हैं—

प्रभो क्या है जीवन का मर्म
इधर है हृदय उधर मस्तिष्क
इधर है प्रेम और उधर है कर्म ।[2]

राम ने कुछ क्षण मौन रहकर विवेक पूर्ण उत्तर देते हैं और सृष्टि के आरंभ के वर्णन द्वारा अध्यात्मिक विचार प्रकट करते हैं—

देह तक मृत्यु जीव तक बन्ध
असीमित आत्मा का अधिकार
वही दासोहं सोहं वही है अलह एक ओंकार
वही शासित है बनकर व्यक्ति
वही शासक है बनकर राष्ट्र ।[3]

समस्त विश्व में वही ब्रह्म व्याप्त है । मिश्र जी ने युगानुकूल अछूत वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखलाई है और राम के मुख से कहलाया है—

सभी रंगों में एक अभंग
कहां गोरे काले का भेद
वही शिव सुंदर सत्य महान
उसी की महिमा में रतवेद ।[4]

१- साकेत संत : पृ०- १३०, सर्ग एकादश
२- साकेत संत : पृ०- १४०, सर्ग द्वादश
३- साकेत संत : पृ०- १४१, सर्ग द्वादश

इस प्रकार वर्ग की विभिन्नता को मिटाने की भावना का सन्निवेश किया है क्योंकि उसी ईश्वर के द्वारा सभी बनाये गये हैं । आधुनिक साहित्यकार मानवता को सर्वोपरि महत्व देते हैं इसी विचार को अपनी कृतियों में भरने का प्रयास करते हैं—

मनुज के जीवन का है मर्म
मनुजता ही का हो उत्थान
मनुजता में समृद्ध अमरत्व
मनुजता में अग जग की तान[१]

मिश्र जी ने राम भरत के परस्पर वार्तालाप में राम के लोक कल्याणकारी भावों का प्रदर्शन किया है।मानव जीवन के धर्म पर प्रकाश डाला है । भरत को राम के त्याग पूर्ण विचारों का स्पष्ट आभास मिल जाता है कि वह अयोध्या वापस नहीं जायेंगे । राम भावना से कर्तव्य को अधिक महत्व देते हैं और कहते हैं—

जगत रक्षा के व्रत में सदा
रहा है सूर्य वंश विख्यात
निभाता गया अभी तक यहां
एक ही वीर एक यह बात ।
विधाता की इच्छा से आज
बन्धु ! हम एक नहीं हैं चार
दिशाएं चारों होंगी सुखी
संभाले यदि कन्धों पर भार
वहां तुम शक्ति संगठित करो
कि जिससे विकसे आर्यावर्त
यहां मैं उत्तर अभिमुख करूं
वनों में रह दक्षिण आवर्त
उभय दिशा एकादश की भांति
एक भाई का ही है संग
हो उठे उत्तर दक्षिण एक
तुम्हारा भारत बने अभंग ।[२]

१- साकेत संत : पृ०- , सर्ग द्वादश

इस प्रकार विश्व को सुखी बनाने की योजना बनाते हैं और एक छात्र शासन का विधान निरूपण करते हैं । भरत राम का निश्चय सुनकर विह्वल हो जाते हैं, प्रेम के कारण आंखों से अश्रु की धारा बहने लगती है, राम समझाते हैं-तुम दुखी न हो कल पुन: विचार होगा और भरत को प्रेम की महिमा, परिभाषा बताते हैं । कहते हैं-कर्तव्य और प्रेम का सामंजस्य ही ज्ञान है, इसके द्वारा जीवन में सफलता प्राप्त होती है । मनुष्य के जीवन की आवश्यकताओं के विषय में भी विचार प्रकट करते हैं और राष्ट्र प्रेम की चर्चा करते हुए कहते हैं—

जनार्दन में जनता को लखो ।[१]

इस प्रकार का आदर्श उपस्थित करते हैं । मिश्र जी लोक कल्याण को प्रमुखता देते हैं । भरत आत्म समर्पण कर देते हैं—

कौन जीवन के चौदह वर्ष
खेलते खाते जाते बीत
परीक्षा पा लेवें सिद्धान्त
मुझे यह अवसर मिला पुनीत
सौंपता हूं अपने को आज
तुम्हारे हाथ तुम्हारे हाथ ।[२]

सेवक:— चित्रकूट में एक विराट सभा होती है । सब मिलकर एकत्रित होते हैं और राम का निर्णय चाहते हैं । अनेक मुनीश्वर, मिथिला नरेश, गुरु वशिष्ठ के साथ नगरवासी इस सभा में उपस्थित हैं, सभी राम को समझाते हैं कि अयोध्या वापस लौट चलो । यह मिश्र जी की मौलिक भावना है जो भरत पर ही पूर्ण दायित्व आ जाता है, भरत अपने आराध्य के प्रति आत्म समर्पण कर देते हैं । एक आज्ञाकारी सेवक का विकसित रूप देखने को मिलता है—

गुरुजन के रहते मैं बोलूं

x x x

मुझ अनुचर की अभिलाषा
प्रभु इच्छा अभिलाषा मेरी

१- साकेत संत : पृ०- १५१, सर्ग द्वादश
२- साकेत संत : पृ०- १७६, सर्ग द्वादश

प्रभु को जो संकोच दिलावे
कभी न हो वह भाषा मेरी ।[1]

इस सभा से पूर्व भरत को राम के निश्चय का आभास मिल चुका है । इस मौलिकता से कथा का रूप परिवर्तित हो जाता है किसी पर भी आक्षेप नहीं आता, मानस की भांति देवतागण सरस्वती से भरत की जिह्वा में प्रवेश करने की पूर्व प्रार्थना नहीं करते । इस घटना को बुद्धि ग्राह्य बनाने के हेतु मिश्र जी ने कहलाया है—

जान चुका हूं प्रभु की इच्छा
पथ विपरीत गहूं मैं कैसे
रोम रोम जिसको कहता था
अब वह बात कहूं मैं कैसे ।।[2]

< < < <

किन्तु कठोर धर्म सेवक का
जिससे स्वार्थ सभी विध हारा
उनकी इच्छा है कि अवध में
मैं विरहातुर दिवस बिताऊं
तब मैं कैसे कहूं चलें वे
अवध कि मैं ही बन को जाऊं ।[3]

भरत सेवक धर्म की विवेचना कर रहे हैं, अपने स्वामी राम को प्रसन्न रखना चाहते हैं, उनकी इच्छा और उनके लक्ष्य की पूर्ति करने के लिये स्वयं कष्ट उठाने को प्रस्तुत हैं, कहते हैं—

आया था अपनी इच्छा से
जाऊंगा प्रभु इच्छा लेकर

१- साकेत संत : पृ०- १७६, सर्ग त्रयोदश
२- साकेत संत : पृ०- १७६, सर्ग द्वादश
३- साकेत संत : पृ०- १७७, सर्ग त्रयोदश

राज्य उन्हीं का यहां वहां भी
मैं तो केवल आज्ञाकारी
चौदह वर्ष धरोहर संभले
बल संबल पाऊं दुख हारी ।[१]

वास्तव में भरत का आज्ञाकारी सेवक का स्वरूप वंदनीय है, उनका हृदय श्रद्धा से ओत प्रोत है—

चरण पीठ करुणा निधान के
रहे सदा आंखों के आगे
मैं समझूंगा प्रभु पद पंकज
ही है सिंहासन पर जागे
उनसे जो प्रेरणा मिलेगी
तदनुकूल सब कर्म करूंगा
उन्हें अवधि आधार जानकर
उन पर नित्य निछावर हूंगा ।[२]

इन शब्दों में मिश्र जी ने उपासना, श्रद्धा और सेवा भाव का सम्मिश्रण किया है । भरत के अंतरतम की भावनाओं को प्रकट किया है, उन्हें राज्य के लिये कण मात्र भी लोभ नहीं है—

अवधि ज्यों ही पूरी हो
सारा भार उतार धरूं मैं ।[३]

महाकाव्यकार ने मनोवैज्ञानिक चित्र अंकित किया है । सभा में उपस्थित समस्त जनता उत्सुक होकर भरत की ओर देखती है —

१- साकेत संत : पृ०- १७७, सर्ग त्रयोदश
२- साकेत संत : पृ०- १७८, सर्ग त्रयोदश
३- साकेत संत : पृ०- १७८, सर्ग त्रयोदश

भरत जिधर थे उधर सबों की
उत्सुक आंखे धाईं
दौड़े इतने भाव न सकीं संभाल
भरत आंख भर आईं
चढ़ा दृगों में ज्वार और
मुख के रंगों पर मांटा छाया ।[१]

कर्तव्य पालक सेवक स्वामी के प्रति प्रेम वेग को नहीं सम्हाल पाता और आंखें भर ही आती हैं । मर्यादा पुरुषोत्तम राम भरत के परित्याग के समक्ष स्वयं पराजय स्वीकार कर लेते हैं और अपने मुख से भरत की प्रशंसा करते हैं—

आज भरत ने जगत उबारा
सबका दुख अपने में लेकर
सब को सुख का दिया सहारा
वह अनुराग त्यागमय अनुपम
बड़े भाग्य यदि कोई पावे
देव मनुज की महिमा समझे
सुर नर के दर्शन कर जाये ।

< < < <

आज भरत खोकर भी जीते
और जीत कर भी मैं हारा ।[२]

मिश्र जी ने मानवतावाद को प्रश्रय दिया है और यह भाव प्रकट किया है मानव कर्म से महान बनता है । अपनी नवीन विचार धारा के द्वारा मिश्र जी भरत के नंदिग्राम की दिन चर्या का वर्णन करके भरत के चरित्र को और अधिक उज्ज्वल बनाने का प्रयास करते हैं ।

<u>योगी भरत</u> :— भोग और ऐश्वर्य के मध्य निरासक्त रहकर भरत बैरागी की भांति नंदिग्राम में समय व्यतीत कर रहे हैं । शरीर कृश हो गया है किन्तु तेज

१- साकेत संत : पृ०- १७७, सर्ग त्रयोदश
२- साकेत संत : पृ०- १७९-१८०, सर्ग त्रयोदश

बढ़ता जा रहा है और —

प्रभु पद पीठों की अर्चा में
यों तन मन से अनुरागे हैं

× × × ×

देह कृशत पर बढ़ी थी
दीप्ति सुषमा पर बढ़ी थी
राम की रट में स्वयं ही
राम बन कर वे सुहाये

× × × ×

तन से तापस मन से योगी
पाई का भी न कभी भोगी
ग्रामीण श्रमिक सा आप हुआ
सुत बन्धु स्वत: वो आप हुआ[1]

साधु भरत राज्य का भार सम्हाल रहे हैं, उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का अंकन इस प्रकार किया गया है—

दृढ़ता उसमें मृदुता उसमें
परम जटिलता ऋजुता उसमें
कितनी प्रबल शक्तियों का था
उस दूबे से तनु में डेरा ।

× × × ×

जीवन रक्षक कन्द मूल फल
बस सामग्री[2] सारी ।

भरत ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए प्रजा को सुखी बनाने में रत है । नव विवाहिता सुकुमारी पत्नी भी पति के साथ तपस्विनी बनी है, स्वामी की सेवा ही उसका ध्येय है ।

१- साकेत संत : पृ०- १८७, सर्ग चतुर्दश २ (आ)

२- साकेत संत : पृ०- , सर्ग चतुर्दश

यौगी भरत के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उनका अपूर्व त्याग है । भरत को राज्य सिंहासन देने के हेतु ही समस्त योजना बनी और उन्होंने स्वेच्छा से उसका परित्याग कर आदर्श भ्रातृ भक्ति, पितृ भक्ति का दृष्टांत प्रस्तुत किया । अयोध्या में रह कर राम की आज्ञा पालन किया और सेवक की भांति राज्य का कार्यभार सम्हाला, लोक सेवा में रत हो मानवता को गले लगाया । मिश्र जी ने राष्ट्र प्रेम और मानवता को प्रश्रय दिया है, मौलिक उद्भावना के द्वारा यत्र तत्र मानव धर्म का प्रभावशाली रूप प्रकट किया है । भरत का अनुपम चरित्र नायक के प्रतिष्ठित पद के सर्वथा अनुकूल है । भरत साकेत में वैभव और विलास के मध्य में रहते हुए भी योगी हैं और साकेत के संत हैं ।

'जननायक' में 'बापू'

:सन् १९४९:

'जननायक' में बापू

बौद्धिक विकास के इस युग में महाकाव्य की रचना समष्टि कल्याण के लिये होती है । महाकवि मानवता के उत्थान के लिये लोकमंगल को ही अपना लक्ष्य बनाता है, उसे नायक के चारित्रिक विकास के माध्यम से प्रस्तुत करता है और अंत में सत्य तथा न्याय की विजय दिखाता है ।भारतीय सिद्धान्त के अनुसार नायक कभी पराजित नहीं होता । मानवता वह ईकाई है जिसमें ऊंच-नीच का, जाति पांति का महत्व नहीं रहता और आज युग मानवता का आराधक है । यह सत्य है कि भेददृष्टि से हमारी शक्ति का ह्रास होता है और परिणाम-स्वरूप राष्ट्र या समाज का पतन होता है । मानवता की पुनीत धारा में भेद-भावना का विनाश हो जाता है इसी कारण वर्तमान युग के महाकाव्यकारों अपनी कृतियों में मानवता को प्रश्रय देते हैं । युगिन महापुरुषों के जीवन की झांकी लोकहित के आलोक में सजाई जाती है जिसके प्रकाश में विश्व प्रकाशित हो उठता है तभी मानव का वास्तविक कल्याण होता है ।

युग पुरुष बापू का सम्पूर्ण जीवन मानवता का प्रतीक है अनेक महाकवियों ने बापू को नायक के रूप में चित्रित किया है । रघुवीरशरण मित्र ने अपने महाकाव्य 'जननायक' में महामानव को प्रधान पुरुष पात्र का पद दिया है ।गांधी के उदात्त गुणों परदृष्टि डालना है ।

विश्वकल्याण :- बापू ने विश्वकल्याण के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया । समाज को ऐसे राष्ट्र भक्त की आवश्यकता थी जो देश को पराधीनता की शृंखलाओं से मुक्त कर सके इस कार्य की पूर्ति के लिए जननी जन्मभूमि पर बलि होने वाले अमर सपूतों की मांग थी महाकवि ने सत्य से नायक के कलेवर का निर्माण किया और शिवत्व की संजीवनी पिला कर सुन्दरम् की भावना से युक्त करके समाज को लोकमंगलकारी युगपुरुष प्रदान किया । 'मित्र' जी ने बापू का जो चरित्र प्रस्तुत किया है उससे हृदय में राष्ट्रप्रेम की दीपशिखा आज भी उद्दीप्त हो उठती है विश्व के लिये मंगलकामना का संदेश देने वाले गांधी के इन शब्दों में कितना मर्म-स्पर्शी भाव निहित है --

'सब से बड़ा पाप है जग में बंधन में रह पूंछ हिलाना
सबसे बड़ा धर्म है जग में मुक्त दासता से हो जाना
सत्य अहिंसा से बंधन की हथकड़ियाँ को तोड़ गिरावें
असहयोग से क्रान्ति क्रान्ति के भीषण अंगारे दहकावें[1]।'

महामानव गांधी में अदम्य उत्साह और अपूर्व साहस है। उनके चरित्र की ओर दृष्टिपात करते ही यह विदित हो जाता है कि उन्हें राष्ट्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। मानवता के प्रतीक 'बापू' के इन वाक्यों में संकल्प की दृढ़ता फलकती है -

'शीतल शांत सुधारस गांधी बोले
'सत्य नहीं हर सकता
गांधी मरे भले ही चाहे
गांधीवाद नहीं मर सकता[2]।'

महापुरुषों की उदात्त भावनायें सर्वदेशीय और सर्वकालीन होती है क्योंकि वह सत्य को लेकर ही अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये अग्रसर होता है और सत्य सदैव अमर रहा। कवि अपनी कृतियों में ऐसे महान् व्यक्तियों का चरित्रांकन करता है जो समाज के सन्मुख सत्यं शिवं सुन्दरम् की भावना को प्रत्यक्ष कर सके। साहित्य समाज का ऐसा घनिष्ठ संबंध है जो एक दूसरे पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकते इसी कारण महाकाव्य को युग काव्य कहा गया है।

जननायक के बापू वर्गभेद मिटाने के लिये इस प्रकार प्रयास करते हैं कि उससे हमारे हृदय में विश्वबन्धुत्व की, समता की भावना उत्पन्न होती है और यह विचार आता है कि सत्य ही है सुखी जीवन यापन करने का सबको समान अधिकार है हमको ऊंचनीच की भिन्नता को विनष्ट करना चाहिए। दीन हीन दरिद्र बन

१- जननायक - पृ० २६३ - सर्ग १७
२- जननायक - पृ० ३९२ - सर्ग १८

कर अन्यों की पराधीनता में रह कर इस अमूल्य मानव जीवन को नष्ट नहीं करना चाहिए--राष्ट्रपिता गांधी के हृदय से निकले उद्गार कितने मार्मिक हैं-

'मानवता के उस मंदिर में
ऊंच नीच की बात नहीं थी
वह थी दीपमालिका आली
जिसमें काली रात नहीं थी
दुनियां में इन्सान एक से पर वह
भंगी यह चमार है
वर्ण भेद का खड्ग चल रहा[1]।'

मानवता के इस सिद्धांत को जननायक ने गले लगाया, ईश्वर के यहां से हम सब एक ही रूप में उसी रक्त मांस से बन कर आये फिर यह कैसी विभिन्नता कैसी विषमता : जो हमारी सेवा करके हमको सुख सुविधा से जीवन व्यतीत करने में सहयोग दे उसे हम दुतकारें, यह मानवता नहीं पशुता है । युग को ऐसे महापुरुष की आवश्यकता थी जो समाज की इस कुप्रथा को नष्ट कर के कल्याण का पथ प्रदर्शित कर सके इसी कारण आधुनिक महाकाव्यकारों ने 'बापू' को अपनी रचना में महत्वपूर्ण स्थान दिया। केवल ह अलौकिक गुणों से युक्त आदर्श पथ प्रदर्शक की आज हमें आवश्यकता नहीं है । हमें ऐसा युग मानव चाहिए जो हमारे अंतरतम में प्रवेश कर हमारे दुख सुख की कहानी सुन सके और उसे दूर करने का प्रयास करे । कहने का तात्पर्य यह कि यथार्थता का संदेश लेकर नायक सन्मुख आता है तब समाज उससे निस्संकोच होकर हृदय खोल कर मिलता है । 'मित्र' जी ने अपने महाकाव्य में पग-पग पर मानवता के धर्म को प्रकट करने का प्रयास किया है —

धन्य धन्य वह अमर पारखी
जिसने परखी है मानवता
मानवता की दिव्य ज्योति में
मनु सी बदल गई दानवता[2]।'

१- जननायक- पृ० १८५- सर्ग १२

२- वही पृ० १६४ सर्ग ११

मानवता की उच्चभूमि में ही गांधी को स्वतंत्रता का सूत्र मिला । देश के बालकों को भूख से व्याकुल और गृहहीन,वस्त्र हीन देख कर राष्ट्र पिता बापू के हृदय में वह अमर दीप प्रकाशित हुआ जिसने मानव मात्र को सुख में जीवित रहने का संदेश सुनाया, देशवासियों को पराधीनता से मुक्त कराया । बापू के जीवन का मुख्य उद्देश्य था समष्टि का कल्याण इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग किया ।

सत्य अहिंसा-

इस प्रकार आधुनिक महाकाव्य-कारों ने परम्परागत सिद्धान्तों के अनुसार नायक के लिए वंशकुल की मर्यादा को नहीं अपनाया । सत्य और अहिंसा के द्वारा गांधी ने सबके हृदय पर शासन किया और उन्हें ईश्वर की भांति जनता पूजने लगी-

'सत्य अहिंसा और प्रेम के
मन में मोती कमल बो गये
जिसकी तुलना हुई न होगी
वे ऐसे इंसान बन गये
कठिन कठिन व्रत कर जीवन में
मानव से भगवान बन गये ।'[1]

महामानव बापू अपने जीवन के आरम्भ से ही अहिंसा को परम धर्म मानते हैं । विलायत जाते हैं और सबके साथ बैठकर फल फूल खाते हैं मांस का स्पर्श भी नहीं करते -

'मौजों में फलफूल चखे पर
किये नहीं दर्शन कबाब के ।'[2]

1- जननायक - पृ० १९८ - सर्ग ११
2- वही पृ० ६४ सर्ग ४

यही विचारविकसित होते हैं, कलकत्ते में काली के मन्दिर में बकरों की बलि चढ़ाई जाती है इसे देख कर गांधी का हृदय द्रवित हो उठता है और उसका विरोध करते हैं इसे रोकने का प्रयत्न करते हैं । अहिंसा वृत्ति पर अटल रहने का एक दृष्टान्त बापू के जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इनका पुत्र भीषण रोग से ग्रसित है डाक्टर मांस अंडा खिलाने को आदेश देते हैं परन्तु बापू स्वीकार नहीं करते हैं और कहते हैं --

'गांधी जी बोले डाक्टर से मांस न खाना परम धर्म है
क्या मानव भी पशु बन जाता, यह मनुष्य का दैत्य कर्म है[१]।

अपने इष्ट राम पर उन्हें दृढ़ आस्था थी और राम को स्मरण कर के उपचार करते हैं पुत्र को जीवनदान मिलता है । अहिंसा के ही द्वारा जीवन के वास्तविक लक्ष्य की पूर्ति की, घोर अपमान, दारुण दुख सहन करते हैं परन्तु अस्त्र का प्रयोग नहीं करने देते । भारत के इतिहास में यह विलक्षण घटना रही कि बिना रक्तपात के इतना महान् परिवर्तन हुआ और भारत स्वतंत्र हो गया ।राष्ट्रभक्त गांधी सत्य और अहिंसा को अपना साधन बनाते हैं क्योंकि सत्य स्वयं शक्ति है उस पर दृढ़ रह कर उसकी पूर्ति के लिए प्राण तक समर्पित करने को तत्पर रहते हैं । सत्य प्रिय होने के कारण जीवन की विषम परिस्थितियों का दृढ़ता के साथ सामना करते हैं, समस्त जीवन संघर्षों के बीच समाप्त हुआ परन्तु वह अपने संकल्प की पूर्ति के लिए अटल रहते हैं और अन्त में विजयी होते हैं । गांधी का सरल जीवन, सादी वेशभूषा उनके सत्य का परिचायक है । एक बार जार्ज पंचम से मिलने जाते हैं किन्तु अपनी वही भारतीय वेशभूषा में जाते हैं और सत्य के सन्मुख दम्भ नत हो जाता है --

'मिले जार्ज पंचम से गांधी
बांधे खदर की लंगोटी
वह उस भारत का प्रतिनिधि था
जिसकी छिनी हुई थी रोटी

१- जननायक - पृ० १५१ सर्ग १७

मानो नंगा [illegible] भूखा भारत
ब्रिटिश राज से मिलने आया
खड़ा ब्रिटिश सम्राट हो गया
उन चरणों में शीश झुकाया ।`[1]

बापू अत्याचार और अन्याय का सदैव विरोध करते हैं और सत्य को गले लगाते हैं। नील की खेती से पूंजीपति लोग धन एकत्रित कर रहे थे और निर्धनों का रक्त चूस रहे थे, गांधी दृढ़ होकर इसका विरोध करते हैं --

`शान्त हृदय से बोले गांधी
अन्यायों से लड़ना होगा
फांसी मार और कोड़ों से
कभी न देश भक्त डरते हैं
रोज रोज कायर मर जाते
कभी न अमर मुक्त मरते हैं ।`[2]

राष्ट्र के पुजारी ने प्रत्येक पग सत्य और अहिंसा के पक्ष में उठाया और मानव मात्र के कल्याण के लिए प्रयास किया ।

गांधी जनकल्याण के लिए अस्पृश्यता को विनष्ट करने का पूर्ण प्रयास करते हैं उनका दृढ़ विचार था --

`अस्पृश्यता मिटा न सके तो
हिन्दू धर्म डूब जायेगा ।`[3]

१- जननायक - पृ० ३०० - सर्ग १६
२- वही पृ० २८६- सर्ग १२
३- वही पृ० ३०१ सर्ग १६

मानवमात्र को समान रूप से सुखी जीवनयापन करने का अधिकार है चाहे वह जिस वर्ग का हो क्योंकि ईश्वर के यहां से सब एक रक्त और मांस के द्वारा निर्मित होकर आये हैं। अछूत वर्ग के प्रति बापू सदैव सहानुभूति रखते हैं और कहते हैं समाजसेवी को भंगी मेहतर अछूत कह कर क्यों ठुकराया जाता है ? यह अन्याय है और इस भेद भाव को मिटाने का सक्रिय प्रयत्न करते हैं। जनता के सेवक बापू कोढ़ के रोग से ग्रसित भिखारी की सेवा स्वयं अपने हाथों से करते हैं --

'कोढ़ चूता द्वार उनके
एक दिन आया भिखारी
भीख दे बाबा ! मुझे कुछ
प्रश्न यह लाया भिखारी

+ +

धोने लगे घाव कोढ़ी के
अमर भगीरथ गंगा जल से
सेवाओं की सुधा पिलाया
रत्न लुटाये अंतस्तल से[१]

गांधी समाज की सेवा करने वाले अछूतों को घृणा की दृष्टि से देखने वाले पाखण्डियों की आलोचना करते हैं और कहते हैं ' यह हमारी इतनी अधिक सेवा करते हैं, इतना कोई नहीं कर सकता -

वे जितनी सेवा करते हैं
नहीं सगा बेटा कर सकता
कौन बालटी में मैला भर कर
अपने कन्धे पर धर सकता

+ +

१- जननायक - पृ० १३२ सर्ग ६

कौन उठा कूड़ा सड़कों से
अपने सर पर ले जाता है
कहो कौन दुर्गन्ध उठा कर
सबको सौरभ दे जाता है ?

हम इनको दुत्कारते हैं यह हमारी मनुष्यता नहीं
पहुता है । मानवता के आराधक बापू सबको हृदय से लगाते हैं ।

भारत माँ के इन लालों को
हम दुर दुर दुर गाली देते
+ +
उन्हीं कलेजे के टुकड़ों को
लगा हृदय से गांधी बोले
मेरे आश्रम में सब आओ
मानस के दरवाजे खोलें ।[1]

बापू के विशाल हृदय में सब को स्थान मिला । वह सदा न्याय और सत्य का समर्थन करते हैं और अहिंसा के द्वारा इस दुर्गम मार्ग पर चल कर अपने संकल्प की पूर्ति करते हैं । सत्याग्रही सदैव विजयी रहा यह प्रकृतिगत सत्य है और इसी प्रकार बापू सत्य के लिए संघर्ष करते हैं और विजयी होते हैं ।

धार्मिक आस्था :- राष्ट्रपिता बापू को अपने धर्म में दृढ़ आस्था है ।पारब्रह्म राम के प्रति अटूट श्रद्धा है, राम को अपना इष्ट माना है और उन्होंने स्वयं कहा है- 'संकट के समय सदैव मुझे राम नाम का ही आधार था, उनका स्मरण किया और उन्होंने मेरी रक्षा की' ऐसा दृढ़ विश्वास था । बापू राम नाम को संसार सागर सेपार होने का हेतु कहते हैं ।इनके जीवन में अनेकों घटनाएं विद्यमान हैं जो राम के

१- जननायक - पृ० १८६- सर्ग १२

प्रति प्रगाढ़ विश्वास को प्रकट करती है। एक मार्मिक घटना पर दृष्टिपात किया जा रहा है कि जिसका वर्णन 'मित्र' जी ने अपने महाकाव्य जननायक में किया है। एकबार गांधी 'कुरलैंड'यानसे उतरे और गोरों ने पत्थर बरसाना आरम्भ कर दिया इस हृदयविदारक दृश्य का अंकन इस प्रकार किया है।

पगड़ी फेंकी कपड़े फाड़े गले सड़े अंडों से मारा
कंकड़ मारे पत्थर मारे डाला भर नाली का गारा
थप्पड़ लात और घूंसों से गांधी जी की कमर तोड़ दी
गोरों ने अपने घूंसों से अपनी ही तकदीर फोड़ दी
हड्डी चर्बी मांस फेंक कर गांधी को बेहाल कर दिया
इतने में ही और किसी ने उनके सर पर बूट धर दिया
गांधी जी को मूर्च्छा आई, चक्कर खाते गिरे धरा पर
पकड़ सींखचे खड़े हो गए रुके नहीं थे तब भी पत्थर
बदन छिल गया सूज गया मुंह गर्म रक्त बह चला कमर से
धन्य धन्य मनमोहन गांधी पीछे भागे नहीं समर से
सत्य अहिंसा के दर्शन में ईश्वर स्वयं व्याप्त होता है
जिसे सहारा राम नाम का वह नर कभी नहीं रोता है

\+ \+

पिटते पिटते गांधी जी ने मुंह से राम राम उच्चारा
राम राम की वाणी सुन कर प्रभु ने राम रहीम निहारा
राम नाम पतवार हाथ से मांझी पार चला जाता है
बीच भंवर मंझधार हार कर गीत किनारे के गाता है।

\+ \+

राम प्रेरणा से आ पहुंची पत्नी वहां पुलिस नायक की
या कि स्वयं ईश्वर ही आये सुन पुकार अपने बालक की।[१]

१- जननायक - पृ० १२८ - १२९, सर्ग ६ वां

इस प्रकार ईश्वर भक्त गांधी के जीवन की रक्षा उनके राम ने की, अनेकों संघर्ष स्थल उनके जीवन में आये हैं जब वह राम को पुकारते हैं, और किसी न किसी रूप में प्रभु उनको सहारा देते हैं। जननायक ने ईश्वर पर निरन्तर भरोसा किया है और विपत्ति के समय कहते हैं-

न्याय बुद्धि पर अटल भरोसा
ईश्वर मेरे साथ रहेगा [१]

सामूहिक प्रार्थना में दृढ़ विश्वास गांधी की धार्मिक आस्था का ही प्रमाण है समस्त असाधारण गुणों के साथ बापू की यह धार्मिक विश्वास की भावना इस वैज्ञानिक युग में हमारे लिये एक महान् आदर्श प्रस्तुत करती है।

मानवता के उदात्त गुण :- गुणों का आराधक युग वैश्य कुलोत्पन्न बापू को ईश्वर के समान पूजने लगा। अपनी कठिन साधना, त्याग और तपस्या से गांधी अमर हो गये। इनके जीवन की मार्मिक घटनाओं की ओर दृष्टिपात करते ही हृदय कांप उठता है। इनका सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय रहा, पग पग पर भीषण परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है परन्तु ये अपने संकल्प से विचलित नहीं होते हैं। 'मित्र' जी ने कुछ हृदयस्पर्शी घटनाओं का चयन किया है। राष्ट्र भक्त गांधी अफ्रीका जाते हैं और भारतवासी होने के कारण किस प्रकार अपमानित होते हैं, इसका वर्णन किया है -

इसीलिये तो भारतवासी, कहलाते थे कुली वहां पर
कैसे लगे न आग वहां पर दहक रही हो फूट जहां पर

\+ \+

कुली कुली बैरिस्टर कह कर गांधी से बोला करते थे
हृदय तराजू में भारत के आंसू वे तोला करते थे

\+ \+

१- जननायक - पृ० १२६- सर्ग ६ वां ।

'भारत मां के स्वाभिमान से तड़प उठा गांधी का अंतर
मेरी पगड़ी नहीं यहां पर भारत की पगड़ी है सर पर
चाहे मर जाऊंगा लेकिन पगड़ी नहीं उतरवाऊंगा
अगर उतार धरी पगड़ी तो मां को क्या मुंह दिखलाऊंगा'[1]

इतना घोर अपमान सहन कर के भी बापू मजिस्ट्रेट के आदेश का पालन नहीं करते हैं, पगड़ी नहीं उतारते हैं, उनके हृदय में जननी जन्मभूमि के प्रति कितनी श्रद्धा थी यह अवर्णनीय है। बापू की सहनशक्ति की पराकाष्ठा के दर्शन उनके जीवन में प्रतिक्षण होते हैं एक मार्मिक स्थल का वर्णन मित्र जी ने इस प्रकार किया है। गांधी जी प्रथम श्रेणी का टिकट लेकर रेल में बैठे हैं एक गोरा यात्री आकर कहता है -

तू हिन्दुस्तानी है तुझको बता
यहां किसने बैठाया
निकल यहां से बैठ थर्ड में
गोरे ने इनको धमकाया

\+ \+

काला हिन्दुस्तानी कोई सफर
फर्स्ट में कर न सकेगा
वह गुलाम है बंधे पैर हैं
पैर यहां पर धर न सकेगा।[2]

इसके पश्चात् एक रेलवे अधिकारी आकर गांधी को फटकारता है और -

निर्दयता से गांधी जी को
धक्के देकर तले उतारा
बिस्तर फेंक दिया गांधी का
सच्चाई का खून कर दिया

१- जननायक - पृ० ८८ - सर्ग ६
२- वही पृ० ६१ सर्ग ६

जाड़े की ठिठरी रजनी में
पाले का अंगार धर दिया [1]

शीत की ठिठुरती हुई रात्रि में भारत का सौभाग्य दु:ख से कराह रहा है, अपमान की ज्वाला से दग्ध हो रहा है मन में अनेकों प्रकार के संघर्ष हो रहे हैं। राष्ट्रप्रेमी के हृदय में एक बार भारत वापस लौटने तक का विचार आ जाता है पर पुन: सोचते हैं -

भारत माता के मस्तक से
दाग़ गुलामी का धो डालूं
चढ़ा रक्त का अर्घ्य देश पर
पूजा से स्वतंत्रता पा लूं। [2]

महान संकट और विषमताओं के झंझावातों में भी गांधी अमर दीप की भांति प्रकाशित रहे और मानवता का ऐसा आलोक फैलाया जिसमें भारत जगमगा उठा। वैसे भी रामकृष्ण, गौतम की भांति गांधी ने विषम परिस्थितियों में अपने को संतुलित रक्खा। संघर्षों की भीषण चट्टानों के बीच में भी दृढ़ रह कर युग मानव ने अपना अमर संदेश सुनाया और सदैव के लिए अमरत्व प्राप्त किया। आधुनिक महाकाव्यकार ऐसे पात्रों को नायक के रूप में चित्रित करके युग को सद्प्रेरणा देते हैं। यह महामानव जागरण का गीत सुना कर हमको जीवित रहने का मार्ग बताते हैं। मिश्र जी ने समसामयिक पात्र को नायक के रूप में अंकित किया और जनता ने अपने पूर्व परिचित नेता को सम्मान तथा श्रद्धा से अपनाया।

आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार मानवता के उदात्त गुणों से विभूषित युग पुरुष बापू नायक के पद पर प्रतिष्ठित करने के योग्य हैं। भीषण संघर्षों के बीच अटल रह कर जीवन की निर्धारित दिशा पर चलने वाले महापुरुष की महानता में संदेह के लिए स्थान नहीं है। युग भी आज इसी को मान्यता देता है। वर्तमान सिद्धान्तों के अनुसार नायक के लिए उच्चवंश में उत्पन्न होने की परम्परा अनिवार्य नहीं है। महाकाव्यत्व की दृष्टि से भले ही 'जननायक' में त्रुटि हो पर जहां तक नायकत्व का प्रश्न है 'मिश्र' जी को पर्याप्त सफलता मिली है और राष्ट्र के पुजारी गांधी के उदात्त गुण उन्हें नायक के सिंहासन पर आरूढ़ करने में पूर्ण सहयोग देते हैं, और वह सफल नायक की कोटि में रखे जाते हैं।

'मानववादी युग में एकलव्य'

: सन् १९५८ :

मानववादी युग में एकलव्य

महाकाव्य जहां मानवता के शाश्वत मूल्यों की स्थापना करता है वहां युग काव्य भी होता है । आज के युग की मानवतावादी विचारधाराओं के अनुसार डा० रामकुमार वर्मा ने महाभारत में वर्णित एकलव्य को महाकाव्य के नायक के पद पर आसीन करने का सफल प्रयास किया है । महाभारत की ३० श्लोकों की इस कथा को बुद्धि ग्राह्य तथा प्रभावशाली बनाने के लिये यत्रतत्र उसमें नवीन उद्‌भावनाओं का सन्निवेश किया गया है । काव्यकार के कला कौशल ने मूल कथा के पौराणिक रूप की रक्षा करते हुए उसे आज के युग की मांग के अनुकूल बनाया है । एकलव्य जैसे गुरु भक्त निषाद `बालक` से गुरु दक्षिणा के रूप में दक्षिणांगुष्ठ की याचना करना महान् गुरु द्रोणाचार्य के लिये उचित न था, महाकाव्यकार ने अनेक सबल कारणों की उद्‌भावना करके गुरु दक्षिणा की सार्थकता सिद्ध करदी, शिष्य एकलव्य स्वेच्छा से अपना दक्षिणांगुष्ठ काट कर गुरु की प्रतिज्ञा की पूर्ति करता है ।

प्राचीन भारतीय लक्षण ग्रंथों के अनुसार नायक क्षात्रियवंश या किसी उच्च वंश का[१] होना चाहिए । आज युग मानवता का है, मानवता वर्ण भेद, वंश भेद करके नहीं आती है । नायक एकलव्य उन सभी गुणों, शील, शक्ति सत्य, साहस से संपन्न हैं जो एक धीरोदात्त नायक में होना चाहिए । उसके चरित्र में आदर्श गुरुभक्ति और शौर्य के साथ नम्रता आदि ऐसे गुण हैं जो वंश और कुल की अपेक्षा नहीं रखते । साधु एक लव्य के समक्ष क्षात्रिय कुल भूषण पार्थ को नत मस्तक होना पड़ता है ।

१- ---------- तत्रै को नायक : सुर : सद्वंश: क्षत्रियो वाधिधीरोदात्त गुणान्वित:

- साहित्य दर्पण, परिच्छेद ६, ११५-२५ ।

अपनी प्रशंसा न करने वाला क्षमायुक्त, अति गंभीर, महासत्व, हर्ष शोकादि से अपने स्वभाव को न बदलने वाला, स्थिर प्रकृति, विनयशील, गर्व न रखने वाला, दृढ़व्रत अपनी बात का पक्का, आन का पूरा पुरुष धीरोदात्त कहलाता है[1]।

इस प्रकार धुरंधर धीर वीर, दृढ़ व्रती, गुरु भक्त एकलव्य के चरित्र की विवेचना करने के लिये निम्नलिखित दृष्टि से विचार किया जायेगा । एकलव्य के चरित्र में प्रमुख रूप से कुछ गुणों का समावेश है । उसका व्यक्तित्व इस रूप में अत्यन्त प्रभावशाली है ।

१- पराक्रमी
२- संकल्प की दृढ़ता
३- गुरुभक्ति में आस्था
४- परंपरा से विद्रोह
५- उत्सर्ग

पराक्रमी:— साधना के पथ पर अग्रसर होने वाले वीर एकलव्य का वेष ही उसके पराक्रम का परिचय देता है —

पारावत पंख शीश में विचित्र खोंसे हैं
लंबा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है
जैसे श्याम मेघ में खचित इन्द्र चाप है
खंड खंड हो के कहीं ऊपर है नीचे है
है प्रशस्त भाल घने केश उठे भौंहों से
बीच में मिले हैं जैसे कर्षित धनुष है
नासा रेख उन्नत कपोल सुरम्य स्फटिक के
सम्पुटित नील पद्म जैसे बन्द नेत्र हैं

१- अवि कत्थनक्षमावानतिगम्भीरो महासत्व: स्थयो निगूढमानो धीरोदात्तो दृढ़व्रत: कथित:

-साहित्य दर्पण : पृ०- ८५

धर्म धुरंधर धीरवर वीर विजयि बल खान

लीन जिनमें है दिव्य मूर्ति गुरु द्रोण की
अधर स्पंदन कभी दृष्टिगत होता है
गुरुदेव ध्वनि उठती है मन्द वायु में
हृष्ट पुष्ट वल्कल है वल्लरी के रज्जु से
ऐसा ज्ञात हो रहा है वह इस वेश में
ज्यों हो श्याम मेघ पर रश्मि बाल रवि के
फिर से प्रणाम किया एक बार गुरु को ।[१]

आचार्य द्रोण के द्वारा अस्वीकृत होकर एकलव्य मिट्टी की गुरु मूर्ति बनाकर उसके समक्ष धनुर्विधा का अभ्यास करता है और उसमें पारंगत हो जाता है । एक दिवस अर्जुन का कुत्ता एकलव्य के आश्रम में भूंकता हुआ आता है और एकलव्य गुरु की ध्यान समाधि भंग होने के भय से उसके मुख को बाणों से भर देता है पर रक्त की एक बूंद नहीं गिरने पाती । कुत्ता जब अपने स्वामी के सन्मुख जाता है तो बाण मारने वाले के शौर्य और लाघव को देखकर उसे आशंका होती है कि क्या यही सारी जाति पर शासन करेगा और भूमि तल पर अद्वितीय धनुंधारी होगा । पार्थ को यह कल्पना असहनीय हो जाती है शीघ्र ही कुत्ते को साथ लेकर उस धनुंधारी के आश्रम में जाता है । एकलव्य से पूर्ण परिचय प्राप्त करता है और अपने गुरु द्रोण की मूर्ति देख कर आश्चर्य प्रकट करता है, पूछता है क्या गुरु द्रोण हस्तिनापुरी से शिक्षा देने आते हैं ? एकलव्य उत्तर देता है -उनके संकेत से मैं बाण विधा सीखने का अभ्यास कर रहा हूं, वह स्वयं यहां नहीं पधारते किन्तु इस प्रतिमा में अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं । पार्थ के मुख से निकलता है —

साधु ! पूर्ण लाघव है एकलव्य तुममें[२]

१- एकलव्य : पृ०- १६४ : सर्ग दशम साधना
२- एकलव्य : पृ०- २५३ : सर्ग द्वादश लाघव

एकलव्य का यह धनुर्वेद कौशल पार्थ के हृदय में उथल-पुथल मचा देता है और वह ईर्षा की ज्वाला से जलने लगता है, व्याकुल हो उठता है, सोचताहै—

बैठ तीक्ष्ण लक्ष्य लेके एक पैने बाण से
दक्षिण भुजा ही काट डालूं एकलव्य की[1]

किन्तु स्वयं ही इस जघन्य विचार पर लज्जित हो उठता है कहता है वीर राजपुत्र को यह शोभा नहीं देता । पार्थ सशंकित अवश्य हो जाता है और विचार करता है आज श्वान के मुख को बाणों से भर दिया कल क्षत्रियों के मुख भरे जायेंगे, अपनी इस व्याकुलता को गुरु के सम्मुख प्रकट करता है तथा उन्हें स्मरण कराता है कि यह वही शूद्रपुत्र है जिसे आपने अस्वीकृत कर दिया था और आज —

किन्तु यह सत्य है कि आज एकलव्य ही
धनुर्वेद विद्या का अकेला आचार्य है

< < < <

है निषाद पुत्र किन्तु इतना तेजस्वी
जितना कि सींक बाण मंत्रों के समेत है[2]

आचार्य से पार्थ पूछता है कि क्षत्रियों का क्या भविष्य होगा, क्या आपने यह विद्या हम लोगों को नहीं बतलाई जो संकेत मात्र से एकलव्य को बतलाई है । अर्जुन की व्याकुलता बढ़ती जाती है वह गुरु को उनके प्रण का स्मरण कराता है कि आपने कहा था —

पार्थ! सुनो कोई मेरा शिष्य कभी स्वप्न में
तुमसे न श्रेष्ठ होगा धनुर्वेद शिक्षा में ।[3]

१- एकलव्य : पृ०- २६६ : सर्ग त्रयोदश छन्द
२- एकलव्य : पृ०- २६८ : सर्ग त्रयोदश छन्द
३- एकलव्य : पृ०- २७० : सर्ग त्रयोदश छन्द

प्रतिद्वन्द्वी के द्वारा यह प्रशंसनीय शब्द एकलव्य के अतुलनीय पराक्रम का परिचय देते हैं । एकलव्य के शौर्य के समक्ष सबका अहम् लुप्त हो जाता है और पार्थ कह उठता है —

आज आपका ही शिष्य एकलव्य जो
है निषादराज पुत्र किन्तु पांडु पुत्रों से
श्रेष्ठ हो गया है और आपके ही देखते
इतना पराक्रमी है चाहे विश्व जीतले[1]

एकलव्य के समक्ष क्षत्रिय कुलोद्भव अर्जुन की वीरता समाप्त हो जाती है और उसके हृदय में ऐसे संकीर्ण भाव उठते हैं जो हमारी सहानुभूति भी नष्ट कर देते हैं वह गुरु द्रोण से कहता है —

क्या न रोक सकते हैं गति एकलव्य की ?[2]

साधारण व्यक्तित्व का मानव स्वार्थ के वशीभूत होकर पतित हो जाता है, यही स्वार्थपरता और अभिमान अर्जुन को नीचे गिरा देता है । आचार्य द्रोण कहते हैं अशांत मत हो।प्रिय शिष्य में गांभीर्य होना चाहिए तथा—

तुम कैसे वीर अपने को मानोगे, जब किसी अन्य वीर की साधना तुमको प्रसन्न करने में असमर्थ है । स्वार्थ त्याग करो वीर साधना में व्यस्त हो शिक्षा और राजनीति साथ वर्ज्य है ।[3]

तात्पर्य यह कि एकलव्य इसी अतुलनीय पराक्रम के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है । पुरुषार्थहीन मानव महान नहीं हो सकता ।

संकल्प की दृढ़ता :— नायक एकलव्य दृढ़व्रती है, उसके हृदय में धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करने की लगन थी और आचार्य द्रोण के सन्मुख इसी हेतु आता है

१- एकलव्य : पृ०- २७० : सर्ग त्रयोदश छन्द
२- एकलव्य : पृ०- २७० : सर्ग त्रयोदश छन्द
३- एकलव्य : पृ०- २७१ : सर्ग त्रयोदश छन्द

किन्तु अस्वीकृत हो जाता है । केवल इसलिये कि वह निषाद पुत्र है । एकलव्य मर्यादा की रक्षा करते हुए अपने सहिष्णु स्वभाव का परिचय देता है —

जैसी गुरु आज्ञा एक क्षण के लिये न मैं
इस राज कुल में रूकूंगा भूमि पुत्र हो
आप मेरे गुरु हैं रहेंगे सब काल में
हानि क्या प्रत्यक्ष नहीं मेरे मन मन में तो हैं [१]

महान पुरुषों की भांति निषाद पुत्र जीवन की निर्धारित दिशा में दृढ़ है । वह अपने संकल्प की पूर्ति करेगा, संसार की कोई शक्ति उसे विचलित नहीं कर सकती, आचार्य द्रोण द्वारा अस्वीकृत होने पर उसके मित्र परिहास करते हैं किन्तु एकलव्य का विवेक पूर्ण उत्तर उसके दृढ़ विचारों को प्रकट करता है और वह निस्संकोच मित्रों का सामना करता है, कहता है —

जानते नहीं हो तुम गुरु की विशेषता
फिर क्यों प्रलाप करते हो गुरु भक्ति का

x x x x

किन्तु परिहास के विवादी स्वरालाप से
विकृत न होगा उठा उर में जो राग है
दर्शन किये हैं मैंने आज पुण्य पर्व में
उस महामानव के जो कि शक्ति स्त्रोत है [२]

संकल्पा की दृढ़ता नायक की प्रेरणा है, उसकी वृत्ति इतनी अटल न हो तो वह अपने ध्येय की पूर्ति कदापि नहीं कर सकता । एकलव्य को गुरु में अपार आस्था है, उसके साधना की सामग्री का प्रतीकात्मक वर्णन अंतस्तल को स्पर्श कर जाता है । नायक की उदात्त भावनायें पग-पग पर उसके महान् व्यक्तित्व का स्मरण कराती हैं उसके गुणों के समक्ष कुल वर्ण का प्रश्न गौण हो जाता है । एकलव्य की गुरु भक्ति और अटूट लगन इन शब्दों में व्यक्त है —

१- एकलव्य : पृ०- १२७ : सर्ग षष्ठ आत्मनिवेदन

२- एकलव्य : पृ०- १३३ : सर्ग सप्तम धारणा

सेवा में समिध लाया हूं निज अस्थि की
ब्रह्मचर्य साधना का स्तंभ बना लूंगा मैं
धन्वा के समान देव । पद में झुका हूं मैं
ग्रंथाहीन धारणा ही खिंचेगी प्रत्यंचा सी
यदि लक्ष्य वेध में न सफल बनूं तो
काट के समर्पित करूंगा करांगुष्ठ मैं [1]

इस प्रकार आरंभ से ही एकलव्य की त्यागपूर्ण भावना और साधना के पुनीत विचारों का दर्शन होता है, एक एक शब्द उसके महार्घ चरित्र को व्यक्त करते हैं । आचार्य द्रोण के अस्वीकृत कर देने पर भी शिष्य की सद्भावना और श्रद्धा सराहनीय है । वह कहता है ——

देव ! धनुर्वेद से मैं सेवा भाव सीखूंगा
आप गुरु होंगे शिष्य मैं हूं चिरकाल से
वाणी आपकी है शंभु डमरु निनाद से
और मैं हूं अन्त्य वर्ण सूत्र प्रत्याहार का [2]

विनम्रता से युक्त सम्मानपूर्ण इन शब्दों को सुन कर आचार्य द्रोण के मुख से निकल पड़ता है ——

--------- यह शिष्य कैसा है
है तो शूद्र किन्तु जैसे निष्कलंक द्विज है
बालक निषाद का है किन्तु तेजोमय है
जैसे मणि रत्न है विशाल विषधर का [3]

१- एकलव्य : पृ०- १२० : सर्ग षष्ठ आत्मनिवेदन
२- एकलव्य : पृ०- १२४ : सर्ग षष्ठ आत्मनिवेदन
३- एकलव्य : पृ०- १२५ : सर्ग षष्ठ आत्मनिवेदन

आगे पुन: कहते हैं —

पुत्र अश्वत्थामा तुम होगे क्या धनुंधर
इसके समक्ष जो कि उन्नत है गजसा
कैसे तुम चालक बनोगे अस्त्र शस्त्र के
जिसका मनोरथ ही रथ के समान है
श्रद्धा सारथी की भांति अग्र में ही बैठी है
कामना को दंड और शील शिली मुख है
सत्य के समान सीधी प्रखर प्रत्यंचा है ।[१]

एकलव्य के विचारों में इतनी दृढ़ता है कि अपने संकल्प को पूरा करने के लिये वह निरंतर प्रयत्नशील है और अंत में लक्ष्य की प्राप्ति करता है । आचार्य द्रोण, आर्यकुलभूषण अर्जुन सभी उसकी तेजस्विता, वीरता और कटिबद्धता के आगे नत हो जाते हैं । उसके महान व्यक्तित्व को स्वयं स्वीकार करते हैं और उसे `निष्कलंक द्विज` कहते हैं ।

भारतीय संस्कृति की आदि परंपरा से चले गुरु महत्व की महिमा को अक्षुण रखते हुए नायक ने मानवता के धर्म को गले लगाया है । एकलव्य के जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश है —

गुरुभक्ति में आस्था :— आचार्य द्रोण के द्वारा अस्वीकृत होने पर भी एकलव्य के यह विचार `दर्शन किये हैं मैंने आज पुण्य पर्व में उस महामानव के जो कि शक्ति स्त्रोत है` आरंभ से ही उसके हृदय में गुरु के प्रति अटल विश्वास को प्रकट करता है । गुरु भक्ति की पुनीत भावना से प्रेरित होकर नायक मृतिका की गुरुमूर्ति स्थापित करता है । उसी के समक्ष धनुंविद्या का अभ्यास करता है । एकलव्य के सम्पूर्ण चरित्र का विकास गुरु भक्ति के तत्व निरूपण के द्वारा हुआ है । इसके अतिरिक्त शूद्र पुत्र होने के कारण ही एकलव्य की

१- एकलव्य : पृ०- १२५ : सर्ग षष्ठ आत्मनिवेदन ।

गुरु की कृपा का पात्र न हो सका इस अपमान से भी उसकी गुरु के प्रति श्रद्धा में अंतर नहीं आता और वह कहता है —

मेरे गुरु विप्र और शूद्र मैं निषाद हूं
किन्तु गुरु वाणी ही अमोघ अभिषेक है
ऊपर और नीचे क्या ओष्ठ भी नहीं हैं दो
किन्तु जो निकलती है वाणी वह एक है ।[1]

महाकाव्यकार ने गुरु और शिष्य के आध्यात्मिक संबंध का अत्यन्त ही कुशलता से वर्णन किया है । स्वप्न में आचार्य द्रोण को विदित होता है कि वन में वेदी पर हमारी मूर्ति बनी है और उस जड़ से जागरूक होकर मैं धनुर्विद्या की शिक्षा दे रहा हूं । एक बन कुमार है जिसका रोम-रोम प्रार्थना में डूबा हुआ है और आत्म समर्पण की भावना में रत वह शिष्य अभ्यास में लीन है । द्रोणाचार्य के हृदय में विचार आता है कि उस कुमार ने अपनी साधना से गुरु को ब्रह्म स्वरूप बना दिया, एक साथ वह वन में और हस्तिनापुरी में विराजमान है और शिष्यों को शिक्षा दे रहे हैं । उस शिष्य के प्रति गुरु द्रोण का हृदय कृपा से द्रवित हो उठता है और कहते हैं —

उपमा जो उसकी दूं कौरव कुमारों से
किससे दूं ?अर्जुन से याकि दुर्योधन से
किन्तु दोनों हीन हुए दीखतेहैं मुझको
जैसे भक्ति के समक्ष ज्ञान और कर्म है[2]

आचार्य द्रोण एकलव्य की महानता को स्वीकार करतेहैं और ऐसी स्थिति में कुल अथवा वर्ग का कोई महत्व नहीं रह जाता । मानव अपने गुण और कर्म से महान् बनता है जाति अथवा वंश से नहीं । एकलव्य की गुरु के प्रति दृढ़ आस्था के दर्शन उस समय होते हैं जब अर्जुन कहता है—

१- एकलव्य : पृ०- १४० : सर्ग सप्तम धारणा

२- एकलव्य : पृ०- २२१ : सर्ग एकादश स्वप्न

गुरु आर्य द्रोण के सभी हैं शिष्य किन्तु
वह ज्ञान दान हमको दिया नहीं
जो तुम्हारे धनुर्वेद कौशल में दीखता [१]

एकलव्य के उत्तर से पार्थ को लज्जित होना पड़ता है —

सावधान आर्य । गुरु निंदा एक क्षण को
सुन न सकूंगा आपके वाचाल मुख से
गुरु ज्ञान दान निष्पक्ष करते हैं सदा
शिष्य हैं जो प्राप्त करने में असफल है [२]

उस गुरु के प्रति इतनी श्रद्धा जिसने शिक्षा देना अस्वीकार कर दिया । यही नहीं वह गुरु के आगमन की कल्पना करता है और कितना प्रसन्न होता है । आत्म विभोर हो उठता है, सोचता है कितना पुनीत होगा वह क्षण —

------ जिस दिन गुरुदेव आश्रम में आयेंगे, जिस दिन पदरेणु
यहाँ गिर जायेगी
उसका तिलकम मेरे मस्तक पर सदा
श्री सौभाग्य सूचक हो सूर्य की किरण सा [३]

प्रतिद्वन्दी पार्थ एकलव्य की अनुपमेय गुरुभक्ति की प्रशंसा करने को विवश हो उठता है और आचार्य द्रोण के सन्मुख कहता है —

गुरुदेव एकलव्य की विचित्र श्रद्धा है
आपकी बनाई मूर्ति है मृण्मयी मनोज्ञ है
उसके समक्ष नित्य करता अभ्यास है

है निषाद पुत्र किन्तु इतना तेजस्वी है
जितना कि सींक बाण मंत्रों के समेत है [४]

१- एकलव्य : पृ०- २५४ : सर्ग द्वादश लाघव
२- एकलव्य : पृ०- २५४ : सर्ग द्वादश लाघव
३- एकलव्य : पृ०- २६० : सर्ग त्रयोदश द्वन्द्व
४- एकलव्य : पृ०- २६३ : सर्ग त्रयोदश द्वन्द्व

अर्जुन पुन: कहता है —

> कितना विश्वास होगा एकलव्य वीर में
> जो कि गुरु मूर्ति को ही गुरु मान बैठा है
> लक्ष्य वेध श्रेय वह गुरु ही को देता है
> कितना अहंकार शून्य निस्पृह वीर है ।[1]

एकलव्य का शौर्य विनम्रता और गुरुभक्ति का प्रकटीकरण अर्जुन के इन शब्दों में पूर्णरूप से ~~व्यक्त~~ होता है । उसे इतनी दृढ़ता इतना अटल विश्वास गुरु के चरणों में है कि उसे पार्थ को स्वीकार करना पड़ता है । साधक एकलव्य निरंतर गुरु आगमन की प्रतीक्षा करता है और दर्शन की लालसा तीव्र हो जाती है—

> एक बार प्रेम से यहां आवेंगे
> कैसे भूल सकते हैं एकलव्य शिष्य को
> उनका पवित्र पद पद्म जल शीश ले
> जीवन जलन में बुझाऊंगा सदैव को[2]

एकलव्य के अंतस्तल की यह पुकार सुन ली जाती है और वह पुनीत क्षण आ पहुंचता है, गुरुदेव पधार रहे हैं, स्वागत की आकांक्षा दर्शन की उत्कंठा से एकलव्य आत्म विभोर हो उठता है —

> मेरे गुरुदेव आए । जानता नहीं हूं मैं
> कैसे करूं स्वागत ? हाँ आज ज्ञात हो रहा
> कितना अकिंचन हूं पूज्य गुरुदेव की
> पूजा करने में कोई साधन न पास है
> किन्तु मेरी श्रद्धा गुरुदेव जान पावेंगे
> मन में सदा है फिर कौन सा दुराव है[3]

१- एकलव्य : पृ०- २६४ : सर्ग त्रयोदश द्वन्द्व

२- एकलव्य : पृ०- २७६ : सर्ग चतुर्दश दक्षिणा

३- एकलव्य : पृ०- २८१ : सर्ग चतुर्दश दक्षिणा

कितना अकिंचन, अभिमान रहित है एकलव्य ? गुरु में अपार श्रद्धा है और साथ ही विनम्रता है । नायक की धनुर्विद्या का कौशल और विलक्षणता का उदाहरण भी इसी स्थान पर मिलता है, गुरु का सम्मान सुन्दर रीति से करता है । एकलव्य नवीन विधा से प्रणाम करता है —

धनुष संधान किया और एक बाण ही
छोड़ा जिसने लता के वृंत भकझोर के
श्री गुरु चरणों पर पुष्प वर्षा कर दी [1]

इसके पश्चात् सप्त बाण छोड़ता है जो परिक्रमा करके गुरुदेव के चरणों पर जा गिरते हैं । आचार्य इस नवीन स्वागत से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और स्नेह से `स्वस्ति` कहते हैं ।

माता पिता का आदर :—

नायक के हृदय में केवल गुरु भक्ति ही नहीं है बल्कि माता पिता के प्रति भी सम्मान की भावना है । साधना के पथ पर अग्रसर होने के पूर्व एकलव्य माता पिता की चरण रज लेने की उत्कट अभिलाषा प्रकट करता है—

पूज्य पिता आये नहीं देर हुई जाती है
चाहता था उनकी चरण धूलि मिलती
पद्म की पराग है जो कामना के हार में [2]

अपने मित्र से कहता है कि मां को सांत्वना देना और कहना कि धनुर्वेद सीख कर आयेगा तो तुम्हारे दुख को दूर करेगा । ममतामयी मां के प्रति एकलव्य का संदेश —

१- एकलव्य : पृ०- २८१ : सर्ग चतुर्दश दक्षिणा
२- एकलव्य : पृ०- १४१ : सर्ग सप्तम धारणा

कहना कि 'वीर पुत्र की हो तुम जननी
अंकुर तो धूप छांह में ही बड़ा होता है
गोद में नहीं मां । भूमि पर गिर गिर के
अपने ही पैरों पर पुत्र खड़ा होता है
धनुर्वेद सीख कर जब पुत्र आयेगा
पहले लक्ष्य बंधेगा तुम्हारे ही दुख का

* * *

मेरा दुख भूलोगी तो सिद्धि शीघ्र पाऊंगा[1]

इस मर्मस्पर्शी संदेश में एकलव्य के हृदय का अनुराग और आदर प्रकट होता है । तात्पर्य यह कि मानवता का पुजारी युग समस्त गुणों से संपन्न एकलव्य को नायक के पद पर प्रतिष्ठित करने में आपत्ति नहीं कर सकता ।

परंपरा के प्रति विद्रोह :— इस वैज्ञानिक युग में जबकि प्रत्येक विचार को बौद्धिक तुला से तोलने के पश्चात् ही मान्यता दी जाती है । रूढ़िगत परंपराओं का विरोध होना स्वाभाविक है । आज के समाज में अछूतों, दलितों और निम्न वर्ग के लोगों के प्रति विशेष सहानुभूति प्रदर्शित की जाती है । एकलव्य महाकाव्य में इस प्रवृत्ति को प्रमुखता दी गई है और निषाद पुत्र एकलव्य नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है । नायक के द्वारा महाकाव्यकार ने शूद्र वर्ग के प्रति होने वाले अन्याय का चित्रण इस प्रकार किया है जो मानव को विद्रोह करने के लिये विवश कर देता है —

शूद्र और ब्राह्मणों में भेद कैसा है ?
जबकि संपूर्ण अंग मानवों के सब में ?
हमने सहन की है वर्ग की विगर्हणा
शूद्र कहलाते रहे सेवा भाव मान के

1- एकलव्य : पृ०- १४२ : सर्ग सप्तम धारणा

किन्तु जब मानव को विद्या का निषेध हो
बात क्या नहीं है क्रांतिकारी बन जाने की
किन्तु यह राजनीति की ही विष बेलि है
जो निषेध करती है- शूद्र विद्यावान् हों ।[1]

आचार्य द्रोण एकलव्य को शिक्षा देना स्वीकार नहीं करते क्योंकि वह निषाद वंशी है इसका अत्यंत तर्कपूर्ण और बुद्धि संभाव्य उत्तर महाकवि ने प्रस्तुत किया है एकलव्य कहता है शिक्षा प्राप्त करने का सबको समान अधिकार है —

मैंने सुना है विद्या दान शूद्र हेतु है नहीं
सत्य है क्या देव यह सामाजिक मान्यता

< < <

शूद्र कहा हम मूल देश वासियों को
इसलिये कि आर्य और वर्ण वाले हैं ।[2]

आचार्य द्रोण की आत्मा इस सत्य को स्वीकार करती है कि शिक्षित होने का अधिकार सबको है । विचार करते हैं —

जाति भेद नहीं वर्ग वंश भेद भी नहीं
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं
सूर्य की किरण भी क्या जाति भेद मानती
अग्नि क्या विशेष जीव धारियों की श्रेणी में
सीमित है ? और वायु की तरंग उठती है
केवल विशिष्ट व्यक्तियों को सांस देने में

< < < <

शिक्षा की त्रिवेणी का पवित्र तीर्थराज तो
सृष्टि में समस्त मानवों की कर्मभूमि है ।[3]

१- एकलव्य : पृ०- १६८ : सर्ग दशम साधना

२- एकलव्य : पृ०- १९६-९७ : सर्ग दशम साधना

३- एकलव्य : पृ०- २२२-२३ : सर्ग एकादश स्वप्न

इस महाकाव्य में जाति पांति के भेद भाव को पूर्णतया निष्ट करने का प्रयास किया गया है । एकलव्य समस्त गुणों से विभूषित महार्घ चरित्र पुरुष है और महाकाव्यकार ने मानव की परिभाषा इस प्रकार दी है —

मानव की शक्ति तो महान् तब होती है
जब वह दानव को मानव बना सके
और सब मानवों में साम्य की हो स्थापना[१]
-- -- -- -- -- -- --

शील गुण का प्रतीक एकलव्य मानवता के परम धर्म को स्थापित करता है , उसका उदात्त व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है और वह भारतीय नायक की भांति विजयी होता है । अपने संकल्प की पूर्ति करता है । उच्च कुलोद्भव पार्थ को धनुर्विद्या में पराजित कर देता है और अंत में वह एकलव्य से क्षमा तक मांगता है । गुणों का विभाजन वंश अथवा जाति पर निर्भर नहीं है । बल्कि मानवता के द्वारा किसी के व्यक्तित्व को आंका जा सकता है । एकलव्य के दृढ़ संकल्प और सत्य के सन्मुख आचार्य खिन्न होकर किस प्रकार अपनी विवशता प्रकट करते हैं —

शासित हूं सर्वदा कठोर राजनीति की बज्र तर्जनी से मैं
हा कितना विवश हूं । हो गया पुष्प मुरझाया सा कुष्मांड का[२] ।

एकलव्य की इस दृढ़ भावना के आगे द्रोण को परास्त होना पड़ता है क्योंकि वह न्याय और सत्य के मार्ग पर है । मानव मात्र के प्रति विश्व बंधुत्व की भावना नायक का सर्व प्रमुख गुण है । महान् व्यक्ति समष्टिवादिता की दृष्टि से ही प्रत्येक वस्तु को देखता है, अपना सुख अपना स्वार्थ नहीं देखता । अंत में आचार्य द्रोण अपने आप को धिक्कारते हैं —

१- एकलव्य : पृ०- १६८ : सर्ग दशम साधना
२- एकलव्य : पृ०- २२३ : सर्ग एकादश स्वप्न

धिक द्रोण । तेरी सब साधनायें मिथ्या हैं
तेरा धनुर्वेद सूम की संपत्ति जैसा है
भार्गव परशुराम यदि सुन पावेंगे
मैंने शिक्षा सीमित की मात्र राजवंश में
शूल जैसा कष्ट क्या न होगा भृगुवंशी को ?
भार्गव ! क्षमा करो मैं पथ भ्रष्ट हो गया -
-- -- -- -- -- -- --
क्षमा चाहता हूं कष्ट जो हुआ तुम्हें
मैं बना हूं राजसेवी बस इस लोभ से
अर्थ संकटों से मुक्त हो सकूं मैं सर्वथा [1]

इस प्रकार नायक इस परंपरा के प्रति विद्रोह करता है कि शूद्रों को विद्या दान नहीं देना चाहिए अथवा जाति पांति का भेद मानना चाहिए और उसे सफलता प्राप्त होती है, गुरु द्रोणा तक पराजय स्वीकार करते हैं । अद्वितीय धर्नुधारी एकलव्य उदारता का प्रतीक है । उसके ज्ञान और विद्या के समक्ष आर्य कुल भूषण अर्जुन को नत होना पड़ता है ।

उदारता :— एकलव्य की उदार वृत्ति उसके धीरोदात्त नायक होने में और सहयोग देती है । शक्ति का स्त्रोत, धर्नुविद्या का अद्वितीय पारखी, गुरुभक्त एकलव्य, नम्रता, उदारता और शील का अत्यन्त सुंदर दृष्टांत उस समय प्रस्तुत करता है जब उसका प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन आश्रम में पधारता है । अर्जुन द्रोणाचार्य के द्वारा स्वप्न में शिक्षा दान और वन कुमार का प्रसंग सुन कर अभिमान से भर जाता है । कहता है —

देखूंगा कौन है जो मेरा प्रतिद्वदी है
शिष्य किस गुरु का है और कैसी साधना है [2]

१- एकलव्य : पृ०- २२३-२२४ : सर्ग एकादश स्वप्न
२- एकलव्य : पृ०- २३४ सर्ग : द्वादश लाघव

सिद्ध निज धनुर्वेद को तभी मैं मानूंगा
जब विश्व के समस्त धन्वी नतजानु हो
मुझको करें प्रणाम —[1]

एकलव्य के आश्रम में श्वान भौंकता है और गुरुदेव की ध्यान समाधि में बाधा होती है इसलिये वह सात वाण बेध कर उसे मूक कर देता है और जब वाण भरे मुख से श्वान अर्जुन के पास जाता है । उसके मुख से एक बूंद रक्त नहीं निकला । धर्नुवेद का यह कौशल देखकर उसे लगता है मानो उसके पुरुषार्थ पर यह वाण मारे गये और कहता है —

धर्नुवेद साधना का सिद्ध ज्ञात हो गया[2]

पार्थ व्याकुल हो उठता है और उस महारथी को देखने की जिज्ञासा तीव्र हो उठती है, वह आश्रम में जाता है । वहां एकलव्य को मूर्ति के समक्ष बैठा देखता है । पार्थ गुरु और लक्ष्य का एक साथ अवलोकन करता है तथा पूछता है तुम कौन हो ? तुम्हारे गुरु कौन हैं ?

नायक की विनम्रता युक्त वाणी उसके उदार स्वभाव का परिचय देती है —

स्वागत महात्मन ! आसन ग्रहण करें
कष्ट हुआ आपको

< < < < <

मेरे गुरु आर्य श्रेष्ठ द्रोण हैं
समासीन वे हैं इस आश्रम के सामने
आओ प्रणाम करें —[3]

१- एकलव्य : पृ०- २३५ : सर्ग द्वादश लाघव
२- एकलव्य : पृ०- २५० : सर्ग द्वादश लाघव
३- एकलव्य : पृ०- २५१-२५२ : सर्ग एकादश लाघव

अर्जुन की उत्सुकता तीव्र होती जाती है और वह पूछता है क्या गुरुदेव यहां स्वयं पधारते हैं ? इसका उत्तर एकलव्य देता है कि उनके संकेत से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है । अर्जुन कहता है मूर्ति जड़ होती है और वह कैसे संकेत करती है ? यहां पर डा० राम कुमार वर्मा ने आध्यात्मिक तत्व का निरूपण किया है, प्रति उत्तर में नायक कहता है —

शान्त देव ! कौन जड़ है कौन चेतन है
यह तो हमारी दृष्टि का संकोच ही है जो
हम जड़ को जड़ यहां मान बैठे हैं
चेतन तो अहंकार से विकृत होता है
किन्तु जड़ पूर्ण निसर्गता प्रकृतिस्थ है
आर्य परिचय तो प्रदान करे अपना[१]

तब अर्जुन कहते हैं कि हम सभी आचार्य द्रोण के शिष्य हैं पर वह ज्ञान हमको नहीं दिया जो तुम्हारे धनुर्वेद के कौशल से प्रकट होता है । निषाद पुत्र अपनी गुरु भक्ति की उदारता का परिचय देता है और कहता है—

सावधान आर्य गुरु निंदा एक क्षण को
सुन न सकूंगा -------[२]

एकलव्य को विदित हो जाता है कि अर्जुन गुरु द्रोण का शिष्य है और तब भी वह उनका स्वागत करता है । कहता है —

कंद मूल ही करें स्वीकार प्रेम भाव से ।[३]

इसके अतिरिक्त नायक अनेक स्थानों पर अत्यन्त विनम्रता का परिचय देता है । उसे अपने अहम् का कण मात्र भी मान नहीं है और न धर्नुविद्या का ही गर्व है पार्थ को आदर के साथ नमस्कार करता है ।

१- एकलव्य : पृ०- २५३-२५४ : सर्ग एकादश लाघव
२- एकलव्य : पृ०- २५४ : सर्ग एकादश लाघव
३- एकलव्य : पृ०- २५५ : सर्ग द्वादश लाघव

एकलव्य ने किया प्रणाम झुके शीश से[1] और उन्हें फिर आने के लिये अनुरोध करता है । यह नायक की उदारता का प्रमाण है किन्तु पांडु पुत्रों ने उत्तर दिया —

फीके मुख से कहा— एकलव्य ।
हम फिर कभी आवेंगे ।[2]

एकलव्य की उदार वृत्ति का परिचय उस समय भी मिलता है जब आचार्य द्रोण से अस्वीकृत होने पर मित्रों द्वारा उसका परिहास बनाया जाता है किन्तु गुरु भक्त एकलव्य कहता है —

विकृत न होगा उठा उर में जो राग है[3]

गुरु द्रोण एकलव्य को निषाद पुत्र होने के कारण धनुर्विद्या की शिक्षा देना स्वीकार नहीं करते परन्तु वह अपने शील के द्वारा गुरु के मर्यादा की रक्षा करता है । उसके हृदय में श्रद्धा और सम्मान की भावना दृढ़ रहती है । कहता है —

जैसी गुरु आज्ञा एक क्षण के लिये न मैं
इस राज कुल में रुकूंगा भूमि पुत्र हो
आप मेरे गुरु हैं रहेंगे सब काल में ।[4]

उत्सर्ग :— महाकाव्यकार ने नायक एकलव्य में सर्व प्रमुख गुण उसका महान् उत्सर्ग चित्रित किया है । इसीके कारण आचार्य द्रोण को कहना पड़ता है —

१- एकलव्य : पृ०- २६१ : सर्ग द्वादश लाघव
२- एकलव्य : पृ०- २६१ : सर्ग द्वादश लाघव
३- एकलव्य : पृ०- १३३ : सर्ग सप्तम धारणा
४- एकलव्य : पृ ०-१२७ : सर्ग षष्ठ आत्मनिवेदन

तुम विप्र हो है शिष्य गुरु द्रोण शूद्र है[1]।

एकलव्य के गुण उसे इतना ऊंचा उठा देते हैं कि द्रोण अपने को लघु कहकर शिष्य की महत्ता को अधिक बढ़ा देते हैं। आज एकलव्य अपने उत्सर्ग और शील के कारण ही अमर हो गया। आचार्य द्रोण ऐसे महान् पुरुष को निषाद पुत्र एकलव्य से दक्षिणा के रूप में अंगूठे का दान मांगना अशोभनीय है। महा काव्यकार ने इसमें मौलिकता का पुट देकर इस रूप से प्रस्तुत किया है कि गुरु भक्त एकलव्य स्वयं गुरु चरणों में दक्षिणांगुष्ठ काट कर अर्पित कर देता है। इस मार्मिक घटना का चित्रांकन डा० रामकुमार वर्मा ने अत्यन्त कौशल के साथ किया है। आश्रम में गुरुदेव पधारते हैं और एकलव्य चरणों पर गिरकर नेत्रों के अश्रु से उनका प्रक्षालन करता है। पार्थ द्वेष की अग्नि में झुलस रहा है, आचार्य द्रोण ने प्रसन्न हो कर कहा तुम 'अद्वितीय धन्वी' हो तब पार्थ कहता है आपने मुझे अद्वितीय धनुर्धर बनाने का वचन दिया था आपकी प्रतिज्ञा पूर्ति में यह बाधा आपकी अपकीर्ति का केन्द्र बनेगी। इस अपकीर्ति से गुरु का हृदय विदीर्ण हो रहा है। एकलव्य ने सदैव गुरु की मर्यादा की रक्षा की, अस्वीकृत होने पर भी कहता है —

जाओ हे निषाद पुत्र तुम हो अस्वीकृत
आप नहीं कहते हैं राजनीति कहती।[2]

यह उसका शील गुण है जो गुरु पर तनिक भी आरोप नहीं आने देता फिर इतना बड़ा कलंक उसे कहां सहन हो सकता है। उसी क्षण सोचता है गुरु को अपकीर्ति से बचाना शिष्य का धर्म है और कहता है —

१- एकलव्य : पृ०- २६६ : सर्ग चतुर्दश दक्षिणा

२- एकलव्य : पृ०- १६८ : सर्ग दशम साधना

गुरु का हृदय खंड खंड हो असंभव
दक्षिणांगुष्ठ ही हो खंड खंड मेरा जो कि
पार्थ को बना दे अद्वितीय धन्वी विश्व में
गुरु प्रण पूर्ति करे सब काल के लिये
जय गुरुदेव ! यह रही मेरी दक्षिणा
क्षण ही में अर्ध चन्द्र मुख बाण वेग से
तूर्ण से निकाल कर लिया वाम कर में
गुरु मूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना
एक ही आघात में अंगुष्ठ काटा मूल से[1]

महापुरुषों ने सदैव अपने व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ का त्याग किया और इसी त्याग से उनका चरित्र उज्ज्वल होकर सदैव के लिये अमर हो गया । इस हृदय विदारक दृश्य से गुरु द्रोण कांप उठते हैं और एकलव्य को हृदय से लगा कर कहते हैं —

मेरी प्रण पूर्ति में विनष्ट निज साधना
एक क्षण में ही कर डाली शिष्य धन्य हो[2]

अतुलनीय उत्सर्ग और कठोर साधना के द्वारा शूद्र पुत्र एकलव्य आर्य कुलभूषण पार्थ और आचार्य द्रोण को नत मस्तक कर देता है तथा आचार्य द्रोण कह उठते हैं —

तुम विप्र हो हे शिष्य गुरु द्रोण शूद्र है
हो तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है

* * * *

१- एकलव्य : पृ०- २६६ : सर्ग चतुर्दश दक्षिणा
२- एकलव्य : पृ०- २६६ : सर्ग चतुर्दश दक्षिणा

पार्थ रक्त देखो इस वीर एकलव्य का
जो कि राज वंशों से भी धोया नहीं जायेगा[1]

एकलव्य के शील और त्याग के अजस्त्र स्त्रोत में वंश कुल की परंपरा तृण की भांति बह जाती है । क्षात्रिय वंशी पार्थ ग्लानि और लज्जा से पीड़ित हो कहते हैं—

क्षमा करो एकलव्य मेरी धृष्टता ।[2]

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि एकलव्य महाकाव्य का नायक भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों की संधि सरोवर में विकसित हुआ है और मानववादी युग की यह अमूल्य निधि सर्व कालीन और सर्व देशीय बन कर चिरंतन साहित्य की श्रेणी में स्थान पायेगा । नायक के समस्त गुणों से सम्पन्न एकलव्य सदैव आदर और ख्याति प्राप्त करेगा । उसने अपने कर्म से वंश की परम्परा को लुप्त कर मानवता के धर्म को गले लगाया ।

एकलव्य की गुरुभक्ति और निष्ठा का उदाहरण विश्व के इतिहास में अमर है । आज के युग में जहां आत्म विकास और अध्यात्मवाद के अभाव में मानव का नैतिक पतन हो रहा है, वह वास्तविक आनंद से दूर जा रहा है यह महाकाव्य हमें पुन: उस महान् आदर्श की ओर प्रेरित करता है जो हमारे जीवन के अति निकट है । इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि अलौकिक तत्वों का समावेश भी महाकाव्यकार ने इस प्रकार किया है जो बुद्धि ग्राह्य है । नायक के चारित्रिक विकास में निरंतर एक सूत्रता रही, महान गुणों से विभूषित एकलव्य नायक के पद पर प्रतिष्ठित करने के योग्य है ।

१- एकलव्य : पृ०- २९६-२९७ : सर्ग चतुर्दश दक्षिणा

२- एकलव्य : पृ०- २९७ : सर्ग, दक्षिणा

:ख:

आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन—

— नायक की दृष्टि से

:ख: आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन--नायक की दृष्टि से

महाकाव्यों के तुलनात्मक अध्ययन में उसके मुख्य तत्व रस, प्रकृतिचित्रण कथावस्तु, छंद आदि सभी आ जाते हैं किन्तु हमें यहां नायक की दृष्टि से विचार करना है और प्रियप्रवास से एकलव्य तक के महाकाव्यों के नायक पर तुलनात्मक दृष्टि से उनकी विविधताओं का विवेचन करना है। महाकाव्य का नायक जातीय विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई लोकविश्रुत पुरुष होता है यह सर्व प्रमुख तत्व है। परंपरागत सिद्धान्त के अनुसार नायक उच्चवंश में उत्पन्न सुर या क्षात्री होना चाहिए पर आज के वैज्ञानिक युग में यह मत मान्य नहीं है। महान् गुणों से विभूषित उदात्त चरित्र वाला कोई भी व्यक्ति नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

लोकप्रसिद्ध ऐतिहासिक या पौराणिक नायक के प्रति जनता के हृदय में अधिक स्थान रहता है इसमें काव्यकार अधिक सफल होता है और इसी कारण आज के महाकवि प्राचीन कथानकों को नवीन रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। इनका प्रथम उदाहरण वर्तमान युग में हरिऔध जी का प्रियप्रवास है। इस महाकाव्य में नायक कृष्ण को लिया है किन्तु उनका परम्परागत चरित्र नहीं अपनाया गया और उन्हें एक लोकसेवी, नेता के रूप में प्रस्तुत किया है। 'हरिऔध' जी के कृष्ण समाजसेवा, देशहित और जाति की रक्षा का अधिक ध्यान रखते हैं और उनका ध्येय है-'विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का

सहाय होना असहाय जीव का
उबारना संकट से स्वजाति का
मनुष्य का सर्व प्रधान कृत्य है।'[१]

१- प्रियप्रवास- सर्ग एकादश - छंद ८५

प्रियप्रवास के कृष्ण गोपी के प्रेम में बैठकर आंसू बहाने वाले नहीं हैं स्वजाति के हित के लिए प्रिय से प्रिय वस्तु का भी त्याग करने वाले लोकसेवी हैं । उन्होंने मानव मात्र के लिए यह संदेश दिया-

'जो होता है निरत तप में मुक्ति की कामना से
आत्मार्थी हैं कह सकते हैं उसे आत्मत्यागी
जी से प्यारा जगत हित और लोकसेवी जिसे है
प्यारा सच्चा अवनितल में आत्मत्यागी वही है ।[१]'

इस प्रकार प्रत्येक महाकाव्यों के नायक का भिन्न भिन्न लक्ष्य और दृष्टिकोण है ।'हरिऔध'जी ने प्रियप्रवास में राष्ट्र हित की कामना से कृष्ण को लोकरंजनकारी बना दिया -साकेत में गुप्त जी ने महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रेरणा पाकर उपेक्षिता उर्मिला को प्रमुखता देकर इस महाकाव्य का निर्माण किया ।जैसा कि पिछले अध्याय में नायक के विषय में विवेचन हो चुका है यहां हम साकेत के नायक रूप में राम को ही महत्व देंगे और राम के चरित्र पर विचार करेंगे ।उर्मिला के चरित्र को उभारने का लक्ष्य सामने होने के कारण गुप्त जी को मौलिकता का पुट देना पड़ा ।उन्होंने राम काव्य को नवीन रूप से प्रस्तुत किया ।साकेत में ईश्वर की मानवता के स्थान पर मानव की ईश्वरताका प्रदर्शन किया गया है । तुलसीदास ने वाल्मीकि के राम को पारब्रह्म बना दिया,गुप्त जी के राम ब्रह्म होकर भी मानव हैं ।वह कहते हैं-

'भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया
नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने आया ।[२]'

१- प्रियप्रवास - सर्ग षोडश - छंद ४२

२- साकेत - पृ० २३४- सर्ग अष्टम

आधुनिक युग की तार्किक विचारधारा से प्रभावित होने के कारण गुप्त जी की धार्मिक भावनाओं का निर्माण इस रूप में हुआ है जो बुद्धिसंगत है। गुप्त जी ने राम से कहलाया है-

'मैं आर्यों का आदर्श बताने आया
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।'[1]

मानवता के उत्थान के लिये आज के सभी महाकाव्यकार प्रयत्नशील हैं साकेत भी मानव मात्र की प्रगति का संदेश देता है और देवताओं को भी हेय बना देते हैं वह मर्त्यलोक पर आकर मानव के चरित्र को देखें --

'अमर वृंद भी भी आवें मानव चरित देख जावें।'[2]

साकेत में राम धीरोदात्त नायक हैं विषम से विषम परिस्थितियों में भी धैर्य नहीं खोते -

'राम भाव अभिषेक समय जैसा रहा
बन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा।'[3]

हमारे पौराणिक नायक राम और कृष्ण के चरित्र को नवीन रूप से बुद्धिवादी युग के अनुकूल बनाकर चित्रित किया पर कुछ विचारों में पर्याप्त साम्य पाते हैं -दोनों का जन्म 'परित्राणाय साधूनां --------' ही हुआ। राम ने वन में जाकर असुरों का संहार किया और शान्ति की स्थापना की, कृष्ण ने बाल्यावस्था से अंत तक असुरों का वध किया और सज्जनों को सुख पहुंचाया। राम और कृष्ण दोनों ने अपने सुख का परित्याग किया मानवमात्र के कल्याण के लिए। यह अवश्य है कि राम ने पारिवारिक जीवनका आदर्श रूप भी स्थापित

१- साकेत - पृ० २३४ - सर्ग अष्टम
२- साकेत - पृ० ११३ - सर्ग चतुर्थ
३- साकेत - पृ० १२७ - सर्ग पंचम

किया, माता, पिता, भ्राता सभी के साथ सद्व्यवहार दर्शाया जब कि कृष्ण को इतना अधिक अवसर इसके लिए नहीं मिलता । 'साकेत' में राम ने धीरवृत्ति का परिचय प्रत्येक स्थान पर दिया है जो उनकी व्यक्तिगत विशेषता है । बनवास की आज्ञा सुनकर लक्ष्मण उग्रता धारण करते हैं, माता पिता को अपमानित करते हैं किन्तु राम शान्त, निर्विकार रहते हैं । 'प्रियप्रवास' के कृष्ण और 'साकेत' के राम दोनों के परम्परागत चरित्र का परिवर्तित रूप प्रस्तुत किया गया है किन्तु महाकाव्यकार के कौशल के कारण उनके अलौकिक स्वरूप पर व्याघात नहीं आने पाया ।

हिन्दी के उत्कृष्टतम महाकाव्य 'कामायनी' में प्रसाद जी ने मानवीय मूलाधारों की आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है । देव सृष्टि के जलप्लावन से बचे हुए आदि मानव वैवस्वत मनु इसके नायक कहे जाते हैं और आद्या नारी श्रद्धा इस काव्य की नायिका । मनु का चरित्र प्रियप्रवास के कृष्ण और साकेत के राम से पूर्णतया भिन्न है । मनु के चरित्र का विकास ही मानवीय दुर्बलताओं के बीच में होता है, कामलोलुप मनु सारस्वतप्रदेश की राजकुमारी इड़ा के साथ बलात्कार का प्रयत्न कर अपना इस प्रकार पतन करदेता है जो उसे धीरोदात्त नायक के सिंहासन पर नहीं आरूढ़ होने देता । प्रसाद जी ने इसमें पात्रों का विधान प्रतीकात्मक रूप से किया है इस कारण भी मनु को चंचल देखते हैं क्योंकि वह मन के प्रतीक हैं । निरन्तर मनु की पराजय ही होती है भारतीय सिद्धान्त के अनुसार नायक को विजयी होना चाहिए नायक समस्त राष्ट्र का, जाति का प्रतिनिधि होता है बल्कि श्रद्धा में हम नायकत्व के गुण पाते हैं । इस महाकाव्य में प्रसाद जी ने यही विचार प्रकट किया है कि मानव किस प्रकार भौतिक सुख में लिप्त है और आनन्द की खोज में भटकता है, बुद्धि और हृदय, विज्ञान तथा धर्म में सामंजस्य की आवश्यकता है तथा इच्छा क्रिया और ज्ञान के समन्वय के द्वारा ही आनन्द की प्राप्ति होगी। यह महाकाव्य प्रसाद जी की अपनी मौलिक देन है ।

'प्रियप्रवास' और 'साकेत' के नायक से मनु की तुलना नहीं की जा सकती. मनु में न लोक हित की भावना, न मानव मात्र से संबंध, न श्रद्धा से स्नेह, वह केवल अपना सुख चाहते हैं -

'तुच्छ नहीं है अपना सुख भी श्रद्धे वह भी कुछ है
दो दिन के इस जीवन का तो वही याम सब कुछ है[1]।'

जब कि प्रियप्रवास के कृष्ण कहते हैं -

'विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का'

यही मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है कितना अन्तर है। राम कृष्ण की भांति मानवता के कल्याण की भावना श्रद्धा के द्वारा प्रकट होती है, वह कहती है - 'विजयिनी मानवता हो जाये[2]'।

प्रसाद जी ने भी श्रद्धा को मंगलदायिनी देवी के रूप में स्वीकार किया है क्योंकि शैव मतानुयायी होने के कारण शक्ति को ही सब कुछ मानते हैं। और सत्य भी है कि शक्ति के बिना शिव शव है। कहते हैं-

'वह कामायनी जगत की
मंगल कामना अकेली[3]'

क्षमा, त्याग और ममता की प्रतिमूर्ति श्रद्धा में नायकत्व का सन्निवेश करने में महाकवि को सफलता मिली है। मनु को हम भारतीय नायक की दृष्टि से उपयुक्त नायक नहीं मानते। श्रद्धा ने विषम परिस्थितियों में धीरोदात्त नायक की भांति धीरवृत्ति का परिचय दिया है, निरन्तर अटल रह कर जीवन में आने वाले झंझावातों का सामना किया, उसी के प्रयत्न से मनु अन्त में आनन्दोपलब्धि करते हैं। श्रद्धा के द्वारा प्रसाद जी ने मानव के हित की मंगल कामना को पग पग पर प्रकट किया है --

'मानव तेरी हो सुयश गीति[4]'

१-कामायनी - पृ० सर्ग

२- कामायनी- पृ० ५६- सर्ग श्रद्धा

३- वही पृ० २६० - सर्ग आनन्द

४- वही - पृ० २४३- सर्ग दर्शन

मानवता के कल्याण का संदेश सर्वत्र पाते हैं । द्वारिका प्रसाद मिश्र के अथक प्रयास के परिणामस्वरूप 'कृष्णायन' महाकाव्य में कृष्ण का पूर्ण एकत्र चरित्र उपलब्ध होता है । हिन्दी के किसी भी काव्य में कृष्ण की बाललीला से स्वर्गारोहण तक की कथा का सन्निवेश नहीं किया गया । मिश्र जी ने कृष्ण को ईश्वर के अवतार के रूप में ही माना है, उनके कृष्ण अपनी पौराणिकता को लिए हुए ब्रह्म के अवतार हैं-

'मयैउ कलाषोडश सहित
कृष्ण चन्द्र अवतार
पूर्ण ब्रह्म हरियश विमल
वरनहु मति अनुसार ।।'[१]

'मिश्र' जी ने अलौकिक चमत्कार पूर्ण कृत्यों को परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया उनके कृष्ण संदीपनि गुरु के मृत पुत्र को पुन: समुद्र से लौटाकर गुरु पत्नी की इच्छापूर्ति करते हैं, मृत परीक्षित को अपनी योग शक्ति द्वारा जीवन देते हैं कृष्ण की बाल क्रीड़ा, विलासवैभव, विवाह, आदि का वर्णन किया है और उनको कर्मयोगी, राजनीतिज्ञ के रूप में भी चित्रित किया है । 'मिश्र' जी ने कोई नवीन उद्भावना नहीं किया बल्कि अपने नायक के परम्परागत रूप को ही अंकित किया है और आज युग मानव मात्र में ही देवत्व का आवाहन करता है । इसमें समाज रक्षक का रूप भी प्रखर नहीं हो पाया । प्रियप्रवास के कृष्ण युगानुकूल लोकसेवी और समाज सेवी मुख्य रूप से हैं जब कि कृष्णायन के कृष्ण का यह रूप गौण हो जाता है । कृष्णायन के कृष्ण की अलग अपनी कोई सत्ता दृष्टिगत नहीं होती । यादव नारियों के भीलों द्वारा अपहृत किये जाने पर उनकी रक्षा का प्रबन्ध न करना उनके व्यक्तित्व पर आक्षेप करता है । स्वतंत्र व्यक्तित्व होता तो कृष्ण मथुराधिप हो सकते थे । मिश्र जी ने सूर और श्रीमद्भागवत के कृष्ण को पूर्ण रूप से अपनाया है अपनी मौलिक उद्भावना का प्रयोग नहीं किया ।

१- कृष्णायन -अवतरण कांड -दोहा ३

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने साकेत संत की रचना मानस के अयोध्या कांड की कथा के आधार पर की है । इस महाकाव्य के पूर्व मानस और साकेत की रचना हुई है, किन्तु मिश्र जी ने उसमें भरत को नायक के रूप में चित्रित किया है ।भरत धीरोदात्त गुणों से युक्त क्षत्रिय वंशी राजकुमार हैं उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह राज्य का संचालन करते हुए भी राज्य से विरक्त हैं, राज्यवैभव के होते हुए भी एक कुटी में तपस्वी की भांति रहते हैं महाकाव्यकार आरंभ से अंत तक अपने नायक के साथ है ।

भरत- 'भोगी रह के भी वही योगी वही यागी है[१]।'

'साकेत संत' और 'साकेत' के भरत में पर्याप्त भिन्नता है साकेत संत में भरत के चरित्र को पूर्ण रूप से विकसित करने का प्रयास किया गया है जब कि गुप्त जी साकेत में उर्मिला लक्ष्मण के चरित्र को उभारने में ही संलग्न है। मिश्र जी ने यत्र तत्र मौलिकता का आभास दिया है जैसे मामा युधाजित भरत को संकेत करता है कि राज्य के अधिकारी तुम्हीं हो ।इसी माध्यम से मिश्र जी ने पूंजीपतियों की शोषण वृत्ति की ओर इंगित किया है ।किस प्रकार निम्नवर्ग दलित होता है- इसके विषय में युधाजित भरत से कहता है-

'शोषण का नय तुम सीखो
पोषण तब अपना होगा
यदि उर कोमल कर लोगे
उत्कर्ष कहां कब होगा
क्षुद्रों की बलि वेदी पर
पनपी है सदा महत्ता
निर्धन कुटियों को ढा कर
विकसी महलों की सत्ता ।'[२]

१- साकेत संत - भूमिका

२- साकेत संत- पृ० १९ - सर्ग द्वितीय

कैसा व्यंग्य और कटाक्ष है साथ ही दुर्बल और अनाथों के प्रति सहानुभूति की भावना प्रकट किया है । साकेत संत के भरत भी मानवता का उच्च आदर्श सिखाते हैं -

'अति मानवता कब अटकी
जन के नश्वर भोगों में
मानव पशु ही होता है
पाशव सुख के योगों में[1] ।

मिश्र जी के भरत युग की समस्या का कैसा समाधान करते हैं, कितना प्रभावशाली उत्तर देते हैं पूंजीपतियों के अत्याचार की ओर गहरा कटाक्ष करते हैं -

' निर्धन की कुटिया ढा कर
जो अपना महल बनाते
आहों की फूकों से ही
वे एक दिवस ढह जाते ।'[2]

यहां भरत अपने विचारों और आदर्श के प्रति जागरूक हैं अपना अस्तित्व रखते हैं और किसी अनायास प्रभावित नहीं होते हैं । मानस के भरत से भी अधिक साकेत संत के भरत उद्विग्न हो उठते हैं जब राम के वनगमन और पितृमरण का दुखदायी समाचार जानते हैं । मिश्र जी ने भी अपनी मौलिकता का प्रयोजन कर के परंपरा को अपनाया और संन्यासी त्यागी भरत से कहलाया है-

' मा कहूं मानवी या दानवी नारी
डाकिनी ने दुर्धर मूठ अवध पर मारी
किस मुंह से कहूं उसे कि मेरी मां है
यह क्रोर राक्षसी निशा कठोर अमा है ।[3]

१- साकेत संत - पृ० ३७ - सर्ग द्वितीय
२- साकेत संत - पृ० ३८ - सर्ग द्वितीय
३- साकेत संत - पृ० ४८ - सर्ग तृतीय

चौदह वर्ष नंदिग्राम में योगी की भाँति जीवन व्यतीत करने वाले भरत से ऐसे अवसर पर यदि इस प्रकार के अपशब्द न कहलाये जाते तो वह राम की तुलना में समर्थ हो सकते । भरत का चरित्र धीरोदात्त नायक के अनुकूल अवश्य है ।

तत्कालीन युग पुरुष बापू को जिन महाकाव्यों में नायक बनाया गया है वह प्रियप्रवास साकेत, कृष्णायन आदि से पूर्णतया भिन्न है क्योंकि इनके कथानक प्राचीन हैं कृष्ण राम आदि पौराणिक नायक हैं जब कि राष्ट्र पिता बापू हमारे युग का प्रतिनिधित्व करने वाले महापुरुष हैं । गांधी के चरित्र का विकास मानवीय गुणों के मध्य हुआ है । आरम्भ में नव पत्नी के प्रेम में लिप्त रहने वाले गांधी के जीवन का अवसान इस रूप में होगा -इसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी । आज का युग तो ईश्वर को पृथ्वी पर देखता है, राम और कृष्ण का मानव रूप अधिक मान्य और बुद्धिग्राह्य है। इन पौराणिक नायकों के चरित्रांकन से गांधी के चरित्र की तुलना करें तो पर्याप्त अंतर है । गांधी के सन्मुख केवल राष्ट्र प्रेम , मानव मात्र का कल्याण यही जीवन का लक्ष्य बन गया था । परतंत्रता में रहने वाले देशवासियों के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति और दया थी, क्योंकि उनका विचार था-

> 'सबसे बड़ा पाप है, जग में बंधन में रह पूंछ हिलाया
> सबसे बड़ा धर्म है जग में मुक्त दासता से हो जाना ।'
> सत्य अहिंसा से बंधन की हथकड़ियों को तोड़ गिरा दे
> असहयोग से क्रान्ति क्रान्ति के भीषण अंगारे दहका दे।'[१]

इसी ध्येय की पूर्ति के लिए राष्ट्रप्रेमी ने जीवन भर संघर्ष किया, अनेक प्रकार के अपमान और कष्ट सहन करके अन्त में जननी जन्मभूमि को परतंत्रता से मुक्त कराया । 'हरिऔध' जी ने कृष्ण को मानव कल्याण के लिए लोकनायक के रूप में चित्रित किया है किन्तु प्रियप्रवास की रचना के समय से

१- जननायक पृ० २६३ - सर्ग १७

जननायक की रचना तक के समय में परिवर्तन हो गया ।देश को ऐसे राष्ट्र नायक की आवश्यकता थी जिसकी आत्मा की पुकार में इतनी शक्ति हो जो मानव मात्र में जागरण पैदा कर दे, यह कार्य गांधी ने किया,उन्होंने कभी यह भी नहीं विचार किया कि मैं अकेले इस कठिन कार्य को नहीं कर सकता और अनेक सत्याग्रह आन्दोलन के द्वारा देश में क्रान्ति मचा दी । उनके सत्य अहिंसा और प्रेम के अस्त्र में इतनी शक्ति थी जिसने विश्व को नतमस्तक कर दिया और आज गांधी की आराधना की जाती है ।बापू के चरित्र का विस्तृत विवेचन पिछले अध्याय में किया जा चुका है । अत: यहां केवलयही इंगित करना है कि गांधी को नायक रूप में जिन महाकाव्यकारों ने अपनाया उन्होंने अपने नेत्रों के सामने अपने नायक के जीवन का प्रत्येक मोड़ देखा और जनता भी उनसे पूर्णतया परिचित है । राम, कृष्ण, बुद्ध को परंपरागत पौराणिक साहित्य और इतिहास के आधार पर हम अवतारी पुरूष अथवा महापुरूष मानते हैं जब कि गांधी के जीवन का उतार चढ़ाव हमने स्वयं देखा और अनुभव किया । महाकाव्यकार ऐसे महापुरूषों को अपनी कृति के द्वारा अमर कर देते हैं ।

गांधी को नायक का स्थान देने वाले महाकवियों को वह श्रम नहीं करना पड़ा जो हरिऔध, प्रसाद अथवा गुप्त जी ने किया । प्राचीन कथानक को नवीन रूप से प्रस्तुत करने में युगानुकूल बनाने में महाकवि को मौलिकता का आश्रय लेना पड़ता है किन्तु बापू कोनायक के सिंहासन पर आरूढ़ करने वाले महाकाव्यकार को तत्कालीन घटनाओं को ही सजा कर,संवार कर रखना पड़ता है किसी अंश तक यह कार्य अधिक कुशलता की अपेक्षा रखता है । इन नायकों के लिए समाज के हृदय में श्रद्धा और सम्मान संचित करना पड़ता है और महाकाव्यकार को एक एक पग सावधानी के साथ सतर्क होकर रखना पड़ता है। प्रत्येक क्षण तत्कालीन नायक को मानने वाले काव्यकार को जागरूक रहना पड़ता है ।

गांधी के जीवन का लक्ष्य और ध्येय तो स्पष्ट ही है, इन्होंने अपनी जन्म भूमि की मुक्ति के लिये अपना सर्वस्व सुख और वैभव उत्सर्ग कर दिया ।देशवासियों

को दुखी देख कर व्यथित हो उठे और स्वयं साधु की भांति जीवन व्यतीत किया । एक वस्त्र से शरीर को ढंक कर सादा भोजन करने वाले गांधी ने भारत को स्वतंत्र कराया यह उनका असाधारण व्यक्तित्व था । गांधी ने गृहस्थ जीवन में रहते हुए वीतराग संत की भांति जीवन व्यतीत किया और अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ।

डा० रामकुमार वर्मा के `एकलव्य` महाकाव्य का नायक निषादपुत्र एकलव्य अपनी अलग विशेषता रखता है । महाभारत में इसकी कथा संक्षेप में है । महाकाव्यकार ने आज के भौतिकवादी युग में इस व्यक्तित्वनिष्ठ नायक की रचना करके हमारे हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था उत्पन्न कर दी। युग व्यक्तित्व को महत्व देता है, जाति -पांति वर्ग भेद की परम्परा विनष्ट हो चुकी है । मानव का गुण उसे महान् बनाने में समर्थ होता है । इसी सिद्धान्त को अपनाकर महाकवि ने `एकलव्य` की रचना की है । समस्त मानव को शिक्षित होने का समान अधिकार है इस विचार को एकलव्य में विशेष रूप से प्रश्रय दिया गया है ।निषादवंश में उत्पन्न एकलव्य अपने शील, गुण के कारण ही आचार्य द्रोण और आर्यकुलभूषण पार्थ को पराजित कर देता है और डा० रामकुमार वर्मा ने निषादपुत्र को नायक के पद पर प्रतिष्ठित करके यह प्रमाणित करदिया कि महान् व्यक्तित्व के लिए कुल वंश की परम्परा अनिवार्य नहीं है । कीच से कमल, कोयले से हीरा की उत्पत्ति होती है, बुद्धिवादी युग इस विचारधारा में विश्वास करता है ।किसी भी जाति अथवा वर्ग का मानव अपने उदात्त चरित्र से महान् बन सकता है । महाभारत में युधिष्ठिर ने कहा है ` जाति की अपेक्षा मनुष्य के शील गुण का महत्व है ।`

निषाद-पुत्र एकलव्य अपनी सम्पूर्ण जिज्ञासा और उत्कट अभिलाषा को लेकर गुरु द्रोण के समक्ष जाता है और धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करता है उस समय द्रोणाचार्य उसे केवल निषाद पुत्र होने के कारण शिक्षा देना अस्वीकार कर देते हैं और कहते हैं --

'किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी हैं
जो कि भूमिपुत्र नहीं, किन्तु भूमिपति है
मृत्तिका के दीपकों का मोह शेष है नहीं
जो कि उटजों में बुझते हैं एक फूंक से
मैं सजा रहा हूं मणिदीप राजगृह में
जिनके समीप झंझा झांक भी न सकता ।'[1]

एकलव्य यह निर्णय सुनकर भी अपने निश्चय पर अटल है और कहता है आप मेरे गुरु हैं और सदैव रहेंगे । वहां से प्रस्थान करता है आने पर मित्रगण परिहास करते हैं । दृढ़ प्रतिज्ञ पुरुष अपने जीवन की निर्धारित दिशा को परिवर्तित नहीं करते, एकलव्य ने कहा-

' किन्तु परिहास के विवादी स्वरालाप से
विकृत न होगा उठा उर में जो राग है
दर्शन किये हैं मैंने आज पुण्य पर्व में
उस महामानव के जो कि शक्तिस्रोत है[2]।'

साधक एकलव्य गुरु द्रोण की मृत्तिका की मूर्ति निर्मित कर उसी के समक्ष धनुर्विद्या की साधना आरम्भ करता है और अन्त में अद्वितीय लाघव प्राप्त करता है । गुरु द्रोण के राजवंशी शिष्यों को यहविदित हो जाता है कि एकलव्य अद्वितीय धनुर्धारी सिद्ध हो गया । एकलव्य के चरित्र का चरम विकास उस समय होता है जब अर्जुन अपने आचार्य द्रोण से कहता है किआपने प्रण किया था मुझे पृथ्वीपर अद्वितीय धनुर्धारी बनाने के लिए, आज आपकी प्रतिज्ञा भंग हो रही है और यही आपकी अपकीर्ति का कारण होगी, उस समय एकलव्य कहता है-

' गुरु का हृदय खंड खंड हो असंभव
दक्षिणांगुष्ठ ही हो खंड खंड मेरा जो कि
पार्थ को बना के अद्वितीय धन्वी विश्व में । [3]

१- एकलव्य- पृ० १२६- सर्ग षष्ठ
२- वही पृ० १३३ - सर्ग सप्तम
३- वही पृ० २८६- सर्ग चतुर्दश

गुरु का प्रण पूर्ण हो, यही मेरी गुरुदक्षिणा है और एक पल में दक्षिणांगुष्ठ काट कर गुरु के चरणों में समर्पित कर देता है, आचार्य द्रोण एकलव्य को हृदय से लगा लेते हैं और गद्गद गिरा से बोल उठते हैं-

> 'एकलव्य हो! तुम विप्र हो है शिष्य गुरु द्रोण शूद्र है
> हाँ तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है
> सारा वर्णभेद घुल गया रक्तधार से
>
> \+ \+
>
> पार्थ ! रक्त देखो, इस वीर एकलव्य का
> जो कि राजवंशों से भी धोया नहीं जायेगा[1]।'

पार्थ भी कहते हैं ' क्षमा करो एकलव्य मेरी धृष्टता' । तात्पर्य यह कि महाकवि युग का प्रतिनिधित्व करता है और मानवता का आदर्श प्रस्तुत करता है । दूसरी विशेषता नायक के महान व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने में है, डा० रामकुमार वर्मा ने अपने बुद्धि कौशल और काव्य सौष्ठव से महाभारत की इस कथा को 'एकलव्य महाकाव्य' के रूप में प्रस्तुत किया जो हमारे हृदय में रामचरितमानस की भांति अभिनंदनीय स्थान प्राप्त करने में सफल है । एक स्थान पर शिक्षा के लिए अत्यन्त ही सुन्दर दृष्टान्त आया है-

> 'जाति भेद नहीं, वर्ग वंश भेद भी नहीं
> शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं
> सूर्य की किरण भी क्या जाति भेद मानती
> अग्नि क्या विशेष जीवधारियों की श्रेणी है
> सीमित है ? और वायु की तरंग उठती
> केवल विशिष्ट व्यक्तियों को सांस देने में
> फूल फूलते हैं वे न घोषणाएं करते
> साधु ही सुगन्धि के विशेष अधिकारी है

१- एकलव्य- पृ० २२३ - सर्ग एकादश

और जो असाधु है, समीप जाके उनके
जो सुगन्धि है वही दुर्गन्धि बन जायेगी[१]।

इस प्रकार महाकाव्यकार ने युग की समस्याओं का निराकरण करने का सफल प्रयास किया है। एकलव्य ने अपनी गुरुभक्ति का ऐसा आदर्श सन्मुख रखा जो इस युग में समाज के लिए एक उदाहरण रूप बन गया। निषादवंशी एकलव्य का महान् त्याग, विलक्षण व्यक्तित्व और शीलगुण उसे निस्संकोच महाकाव्य के नायक पद पर प्रतिष्ठित करता है। डा० रामकुमार वर्मा ने महाकाव्य के निर्माण की नवीन विधा का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है जो साहित्य जगत के लिए महत्वपूर्ण है। उनका नायक अन्य नायकों की भांति अपने उदात्त चरित्र के द्वारा सर्वसाधारण के हृदय में आदर प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करता है। आधुनिक महाकाव्यों ने युगानुकूल व्यक्तित्व, मानवता और चरित्र आदि को महत्व देते हुए अपने नायकों का सृजन किया है और परम्परागत प्राचीन सिद्धान्तों में पर्याप्त रूप से परिवर्तन कर दिया है।

अध्याय- ६

क- आधुनिक दृष्टिकोण से नायक

ख- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में नायकों के प्रकार :-

१- सांस्कृतिक नायक

२- पौराणिक नायक

३- ऐतिहासिक नायक

४- जननायक

५- राष्ट्रनायक

६- लोक नायक

७- व्यक्तित्वनिष्ठ नायक

---o---

आधुनिक दृष्टिकोण से नायक:-

वर्तमान युग के मानवतावाद से प्रभावित होकर आज के महाकाव्यकारों ने युग-युग से उपेक्षित चरित्रों को अपने महाकाव्य में गौरवान्वित करने का प्रयास कियाहै ।बंगला साहित्य सर्व प्रथम पाश्चात्य मानवतावाद से प्रभावित हुआ है और धीरे-धीरे यह प्रभाव हिन्दी साहित्य में दिखायी देने लगा। माइकेल मधुसूदन ने बंगला में `मेघनादवध` की रचना कर के महाकाव्य संबंधी प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के भाव जाग्रत कर दिये और नायक आदि के सिद्धान्तों में परिवर्तन होने लगा ।

`मेघनाद` और रावण` को नायक बनाकर माइकेल ने उपेक्षित चरित्र के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की ।`मेघनाथवध` पर पाश्चात्य महाकवि होमर,वर्जिल मिल्टन आदि का प्रयाप्त प्रभाव पड़ा इसी से प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी के महा काव्यों में इसी प्रकार के चरित्रों को महत्व दिया गया और हरदयालु सिंह ने दैत्यवंश ,आनन्दकुमार ने`अंगराज` दिनकर ने `रश्मिरथी` डा० रामकुमार वर्मा ने`एकलव्य`की रचना की।

महाकाव्य युग का प्रतिनिधि काव्य होता है जिसमें तत्कालीन समस्याओं और युग की प्रवृत्तियों का समावेश रहता है । आधुनिक महाकाव्यों में प्राचीन आदर्शों का अक्षरश: पालन संभव नहीं हुआ,युग की नवीन भावनाओं और समस्याओं के अनुसार आज उनमें परिष्कार और संशोधन हो रहा है और साथ ही नये आदर्शों को मान्यता दी गयी है । जीवन में परिवर्तन के साथ महाकाव्यों के उद्देश्यों में परिवर्तन होना स्वाभाविक है । आज के अधिकांश महाकाव्यों की कथावस्तु प्राचीन ही है, जैसे प्रियप्रवास` `साकेत` और`कामायनी` है । प्राचीन कथानक में भाव की अधिक स्वतंत्रता रहती है यह अवश्य है कि कथानक के प्राचीन होने पर भी महाकाव्य-कार उसे नवयुग की प्रगतिशील भावनाओं के अनुसार रंगने में प्रयत्नशील रहता है और अपनी बुद्धि कौशल के द्वारा सफलता प्राप्त करता है ।

परम्परागत प्राचीन आदर्शों के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त कोई उच्चकुल में उत्पन्न महानपुरुष होना चाहिए किन्तु आज

यह नियम अनिवार्य नहीं है । उदात्त गुणों से विभूषित कोई भी पुरुष महान है, यही दृष्टिकोण मान्य है । इस प्रकार नायक की परिभाषा में अंतर हो गया है, उसके कर्म का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया उसकी महानता का लोकव्यापक हो गया है । युगानुसार जन कल्याण के सभी कार्य उदात्त होते हैं, उस प्रांगण में उतरने वाले साधक भी महापुरुष ही होते हैं । विजय, त्याग, उत्सर्ग आदि भी उदात्त गुण हैं, राज्य क्रान्ति में भाग लेने वाला सिपाही भी श्रद्धा का पात्र है, शान्ति का संदेश देने वाला सहिष्णु व्यक्ति भी महान है । मानवीय दुर्बलताओं के ऊपर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति भी महान है । संघर्षों के बीच दृढ़ रह कर अपने निर्धारित दिशा को न बदलने वाला सन्नद्ध पुरुष भी महामानव कहलाने का अधिकारी है । मानवता का उपासक युग ऐसे ही महापुरुषों के चरित्रों को सम्मान तथा आदर देता है । लोक विश्रुत महापुरुषों के चरित्रों के प्रति पूर्वसंचित श्रद्धा और सदभावनाओं को प्रभावित करने में काव्यकार अधिक सफल होता है। अत: यह परम्परा प्रवाहित रही और लोक प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है परन्तु उसके भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है । आज उपेक्षितों, दलितों को नायक मान कर महाकाव्यों की रचना होने लगी । हिरण्यकश्यपु, रावण जैसे असुर नायक के पद पर आसीन किये गये हैं । अंगराज और दिनकर के रश्मिरथी में सूतपुत्र कर्ण को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है । डा० रामकुमार वर्मा ने निषाद पुत्र एकलव्य को महाकाव्य का प्रधान पुरुष पात्र मान कर उसके शीलगुण का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है । अतिमानव या अलौकिक चरित्र पुरुष ही महाकाव्य का नायक नहीं है बल्कि महान लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाला कोई भी व्यक्ति महार्घ है । यह वैज्ञानिक युग अलौकिक तत्वों को महत्व नहीं देता और परिणाम-स्वरूप आज के महाकाव्य हमारे जीवन के अधिक समीप हैं ।

नायक निर्णय की नवीन दृष्टि :-

समाज की धर्मगत, जातिगत मान्यता के अन्तर के साथ साथ नायक का

परिवेश व्यापक, विस्तृत हो जायेगा । यही कारण है कि आधुनिक महाकाव्य के सम्बन्ध में मानवीय गुणों की व्यापकता और प्रखरता एकमात्र कसौटी रह गयी । यहां तक कि प्राचीन इतिवृत्तों के आधार पर लिखे गए महाकाव्य में भी नायक संबंधी मान्यताओं का परिशीलन, परिष्करण और संशोधन हुआ ।

प्राचीन कवियों ने कृष्ण को दिव्य विभूतियों की प्रतिष्ठा द्वारा नायक माना किन्तु हरिऔध जी ने कृष्ण की अलौकिकता को बुद्धि ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया है । तृणासुर के प्रसंग में यह भावना निहित किया है कि पूर्व जन्म के पुण्य संस्कारों से बालक बच गया -

'निकट ही निज सुंदर सद्म के
किलकते हंसते हरि भी मिले
अति पुरातन पुण्य ब्रजेश का
उदय था इस काल में हुआ
पतित हो खर वायु प्रकोप में
कुसुम कोमल बालक जो बचा ।'[१]

पूतना ने बालकृष्ण को विषपान कराया और पूर्व संचित सत्कर्मों के प्रभाव से विष अमृत हो गया ऐसी भावना हरिऔध जी ने प्रकट किया है --

'परम पातक की प्रतिमूर्ति सी
अति अपावनतामय पूतना
पय अपेय पिला कर श्याम को
कर चुकी ब्रज भूमि विनाश थी
पर किसी चिर संचित पुण्य से
गरल अमृत अर्भक को हुआ ।'[२]

१- प्रियप्रवास- सर्ग द्वितीय - छंद ४४-४५

२- वही वही छंद ३४-३५

गोवर्द्धन-धारण की घटना स्थल का भी हरिऔध जी ने मौलिक अभिप्राय निकाला है । कृष्ण प्रत्येक ब्रजवासी को वहीं बुला लेते हैं, बसा लेते हैं तथा सबको अपने वश में कर लेते हैं ।' उंगली पर गोवर्धन उठा लिया' का अर्थ है सब को अपने वश में कर लिया, उंगली पर नचा लिया । बुद्धिवाद का आश्रय लेकर हरिऔधजी ने कृष्ण के जीवन का वर्णन कर्मवीर सिद्ध करने के हेतु किया है -

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में
ब्रज धराधिप के प्रिय पुत्र का
सकल लोग लगे कहने उसे
रख लिया उंगली पर श्याम ने[1] ।'

इस प्रकार आधुनिक दृष्टि से नायक के सिद्धान्तों में परिवर्तन हुआ । मानव कर्म की दृष्टि से नई विधा हुई । महाकाव्यकार ने नायक के शील, त्याग, प्रेम आदि महत् गुणों का प्रदर्शन किया जिसमें जाति भेद नहीं कर्म कौशल प्रमुख हैं । साकेत में गुप्त जी कहते हैं -

' राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या[2] ?'

राम को मर्यादा पुरुषोत्तम रूप में चित्रित किया है यह अवश्य है कि उनके ईश्वर रूप को भुलाया नहीं ।

१- प्रियप्रवास- सर्ग द्वादश - छंद ६७

२- साकेत - मुखपृष्ठ

आधुनिक युग के अनुसार प्रत्येक महाकाव्य में शृंगार आदि रस के स्थान पर मनोविज्ञान होना चाहिए क्योंकि जब देवताओं की चमत्कारपूर्ण कथा रहतीथी तो रसात्मक होना ठीक था । आज ऐसा चरित्र ही नहीं है जीवन गत संघर्ष, मनोविज्ञान, आदर्श और यथार्थ का सापेक्ष महत्व उसका निरूपण देखना चाहिए । कथा की अपेक्षा मानसिक विचारों का आरोहावरोह प्रस्तुत करना चाहिए । पूर्व विचारों के अनुसार इन चरित्रों के प्रकट करने में रस और छंद जुड़े रहते थे जैसे राधा के लिये आया है --

> 'जो राधा वृषभानु भूप तनया स्वर्गीय दिव्यांगना
> शोभा है ब्रज प्रांत की अवनि की स्त्री जाति की वंश की
> होगी हो वह मग्नभूत अति ही मेरी वियोगाब्धि में
> जो हो संभव तात पोत बन के त्राण देना उसे ।'[१]

यह शार्दूल विक्रीडित छंद है परन्तु आज छंदों में भी पूर्ण स्वतंत्रता का प्रयोग होना चाहिए । आधुनिक महाकाव्यकारों ने नायक के सम्बन्ध में 'उच्चकुलोदभवा' का सिद्धान्त तो पूर्णतया समाप्त कर दिया, जननायक के बापू, एकलव्य, कर्ण आदि इसके ज्वलंत दृष्टान्त हैं ।

१- प्रियप्रवास- सर्ग नवम - छंद ११

:ख: आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में नायकों के प्रकार

१- सांस्कृतिक नायक

२- पौराणिक नायक

३- ऐतिहासिक नायक

४- जननायक

५- राष्ट्र नायक

६- लोक नायक

७- व्यक्तित्व-निष्ठ नायक

:ख: आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में नायकों के प्रकार :-

महापुरुषों ने तत्कालीन समस्याओं का समाधान करने के लिए राजनीतिक, दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक दृष्टिकोणों को अपनाया। महाकाव्यकार ने इस उदात्त चरित्र पुरुषों को अपने काव्य का नायक बनाया और अनेक रूप में प्रस्तुत किया। हम नायक को अनेक कोटियों में विभाजित कर सकते हैं क्यों कि आधुनिक महाकाव्यों में अनेक प्रकार के नायकों का निर्माण हुआ है। राष्ट्र के लिए, धर्म के लिये, समाज के लिये, अपने जीवन का उत्सर्ग करने वाले नायकों का विवेचन करना आवश्यक है।

सांस्कृतिक नायक :-

प्रसाद जी ने "कामायनी" में वेदों तथा उपनिषदों आदि के बिखरे हुए कथासूत्र को शृंखलाबद्ध करने का प्रयास किया है। पुरातन कथा का आश्रय लेकर युगानुरूप नये सन्देशों की स्थापना की है। मनोविज्ञान तथा दर्शन में काव्य का एकत्र समीकरण हुआ है। इस भौतिकवादी युग को आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने के लिए प्रसाद जी ने इसकी रचना की है। भौतिक वस्तुओं के संग्रह में लिप्त मानव आनंद की खोज में उन्मत्त है वह वास्तविक सुख शान्ति को नहीं प्राप्त कर सकता, जब तक वह आत्मानंद को नहीं ~~प्रस्म~~ जान लेता अमर सुख को अवगत नहीं कर सकेगा। इसी दृष्टिकोण को लेकर प्रसाद जी ने सांस्कृतिक नायक का सृजन किया है। इस प्रतीकात्मक महाकाव्य के प्रमुख पात्र मनोवृत्तियों के मानवीकरण हैं।

कामायनी का नायक मनु को माना है। कहां तक वह सफल नायक है इस पर विचार किया जायेगा, किन्तु यहां पर हमें नायक की कोटियों की विवेचना करना है। मनु जो मन का प्रतीक है वैदिक वांगमय में विख्यात वैवस्वत् मनु है। मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के युग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गई है इसलिए वैवस्वत मनु को भारतीय

संस्कृति का ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है।[1]

शतपथ ब्राह्मण में भी मनु का संकेत आया है, श्रद्धा और मनु से ही मानवीय सृष्टि का सूत्रपात हुआ है। प्रातःकाल प्रक्षालनादि के निमित्त जल लेते हुए मनु के हाथ में मछली आ गई, उस मछली को मनु ने पकड़ लिया और उसके सहारे अपनी नौका की रक्षा की, जिसका प्रसंग इस प्रकार आया है --

" मनवेवहै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदंपाणिभ्यामवने -
जनायाहरन्त्येवं तस्यावने निजानस्य मत्स्यःपाणी आपेदे।।[2]

कामायनी के मनु में परम्परागत धीरोदात्त नायक के आदर्शों की रक्षा नहीं हुई है। यद्यपि कामायनीकार का दृष्टिकोण जीवन के वास्तविक रूप को समक्ष करने की ओर अधिक था और यह सत्य है कि केवल उदात्त आदर्शों को लेकर चलने से जीवन की स्वाभाविकता और सत्य पीछे रह जाता है। जिस प्रकार 'साकेत' में उर्मिला और लक्ष्मण का प्रेम आरम्भ ~~होने हुए~~ में भोगजन्य होते हुए भी योग जन्य होकर चरम सीमा पर पहुँचता है, इसी प्रकार श्रद्धा के प्रति मनु का प्रेम आरम्भ में वासनाजन्य है पर इस प्रेम की परिणति योग में, समरसता में हुई। बड़े बड़े मनीषियों गौतम, तुलसीदास आदि के जीवन में भी भोग योग का आदि दृष्टिगत होता है। अंत में मनु अखंड आनंद को प्राप्त कर लेते हैं।

कामायनी में नायकत्व का अधिष्ठान :-

कामायनी महाकाव्य के कर्म सर्ग तक मनु के चरित्र का विकास होता है किन्तु उसके पश्चात् उसमें जो मोड़ उपस्थित होता है उसका प्रमुख कारण है प्रसाद जी का शैव मत। शैव सिद्धान्त की स्थापना के लिए शक्ति को

१- कामायनी - आमुख
२- शतपथ ब्राह्मण- प्रथम कांड, अष्टम अध्याय

महत्व दिया और शक्ति के रूप में श्रद्धा का निर्माण हुआ शक्ति के बिना शिव शव है । इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य की प्रतीकात्मकता के कारण मनु में चंचलता, उग्रता और भय आदि मनोवेगों का सन्निवेश किया गया है मन का प्रतीक मनु चंचल हो जाता है ।

भारतीय सिद्धान्त के अनुसार नायक कभी जीवन में पराजित नहीं होता। मनु इंद्रियों से भी पराजित होते हैं और श्रद्धा उनको पग-पग पर प्रोत्साहन देती हैं, रक्षा करती है । श्रद्धा के हृदय की समष्टि कल्याण की भावना काव्य में निरन्तर मिलती है मानव का कल्याण ही इसका ध्येय है मनु को भी समझाती है --

औरों के हंसते देखो मनु
हंसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ ।।[१]

कितनी उच्च भावना इन पंक्तियों में निहित है । वासना के वशीभूत होकर मनु सारस्वत प्रदेश की राजकुमारी इड़ा के साथ जो व्यवहार करते हैं वह हमारे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होने देता और मनु को सफल भारतीय नायक कहने में संकुचित होते हैं। इड़ा की इच्छा के विरुद्ध उसे बाहों में भरने वाले कामुक मनु कहते हैं आज तुम मेरे वश में हो --

किन्तु आज तुम बन्दी हो मेरी बाहों में
मेरी छाती में फिर सब डूबा आहों में
सिंह द्वार अरराया जनता भीतर आई
'मेरी रानी' उसने जो चीत्कार मचाई

१- कामायनी, कर्म सर्ग पृ० १३२
प्रथम संस्करण, प्रकाशक भारती भंडार,
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

अपनी दुर्बलता में मनु तब हाँफ रहे थे
स्खलन विकम्पित पद वे अब भी कांप रहे थे।[1]

यही नहीं वहां की प्रजा कितने अपमानसूचक शब्द कहती है और प्राण लेने को तत्पर हो जाती है --

ओ यायावर ! आज तेरा निस्तार कहां ।[2]

मनु एकाकी ही सबका सामना करने को अग्रसर होते हैं वह वीरता का परिचायक अवश्य है किन्तु इसका परिणाम यह होता है कि मनु का प्राण ही अवशेष रहता है --

शून्य राजचिन्हों से मंदिर
बस समाधि सा रहा खड़ा
क्यों कि वहीं घायल शरीर वह
मनु का तो था रहा पड़ा ।[3]

पराजित मनु की यह दशा देख कर हृदय क्षोभ से भर जाता है और इधर श्रद्धा स्वप्न देखती है कि मनु घायल हो गया है ढूंढती हुई वहां आ पहुँचती है ,थके हुए निराश पथिक को अवलंब देती है । इस समय श्रद्धा के लिए स्वयं ही पुनीत भावना जाग्रत हो जाती है और यह कहना न्यायसंगत होगा कि श्रद्धा में नायकत्व के सभी लक्षण परिलक्षित होते हैं जो उसे धीरोदात्त नायक की कोटि में पहुंचा देते हैं । इसके बिल्कुल विपरीत मनु का चरित्र है ,सारस्वत प्रदेश की प्रजा के द्वारा घायल होकर पड़े हैं और श्रद्धा के आने पर किस प्रकार क्षोभ, ग्लानि और आतंक प्रकट करते हैं जो पुरुषार्थी व्यक्ति के लिए अशोभनीय है, कहते हैं ---

---

१- कामायनी- संघर्ष सर्ग, पृ० १६८
२- कामायनी-संघर्ष सर्ग, पृ० १६६
३- कामायनी -निर्वेद सर्ग, पृ० २०७, प्रथम संस्करण, प्रकाशक भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

श्रद्धा ! तू आ गयी भला तो
पर मैं क्या, क्वक था यहीं पड़ा,
वही भवन वे स्तंभ वेदिका
बिखरी चारों ओर घृणा
आंख बन्द कर लिया क्षोभ से
दूर दूर ले चल मुझको
इस भयावने अंधकार में
खो दूं कहीं न फिर तुझको[1]।।

श्रद्धा के द्वारा प्रसाद जी ने काव्य में मानवता के कल्याण की कामना को पग-पग पर प्रदर्शित किया है, नायक स्वयं उसकी महानता को स्वीकार करता है और लज्जित होकर कहता है --

कितना है उपकार तुम्हारा
आश्रित मेरा प्रणय हुआ
+ +
सब पर हां अपने पर भी मैं
झुंझलाता हूं खीझ रहा।[2]

श्रद्धा निरन्तर यही भावना प्रकट करती है किस प्रकार मानव का कल्याण हो और मनु को भी प्रोत्साहन देती है। मानव के प्रति शुभ कामना करती है --

तब देखूं कैसी चली रीति, मानव तेरी हो सुयश गीति।[3]

१- कामायनी- निर्वेद सर्ग, पृ० २१८
२- वही वही पृ० २२६-२२७
३- वही दर्शन सर्ग, पृ० २४३

मनु के द्वारा श्रद्धा के दिव्य स्वरूप का चित्रांकन कराया है - मनु कहते हैं—

> तुम देवि ! आह कितनी उदार
> वह मातृमूर्ति है निर्विकार
> हे सर्व मंगले ! तुम महती
> सब का दुख अपने पर सहती
> कल्याणमयी वाणी कहती
> तुम क्षमा निलय में ही रहती ।[1]

कहने का तात्पर्य यह कि प्रसाद जी ने श्रद्धा के चरित्र का वर्णन शक्ति के रूप में किया है जो अपने महत् गुणों के द्वारा पथभ्रष्ट नायक को मार्ग बताती है और अखंड आनन्द का बोध कराकर समरसता का ज्ञान कराती है । नायकत्व का गुण जिस प्रकार श्रद्धा के चरित्र में दर्शाया गया है उस प्रकार मनु के चरित्र में नहीं है श्रद्धा के समकक्ष हम मनु को अधिक महत्वपूर्ण पात्र नहीं कह सकते । यह अवश्य है कि अंत में मनु चिन्मय आनंद की प्राप्ति कर लेते हैं किन्तु वह भी श्रद्धा के प्रयत्न से । सांस्कृतिक नायक की कोटि में कामायनी के नायक को रक्खा जा सकता है जिसमें प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति का स्पष्ट स्वरूप प्रकट करने का सफल प्रयास किया है ।

पौराणिक नायक :-

हरिऔध जी का प्रियप्रवास श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कंध की कथा पर आधारित है इसके सम्बन्ध में हरिऔध जी ने स्वतः लिखा है —

" हम लोगों का एक संस्कार है, वह यह कि जिनको हम अवतार मानते हैं उनका चरित्र जब कहीं दृष्टिगोचर होता है तब हम उसको प्रति पंक्ति में या

1- कामायनी - दर्शन सर्ग पृ० २४६

न्यून से न्यून उसके प्रति पृष्ठ में ऐसे शब्द या वाक्य अवलोकन करना चाहते हैं जिनमें ब्रह्मत्व का निरूपण हो । मैंने श्रीकृष्ण चन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भांति अंकित किया है ब्रह्म करके नहीं । अवतारवाद की जड़ में श्रीमद्भगवतगीता का यह श्लोक मानता हूं -

" यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम् ।"[1]

अतएव जो महापुरुष है उनका अवतार होना निश्चित है ।"

परम्परा से कृष्ण राम के लिये हिन्दू-जाति के हृदय में एक विशिष्ट प्रकार की भावना है उन्हें हम ब्रह्म और भगवान् के ही रूप में स्वीकार करते चले आ रहे हैं । हरिऔध जी ने उस पर ठेस नहीं पहुंचाया किन्तु समयानुसार परिवर्तन आवश्यक था । वैसे हमारे पौराणिक कृष्ण की अलौकिकता के सम्बन्ध में हमारी पर्याप्त दृढ़ भावना हो चुकी है क्योंकि कृष्ण ने जन्म से ही अलौकिक कार्य करने प्रारम्भ कर दिए थे अत: उनको बार बार ब्रह्म कहने की भी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । हरिऔध जी ने प्रियप्रवास की भूमिका में लिखा है :--

" मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का जो चरित अंकित किया है उस चरित्र का अनुभावन करके आप स्वयं विचार करें कि वे क्या थे मैंने यदि लिख कर आपको बतलाया कि वे ब्रह्म थे तो क्या बात रही ।"

हरिऔध जी ने पौराणिक नायक कृष्ण के चरित्र का ही वर्णन अपने महाकाव्य में किया है किन्तु पाखण्ड कृष्ण के अलौकिक चमत्कारपूर्ण कृत्यों को बुद्धिग्राह्य बना कर चित्रित किया है या हटा दिया है । "प्रियप्रवास" में कृष्ण को समाज

१- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १०, श्लोक ४१

सेवी, लोकरंजनकारी नायक के रूप में अंकित किया है । हरिऔध जी के कृष्ण राधा और गोपियों के रसिक राज ही नहीं हैं, बल्कि लोक कल्याण और जनहित के लिये सर्व सुखों का त्याग करने वाले योगिराज हैं । इन पंक्तियों से कृष्ण के जन कल्याणकारी रूप का दर्शन होता है —

स्वजाति की देख अतीव दुर्दशा
विगर्हणा देख मनुष्य मात्र की
विचार के प्राणि समूह कष्ट को
हुए समुत्तेजित वीर केशरी ।।२२।।[1]

\+ \+

सदा करूंगा अपमृत्यु सामना
स भीत हूंगा न सुरेन्द्र वज्र से
कभी करूंगा अवहेलना न मैं
प्रधान धर्मांग परोपकार की ।।२६।।[2]

इस प्रकार हरिऔध जी ने अपने नायक के चरित्रांकन द्वारा जगत् हित, समाज हित, आत्मत्याग आदि लोक संग्रही भावनाओं को प्रकट किया है । कृष्ण ने अपने रासविलास और गोपियों के सहवास सुख का लोक हित के लिये एक पल में त्याग किया था यह हरिऔध जी की मौलिक उद्भावना नहीं है । कृष्ण ने असुर संहार के द्वारा मानव कल्याण के लिए और धर्म की स्थापना के लिये अवतार ही लिया था । यह अवश्य है कि हरिऔध जी ने

१- प्रियप्रवास, एकादश सर्ग, पृ० १२९ छंद संख्या २२

२- वही वही पृ० १३० छंद संख्या २६

समय के अनुसार इसमें नवीन विचारों का पुट देकर और निखार दिया है। राधा के विहारी और गोपियों के रसिक राज कृष्ण कर्मनिष्ठ, महापुरुष और कर्तव्यपालक हैं। अपने देश और प्राणिमात्र के सुख के लिए प्रिय वस्तु का भी बलिदान कर देते हैं। कृष्ण को यहाँ लोकनायक के रूप में चित्रित किया है। कृष्ण कहते हैं --

" विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का
सहाय होना असहाय जीव का
उबारना संकट से स्वजाति का
मनुष्य का सर्व प्रधान कृत्य है।[१]

मानवमात्र का प्रमुख कर्तव्य है अपनी जाति की रक्षा करना, दीन और अनाथों के कष्ट को दूर करना।

प्राचीन नायक और जिसकी हम ईश्वर रूप में उपासना कर चुके हैं सहज ही हृदय में आदर और सम्मान की भावना उत्पन्न कर देते हैं। परम्परागत कृष्ण के जिस ब्रह्मरूप को हम सम्मान देते आये हैं वह आज भी हमारे हृदय में अक्षुण्ण है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि कृष्ण के कर्मों का स्मरण करते ही अथवा नाम लेते ही हम पुनीत भावना से नतमस्तक हो जाते हैं। इसी कारण लोकविश्रुत महापुरुष अथवा अवतारी पुरुष को महाकाव्य के नायक-पद के लिये अधिक उपयुक्त माना जाता है। पौराणिक नायक कृष्ण सदैव हमारी आराधना के पात्र हैं। चाहे हमें सर्वत्र उनके ब्रह्म रूप का दर्शन न मिले किन्तु वह महामानव अवतारी पुरुष की ही कोटि में रखे जाते हैं। युग के अनुसार हम उनको नया बाना पहिनाने का प्रयास करते हैं और प्राचीन के साथ नवीन का सामंजस्य स्थापित करते हैं।

१- प्रियप्रवास, एकादश सर्ग, पृ० १४० छंदसंख्या ८५
द्वितीय बार- प्रकाशक खंगविलास प्रेस, बांकीपुर, बाबू रामसिंह द्वारा
१९२१ मुद्रित

परम्परागत पारब्रह्म कृष्ण का वर्णन अनेक ग्रन्थों में किया गया है पर सम्पूर्ण चरित्र को प्रकाश में लाने वाली रचना हिन्दी तथा संस्कृत में नहीं है महाभारत और श्रीमद्भागवत में भी सर्वांगीण चरित्र उपलब्ध नहीं है । पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने श्रीकृष्ण के जीवन की जन्म से स्वर्गारोहण तक की सम्पूर्ण कथा को श्रृंखलाबद्ध करके `कृष्णायन` महाकाव्य में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । `कृष्णायन` में कृष्ण के प्रबल समाज सुधारक और धर्म संस्थापक रूप का चित्रण है । यद्यपि उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है कहीं सूर के कृष्ण का आधार है कहीं श्रीमद्भागवत और कहीं महाभारत का ।

`मिश्र` जी ने गोपीजनवल्लभ, भक्तवत्सल और असुरसंहारक कृष्ण को आज के युग की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं का समाधान करने वाले राष्ट्र नायक के रूप में वर्णन किया है । `कृष्णायन` के कृष्ण लोकाराधन के लिये जीवन धारण करते हैं और नंदयशोदा के वरदान की सफलता के लिए ब्रज जाते हैं । खेल खेल में दुष्टों का दमन करते हैं, चीरहरण के द्वारा गोपियों को नैतिक शिक्षा देते हैं । आर्य राज्य के संस्थापन के लिए मथुरा को प्रस्थान करते हैं । तात्पर्य है कि उनके प्रत्येक कार्य में लोकहित की भावना निहित है । कृष्ण रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी आदि का वरण इनकी मनोकामना की पूर्ति के लिए करते हैं भोगलिप्सा के लिए नहीं । उसी प्रकार प्राग्जोतिष पुर के स्वामी का वध करके उसके बन्दीगृह से उन पतित कुमारियों का उद्धार किया जो अपवित्र होते हुए भी पवित्र थीं फिर उन त्यक्ताओं का ग्रहण करके निर्भीकता का जो उदाहरण रखा वह उनकी भोगलिप्सा नहीं, वरन् इसमें एक नवीन समाज सिद्धान्त की स्थापना का यत्न दिखलायी देता है जिसकी आज भी आवश्यकता है ।

इस प्रकार महाकाव्यकार कृष्ण के परम्परागत पौराणिक नायक के वास्तविक रूप में परिवर्तन करके उन्हें लोकप्रिय और बुद्धि ग्राह्य बना देता है । कृष्ण अनेक महाकाव्यों के नायक के रूप में हमारे सन्मुख प्रस्तुत किये गये हैं ।

ऐतिहासिक नायक :-

अनूप शर्मा द्वारा रचित 'सिद्धार्थ' महाकाव्य इतिहास प्रसिद्ध कथानक के आधार पर रचा गया है। धीरोदात्त गुणों से युक्त सौम्य वीर प्रेमी सहृदय एवं दृढ़ संकल्प वाला क्षत्रिय राजकुमार सिद्धार्थ इसका नायक है। राजकुमार की विरक्ति साधना और सिद्धि से संबंधित घटनाओं का इसमें चित्रण है। इनकी त्यागभावना के ही कारण विश्व का कल्याण हो सका। इन्होंने इन्द्रियजन्य सुखों को महत्व नहीं दिया। सिद्धार्थ के चरित्र का विकास तो स्वाभाविक ढंग से हुआ है पर पत्नी यशोधरा का नवदंपति प्रेम एक विलासिनी नायिका के सदृश्य चित्रित किया गया है -- वसंतोत्सव पर कामातुर साधारण युवती के सदृश्य 'छविमयी अतिधन्य यशोधरा, विशिख से जिसने स्वकटाक्ष के, श्रवण लौं भ्रू का धनु तान के, घात किया युवराज कुमार को।'[1]

जब कि गुप्त जी ने यशोधरा काव्य में उसको महान आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। जिसके त्याग और विरक्तपूर्ण भाव के समक्ष हृदय में सहानुभूति के साथ श्रद्धा भी उत्पन्न होती है --राजकुमार सिद्धार्थ की विरक्ति का वर्णन अवश्य स्वाभाविक रूप से किया है, वह कहते हैं ---

अहो प्राणी कैसे अवनितल पै क्लेश सहते
दुखी हो रोगी हो मृत बन पुनः जन्म धरते
सदा भोगों में वे रत रह कभी हाय बनते
यही क्या भोगों का अथ इति यही क्या जगत की[2]

१- सिद्धार्थ - सर्ग पृ० ६६

२- वही - सर्ग १२ पृ० १७५

सिद्धार्थ की त्याग भावना के द्वारा भारत में ही नहीं, विदेशों में भी इनके सिद्धान्तों को आदर प्राप्त हुआ और इनके मत का प्रचार हुआ —

> फैला धर्म प्रभात का
> अवनि पीयूष संचार सा
> रोगी वृद्ध अशक्त भी मुदित थे
> पा स्वास्थ्य की सम्पदा
> भूपों ने राग से निवृत्त असि की
> क्रोधाग्नि से मुक्त हो
> सारी संसृति सत्य चिन्तन
> परा निर्वाण भावा बनी ।[१]

सत्य और अहिंसा की प्रतिमूर्ति ने मानवता को इसी भावना से ओत प्रोत कर उसे साम्य विचारों का पाठ पढ़ाया । इतिहास प्रसिद्ध नायक के चरित्र का विकास उचित रूप से `सिद्धार्थ` महाकाव्य में नहीं हो सका । यद्यपि अपने पूर्व परिचित नायक को पाकर हम शीघ्र ही उसे हृदय में आदर देते हैं ।

निवृत्ति का मार्ग बताने वाले सिद्धार्थ ने `मानव को दुख से कैसे मुक्ति मिले` इसका उपाय बताया और इस प्रकार निवृत्ति में भी प्रवृत्ति का बोध कराया किन्तु यह प्रवृत्ति मानव के कल्याण भावना से ओत-प्रोत है हमारे यहां के नायकों की चारित्रिक विशेषता अवर्णनीय है इनका व्यक्तित्त्व कितना ऊंचा, दर्शन कितनी महान् भावनाओं से युक्त है यह विद्वान लोग ही समझ सकते हैं । ऐतिहासिक नायक बुद्ध ~~समक्ष~~ आज भी विख्यात और अमर हैं ।

१- सिद्धार्थ संबोध, सर्ग १४, पृ० २२४

जन नायक :-

इस गुणग्राही मानवता के पुजारी युग में पारब्रह्म राम और कृष्ण के स्वर्णिम सिंहासन पर निषादपुत्र एकलव्य, सूतपुत्र कर्ण, वैश्यपुत्र बापू आरूढ़ किये जाते हैं क्योंकि नायक के परम्परागत सिद्धान्तों में परिवर्तन हो जाने के कारण आधुनिक विद्वान् नायक का उच्चकुल में उत्पन्न होना अनिवार्य नहीं मानते। मानवता के कल्याण के लिए चरित्र को प्रधानता दी गयी है महत् कार्य महत् व्यक्ति का परिचायक है राजवंश अथवा क्षत्रिय वंश में जन्म लेना आवश्यक नहीं है।

'जननायक' में श्री रघुवीरशरण मित्र ने युग पुरुष गांधी को नायक रूप में चित्रित किया है। अपने त्याग सेवा और राष्ट्र प्रेम की भावना से बापू अतिमानव की कोटि में आ जाते हैं। जनता के नायक, राष्ट्र के प्राण गांधी को भगवान कहा गया है --

' कठिन कठिन व्रत कर जीवन में
मानव से भगवान बन गये [1]

यह सत्य है कर्म से मानव ईश्वर बन सकता है। सत्य, प्रेम और अहिंसा को अपनाकर बापू ने जो कष्ट उठाया, जो अपमान सहन किया, वह अकथनीय हैं। अफ्रीका में भारतवासी होने के कारण गांधी जी को किस प्रकार अपमानित होना पड़ा 'मित्र' जी ने इसका अत्यन्त मार्मिक चित्र अंकित किया है --

' घोड़ा गाड़ी पर बैठे हुए बापू अंग्रेज गोरा के द्वारा मारे और ढकेले जाते हैं इस पर उनका उत्तर कितना हृदयस्पर्शी है -'मैं नहीं बैठ सकता जूतों में, अभी देश का स्वाभिमान है भारतमाता के पूतों में [2]।'

१- जननायक, पृ० १६८, सर्ग ११

२- वही पृ० ६२ सर्ग ६

गाड़ी के सींखचे को दृढ़तापूर्वक पकड़ कर खड़े रहे । ऐसे दृश्यों को पढ़ कर लगता है मानव इतना सहिष्णु हो सकता है, सत्य है यही गुण उसे अतिमानव की श्रेणी में पहुँचा देते हैं । राष्ट्र पिता बापू का सम्पूर्ण चरित्र त्याग और सहनशीलता, दृढ़ता और कटिबद्धता से युक्त है । असहनीय कष्ट सहन करके विषम परिस्थितियों में भी जननायक ने अपने संकल्प की पूर्ति की, प्राणों की आहुति देकर जननी जन्मभूमि के पैरों में बंधी श्रृंखलाओं को मुक्त किया ।

विश्वबन्धुत्व की भावना से व्याकुल यह महात्मा मानव मात्र की मंगल कामना में ही रत रहा । कितना स्नेह देशवासियों के प्रति था, उनको वस्त्रहीन, गृहहीन देखकर बापू का हृदय व्याकुल हो उठा और स्वयं वस्त्र अन्न का त्याग करके लंगोटी लगाना आरम्भ कर दिया । गांधी जी ने राष्ट्र की, जाति की, समाज की समस्याओं को सुलझाने का सदैव प्रयास किया, उनके हृदय में सत्य था जिसके कारण उनकी आत्मा में वह बल आ गया कि उन्होंने सबको झुका लिया । निम्न और अछूत वर्ग को हम घृणा की दृष्टि से देखते थे और उनके लिए बापू के हृदय में कितना स्नेह है किस प्रकार सत्य और तर्कपूर्ण भाव प्रकट करते हैं । जो हमारी गन्दगी को साफ करे हमारी सेवा करे उसे अछूत कह कर घृणा की दृष्टि से देखना पाप है और सब को एक समान समझते थे । उनका कहना था सब के शरीर में एक ही प्रकार का रक्त है, एक ही सृष्टिकर्ता ने सब का निर्माण किया है, सबको जन्म दिया है फिर कैसा छूत कैसा भेद ? इस प्रकार जननायक गांधी का जनता के हृदय में अमिट स्थान बन गया जो इतिहास और साहित्य में सदैव अमर रहेगा ।

जननायक गांधी अपने को जनता का सेवक मात्र समझते थे और उसी की सेवा में लगे रहते थे । मानव के प्रति उनके हृदय में कितना स्नेह था इसका उदाहरण मिश्र जी ने प्रस्तुत किया है । जब एक कुष्ठ का रोगी भिखारी रूप में आता है और गांधी अपने हाथों से उसकी सेवा करते हैं --

'कोढ़ चूता द्वार उनके, एक दिन आया भिखारी

+ +

सामने भिक्षुक खड़ा था सोच में गांधी पड़े थे
द्वार पर पल्ला पसारे स्वयम् नारायण खड़े थे
कहा गांधी ने द्रवित हो आप की सेवा करूं मैं
पूछ पलकों से पसीना कोढ़ पर मरहम धरूं मैं
धोने लगे घाव कोढ़ी के अमर भगीरथ गंगाजल से
सेवाओं का सुधा पिलाया रत्न लुटाये अंतस्तल से ।[१]

इतना सेवा भाव और परहित गांधी के हृदय में था और इसी ने उन्हें जन-नायक बनाया, जनता का भगवान बनाया और वह वास्तव में इसके योग्य थे । उन्हीं की साधना और तपस्या का फल है जो हमारी पराधीनता की बेड़ियां खुल गईं और विश्व में हमारा सम्मान बढ़ गया ।

राष्ट्र नायक :-

आधुनिक युग में राष्ट्र की सेवा के लिये जो त्याग 'बापू' ने किया है वह सराहनीय है । जननी जन्मभूमि के लिए, नीति के कल्याण के लिए बापू ने अनेक कष्ट सहन किये और इस से सभी परिचित हैं । युग पुरुष गांधी को अपने महाकाव्य का प्रधान पुरुष पात्र बनाकर 'जगदालोक' जननायक 'महामानव' 'लोकायतन' की रचना की गयी है, ये महाकाव्यत्व की दृष्टि से कहां तक सफल है इस पर अन्यत्र विचार किया गया है किन्तु यहां राष्ट्र नायक पर दृष्टि डालना है ।

राष्ट्र सेवा की पुनीत भावना ने गांधी को अतिमानव की श्रेणी में पहुंचा दिया । महात्मा गांधी जनता के द्वारा पूजे जाने लगे । देश की

१- जननायक, ६ वां सर्ग, पृ० १३२

दयनीय दशा को देख कर उनके हृदय में करुणा का सागर उमड़ पड़ा और उन्होंने समस्त सुख ऐश्वर्य को त्याग कर साधु जीवन को अपना लिया केवल राष्ट्र कल्याण में रत हो गये । उन्होंने अछूत वर्ग का उद्धार करने, अशिक्षित को शिक्षित बनाने का सतत प्रयत्न किया । जन जागरण के लिए आजीवन प्रयास किया और अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भारत को पराधीनता से मुक्त कराया । गांधी जी की जन सेवा का चित्रण मित्र जी ने किया है —

जनता के सेवक को अपने घर का ध्यान नहीं रहता है
जिसने उसको जहां पुकारा, वह भगवान वहीं रहता है
बच्चे पढ़ने लगे उन्हीं के, गांधी उनको लगे पढ़ाने
अपने शुद्ध ज्ञान की गंगा, तृषित भूमिपर लगे बहाने ।[1]

अपने राष्ट्र केलिये गांधी ने सब कुछ किया, नीच से नीच कार्य को भी सहर्ष किया क्यों कि इनका ध्येय था परस्पर में विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रसार हो, भेदभाव की संकीर्णता विनष्ट हो —

जहां कहीं भी देखा (मैला) भाड़ू देकर साफ किया
बने कारकुन वैरा बन कर सेवासे भंडार भर दिया
सेवा कार्य देख गांधी के वे सारे सेवक शर्माये

\+ \+

गांधी जी ने देख गंदगी भाड़ू देकर करी सफाई
सारा काम किया भंगी का मैली पगडंडी धुलवाई ।।[2]

अपने देशवासियों को सुखी बनाने के लिये उन्होंने सब कुछ किया, सत्याग्रह का आरम्भ किया और कहा कि इसी से शान्ति की स्थापना हो सकती है —

१- जननायक, पृ० १३२, नवां सर्ग

२- वही पृ० १४३, दसवां सर्ग

भारत भर में हो हड़तालें
आत्मशुद्धि से युद्ध चले यह
चाहे जितने कोड़े खा लें
शान्तिपूर्ण यह धर्म युद्ध है
सब मिल कर उपवास करेंगे
सत्य अहिंसा पर दृढ़ रह कर
मर कर भी हम नहीं मरेंगे ।[1]

गांधी जी की दृढ़ भावना ने सब के हृदय में तूफान का सागर लहरा दिया और १६१६ ई० ,६ अप्रैल को भारत में हड़ताल का शंख फूंक दिया ।कलकत्ता,बंबई,करांची, मेरठ आदि शहरों में जुलूस निकलते, जलसे हुए ,व्रत रखे,क्रान्ति केशोले धधक उठे । और परिणामस्वरूप अंग्रेज भारतीयों पर जल उठे और फिर---

दमन की नीति का अस्त्र उठाकर आग बबूला होकर टूटे
घोड़े दौड़े चलीं गोलियां शोणित के फव्वारे छूटे
हिन्दू मुस्लिम बूढ़े बच्चे चलीं देवियां झंडे ले ले
हत्यारे अंग्रेज चल पड़े रक्त पिपासे डंडे ले ले ।।[2]

कहने का तात्पर्य यह कि आत्मनिष्ठ,तपस्वी गांधी की ही शक्ति ने भारत में वह शोला भड़काया जिसने मां के पैरों की बेड़ियां काट दीं और आज हम स्वतंत्र कहलाने का गौरव प्राप्त करते हैं ।

राष्ट्र-प्रेम का ज्वलंत उदाहरण उस समय मिलता है जब अफरीका में गोरे इन्हें कुली कह कर अपमान करते हैं और कहते हैं नौ बजे रात के बाद फुटपाथ पर काला आदमी नहीं निकल सकता ,गोरे जहां चलें वहां तुम पैर नहीं रख सकते उस समय गांधी जी के दुख की सीमा नहीं रहती विचार करते हैं और कहते हैं --

---

१- जननायक , पृ० २६१ , तेरहवां सर्ग

कहते हैं --

> मारत मां के स्वाभिमान को तुम गोरों से रुंदवाते हो
> अपनी दुर्बलता के कारण अपने पैर उखड़वाते हो
> तुम क्या जानो इन गोरों ने बांध दिये हैं पैर तुम्हारे
> गोरों की छाती के नीचे दबे हुए अधिकार हमारे
>
> \+ \+
>
> मानव मानव सभी एक हैं सब आपस में भाई भाई
> देख रहे हो यहां तुम्हारा कौड़ी भर सम्मान नहीं है ।
>
> \+ \+
>
> अपने देशवासियों की तब गांधी जी ने सभा बुलाई
> मूल दिखायी प्रेम सिखाया हक की सच्चाई समझाई[1]

राष्ट्र का पुजारी देश के अपमान की ज्वालामें दग्ध हो रहा है और अनुभव करने के लिए रात्रि के समय फुटपाथ पर चल ही पड़ते हैं एक दो पग चलते ही संतरी दौड़ कर आता है और गांधी जी को धक्के दे कर पगडंडी से नीचे गिरा देता है --

> बुरी बुरी गालियां सुना कर बड़ी जोर से लात जमाई
> अत्याचार देख गांधी पर धरती त्राहि त्राहि चिल्लाई[2]

इस हृदय विदारक घटना को पढ़ कर आज भी धमनियों में रक्त खौलने लगता है और हमारी जन्मभूमि के प्रति आस्था और निष्ठा की भावना पुन: दृढ़ हो जाती है । गांधी जी के लिये भारत के सपूतों के हृदय में जो

१-जननायक ,पृ० ९९ ,७वां सर्ग - रघुवीरशरण मित्र ,भूमिका लेखक देश रत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद

२- ,, पृ० १००, ,, ,, प्रकाशन-परिषद अखिल भारतीय राष्ट्रीय साहित्य

आदर है, वह उन्हें भगवान की समता पर ही पहुँचा देता है और हमारे राष्ट्र पिता बापू आज भी हमारे अंतस्तल में अमर हैं और राष्ट्रनायक की श्रेणी में उनका सदैव सम्मान रहेगा ।

लोकनायक :-

लोक कल्याण के लिए अपने जीवन के सुख, ऐश्वर्य और विभूति का त्याग करने वाले महापुरुष को लोक नायक की कोटि में रखा जा सकता है । नायक का अपना व्यक्तिगत महत्व समष्टि के हित में समाहित होकर अधिक उज्ज्वल हो उठता है । महर्षि वाल्मीकि और तुलसी के राम को गुप्त जी ने आधुनिक युग के अनुरूप नवीन रूप देने का प्रयत्न किया है किन्तु गुप्त जी के भक्त हृदय ने भगवान राम को देवत्व के उच्च आसन से सर्वथा मनुष्यत्व की भूमि पर उतारना उचित नहीं समझा । राम के अतिरिक्त अन्य पात्रों के चरित्र के श्वेत और श्यामल दोनों पहलुओं पर प्रकाश डाला है और मनोवैज्ञानिकता से अधिक काम लिया है । पात्रों की मनोवृत्तियों और मानसिक संघर्षों का विश्लेषण साकेत में सुन्दर हुआ है ।

साकेत के राम आदर्श पात्र हैं पितृ भक्ति, मातृ प्रेम और भातृप्रेम सभी आदर्श रूप लिये हुए हैं । कर्तव्यपरायण राम त्याग, क्षमा ~~कर~~ और विनम्रता की प्रतिमूर्ति हैं । रामने आदि से अंत तक लोककल्याण को ही प्रमुखता दी और इसी को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया । पिता के वचन को सत्य सिद्ध करने के के लिए राजसिंहासन को त्याग कर वनवास जाने को सहर्ष तत्पर हो गये । उनका जन्म 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' ही हुआ था और असुरों का संहार कर शान्ति स्थापित किया । लोकनायक राम ने सदैव लोक मर्यादा की रक्षा की । पिता की आज्ञा की पूर्ति न होने पर संसार में उनकी अपकीर्ति होती साथ ही निशाचरों का नाश भी न होता इस विचार से वनवासी होकर चौदह वर्ष वन में व्यतीत किया । इसके अतिरिक्त केवल लोक चर्चा के कारण ही सती सीता का परित्याग किया और यह जानते

हुए भी कि सीता निष्कलंक हैं राम ने जनमत को सुना और उसी के अनुसार कार्य किया। यद्यपि आदर्श की स्थापना के लिए ही अन्त तक सीता को अर्द्धांगिनी माना। इस अंश का विवेचन यहां पर नहीं करना है। गुप्त जी ने साकेत में राम को किस प्रकार प्रधान पात्र के रूप में अंकित किया इस पर ही विचार करना है। राम ने आरम्भ में ही कहा है --

> ' भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया
> नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया
> संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया
> इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया[1]

इन शब्दों में राम की अद्भुत शक्ति का परिचय मिलता है। सुख-दुख, हर्ष-शोक के समय राम की मनोदशा समान रहती है- अभिषेक और वनगमन के समय एक जैसी मनोवृत्ति को धारण करते हैं --

> 'राम भाव अभिषेक सुसम जैसा रहा
> वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा[2]

यह विशेष गुण लक्ष्मण में नहीं पाते हैं वह साधारण व्यक्ति की तरह परिस्थिति से प्रभावित हो उठते हैं अपने आराध्य राम को वन जाने की आज्ञा की सूचना प्राप्त होते ही लक्ष्मण विवेक खो देते हैं और जब यह विदित होता है कि मां कैकेयी ने दशरथ से यह वरदान मांग लिया है तब मां के प्रति उनके शब्द उद्धत और क्रोधी स्वभाव का परिचय देते हैं --

---

१- साकेत, पृ० १६७, सर्ग ८

२- साकेत, पृ० ८८ सर्ग ५

खड़ी है मां बनी जो नागिनी यह
अनार्यों की जनी हतभागिनी यह ।[1]

पिता के प्रति भी अपमान सूचक शब्द कहते हैं किन्तु राम इस विषम परिस्थिति में उन्हें समझाते हैं और सहिष्णुता के चरमोत्कर्ष का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं उन्हें किंचित्मात्र आवेश नहीं आता, इसके अतिरिक्त राम ने सदैव जन हित को प्रमुखता दी, भरत जिस समय चित्रकूट में राम को मनाने के लिए जाते हैं राम सर्वमंगल कारी भावना को महत्व देते हैं और भरत को समझा कर पुन: अयोध्या लौट जाने का आदेश देते हैं । लोक नायक राम ने अपने सुख का परित्याग कर विषम परिस्थितियों को सुलझाया और हमारे सन्मुख एक आदर्श प्रस्तुत किया । यही विशेषता उन्हें धीरोदात्त नायक की कोटि में पहुंचाती है और उसी स्थान पर लक्ष्मण को हम धीर नहीं कह सकते । नायक का सबसे प्रमुख गुण धीर होता है । लोकनायक राम का चरित्र ईश्वरत्व की रक्षा करते हुए मानवता का पोषक है ।

व्यक्तित्वनिष्ठ नायक :-

महाभारत के संभव पर्व में १३२ में अध्याय के ३१ वे श्लोक से लेकर ६० श्लोक तक एकलव्य की कथा वर्णित है । संभव है महान् चरित्रों के उदात्त कार्यों के वर्णन के बीच निषादपुत्र एकलव्य के लिये यथेष्ट स्थान न प्राप्त हो सका हो ।

डा० रामकुमार वर्मा ने इस कथा को अपनी बुद्धि कौशल से इस रूप में प्रस्तुत किया है जो मा समाज के लिए एक दृष्टान्त और आदर्श है । मानवतावादी युग में गुण की ही प्रधानता है इसी दृष्टिकोण को लेकर महाकाव्यकार ने एकलव्य के चरित्र को अंकित किया है और उसके उदात्त व्यक्तित्व के समक्ष

१- साकेत - तृतीय सर्ग, पृ० ७६- मैथिलीशरण गुप्त

और आर्य कुल भूषण पार्थ को नतमस्तक होना पड़ता है। परम्परागत सिद्धान्त के आधार पर नायक को उच्चकुलोदभव होना अनिवार्य माना है पर यह विचार आज मान्य नहीं है, वनपर्व में युधिष्ठिर ने कहा है -मनुष्य में जाति की अपेक्षा शील ही प्रधान है --

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते
संकरत्वात् सर्व वर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मति:
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नरा:
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्वदर्शिन: ।।[१]

एकलव्य के चरित्र की प्रमुखता उसके महान् व्यक्तित्व के कारण है इसलिए हम उसे व्यक्तित्वनिष्ठ नायक की कोटि में रखते हैं जो केवल अपने उदात्त कर्मों के कारण ख्याति प्राप्त कर सका। मनुष्य का व्यक्तित्व उसके चरित्र का द्योतक है वर्तमान युग मानव के महच्चरित्र, सहिष्णु स्वभाव, त्यागपूर्ण जीवन को महत्व देता है मानव चरित्र की यही कसौटी है। एकलव्य का आदर्श जीवन गुरुभक्तिका अनुपमेय उदाहरण है, साथ ही उसके हृदय में मां और पिता के प्रति भी आदर है जब वह साधना के पथ पर अग्रसर होता है उस समय मां के प्रति कहता है ---

' धनुर्वेद सीख कर जब पुत्र आएगा
पहले लक्ष्य बेधेगा तुम्हारे ही दु:ख का[२]

१- महाभारत, वन पर्व, १८०

२- एकलव्य, पृ० १४२ षष्ठ सर्ग

यह भावना उसके मातृप्रेम को प्रकट करती है । नायक के विषय में आज गुण को महत्व दिया जाता है जाति को नहीं । महाकाव्यकार ने इसी सिद्धान्त को अपनाकर एकलव्य के महान् व्यक्तित्व को चित्रित किया है । बापू, एकलव्य जैसे महापुरुषों का त्याग पूर्ण जीवन यह सिद्ध करता है कि कर्म ही प्रधान है । एकलव्य के शील गुण के कारण द्रोण अर्जुन उच्च कुलोद्भव पुरुषों को निषाद पुत्र होने से धनुर्विद्या की शिक्षा देना स्वीकार नहीं करते हैं, एकलव्य दुखी अवश्य होता है किन्तु अपने जीवन की निर्धारित दिशा को परिवर्तित नहीं करता जो उसके व्यक्तित्व की विशेषता है और अपने ह शील से गुण की मर्यादा की भी रक्षा करता है --

" जाओ है निषादपुत्र तुम हो अस्वीकृत
आप नहीं कहते हैं राजनीति कहती ।"[१]

इस प्रकार महाभारत के इस चरित्र को डा० रामकुमार वर्मा ने ऐसे कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया है जो युग और समाज के सर्वथा अनुकूल है । महाकवि लोक-विश्रुत नायक को अपनी रचना का प्रधान पात्र बना कर उसे पूर्व संचित सम्मान और आदर का अधिकारी बना देता है और वह सहज में जनता के हृदय में स्थान पा जाता है । यह अवश्य है कि अलौकिक चरित्र को बुद्धि ग्राह्य बनाने के लिए महाकाव्यकार को उसे नवीन रूप देना पड़ता है और इसीलिए वह अपनी मौलिकता का पुट देता है ।

१- एकलव्य - पृ० १६८, दशम सर्ग

अध्याय- ७

हिन्दी के नायक निरूपण में देश-काल गत अन्य प्रभाव

१- पात्रों में नायक का स्थान

२- मनोविज्ञान

३- समाज की व्यवस्था

४- नियतिवाद

५- :क: पुरूषार्थ

:ख: व्यक्तिगत धार्मिक दृढ़ता

६- आदर्श अथवा यथार्थ की भावभूमि

पात्रों में नायक का स्थान :-

पात्रों के चरित्रांकन, घटनाओं के वर्णन तथा नैसर्गिक चित्रों के चित्रण से महाकाव्य के कलेवर का सृजन होता है परन्तु मूल कथाप्रमुख पात्र के चरित्र की गतिविधि से ही विकसित होकर चरमोत्कर्ष तक पहुंचती है कदाचित् इसी कारण आधुनिक महाकाव्यकार चरित्र चित्रण को प्रमुखता देते हैं ।

प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार महत् चरित्र की एक परिभाषा थी, उसी से युक्त महापुरुष नायक के पद पर आसीन होकर महत्व को प्राप्त करता था । नायक को उच्चकुलोद्भव होना चाहिए, अतुल पराक्रमी और शक्ति, शील, सौन्दर्य से विभूषित होना चाहिए किन्तु वर्तमान युग में महान् शब्द की परिधि व्यापक हो गई और उसमें परिवर्तन हो गया । मनुष्यता की भावभूमि पर पहुंचा हुआ मानव वही है जिसके विचारों का प्रसार हो गया हो, जिसका व्यक्तित्व इतना विशाल हो कि उसमें विश्वकल्याण की भावना का समाहार हो जाय । जो महापुरुष हृदय की इस व्यापकता को सद्प्रेरणा देता है उसे सजीव बना देता है, वही नायक है ।

एक महान् चरित्र की सृष्टि के लिये ही कवि महाकाव्य का निर्माण करता है वह प्रमुख चरित्र नायक है इसी कारण महाकाव्य के तत्वों में नायक तत्व को प्रधानता दी जाती है । मन में जब एक महापुरुष का उदार चरित्र मनश्चक्षुओं के सामने आता है तब उनके महार्घ विचारों से उद्दीप्त हो कर कवि उस देवपुरुष की प्रतिष्ठापन्न करता है वही होता है महाकाव्य का प्रधान पुरुष नायक । आधुनिक मत से नायक की महत्ता उसके उन्नत गुणों के कारण होना चाहिए । दिनकर जी ने इसके समर्थन में रश्मिरथी में लिखा है । कर्ण ने अर्जुन को योग्यता में पराजित किया और उन मिथ्या दंभ करने वालों को बता दिया कि कुल गौरव से औद्योगिक गौरव श्रेष्ठ है अर्थात् भाग्य से कर्म का स्थान ऊंचा है । इसी कारण यह कहा जाता है कि मानव अपने भाग्य का विधाता है ।

'दिनकर' जी ने पुरुषार्थ के लिए 'रश्मिरथी' में अत्यन्त सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किया है -जिस समय अर्जुन को कर्ण ने द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारा, कर्ण को हतोत्साहित करने के लिये कहा गया कि वह अज्ञात कुलशील है राजकुमार की समता नहीं कर सकता ।इसका उत्तर कर्ण देता है —

' जाति जाति रटते जिनकी पूंजी केवल पाखंड
मैं क्या जानूं जाति ? जाति है ये मेरे भुजदंड
सूत पुत्र हूं मैं, लेकिन थे पिता पार्थ के कौन ?
हिम्मत हो तो कहो शर्म से रह जाओ मत मौन
अधम जातियों से थर थर कांपते तुम्हारे प्राण
छल से मांग लिया करते हो अंगूठे का दान ।'[1]

तात्पर्य यह कि नायक की महानता उच्चकुल में उत्पन्न होने के कारण नहीं होना चाहिए बल्कि उसके महान् गुणों पर आश्रित होना चाहिए । पुरुषार्थ से मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है और पुरुषार्थी, महत्वाकांक्षी व्यक्ति ही महान् है । यही कारण है कि पात्रों का चरित्रांकन करते समय कवि के सन्मुख महत् शब्द की व्यापक परिधि उपस्थित हो जाती है । यद्यपि कवि अपनी भावनाओं और अनुभूतियों का आधार स्तम्भ लेकर पात्रों के चरित्र का सृजन करता है फिर भी जगत के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन न होने पाये इसका प्रतिबन्ध रहता ही है । सहृदय पाठक भी उसी चरित्र की सराहना करेंगे जो विशेषता रखते हुए भी मानवता की श्रेणी में आकर समाज की भावनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके और युग की समस्याओं का समाधान कर सके । असंभावित शक्ति लेकर अवतीर्ण होने वाले, अलौकिक कर्म करने वाले पात्र हमारे जीवन के अंग नहीं बन सकेंगे और न हमारे अंतस्तल में प्रवेश कर सकेंगे । प्रमुख रूप से हमारे सामने यही सिद्धान्त रहता है कि महापुरुष वही है जो कि प्रत्येक कर्म से मानवता को उभार सकें ।

१- रश्मिरथी, पृ० ४ प्रथम सर्ग - श्री रामधारी सिंह दिनकर
प्रकाशक - श्री अजंता प्रेस लिमिटेड ।नया टोला पटना

महाकाव्य में नायक के अतिरिक्त और पात्र भी रहते हैं उसमें विभिन्न प्रकार के पात्रों की सबलताओं और दुर्बलताओं का चित्रण किया जाता है। मानव जाति में ऊंच-नीच, विद्वान्, मूर्ख, स्वार्थी परोपकारी हर प्रकार के व्यक्ति होते हैं इन पात्रों के जीवन का सर्वांगीण चित्रण कर के ही कलाकार हमारे सन्मुख मानव जीवन का यथार्थ रूप प्रस्तुत कर सकता है । यह अवश्य है कि चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से स्वाभाविकता को लिए हुए होना चाहिए, आदर्श की प्रधानता न होकर यथार्थता का दृष्टिकोण होना चाहिए क्योंकि यह बुद्धिवादी युग है इसमें बुद्धिग्राह्य विचारों का ही सम्मान होता है । नायक का स्थान अलग ही महत्व रखता है । नभ में टिमटिमाते हुए तारों के बीच कलाकार की भांति नायक अपने अन्य पात्रों के साथ काव्यजगत् को प्रकाशित करता है । पात्रों की चरित्रयोजना महाकाव्य का एक प्रमुख विषय है और आधुनिक युग चरित्रांकन को ही महत्वपूर्ण लक्षण मानता है इस मनोवैज्ञानिक युग में चरित्र-चित्रण की प्रधानता स्वत: सिद्ध है, मानवता का मूल्य सर्वोपरि है ।

मानव सत्ता की गहरी परख, वैचित्र्य परीक्षा, सजीव स्वरूप देने की क्षमता ज्वलंत प्रश्न बना देने की सामर्थ्य हुए बिना सजीव चरित्र चित्रण हो नहीं सकता[१]। मानव मात्र के हृदय की गति महाकाव्यकार नायक के कार्यों में सन्निहित करता है और अपने पात्रों के माध्यमसे एक चिरन्तन सत्य की प्रतिष्ठा करता है इसी कारण महाकाव्य अपने समय तक ही सीमित न होकर प्रत्येक युग, राष्ट्र और जाति की निधि बन जाता है और उसकी गणना शाश्वत साहित्य की कोटि में की जाती है ।

महाकाव्यकार नायक निर्माण के द्वारा मानव जीवन का सर्वांगीण चित्रण तथा जातीय भावनाओं का अभिव्यक्तीकरण करता है । सार्वभौम नायक ही

१- कामायनी दर्शन, पृ० १२३ कन्हैयालाल विजयेन्द्र स्नातक

महाकाव्य के नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है, उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। नायक काव्य की आत्मा है, उसमें समस्त कृति को अनुप्राणित करने की अपूर्व क्षमता रहती है। समस्त मानवता को विकसित करने वाला महापुरुष ही नायक के रूप में जनता के समक्ष आता है, अन्य पात्रों में नायक का स्थान सर्वोपरि है। नायक के विषय में अन्यत्र विस्तार से विचार किया गया है।

मनोविज्ञान:-

आधुनिक महाकवि अपने पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की ओर जागरूक रहता है। मानसिक संघर्षों पर विजय प्राप्त करने वाले मनस्वी व्यक्ति को महानता की परिधि में रखा है। आंतरिक संघर्षों का चित्रण ही कवि की कुशलता का द्योतक है। महान् कलाकार की सूक्ष्म अन्तर्भेदिनी दृष्टि जीवन रहस्यों के अनुसंधान में, शाश्वत शक्ति के समष्टि चिन्तन में जग के क्रन्दन, उत्पीड़न में, आशा-निराशा की स्वाभाविक और सहज उद्भूति में उसके अंतस्तल तक प्रवेश कर जाती है। उसका सार्वभौमिक दृष्टिकोण मानव के हृदयगत विचारों को चित्रित करने में प्रयत्नशील रहता है यही उसकी अमर शक्ति की चरमसीमा है। महान् से महान् कृति यदि मनोवैज्ञानिक और मार्मिक स्थलों का वर्णन प्रस्तुत करने में असफल है तो वह अपूर्ण है।

मर्मस्पर्शी स्थलों का स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक वर्णन रचनाकार की कुशलता पर निर्भर है। आज का कवि इस दृष्टिकोण को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देता है। डा० रामकुमार वर्मा के एकलव्य महाकाव्य में कई स्थलों पर हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है, महाकाव्यकार ने अंतरतम के स्पन्दन और कम्पन को काव्य के शब्दों में भर दिया है वह बहुत ही स्वाभाविक है। जिस समय गुरु भक्त एकलव्य दक्षिणांगुष्ठ काट कर आचार्य द्रोण को समर्पित कर देता है और मां ने बेटे को रक्त में सने हुए वसन में देखा और वह मां से कहता है- 'मेरे गुरुदेव आर्य द्रोणाचार्य को प्रणाम करो,' उस समय मां के हृदय में

उठती हुई भीषण ज्वाला और ममता पर यह आघात कैसे सहन किया गया है, उसका मार्मिक चित्रण है, वह द्रोणाचार्य से कहती है-

" मुझ को क्षमा करें, मैं पूछती हूं आप से
शिष्य मात्र ही क्या गुरु दक्षिणा का दानी है
आपके विधान में नियम यदि ऐसा हो
शिष्य-माता से ही दक्षिणा में लिया जाता है
तो विनीत मेरी प्रार्थना है देव ! सुनिये
नेत्र मेरे लीजिए पुनीत निज सेवा में
जिससे न देख सकूं खंडित अंगुष्ठ में
निज प्रिय लाल के सलोने उस हाथ का ।[1]

मां का स्नेहसिक्त हृदय खंड खंड हो गया है वह कैसे अपने लाल को इस रूप में देखे । अच्छा है कि वह नेत्रों को चढ़ा दे गुरु की सेवा में । द्रोणाचार्य को कहना पड़ता है -

" क्षमा करो देवि ! माता की
ममता की सीमा कौन जानेगा जगत में
रुक न सकूंगा मैं, वीर एकलव्य ! स्वस्ति ।[2]

मां के प्यार के समक्ष गुरु द्रोण को नत होना पड़ा । उसी क्षण एकलव्य के धैर्य शील का अत्यन्त हृदयस्पर्शी दृश्य उपस्थित होता है । वह उन्हीं हाथों से प्रणाम करता है -- और सर्भग रक्त मय हाथों को जोड़ कर कहता है-

" गुरुदेव ! शिष्य का प्रणाम है
साथ साथ मैं चलूंगा देव ! पहुंचाने को
जहां तक मेरी यह वन-खंड सीमा है ।[3]

१- एकलव्य, पृ० ३०४, सर्ग १४
२- वही पृ० ३०४ सर्ग १४
३- वही पृ० ३०४ सर्ग १४

कुछ क्षण को हृदय इसमें इतना रम जाता है कि नेत्रों के सम्मुख काव्य का धुरंधर नायक एकलव्य उपस्थित हो जाता है और हम उसी जगत में विचरण करने लगते हैं। यह महाकाव्यकार की कुशलता है। मार्मिक स्थलों का मनोवैज्ञानिक रूप से चित्रण करना आधुनिक काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता है। इस कौशल के द्वारा ही कवि मानव जीवन के अन्तस्तल में छिपी भावनाओं को स्पर्श कर पाता है और उन्हें व्यक्त करने में सफल होता है। अनेक स्थलों पर महाकाव्यकार ने इतना स्वाभाविक चित्रण किया है जो अंतरतम की गहनतम में प्रवेश कर करुणा के तारों को झंकृत कर देता है और हृदय उसी में तद्रूप हो जाता है अर्थात् गुरु भक्ति, शील और मर्यादा का प्रतीक एकलव्य आचार्य द्रोण से अस्वीकृत होकर स्वयं निर्जन वन में उनकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उसके समक्ष धनुर्विद्या की साधना में रत है - अर्जुन के आने पर गुरु आगमन की प्रार्थना करता है और उस पुनीत घड़ी की कल्पना में निमग्न हो जाता है उसके हृदय में श्रद्धा के जो भाव उत्पन्न होते हैं वह पराकाष्ठा पर पहुंच जाते हैं - एकलव्य कहता है :-

एक तुच्छ दास यहाँ दर्शनाभिलाषी है
और निज वन भूमि की पुरानी स्मृतियाँ
जाग उठें, तो वे इस दास के स्थान पर
आवें कृपया तो दास कितना कृतार्थ हो
अहा, वह शुभ दिन कितना महान् हो
जिस दिन गुरुदेव आश्रममें आवेंगे
जिस दिन पदरेणु यहाँ गिर जायेगी
उसका तिलक मेरे मस्तक पर सदा
श्री सौभाग्य सूचक हो सूर्य की किरण सा।[१]

१- एकलव्य, पृ० २६०, सर्ग १३

आचार्य द्रोण द्वारा इस प्रकार अस्वीकृत होने पर भी आशावादी दृढ़ एकलव्य की आंतरिक भावनाओं का यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रशंसनीय है ।

आन्तरिक विचारों का स्वाभाविक रूप में चित्रण करना आज के कलाकारों की विशेषता है और यह कृतियों में स्फूर्ति और जीवन भर देता है प्राय: सभी सफल काव्यों में ऐसे चित्रण का सन्निवेश रहता है । मैथिलीशरण गुप्त ने `साकेत` में कई स्थलों पर बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है । चित्रकूट में भरत और राम का मिलाप काव्य का अद्वितीय प्रसंग है, इसका महत्व अक्षुण्ण है । भरत भूमि पर लोट कर साष्टांग प्रणाम करते हैं -राम का कथन ~~रोक-कर~~

` रो कर रज में लोटोगे भरत आ भाई
यह छाती ठंडी करो सुमुख सुखदाई ।[१]

परन्तु भरत का दु:ख अकथनीय है, हृदय तप्त हो रहा है -कहते हैं :-

हा आर्य, भरत का भाग्य रजोमय ही है ।[२]

ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसंगों को पढ़ कर हृदय द्रवित हो जाता है यह महाकाव्यकार का चातुर्य और कौशल है । यह वर्णन कलाकार की लेखनी के द्वारा सीधा मानस तक पहुंच जाताहै । उसकी कल्पना शक्ति, उसकी अनुभूतियां इतनी विकसित हो जाती हैं, कि सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं को लोकोत्तर और दिव्य बना देता है ।पात्रों के चरित्र के मनोवैज्ञानिक वर्णन के द्वारा ही काव्य के कंकाल में प्राणों का संचार किया जाता है कृति की सफलता का बहुत बड़ा अंश इस पर निर्भर रहता है ।

१- साकेत - संस्करण, संवत् २००५ पृ० १७२

२- वही वही पृ० १७२

समाज की व्यवस्था :-

मानव सामाजिक प्राणी है। सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का जहां वह सृष्टा है वहां वह उनसे प्रभावित भी होता है। साहित्य समाज की अनुभूतियों, भावनाओं और कल्पनाओं का ही रूप है। इसी कारण साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है।[१]

महाकाव्य युग-काव्य है जो युग-युग की चेतना को आन्दोलित करते रहते हैं। किसी देश के महाकाव्य को पढ़ कर उसके द्वारा उस समय की सामाजिक अथवा धार्मिक सभी व्यवस्थाओं का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। महाकवि ने अपने कवित्व शक्ति के द्वारा जब जब ~~बिखरे~~ जातीय संस्कारों को समेटने का प्रयास किया है तभी महाकाव्य का निर्माण हुआ है।

विश्व की महान् जातियां अपने इतिहास की रचना दो विभिन्न रूपों में करती है - एक तो कर्मों द्वारा, दूसरी कला या साहित्य द्वारा। कर्मों द्वारा किये गये जातीय इतिहास का निर्माण अस्थिर होता है और वह उन कर्मों के विलोप के साथ ही विलुप्त हो जाता है परन्तु साहित्य के रूप में सुरक्षित इतिहास का रूप सदा वर्तमान रहता है साहित्य और कला की उन्नति देश और जाति की सभ्यता व उत्कृष्टता को सिद्ध करती है। साहित्य में अन्तर्हित जातीय भावनाएं हमें उस जाति के मानसिक तथा बौद्धिक विकास से परिचित कराती है।[२]

सत्कवि युग द्रष्टा होता है युगानुरूप नये संदेशों की स्थापना करना ही उसका विशेष लक्ष्य रहता है। वह उसी समाज का प्रतिनिधित्व

१- साहित्य विवेचन, पृ० १६

२- वही पृ० १६

करता है जिसमें वह जन्म लेता है । युग की समस्याओं का सुलझाव और आदर्शों की स्थापना समाज के अनुरूप ही करता है । अपने पात्र के द्वारा महाकाव्यकार समाज की व्यवस्था का चित्रण करता है । महान् प्रतिभा को लेकर महाकाव्य का सृजन किया जाता है ।सफल महाकाव्य ~~कन~~ एक विराट् राष्ट्र की संस्कृति को अपने महाकलेवर में समेटे रहता है और युगों तक उसका चिरंतन महत्व बना रहता है ।शाश्वत संस्कृति का सन्निवेश होने के कारण महाकाव्य लोकप्रिय होता है । उसमे लोकप्रिय और प्रतिष्ठित नायक के महत् कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, सामाजिक समस्याओं और आदर्शों का उद्घाटन किया जाता है ।

आदि कवि वाल्मीकि ने आदर्श सामाजिक व्यवस्था का वर्णन किया है । अपने विचार और दृष्टिकोण के अनुरूप समाज के विभिन्न तत्वों की विवेचना किया है तथा मानव के आदर्श जीवन का चित्र खींचा है ।मर्यादा पुरुषोत्तम राम को नायक रूप में चित्रित कर समाज के सम्मुख आदर्श उपस्थित किया है और पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने का प्रयास किया है ।

समाज की समस्याओं को सुलझाने अथवा उनकी आवश्यकताओं को प्रस्तुत करने में कवि कुशल होता है । आधुनिक महाकाव्य तो विशेषरूप से युग के अनुकूल ही उसी सांचे में ढाले जाते हैं । परम्परागत राम और कृष्ण का ईश्वर रूप हमारे आधुनिक महाकाव्यकारों को अक्षरश: उसी रूप में रुचिकर नहीं हुआ और उसमें परिवर्तन करके उसे उस बौद्धिक युग के अनुकूल बनाया । `प्रियप्रवास` के रचयिता `हरिऔध`के कृष्ण केवल गोपी के प्रेम में अनुरक्त रसिकबिहारी कृष्ण नहीं है बल्कि लोकरंजनकारी जन-नायक हैं वह कहते हैं-

" सशक्त होते तक एक लोम के
किया करूंगा हित सर्वभूत का ।[१]

१- प्रियप्रवास - पृ० १३०, छंद २७

जनकल्याणाहित, लोकहित यही मानव धर्म की पराकाष्ठा है -समाज को देखा ऐसे जन हितकारी युग पुरुष की आवश्यकता थी।

'साकेत' में मुखपृष्ठ में गुप्त जी राम के प्रति कहते हैं —

'राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?'

मानवतावादी युग में पुरुषोत्तम राम की आवश्यकता है -कलाकार का उद्देश्य रहता है एक राम का अनुपम चरित्र अनेकों राम का सृजन करे। आज का महाकाव्यकार यही प्रयत्न करता है कि प्रधान पात्र के रूप में ऐसे दीप जलाये जिनसे अनेकों दीप जल सकें। यही कारण है कि यथार्थता को अधिक महत्व देकर कवि ऐसे चरित्रों का निर्माण करते हैं जो हमारे अधिक निकट आ सकें। हमारे जीवन को उज्ज्वल बना सकें।

श्री रघुवीरशरण 'मित्र' ने जननायक में राष्ट्र-पिता बापू के चरित्रांकन द्वारा सामाजिक व्यवस्था का अत्यन्त स्वाभाविक रूप से नियमन किया है। उस समय अछूतोद्धार की भावना प्रबल थी अतः बापू का कथन हृदय को स्पर्श करता है—

"दुनिया में इन्सान एक से, पर वह भंगी यह चमार है
वर्णभेद का सहरा चल रहा, शोषित की वह धार है
वही रक्त है वही मांस है वही रूप है वही देह है
किन्तु भेद कितना भारी है, पानी में बहरहा स्नेह है
वे भी भारत मां के बच्चे, वे भी ईश्वर के बालक हैं
हम उनको दुत्कार रहे हैं, वे सच्चे आज्ञापालक हैं।"[1]

इसके पश्चात् ऐसा तर्क उपस्थित करते हैं जो सर्व मान्य प्रतीत होता है, कहते हैं —

१- जननायक - पृ० ८८५ सर्ग १२

हम उनको अछूत बतलाते
वे हमको पवित्र करते हैं
वे सच्ची सेवा करते हैं
हम उनसे भिड़ते रहते हैं
वे जितनी सेवा करते हैं
नहीं सगा बेटा कर सकता
कौन खाटी में मैला भर कर
अपने कन्धे पर धर सकता ।[1]

इस प्रकार कवि समाज की व्यवस्था और अनिवार्यता को अंकित करता है । नारी जाति में जागरण पैदा करने के लिए बापू ने अनेकों प्रयत्न किये । 'मित्र' जी ने अपने 'जननायक' महाकाव्य में कहलाया है -

हम जिनकी निन्दा करते हैं वे देवियाँ पूज्य सबला हैं
और आज भारत की बहिनें घूंघट काढ़ बनी अबला हैं
वे दात्राणि जो कि दुर्ग पर दीवारें बन खड़ी हुई थीं
इन आखों ने देखा वे ही हाथ बांध कर पड़ी हुई थीं
भारत मां की वीर बेटियाँ । उल्टा आज प्रवाह बहा है
बोफ मत बनो बनो शक्ति तुम, गांधी तुम्हें पुकार रहा है ।[2]

तात्पर्य यह कि महाकाव्यकार अपने पात्रों के द्वारा तथा नायक के द्वारा ऐसा चित्र उपस्थित करने को प्रयत्न शील रहता है जो समाज को व्यवस्थित और नियमित करता है समय की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । घर की चहारदीवारी में बन्दी रह कर भारतीय देवियों ने अपनी शक्ति का ह्रास कर दिया उसे पुन: अर्जित कराने वाले यह महामानव गांधी हैं । जन-जन में अपार शक्ति, अदम्य

१- जननायक, पृ० १८५ पंक्ति १२

२- वही पृ० १६४ पं० ११

उत्साह और असीम स्फूर्ति को भरने वाले बापू की एक-एक वाणी सदैव अमर रहेगी। गान्धी जीका विचार था अत्याचार के सामने झुकना कायरता है, कुरीति का विरोध करना पुरुषार्थ है और उन्होंने निश्चय किया कि इन अत्याचारी गोरों के अन्याय का दृढ़ता से सामना करना है उन पर विजय प्राप्त करना है और उन्हें पददलित करना है - और उनका संदेश गूंज उठा--

> 'गांधी की वाणी से गूंजी
> जोश बढ़ाती हुई जवानी
> जिसकी लाठी भैंस उसी की
> मुर्दों का संसार नहीं है
> जो न लाठियां सहन कर सके
> उनका कुछ अधिकार नहीं है।'[1]

जननायक युग पुरुष बापू का त्याग और पुरुषार्थ विश्व में अमर हो गया। प्राणों की आहुति देकर महात्मा जी ने जन्मभूमि के स्वाभिमान की रक्षा की। इस प्रकार इन महार्घ चरित्रों की स्थापना के द्वारा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। एक सफल महाकाव्यकार की कृति तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत करती है।

१- जननायक - पृ० १५४, सर्ग १०वां

नियतिवाद :-

नियति वस्तुत: विश्व की विधात्मिका शक्ति है, जिसके अनुशासन को अखिल भुवन तथा चर और अचर सभी स्वीकार करते हैं। एक छोटी सी सभा के संचालन के लिए भी जब नियम बनाये जाते हैं तब इस इतने बड़े विश्व के लिये नियमों की कितनी अधिक आवश्यकता है उसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। नियमों के अभाव में सर्वत्र धांधली और अव्यवस्था फैल जायेगी। वेदों में भी इस प्रकार के नियम को `ऋत` के नाम से अभिहित किया गया है। वरुण की ऋत के देवता के रूप में प्रतिष्ठा की गई है।[1]

कर्म फल के विषय में क्या नियम हैं इसका वर्णन वेद में आता है-

`न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति
न यन्मित्रै: समममान एति।
अनूनं निहितं पात्रं न एतत्
पक्तारं पक्व: पुनराविशाति।`

आम का बीज डालने से पृथ्वी में आम का वृक्षाउत्पन्न होता है इस कार्य प्रणाली में कोई त्रुटि नहीं हो सकती। यह कार्य और कारण का नियम विश्व में एक ही प्रकार है। किसी भी वाह्य कारण से उस कर्म-फल पात्र में परिवर्तन या कमी नहीं हुई। जैसा जितना हमने भरा उतना ही उसी रूप में सुरक्षित है। कर्म फल से छुटकारा नहीं मिल सकता - ऐसा विश्व का नियम है। इस वैज्ञानिक युग में तो और अधिक प्रमाणित होता जा रहा है कि प्रत्येक प्राणी विश्व शृंखला की एक कड़ी है वह प्रकृति का सेवक और नियति के हाथों का खिलौना मात्र है। उसे विश्व के नियमों का

१- कामायनी दर्शन - पृ० १२६ -कन्हैयालाल विजयेन्द्र स्नातक

पालन करना है जो अकाट्य है । योगवशिष्ठ में आया है -

> 'यथा स्थितं ब्रह्म तत्वं सत्ता नियतिरुच्यते
> सा विनेतुर्विनेयत्वं सा विनेय विनेयता ।।[1]
>
> \+ \+
>
> आदि सर्गे हि नियतिर्भाव वैचित्र्यमक्षयम्
> अनेनेत्थं सदा भाव्यमिति संपद्यते परम् ।।[2]

सर्वत्र व्यापक ब्रह्म की सत्ता का नाम नियति है । कारण होने पर कार्य होता है कार्य होने पर कारण होता है वह कार्य कारण नियम नियामक रूप से स्थित है । इसी नियम का नाम नियति है जो कारण और कार्य की नियामता है ।

प्रसाद जी ने कामायनी में नियति की कल्पना की है वह योगवशिष्ठ में विश्व की नियामिका शक्ति के वर्णन से कुछ साम्य रखती है । प्रसाद जी ने लिखा है --

> 'कर्म चक्र सा घूम रहा है, यह गोलक बन नियति प्रेरणा
> सबके पीछे लगी हुई है कोई व्याकुल नयी एषणा
> नियति चलाती कर्म चक्र यह तृष्णा जनित ममत्व वासना
> पाणिपादमय पंचभूत की यहां हो रही है उपासना ।[3]
>
> : पावस रजनी में जुगनू गण को दौड़ पकड़ता मैं निराश
> उन ज्योति कणों का कर विनाश ।[4]

१- योगवशिष्ठ प्रकरण १ सर्ग १०, श्लोक १

२- वही ३ सर्ग ६२ श्लोक ८

३-कामायनी - रहस्य : सर्ग - पृ० २६६

४- वही - इड़ा सर्ग, पृ० १५८, प्रथम संस्करण, प्रकाशक, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

योगवशिष्ठ में भी नियति का वर्णन आया है --

" नियतिर्नित्य मुद्वेगवर्जिता परिमार्जिता
एषानृत्यति वै नृत्ये जगज्जालकनाटकम् [1] ।। २३।।

यह नियति नित्य उद्वेग रहित आत्मज्ञान पर्यन्त जगज्जाल रूप नाटक करती रहती है ।[2]

इस सर्ग का नाम ही " नियति नृत्य " रखा गया है ।

प्रसाद जी ने आशा सर्ग में अपने नायक मनु को नियति के शासन में परवश दिखाया है और इस दशा का वर्णन किया है -

उस एकांत नियति शासन में
चले विवश धीरे धीरे
एक शान्त स्पन्दन लहरों का
होता ज्यों सागर तीरे ।।[3]

यद्यपि कवि जब किसी कतिपय कथानक का निर्माण करता है तब उसे मौलिकता के लिये पर्याप्त स्थान रहता है मनोनुकूल चरित्रों का सृजन कर सकता है और उनका विकास उसकी भावनाओं पर निर्भर रहता है परन्तु इस स्वयंभू सृष्टि में भी विश्व के स्वाभाविक नियमों का पालन होना चाहिए-

नियति ने सदैव महापुरूषों के साथ खेल रचा जैसे सत्यवादी हरिश्चन्द्र को डोम के घर पर सेवक बन कर रहना पड़ा, पुत्र के शव को लिये पत्नी से श्मशान का कर मांगना पड़ा । यह नियति नटी की ही विडंबना है । नहीं तो चक्रवर्ती

१- योगवशिष्ठ -प्रकरण ६, सर्ग ३७, श्लोक २३
२- कामायनी दर्शन - पृ० १२९ -कन्हैयालाल विजयेन्द्र स्नातक
३- कामायनी - आशा सर्ग, पृ० ३४ :प्रथम संस्करण :प्रकाशक-भारती भंडार
लीडर प्रेस,इलाहाबाद

सम्राट के पुत्र राम को राजसिंहासन देने की तैयारी होती है और आशा के प्रतिकूल अचानक चौदह वर्षों का वनवास दिया जाता है यही है भाग्य का चक्र । साधारण स्तर का व्यक्ति ऐसी विषम परिस्थिति में धैर्य खो देता है लक्ष्य से हट जाता है और वृत्तियां चंचल हो उठती हैं पर असाधारण चरित्र, महत् गुणों से विभूषित अतिमानव अपने आत्मबल और दृढ़ता के द्वारा अटल रहता है और अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच कर सदैव के लिए अमर हो जाता है । एकाकी राम ने अनेक बाधाओं का सामना किया नियति के विषम आघात को सहन किया -लक्ष्मण के शक्ति लगने पर और मूर्च्छित हो जाने पर भी धैर्य नहीं खोते, एक ओर पत्नी के हरण का शोक और क्षोभ, दूसरी ओर लक्ष्मण की यह करुण दशा, पर राम ने सबका सामना किया ।

किसी भी कार्य की पूर्ति के लिये निरन्तर सतत् प्रयत्न करने पर भी अशुभ परिणाम हो, प्रयास करने पर भी पराजय ही मिले तो मानव यह कहने को बाध्य हो जाता है कि यह था नियति का चक्र । अयोध्या नरेश दशरथ ने प्राणों से प्रिय पुत्र राम को युवराज बनाने के लिये कितना प्रयत्न किया किन्तु विजयश्री प्राप्त होने के स्थान पर महान दुःख मिला और उसको सहन न कर पाये और प्राण त्याग दिया । यह विधि की विडंबना अथवा भाग्य का खेल ही था ।

कारण से कार्य की परिधि उद्भूत होती है । निरन्तर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न करने पर भी आशा के प्रति विपरीत फल होना हमें नियति के अस्तित्व पर विश्वास दिलाता है । इसी आधार पर संसार में नियतिवाद को मान्यता दी गयी है मानव अपनी शक्ति से कार्य करता है और परिणाम भावों के प्रतिकूल कुछ हो जाता है तब उसे नियति का ही खेल कहा जाता है । इसी प्रकार बिना प्रयास ही कोई कार्य हो गया अचानक आशा के विपरीत कार्य हो गया तो उसे भी हम नियतिवाद कहेंगे ।

मन इतना सीमित है कि विश्वनियंता के कार्यकलापों को समझने में असमर्थ है, विश्व के नियमों का पालन व्यक्तिगत दृष्टि से असुविधा होने पर भी होना चाहिए ताकि विश्व के नियम की सुरक्षा हो। संयोगवश कोई घटना होना नियतिवाद का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कामायनी के नायक मनु का इड़ा से संसर्ग होना केवल एक संयोग था। मनु इड़ा के प्रभाव में बुद्धि बल से प्राकृतिक साधनों को एकत्र कर शासन व्यवस्था करते हैं और नियामक के रूप में इड़ा पर भी अधिकार करना चाहते हैं इसके परिणाम में प्रजा विद्रोह कर बैठती है। भीषण संग्राम के पश्चात् मनु की पराजय होती है। कहने का तात्पर्य कि मनु का इड़ा से मिलन और यह महान परिवर्तन नियतिवाद का ही परिणाम है।

एक अंग्रेज लेखक भी नियति की प्रभुता को स्वीकार करता है कि प्रकृति के नियम को परिवर्तित नहीं किया जा सकता ---

> " Individual man can modify the course of Nature on the Earth in many minor ways, but he cannot alter the course of Nature as a whole; that is to say, those cosmic happenings which are determined by a higher power, or by higher powers",

छोटे-मोटे साधारण कार्यों के रूप में प्रकृति के नियम में व्यक्ति परिवर्तन कर सकता है पर उसके नियम को पूर्णरूपेण बदल नहीं सकता। विश्व की घटनाएं जो उच्चतर शक्ति द्वारा नियत कर दी जाती हैं उनमें व्यक्ति परिवर्तन नहीं कर सकता।

१- Kingsland : Rational Mysticism Page 354.

प्रसाद जी ने कामायनी में नियति को कर्मचक्र की संचालिका शक्ति के रूप में चित्रित किया है।[1] कामायनी के प्रधान पुरुष पात्र मनु का चित्रण इसी आधार पर किया गया है। इस प्रकार आधुनिक महाकाव्यों में हम नियति के द्वारा नायक के जीवनमें आने वाले दुःख सुख का अवलोकन करते हैं।

पुरुषार्थ :

प्राचीन आचार्यों ने नायकत्व की प्राप्ति के लिए उच्च कुल सम्भूतत्व को एक अनिवार्य गुण ही मान लिया था। किन्तु कालचक्र के परिवर्तन के साथ ही साथ पूर्व मान्यताओं में भी परिवर्तन हो जाता है[2]।

आज प्रकृति द्वारा निर्मित मानवता ही उच्च और नीच की कसौटी मानी जाने लगी है जाति -पाँति का भेद-भाव विनष्ट होने लगा है जिसमें मानवता के अभ्यंतर गुण अधिक मात्रा में होंगे वही उच्च और जिसमें इन गुणों का अभाव होगा वही नीच कहा जायेगा। काव्य का नायक भी इन गुणों से विभूषित व्यक्ति ही होगा- भले ही वह शूद्र कुल में उत्पन्न हुआ हो। श्री रामगोपाल शर्मा रुद्र ने "कर्ण" काव्य में, श्री आनन्दकुमार ने अंगराज में, श्री मोहनलाल अवस्थी `मोहन` ने `महारथी` में, दिनकर ने `रश्मिरथी` में बहुत ही कुशलता से महारथी कर्ण को नायक के रूप में वर्णन किया है।
कर्ण की यह उक्ति वास्तव में आज मान्य है -
"दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्"3.
अर्थात् पुरुषार्थ पर ही भरोसा रखना चाहिए। मानव अपने पुरुषार्थ

१- कामायनी दर्शन - पृ० १३९-कन्हैयालाल विजयेन्द्र स्नातक
२- दिनकर के काव्य, पृ० १७०-तालभर त्रिपाठी प्रवासी, आनंद पुस्तक भवन, पहड़िया

से देवता बन सकता है। यह सत्य है।

कर्ण ने अपने अतुल पुरुषार्थ और अटूट लगन से ही युद्ध विद्या में अद्वितीय स्थान प्राप्त किया और भार्गव से दिव्य अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। कर्ण को अपने आत्म पौरुष पर दृढ़ विश्वास था। उस विश्वास की उज्ज्वल झांकी का वर्णन 'दिनकर' जी ने 'रश्मिरथी' में किया है। पाण्डव श्रेष्ठ अर्जुन ~~छल~~ धोखे से भीष्म, गुरु द्रोण का वध करता है और कर्ण भुजगराज अश्वसेन को धनुष पर ले आने का स्पष्ट विरोध करता है, स्पष्ट कह देता है अर्जुन पर विजय अपने बाहुबल से प्राप्त करूंगा, मैं विश्वासघात से अन्य के द्वारा शत्रु का वध नहीं करना चाहता। कर्ण की वाणी में पौरुष का स्रोत उमड़ा पड़ रहा है -

राधेय जरा हंस कर बोला
'रे कुटिल! बात क्या कहता है ?
जय का समस्त साधन नर का
अपनी बाहों में रहता है
उस पर भी सांपों से मिल कर
मैं मनुज मनुज से युद्ध करूं ?
जीवन भर जो निष्ठा पा ली
उससे आचरण विरुद्ध करूं ?
तेरी सहायता से जय तो मैं
अनायास पा जाऊंगा
आने वाली मानवता को लेकिन
क्या मुंह दिखलाऊंगा।'[1]

विजय की प्राप्ति मानव के अपने बाहुबल के द्वारा होती है उसी में सब साधन निहित हैं। यह सत्य है पुरुषार्थ सफलता का मूल है।

१- रश्मिरथी- पृ० १६३, सप्तम सर्ग -रामधारी सिंह दिनकर
प्रकाशक-श्री अजंताप्रेस लिमिटेड, नया टोला, पटना

व्यक्तिगत चारित्रिक दृढ़ता:-

पुरुषार्थ का प्रमुख अंश है व्यक्तिगत चारित्रिक दृढ़ता। नायक अपनी व्यक्तिगत चारित्रिक दृढ़ता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये जीवन में अनेक प्रकार के उदात्त कार्य करता है, और कठिन से कठिन त्याग करता है पर वह अपने उद्देश्य से विमुख नहीं होता। यही चरित्र-बल और अटल रहने की प्रवृत्ति ही उसे अनेक विघ्न-बाधाओं के बीच भी गन्तव्य स्थान तक पहुँचाती है। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी वह अपने लक्ष्य की पूर्ति करता है। ~~क्योंकि~~ व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषता के कारण वह अनेक पात्रों के मध्य तारों में चन्द्र के सदृश जगमगाता रहता है और सब की श्रद्धा का पात्र बन कर नायक के पद को सुशोभित करता है। चरित्र-बल के ही आधार पर वह अपने मार्ग पर अटल रहने में सफल होता है, चारित्रिक दृढ़ता के ही कारण मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने इतनी बाधाओं के आने पर भी अपने जीवन की दिशा नहीं बदली। राजसिंहासन पर बैठने वाले भावी महाराज को अचानक चौदह वर्षों का वनवास दिया जाता है यह साधारण संघर्ष नहीं था। इसके पश्चात् पिता का प्राणान्त हो जाता है पर वह अटल रहे, दु:ख में बिजली गिरी, प्रिया का हरण हो गया पर लोकनायक राम है विचलित न हुए। भरत के चित्रकूट पहुँचने पर अत्यन्त ही विषम परिस्थिति आ जाती है पर राम ने सरलता से उसका निर्वाह किया और अयोध्या वापस न लौटे -इसका वर्णन साकेत संत में 'मिश्र'जी ने बहुत ही मार्मिक किया है।

डा० रामकुमार वर्मा के 'एकलव्य' महाकाव्य के नायक एकलव्य ने द्रोणाचार्य का गुरु रूप में दर्शन किया और यही भाव अटल हो गया उसमें परिवर्तन नहीं हुवा, यह एकलव्य की दृढ़ता की पराकाष्ठा है। अस्वीकृत होने पर वह गुरु द्रोण की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसके समक्ष साधना करता है और उसी में गुरु का दर्शन करता है अन्त में अद्वितीय धनुर्धारी होता है। जिस समय मिट्टी की मूर्ति बनाने का विचार निश्चय कर लेता है एकलव्य के हृदय में अत्यन्त

ही उच्च भावना उत्पन्न होती है । वह कहता है-

> मेरी भूमि ! तुम तो सदा ही विश्वम्भरा हो
> मेरी गुरुभूमि जो कि निर्मित हो तुमसे
> ऐसे शक्तिशाली कण प्राप्त करे तुमसे
> मेरी साधना का एक बीज ही सहस्र हो ।[१]

यही व्यक्तिगत चारित्रिक दृढ़ता है, आत्मबल है, जो मानव को महामानव बना देता है । नायक अपने जीवन पथ पर जितने भी पग रखता है वह दृढ़ता और सन्नद्धता से युक्त रहते हैं घोर संकट में भी महापुरुष विचलित होकर अपना मार्ग नहीं परिवर्तित करता बल्कि अपने संकल्प की पूर्ति करता है । व्यक्तिगत विशेषता नायक के चरित्र का गौरव है राम ने अश्वमेघ यज्ञ के लिए जनकनन्दिनी जानकी की स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठापित की किन्तु पुनर्विवाह नहीं किया । भरत ने चौदह वर्ष नन्दिग्राम में राम की चरणपादुका को रख कर पूजा की, एक योगी की भांति जीवन व्यतीत किया , सेवक की भांति राज्य का संचालन किया परन्तु राज्यसिंहासन नहीं ग्रहण किया ,यह उनकी चारित्रिक ह दृढ़ता है ।

साधारण मनुष्य इस प्रकार की विषम परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने उद्देश्य से विमुख हो जाता है और असाधारण व्यक्ति ,महान् व्यक्ति दुख पर दुख ,आघात पर आघात सहन करेगा पर आदर्शों से विमुख नहीं होगा। नायक की यही अटल भावना उसे महानता के शिखर तक पहुंचाने में सहायक होती है । नायक का पौरुष दृढ़ता के क्रोड़ में विकसित होता है उसी के माध्यम से वह अपने चरित्र का विकास करने में सफल होता है ।

१- एकलव्य - पृ० १८१, नवम सर्ग

'मित्र' जी के जननायक महाकाव्य में अनेकों स्थान पर बापू की व्यक्तिगत चारित्रिक दृढ़ता का मर्मस्पर्शी दृष्टान्त दिया गया है। देश प्रेमी भगतसिंह की फांसी का समाचार सुनकर राष्ट्र के पुजारी गांधी ने कहा-

' शीतल शांत सुधारस गांधी
बोले सत्य नहीं डर सकता
गांधी मरे भले ही जाये
गांधीवाद नहीं मर सकता[1]।'

इन शब्दों में कितना अटल निश्चय, कितनी दृढ़ भावना है भले ही प्राणों का उत्सर्ग करना पड़े पर विचारों, आदर्शों में परिवर्तन नहीं हो सकता। संकल्प को विनष्ट करने की शक्ति किसी में नहीं है, निश्चय स्वयं शक्ति है जिसके माध्यम से मानव अपने लक्ष्य की पूर्ति करता है।

आदर्श अथवा यथार्थ की भावभूमि :-

महाकवि समाज के मूक भावों को वाणी प्रदान करता है, उनके अस्थिर भावों को शाश्वत बना देता है, अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की अनुभूतियों को अपनी कृतियों में अभिव्यक्त करता है। वही सफल कृति है जो युग को प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता रखे, समाज की प्रगति में सहयोग दे, तत्कालीन समस्याओं को सुलझा सके। इस प्रकार महाकाव्यकार केवल कलाकार ही नहीं बल्कि समाज का सुधारक और समुन्नायक भी होता है।

१- जननायक - पृ० ३९२ - सर्ग १८ वां

महाकाव्य का सम्बन्ध नायक के महान् चरित्रों से तथा उसके महान् कार्यों से होता है कवि इसको आदर्श रूप देने का प्रयास करता है । जनता के हृदय में श्रद्धा और सम्मान पाने के लिए कलाकार लोकविश्रुत, इतिहास प्रसिद्ध नायक को ही अपनी रचना में स्थान देता है । प्राचीन भारतीय महाकाव्यों में चरित्र चित्रण में आदर्श की प्रधानता रहती थी, किन्तु आधुनिक महाकाव्यों में यथार्थ की ओर कवियों का ध्यान अधिक दिखाई देता है / क्योंकि आज के बौद्धिक युग में हम उन्हीं चरित्रों को उन्हीं घटनाओं को महत्व देते हैं जो हमारे जीवन के अति निकट आकर हमारी उच्छ्वासों को सुनसके, हम उन्हें अपने जीवन का एक अंग बना सकें । अलौकिक चमत्कार पूर्ण कार्यों के लिए आज हृदय में स्थान नहीं वह बुद्धिग्राह्य नहीं है । यही कारण है कि परम्परागत कृष्ण राम के अलौकिक ईश्वरीय चरित्र को भी युग पुरुष, लोक नायक, विश्वकल्याण कारी महापुरुष के रूप में चित्रित किया है । प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में मर्यादा पुरुषोत्तम राम से कहलाया है -

" संदेश नहीं मैं यहां स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।[1]

प्राचीन युग की भांति आधुनिक युग में आदर्श स्थापन महत्वपूर्ण तत्व नहीं है बल्कि आज मानवता का मूल्य है । मानव सत्ता की गहरी परख की अनिवार्यता है । इसी दृष्टिकोण को सन्मुख रखते हुए कृष्ण के परम्परागत चरित्र का वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुसार पुनर्निर्माण किया गया है जो यथार्थ की भावभूमि पर ही चित्रित किया है । वर्तमान गांधी युग में 'कृष्णायन', 'साकेत संत, 'जगदालोक' आदि महाकाव्यों में नायक को समाज सुधारक और लोक हितकारी नायक के रूप में प्रस्तुत किया है । इनके द्वारा सामाजिक कुरीतियों के निवारण की भावना व्यक्त की गयी है ।

१- साकेत - पृ० २३५ सर्ग अष्टम

आज यथार्थता के दृष्टिकोण का महत्व होने के कारण ही महाकाव्यम् कार ने इस मानवतावादी युग में उपेक्षित चरित्रों को गौरवान्वित करने का प्रयास किया है। इसी ध्येय को लेकर श्री हरदयालु सिंह ने 'दैत्यवंश' 'रावण' श्री आनन्दकुमार ने 'अंगराज' और श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'रश्मिरथी' की रचना की है। इस प्रकार मानववादी युग में महापुरुष के संबंध में बनी हुई परम्परागत धारणाओं में परिवर्तन हो गया। महानता की परिधि व्यापक हो गयी और आदर्शवाद की भावना का लोप होने लगा।

आधुनिक महाकाव्यों का नायक अतिमानव या अलौकिक चरित्र न होकर अपनी वैयक्तिक सबलताओं और दुर्बलताओं से मुक्त किसी महान् लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाला मानव चरित्र ही होता है।[1]

आज आदर्शवादिता की अपेक्षा यथार्थ को अधिक महत्व दिया जा रहा है। काव्यों की दिशा में परिवर्तन हो रहा है वह विचार प्रधान हो गये बौद्धिकता आने लगी है। वाह्य संघर्ष की अपेक्षा आन्तरिक संघर्ष को महत्व दिया जाने लगा। दलितों, उपेक्षितों श्रमिकों और संघर्षों में भाग लेने वालों को नायक के पद पर आरूढ़ कर महाकाव्यों की रचना होने लगी। पात्रों के जीवन की सफलता, असफलता तथा उसकी दुर्बलताओं का स्वाभाविक चित्रण मानव जीवन की सर्वांगिणि अभिव्यक्ति आज के महाकाव्य का मुख्य ध्येय है और इसी हेतु रावण, कर्ण, एकलव्य आदि को नायक रूप में चित्रित किया गया है।

पात्रों के कार्य-व्यापारों से अधिक उनकी अन्तर्वृत्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर ध्यान दिया जाता है। अलौकिक तत्वों और आदर्श को महत्व नहीं दिया जाता। अलौकिकता और चमत्कार के त्याग के कारण ही आज के नायक हमारे वर्तमान जीवन के अति निकट आ रहे हैं। युग-पुरुष

१- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- पृ० १२७ :शोध प्रबन्ध: -डा०गोविन्दराम

'बापू' का चरित्र वर्णन जो आदर्श मिश्रित यथार्थ की भावभूमिपर आधारित है हमारे अन्तस्तल में जागरण के भाव उत्पन्न कर देता है और देश-प्रेम की लहर तरंगित होने लगती है।

'साकेत' में कलाकार गुप्त जी का आदर्शवादी हृदय वर्तमान युग की विचारधारा से प्रभावित होता दृष्टिगोचर होता है। नायक राम के चरित्रांकन में यथार्थवादी विचारों को ही अपनाया क्यों कि आज का बौद्धिक युग राम को ईश्वर के अवतार रूप में नहीं महापुरुष रूप में निस्संकोच स्वीकार करता है। गुप्त जी ने राम के चरित्र में मनुष्यता को प्रमुखता देने का प्रयत्न किया है। आदर्श चरित्र स्थापित करते हुए भी नवीन युग की भावनाओं को प्रश्रय दिया है।

आज पात्रों के केवल आदर्शमय चरित्रों का वर्णन नहीं किया जाता बल्कि उनके यथार्थ कार्यों और उदात्त विचारों का अंकन किया जाता है जो युग की भावनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके।

महान कार्य के भी विविध रूप हैं -त्याग, उत्सर्ग, आत्म-बलिदान भी महत्वपूर्ण कार्य हैं। जन कल्याण के सभी कार्य महान् हैं उसके साधक महापुरुष है उनका चरित्र ही आदर्श चरित्र है। यथार्थता को महत्व देने के कारण राजतन्त्र या समाजतन्त्र में व्यवस्था तथा सामंजस्य स्थापित करने वाला व्यक्ति भी महान् है। अपने मानसिक संघर्षों में कटिबद्ध रहने वाला, उस अन्तर्द्वन्द्व में दृढ़ रहने वाला मानव भी महान है - क्यों कि संघर्ष की भूमिकाओं में भी परिवर्तन हो गया है।

तात्पर्य यह कि आज के बुद्धिवादी युग में यथार्थ की भावभूमिपर आधारित नायक ही जन जन के मानस-पट पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। यह अवश्य है कि जो महाकाव्यकार आदर्श के ढांचे पर यथार्थता का आवरण चढ़ा कर नायक का नवीन रूप से सृजन करता है वही अपने चरित्र

चित्रण में सफलता प्राप्त करता है। प्राचीनता की नवीनता का आदर्श और यथार्थ का सामंजस्य स्थापित करते हुए जो अपनी कृति के प्रधान पुरुष पात्र नायक का निर्माण करता है वही हमारे अधिक निकट पहुँच कर मार्मिक स्थलों का स्पर्श करपाता है। क्यों कि आज का युग वैज्ञानिक युग है, बौद्धिक युग है प्रत्येक वस्तु तर्क और सिद्धान्त की तुला पर तौली जाती है तब स्वीकार होती है।

अध्याय-८

महाकाव्यों की परम्परा में नायक निरूपण की उपलब्धियाँ

१- नायक की परिभाषा तथा उसके गुण

२- मानवता के उदात्त दृष्टिकोण की प्रतिष्ठापना के लिए नायक का सृजन

३- सत्य, धर्म, न्याय का थापक नायक

४- जीवन के संघर्ष में सन्नद्धता और कटिबद्धता का प्रेरक नायक

५- नायक के द्वारा समाज का नियमन और संयोजन

६- समाज में सत्यं शिवं सुन्दरम् का प्रवर्तन

७- त्याग से संसार का उपभोग

महाकाव्यों की परम्परा में नायक निरूपण की उपलब्धियां

नायक की परिभाषा तथा गुण:-

महाकाव्य की सफलता का मापदंड चरित्र चित्रण का सौष्ठव माना जाता है। उसमें पात्र ही जीवित प्राणवान् शक्ति है उन्हीं के कार्यों का वर्णन करके कुशल कवि अपनी कृति को सजीव बनाता है। प्रधान पुरुष पात्र नायक के चरित्र की गतिविधि से महाकाव्य की मूल कथा विकसित होकर चरमोत्कर्ष तक पहुँचती है।

प्राचीन आचार्यों के मतानुसार मानवोत्तर व्यक्ति ही नायक हो सकता है। नायक को उच्च और उदार गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। विनयशील, सुन्दर, त्यागी, कार्यकुशल, मृदुभाषी लोकप्रिय, शुद्ध, भाषणपटु, उच्चकुलोद्भव, स्थिरचित्त, युवा, बुद्धिमान, साहसी, तीव्रस्मृति, प्रज्ञावान, कलाकार स्वाभिमानी, वीर, तेजवान और शास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए। धीरोदात्त होना तो महाकाव्य के नायक के लिये अनिवार्य गुण है।[१] नायक को युद्ध संग्राम, आखेट आदि में भी अपने अतुल पराक्रम का परिचय देना चाहिए।

आज, युग बौद्धिक विकास का है। उन्हीं गुणों का हम सम्मान करेंगे जो जीवन में चरितार्थ हो सकें। जैसा कि महाभारत के आख्यानों और उपाख्यानों में मानव जीवन अत्यन्त यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर सामने आया है ऐसा यथार्थवादी दृष्टिकोण जिसमें जीवन की स्वाभाविक दुर्बलताएं प्रबल झंझानिल से उखड़े हुए पेड़ों की तरह भूलुंठित हो रही हैं।[२]

१- दशरूपक - :२। १२:

२- एकलव्य -आमुख -डा० रामकुमार वर्मा

इस दृष्टि से आदर्शवाद की अपेक्षा यह यथार्थ और स्वाभाविक दुर्बलताएं हमारे जीवन के अधिक निकट हैं। नायक को विनय, शील,, मृदुभाषी, त्यागी होना चाहिए, यह गुण उसकी महानता के द्योतक हैं पर उसको महान गुणों से युक्त होने के लिए किसी उच्चवंश का ही होना चाहिए -आज यह मान्य नहीं है ।

डा० रामकुमार वर्मा के 'एकलव्य' महाकाव्य का नायक शूद्र पुत्र एकलव्य है । निषादपुत्र एकलव्य ने जिस त्याग, सहिष्णुता और शील का परिचय दिया है उसके समक्ष आर्यकुलभूषण अर्जुन को लज्जित होना पड़ा, गुरु द्रोणाचार्य को पराजित होना पड़ा । गुरु की प्रतिज्ञापूर्ति के निमित्त नायक एकलव्य ने एक पल में जीवन भर की साधना को गुरु के चरणों में अर्पित कर दिया और अपने दक्षिणांगुष्ठ को काट कर सन्मुख रख दिया ।उसी क्षण आचार्य द्रोण कह उठते हैं-'शिष्य तुम धन्य हो' और हृदय से लगा लेते हैं और अन्तस्तल से जो वाणी प्रस्फुटित होती है —

' तुम विप्र हो है शिष्य ! गुरु द्रोण शूद्र ।
हां तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है ।
सारा वर्ण भेद धुल गया रक्त धार से
वीर एकलव्य ! जिस साधना के तरु को
सूर्य चंद्र किरणों से सींचा दिन रात है
उसको उखाड़ दिया एक क्षण मात्र में
गुरु भक्ति ऐसी जो भविष्य के भाल पर
तिलक बनेगी रवि रश्मि को समेट के
पार्थ ! रक्त देखो इस वीर एकलव्य का
जो कि राज वंशों से भी धोया नहीं जायेगा ।[1]

१- एकलव्य - पृ० २६-२७ सर्ग चतुर्दश दक्षिणा

यह त्याग एकलव्य के मानव नहीं अतिमानव गुणों का प्रतीक है उसमें नायक बनने की क्षमता है, योग्यता है, भले ही वह सुर अथवा सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय नहीं है । ऐसे मार्मिक प्रसंग के बीच भी किसी को निषाद वंश का ध्यान आ सकता है । इस महत् क्रियाकलाप के समक्ष उच्चवंश में उत्पन्न होने का विचार संकीर्णता प्रकट करता है । एकलव्य का शील गुण उसे प्रत्येक विषम परिस्थितियों में विजयी बनाता है, उसने जीवन सैसंघर्ष करना सीखा है, वह शिक्षित और सु-संस्कृत है पर निषाद-पुत्र है । बार-बार 'निषाद' शब्द से सम्बोधित होकर भी वह अपनी मर्यादा में स्थित है । उसने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने जीवन की दिशा नहीं बदली और धनुर्वेद में अद्वितीय लाघव प्राप्त किया।[1] एकलव्य की महानता गुरु द्रोण के ही शब्दों में —

> ' अहंकार शून्य हुए तुम जिस भांति हो
> वैसा होगा कौन, योग्य बन कर इतना
> गुरु भक्ति तुमने की जिस भांति शिष्य हो
> रेखा दृढ़ खींची सदा को क्षितिज रेखा-सी
> है परोक्ष भक्ति तुम्हारी, प्रत्यक्ष भक्ति से
> कितनी महान् ! यह युग बतलाएगा
> ऐसा शिष्य पा के गुरु कितना कृतार्थ है
> उसकी कृतार्थता ही होगी गुरु-दक्षिणा ।'

इस प्रकार नायक में उन गुणों का ही होना अनिवार्य है जो जीवन में चरितार्थ हो सकें । अपने आचरण से वह हमारे अति निकट आकर हमको महान् बनने की प्रेरणा दे सके । सत्कवि इसी प्रकार के चरित्र की अवतारणा करके हमको संसार में, समाज में रहने का सत्मार्ग बताता है । कलाकार नायक

१- एकलव्य - पृ० २९२ सर्ग चतुर्दश दक्षिणा।

के रूप में महत् चरित्र का सृजन करता है तथा उसके द्वारा मानवता के उदात्त दृष्टिकोण का दृष्टान्त उपस्थित करता है । जीवन में सत्य, धर्म की स्थापना करता है तथा जीवन के संघर्षों में कटिबद्ध रह कर सफल होने की आत्मशक्ति प्रदान करता है ।आज का महाकवि अपने नायक को उन्हीं महत् गुणों से युक्त देखना चाहता है जो मानवमात्र के प्राण से प्राण मिला कर एक ऐसी ज्योति प्रकट कर दे जिसके आलोक में मानवता प्रकाशित हो उठे । वह अपने पात्र में ऐसे अति मानवीय गुण नहीं रखता, जिसे आज के बौद्धिक युग में ग्रहण करने में संकोच हो, साथ ही हम अपने पथ प्रदर्शक को अपने से इतना दूर पायें जहां तक हमारी दृष्टि न पहुंच सके । यह सत्य है कि ऐसे तेजपुंज से क्या लाभ जिसमें हमारी आंखें चकाचौंध से बंद हो जायें, हमको तो ऐसा स्वाभाविक, मधुर, और प्रिय प्रकाश चाहिए जिसके आलोक में हम अपने आप को देख सकें अपनी शक्ति को प्राप्त कर सकें और तब अपने उदात्त दृष्टिकोण से मानव में जागृति पैदा कर सके,।

आज के मानवतावादी युग को ऐसे नायक, ऐसे पात्र की ही आवश्यकता है जो अपने महत् विचारों द्वारा ऐसी प्रेरणा दे जिससे युगों तक महापुरुषों का निर्माण किया जासके ।इस आधुनिक युग में कलाकार प्राचीन इतिवृत्तों तथा आधुनिक इतिवृत्तों का आधार लेकर ऐसे प्रधान पात्र की रचना करते हैं, ऐसे नायक का निरूपण करते हैं जो मानव मात्र को मानवता का उदात्त दृष्टिकोण बताते हैं और उसे अति मानवीय बनने के लिए आत्मबल प्रदान करते हैं और केवल आदर्श नहीं प्रस्तुत करते बल्कि जीवन के कंटकाकीर्ण पथ पर विजय प्राप्त करने के लिये हिमाचल सी दृढ़ता, सागर-सी गंभीरता प्रदान करते हैं ।

हम अपने अंतराल में उस महापुरुष के द्वारा प्राप्त उदात्त विचारों को एक दीपक की भांति सदैव प्रकाशित रखते हैं जो विश्व के झंझावातों में भी बुझने नहीं पाता और एक दिन उसी आलोक से विश्व आलोकित होता है ।आज का महाकवि युग का प्रतिनिधि कवि है वह अपने नायक निर्माण के

द्वारा अनेकों महापुरूष के सृजन की सद्प्रेरणा देता है, शक्ति देता है, केवल आदर्श की झाँकी नहीं प्रस्तुत करता । महाकवि के इसी दृष्टिकोण के द्वारा ही हम आज के नायक को प्रतिपल अपने समीप पाते हैं।

मानवता के उदात्त दृष्टिकोण की प्रतिष्ठापना के लिए नायक का सृजन:—

किसी भी काव्य कृति के सौष्ठव को हम इस कसौटी पर नहीं परखते कि उसने हमारी भावनाओं को कहां तक उद्बुद्ध किया है प्रत्युत उसकी आत्मा में झांक कर जीवन के सारभूत सत्य को हृदगत करके ही हम उसके महत्व को समझ पाते हैं । कलाकार का दृष्टिकोण अलग ही महत्व रखता है । विश्व की विराट् रंगस्थली में जब पार्थिव वस्तुओं का नित्य विनाश और सृजन होता है तब कवि को सत्य की प्रकाशधारा दिखलाई पड़ती है । कवि की कला अमर है मानवता के मनोवेगों को लहराने वाली यह विलक्षण शक्ति भी अमर है ।

महाकाव्य की परिधि अत्यन्त विस्तृत है । उसकी कथा किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, वरन् व्यक्तित्व की होती है । मानवता का इतिहास मानव जीवन की व्याख्या और मानवीय मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह लेकर महाकाव्य के नायक का सृजन होता है, वह अपने सृष्टिकर्ता की लोकोत्तर शक्तिमयी भावनाओं का दर्शन कराता है तथा जीवन की घनीभूत विशदतम, निगूढ़ अनुभूतियों को अपने महत् चरित्र में समाहित करके मानवीय आदर्शों को उद्भासित करता है ।

नायक की प्रतिष्ठापना के द्वारा जीवन समष्टि की अभूतपूर्व, झांकी, पार्थिव कर्तव्यों एवं चेष्टाओं का आख्यान, सत्यसौन्दर्य एवं स्वातंत्र्य का अनूठा सम्मिश्रण और बाह्य एवं अन्तर्जगत को परिप्लावित करने वाली मंगलमयी निर्मल मंदाकिनी निर्झरित होती है जिसमें अद्भुत श्री, अनुपम शांति और सम्पूर्णता प्राप्त होती है।[1]

१- साहित्य की : शचीरानी गुर्टू - पृ० ६

महाकाव्य का नायक किसी देश-विशेष समय विशेष का होकर भी सर्वदेशीय, सर्वकालीन होता है क्योंकि उसमें जीवन तत्वों का संघटन इस रूप में होता है कि वह मानवता का प्रतीक बन जाता है। महान् से महान् व्यक्तियों में भी कोई न कोई त्रुटि आ जाती है -उन चरित्रों को सजीव और स्वाभाविक बनाने के लिए आज के हमारे प्रतिनिधि कवि उनकी दुर्बलताओं का भी चित्रण करते हैं, उनको सहज मानवीय गुणों से विभूषित कर हमारे अत्यन्त निकट पहुंचा देते हैं और तब वे हमारी भावना का विषय बन कर हमारे जीवन का अंग बन कर एक मार्ग प्रस्तुत करते हैं। महाकाव्यकार नायक की सामान्य जीवन दशाओं को सम्मुख रख कर हमारे हृदय मन्दिर में आदर्श मानव की प्रतिमा स्थापित कर देता है और हम जीवन की विषम परिस्थितियों में उलझे कांटों से पुष्प चुन कर उसकी आराधना और पूजा करते हैं। महाकाव्यकार नायक के द्वारा हमको पार्थिव जगत् की पराकाष्ठा के साथ साथ अलौकिक जगत् का भी दर्शन कराता है, जिसके पावन प्रकाश से हमारा हृदय आलोकित हो उठता है।

नायक की रचना करके महाकवियों ने सदियों का इतिहास अपने देश की संस्कृति और सभ्यता, महापुरुषों की साधना और संकल्पनों को साकार करदिया, मानव जीवन के विभिन्न आदर्शों, भावनाओं, अभावों तथा चिरन्तन मनोभावों का उद्भव सदा विशिष्ट युग में ही हुआ और नायक ने युग पुरुष के रूप में सन्मुख आकर हमको कर्तव्याकर्तव्य, धर्माधर्म की सूक्ष्म विवेचना की शक्ति प्रदान की। इसी कारण हम किसी भी युग की शक्तियों की परख उस समय के युग मानव के द्वारा कर लेते हैं।

सत्कवि युगद्रष्टा होता है पर युग की सभी समस्याओं का चित्रण किसी भी महाकाव्य में सम्भव नहीं होता उसमें भी कथानक वर्तमान युग से लिया जाता है तो उसमें युग की अभिव्यक्ति के लिये पर्याप्त अवकाश रहता है। ऐतिहासिक वृत्त और पात्र लेने पर युग चित्रण की बहुत अधिक स्वतंत्रता नहीं

रहती, यह तो कवि का चातुर्य और कौशल है जो युग की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए प्राचीन कथा के नायक को नवीन बाना पहिना कर हमारे सन्मुख प्रस्तुत करता है । आधुनिक युग के महाकाव्य युगीन समस्याओं से अछूते नहीं हैं भले ही उनके कथानक प्राचीन तथा ऐतिहासिक हों । कवि अपनी लेखनी से उन घटनाओं में ऐसा रंग भर देता है जो युग के अनुकूल हो जाती है और बुद्धिग्राह्य बन जाती है ।

आधुनिक युग के खड़ी बोली के महाकाव्य के प्रथम महाकवि श्री `हरिऔध` जी ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय लोग जाति और समाज के उत्थान की ओर अग्रसर हो रहे थे । जाति की अवनति पर अश्रु बहाना, उद्बोधकों द्वारा उसके जागरण का प्रयत्न करना यही विषय था, देश भक्ति की भावना का संकेत था । समाज को लोकसेवक महामानव की झांकी के प्रदर्शन की आवश्यकता थी । `हरिऔध` जी ने युगों से उपासित कृष्ण को जाति और समाज के परम शुभचिंतक के रूप में प्रस्तुत किया । कृष्ण को ब्रह्म नहीं, महामानव के रूप में चित्रित किया । प्रियप्रवास के कृष्ण जाति हितकारी समाज सेवी ही नहीं, अपितु विश्वहितैषी के प्रतीक बन कर सन्मुख आये । विश्वकल्याणकारी कृष्ण कहते हैं -

> `विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का
> सहाय होना असहाय जीव का
> उबारना संकट से स्वजाति का
> मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है ।`[१]

नायक कृष्ण की ओजपूर्ण वाणी से जागरण का संदेश मिलता है -

१- प्रियप्रवास - पृ० १५०, छंद ८५, सर्ग ११

बढ़ो करो वीर स्वजाति का भला
अपार दोनों विधि लाभ है हमें
किया स्वकर्तव्य उबार जो लिया
सुकीर्ति पाई यदि भस्म हो गये ।[1]

प्रियप्रवास की यह भावना हमें भगवान कृष्ण के उस संदेश का स्मरण दिलाता है जो उन्होंने युद्ध से विरत होने वाले अर्जुन को दिया था-

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय: ।।[2]

कृष्ण के इस समाज उद्धारक रूप में हमें तत्कालीन युग का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से लक्षित होता है । जब ब्रज पर इन्द्र-कोप के कारण महाविपत्ति के बादल घिर आये, प्रतीत हुआ मानो ब्रज जल में लुप्त हो जायेगा ।उस समय प्रियप्रवास के कृष्ण ने अपने समाज की किस तत्परता से सेवा की है इसका अत्यन्त प्रभावशाली चित्र है ।प्राणी के हृदय में एक सेवा और लोकाराधन की वृत्ति लहरा उठती है -

पहुंचते वसुधा उस भाग में
बहु अकिंचन थे रहते जहां
कर सभी सुविधा सब भांति की
वह उन्हें रखते गिरि अंक में
परम वृद्ध असंबल लोक को
दुखमयी विधवा रुज ग्रस्त को
बन सहायक थे पहुंचा रहे
गिरि गुहूवर में कर यत्न वे ।[3]

१- प्रियप्रवास - पृ० १५०, सर्ग एकादश छंद ८७
२- श्रीमद्भगवद्गीता -अध्याय २, श्लोक ३७
३- प्रियप्रवास- पृ० १६२ सर्ग द्वादश छंद ५५

'हरिऔध' जी ने उच्च कोटि के जन सेवक का रूप चित्रित किया है। कृष्ण के समाज सेवी, लोकरंजनकारी रूप का विकसित चित्र मथुरा में देखने को मिलता है, कुशल राजनीतिक के रूप में व्यवस्था स्थापित करते हैं 'निस्वार्थ भूत हित औ कर लोक सेवा' इस विचार को प्रश्रय देते हैं। वास्तव में यह सत्य भी है जो अपना स्वार्थ न रख कर जन की सेवा करता है वही सब के हृदय में सम्मान और श्रद्धा उत्पन्न कर पाता है।

प्रियप्रवास के समाजसेवी कृष्ण के हृदय में सेवा की जो भावना है उसका चित्रण अनेक स्थानों पर किया गया है। वह लोकसेवी पुरुष को सच्चा आत्मत्यागी कहते हैं— 'रोगी दुखी विपद आपद में बड़ों की

सेवा सदैव करते निज हस्त से थे
ऐसा निकेत ब्रज में न मुझे दिखाया
कोई जहां दुखित हों पर वे न होवें।'८७।

+ +

जी से प्यारा जगत हित और लोक सेवा जिसे है
प्यारी सच्चा अवनितल में आत्मत्यागी वही है[1]।।४२

देश की चिंता ने कृष्ण के हृदय में घर कर लिया था। समाज और जाति के उत्थान के लिए वे अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का बलिदान कर देते हैं। कर्म क्षेत्र का पथ बड़ा कंटकाकीर्ण होता है कृष्ण केवल प्रेमी ही नहीं थे जो प्रेम के लिए बैठकर आंसू बहाते रहते, उनके सन्मुख तो कर्तव्य का महान सागर उद्वेलित हो रहा था[2]। लोकसेवी होने के कारण ही लोकप्रिय थे दर्शन मात्र लोगों के हृदय में उत्साह का संचार करता था। कृष्ण को आता देख —

' बहु युवा युवती ग्रह बालिका, विपुल बालक वृद्ध वयस्क भी
विवश से निकले निज गेह से, स्वहग का दुख मोचन के लिए।।[3]

१- प्रियप्रवास-पृ० १८७, सर्ग द्वादश, छंद ८७। ; पृ० २४४ सर्ग षोडश छंद ४५
२- 'हरिऔध' और उनका साहित्य -पृ० १२८- पं० मुकुन्ददेव शर्मा
३- प्रियप्रवास- पृ० ३ - सर्ग प्रथम, छंद १३

इस प्रकार नायक के द्वारा मानवता के उच्चतम दृष्टिकोण का चित्र उपस्थित किया जाता है जो समाज के लिए जाति के लिए, देश के लिए एक प्रतीक बन कर सम्मुख आता है।--

आज कवि का दृष्टिकोण ही हो गया है कि मानवता की प्रगति और समाज का उत्थान । देवताओं की तुलना में भी मानव को श्रेष्ठ प्रकट किया है-साकेत में गुप्त जी ने लिखा कि सुरगण पृथ्वीलोक में आकर मानव के उदात्त चरित्र का अवलोकन करें--

अमर वृन्द नीचे आवें
मानव चरित देख जावें [1]

प्रसाद जी ने भी कामायनी में मानवता की कीर्ति सब स्थलों में अबाध गति से फैले ऐसा विचार प्रदर्शित किया है -

आज से मानवता की कीर्ति
अनिल भू जल में रहे न बंद
विजयिनी मानवता हो जाय [2]

मानवता के पुजारी महाकवि ने वर्गभेद, वर्णभेद को मिटाने की भावना को महत्व दिया है।कामायनीकार की इस समरसता की धारणा से 'विश्वनीड़' बन जाता है --

सब भेद भाव भुलवा कर
दुख सुख को दृश्य बनाता
मानव कहरे ! 'यह मैं हूं'
यह 'विश्वनीड़' बन जाता ।' [3]

१- साकेत - पृ० ११३, सर्ग चतुर्थ
२- कामायनी - पृ० ५६-सर्ग श्रद्धा
३- ,, पृ० २८६ सर्ग आनंद

वैदेही-वनवास में भी प्राणीमात्र का हितचिंतन, साम्य भावना लोकाराधन ही प्रमुख है ।

'साकेत' संत में द्वारकाप्रसाद मिश्र ने भी ऐसा ही विचार प्रकट किया है-

'न जिसने देखा भू पर स्वर्ग
नरों में विश्वम्भरा भगवान्
वृथा है प्रेम वृथा है कर्म
वृथा है उसका सारा ज्ञान ।
जनार्दन को जनता में लखो यही
है सब धर्मों का सार[१] ।।'

मानवता की रक्षा के हेतु प्राण अर्पित कर दे और परमात्मा को जनता में प्राप्त करें ; इन उच्च विचारों को भरत चरित्र के माध्यम से 'मिश्र जी' ने अत्यन्त ही कौशल से अंकित किया है और पुरुषार्थ को महत्व दिया है । कर्मपरायणता मानव जीवन का प्रमुख आदर्श है केवल ईश्वर के भरोसे बैठे रहना अनुचित है । बुद्धिवादी युग की इन विचारधाराओं को प्राय: सभी महाकाव्यों में किसी न किसी रूप में पाते हैं।

कृष्णायन में भी मानव कल्याण के लिए सुन्दर भावनाएं निहित हैं मानवोचित आदर्श समाज कल्याण के लिए नियम, धर्म, नीति का सुन्दर विश्लेषण किया गया है ।

हरिऔध जी ने वैदेही वनवास में नायक राम को लोकाराधन में रत दिखलाया है और मानव कल्याण के लिए जो त्याग किया है वह सराहनीय है । लोक चर्चा को शान्त करने के लिये अपने आत्म सुखों की तिलांजलि दे दिया और यह दृष्टान्त रक्खा कि जनता के सुख संतोष के लिये मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने प्रिया का भी त्याग कर दिया ।राम ने सीता का त्याग सरलता से नहीं किया -

---

१- साकेत संत - पृ० १५१ - द्वादश सर्ग

तात विदित हो कैसे
अन्तर्वेदना काढ़ कलेजा क्यों
    मैं दिखाऊं तुम्हें
स्वयं बन गया जब मैं निर्मम जीव तो
मर्मस्थल का मर्म क्यों बताऊं तुम्हें ।[1]

नायक राम ने समाज में दुख समूल नष्ट हो, घर में शान्ति की स्थापना हो, सदैव यही प्रयत्न किया और कहते हैं --

पठन कर लोकाराधन मंत्र
करूंगा मैं इसका प्रतिकार
साध कर जनहित साधन सूत्र
करूंगा घर घर शांति प्रसार ।[2]

इस वैज्ञानिक युग में भी कहाकाव्यकार अपने नायक की प्रतिष्ठापना के द्वारा मानव जीवन के प्रत्येक महत् पक्ष का, मानव जीवन के शाश्वत भावों का पूर्ण सामंजस्य स्थापित करता है । विज्ञान, दर्शन और इतिहास के समन्वय के द्वारा मानवता की सृष्टि करता है ।

हमारे यहां ऐसे ऐसे नायकों का निर्माण हुआ है जो अपने सत्य और दृढ़ विचारों से समस्त राष्ट्र को वश में कर लेते हैं । सत्य का आरम्भ अनास्था से होता है आरम्भ में इस मार्ग पर चलने वाले को परिहास का पात्र बनाना पड़ता है किन्तु सत्य सदैव विजयी रहा और समाज उसके साथ हो जाता है । जननायक गांधी ने कितना अपमान और कष्ट उठाया किन्तु अन्त में विजय श्री को प्राप्त किया और सदैव के लिये अमर हो गये ।

१- वैदेही वनवास - पृ० ७
२- ,, पृ० ५६, सर्ग तृतीय

कलाकार के समक्ष ऐसी स्थिति आती है जब वह अपने ही समकालीन किसी महापुरुष का चरित्र अंकित करने को बढ़ता है । महात्मागांधी और प्रेमचन्द आदि युगीन पुरुषों को काव्य का नायक बनाया । ऐसी स्थिति में कवि अपने युगके अंतराल में प्रवेश कर उन समस्याओं को उभारना उचित समझता है जो आज के मानव को संत्रस्त और प्रताड़ित करते हैं और इस समय किसी आदर्श की प्रतिष्ठा संभव नहीं वरन् उन समस्याओं को सुलझाने को व्यक्ति की मनीषा अन्तर्दृष्टि और व्यक्तित्व की प्रखरता ही अधिकतर प्रकाश में लाई जाती है । जैसे गोपाल शरण सिंह का`जगदालोक` ।इसमें महात्मा गांधी के जीवन कीकुछ प्रमुख घटनाओं को ही अंकित किया गया है । श्री रघुवीरशरण`मित्र`द्वारा रचित `जननायक` में भी युग पुरुष महात्मा गांधी को नायक रूप में प्रस्तुत किया है । इन महाकाव्यों में किसी आदर्श की नहीं, व्यक्तित्व की कर्मठता,समस्याओं को सुलझाने की आत्म शक्ति प्रकाश में लाई गई है ।

प्राचीन और नवीन महाकाव्यों के इतिवृत्तों में अंतर यह है कि प्राचीन महाकाव्यों के आधुनिक समस्याओं के आवरण में किसी विशिष्ट सिद्धान्त या सांस्कृतिक सत्य के समर्थन की बात होती थी वहां आधुनिक महाकाव्यों में व्यक्तित्व के विश्लेषण के माध्यम से मानवगत सत्य की उदारता अधिक शक्तिशाली ढंग से उपस्थित की जाती है ।

महाकाव्य का नायक मानवता के उदात्त दृष्टिकोण की प्रतिष्ठापनाको ही अपने जीवन का लक्ष्य समझता है । मानवता का मूल्य विषम परिस्थितियों में आंका जाता है क्योंकि विपत्ति के समय संकल्पों पर अटल रहना महापुरुषों की शक्ति द्वारा ही संभव है । इस आपत्ति में दृढ़ता का दृष्टान्त राष्ट्र पिता बापू के चरित्र में पग पग पर विद्यमान है, नमक के सत्याग्रह के अवसर पर कहते हैं —

यात्रा में गांधी जी बोले
        या तो स्वतंत्रता लाऊंगा

यदि स्वतंत्रता ला न सका मैं
तो धरती में गड़ जाऊंगा
यदि न नमक कर उठा देश से
तो न लौट वापिस आऊंगा
जब तक लक्ष्य नहीं आयेगा
तब तक बढ़ता ही जाऊंगा ।[1]

उनके हृदय का ओज एक एक शब्द में टपकता है -

वह अद्भुत राष्ट्रीय पर्व था, खुली हुई थी बलि की बेला
विजय उसी के चरण चूमती, जो भी आग मौत से खेला[2]

इस दृढ़ता से सफलता स्वयं प्राप्त होती है । आग से खेलने वाला निश्चय ही विजयी होता है ।

आज महान शब्द की परिधि व्यापक हो गई है, विजय, त्याग, उत्सर्ग, आत्मबलिदान, कष्ट सहिष्णुता आदि महानता के अंग हैं केवल युद्ध विजय या सैन्य संचालन ही पराक्रम और महत्त्व का द्योतक नहीं माना जाता आज तो किसी प्रकार के महान् संघर्ष में संलग्न होना उसमें विजय पाना ही महानता है[3] ।

मित्र जी ने अपने महाकाव्य `जननायक` में युग पुरुष गांधी को नायक रूप में अंकित किया है । गुणों से मानव महान् है जाति, वर्ण अथवा कुल से नहीं ।

१- जननायक - पृ० २६६
२- ,, - पृ० २७१
३- कामायनी दर्शन- पृ० १५५

जनकल्याण के लिए, जाति के हित के लिए जन्मभूमि को परतंत्रता से मुक्त करने के लिए जीवन भर मानसिक संघर्षों के बीच रहने वाले 'बापू' के समक्ष हमारा हृदय स्वयं श्रद्धा से भर जाता है । उनके त्याग, सत्य और अहिंसा आदि गुणों ने उन्हें महामानव, युग पुरुष के विशेषणों से विभूषित किया इनके व्यक्तित्व के सामने यह स्मरण भी नहीं आता कि सुर हैं या क्षात्रिय वंश के हैं[1] अथवा किस वंश के हैं । बल्कि अन्त:करण में यही भाव उत्पन्न होते हैं । चारों ओर यही ध्वनि गूंजने लगती है- मानवता के पुजारी, देश में जागरण का संदेश देने वाले महामानव तुम धन्य हो तुम्हारे जन्म से यह मां वसुंधरा कृतार्थ हो गई । मानवता का ऐसा उदाहरण गांधी जी ने प्रस्तुत किया, जिसके समक्ष देवत्व भी शीश झुका देता है । सुरों में भी शत्रु के प्रति प्रतिशोध की भावना पाई गई है किन्तु महामानव गांधी का ध्येय—

जम्बूसर में कहा उन्होंने -
　　अमर शत्रु के सांप काट ले
मानव का यह परम धर्म है
　　दुश्मन के भी जहर चाट ले[2]

इस प्रकार चौबीस दिन की यात्रा को पार कर देश के पुजारी चले जा रहे थे । ऐसे उच्च विचार ऐसा त्यागमय जीवन हमको एक आदर्श लोक में पहुंचा देता है और हम भी महानता की कल्पना करने लगते हैं ।

यही नहीं मित्र जी ने कुछ ऐसे हृदयविदारक दृश्य अंकित किये हैं जिसको पढ़ कर आज भी रक्तों में उफान उठने लगता है । अफ्रीका में हृदय को व्यथित कर देने वाला दृश्य है -रेल से उतर कर घोड़ा गाड़ी में बैठने जाते हैं गांधी - उसमें बैठे हुए गोरे इन्हें अपमानित करते हुए दुतकारते हैं, कोचवान के पास भी नहीं बैठने देते । गोरे कहते हैं —

1- सद्वंश: क्षात्रियो वापि
　धीरोदात्त गुणान्वित: । -साहित्य दर्पण -परि० ६, ११५

2- जननायक - पृ० २६६ सर्ग १७ वां

अरे ओ गांधी ! कुली ! बैठ पैरों में आकर
जगह हवा के लिये छोड़ यह, अबे ! बैठजा पैरों में आकर[1] !`

गांधी ने कहा, बिना बात के झगड़ा करते हो, ईश्वर से भी नहीं डरते मेरे अधिकार को छीनते हो इतना कहने पर -

` इस पर उस गोरे ने उनको दांत पीस घूंसों से मारा
बुरी बुरी गालियां सुनाईं
सीमा रहित चढ़ गया पारा[2] ।

भारत के सच्चे सपूत ने उत्तर दिया-

` गांधी कहते रहे यहीं मैं नहीं बैठ सकता जूतों में
अभी देश का स्वाभिमान है
भारतमाता के पूतों में
यही बहुत है तुमने मुझको
कोचवान के पास बैठाया
यही बहुत है तुमने मेरे
स्वाभिमान पर दांत चलाया
× × × × ×
अब वह गोरा गांधी जी को
लगा खींचने हाथ पकड़ कर
पर गांधी जी ने गाड़ी के
पकड़ लिये सीखचे जकड़ कर
निश्चय करके कहा उन्होंने
चाहे आज कलाई टूटे
किन्तु हटूंगा नहीं यहां से
चाहे आज देह भी छूटे[3] ।।`

१- जननायक - पृ० ६२ सर्ग छठां
२- वही पृ० ६२ सर्ग छठां
३- वही पृ०६२ सर्ग छठां

गांधी ने, जब भी कोई विपदा पड़ी राम को पुकारा और वही सदा आधार बना । अत्यन्त दुखी होकर हैं और विचार करते हैं-

"क्यों परतंत्र देश के वासी
इसी तरह पीटे जाते हैं
क्या मानव मानव के हाथों
इसी तरह थप्पड़ खाते हैं
+ +
हाय गुलामी में मानव का
किसी जगह सत्कार नहीं है ।"[1]

"बापू" जगह जगह से अपमानित हो रहे हैं, होटल में भी रहने को स्थान नहीं मिला । तात्पर्य यह कि हमारे साहित्यकारों ने ऐसे नायकों का सृजन किया जो भीषण यातनाओं को सहन कर के भी मानवता के उदात्त दृष्टिकोण की प्रतिष्ठापना में प्रयत्नशील रहे । प्राचीन और अर्वाचीन दोनों दृष्टिकोणों से नायक का निर्माण ऐसे सिद्धान्तों को लेकर किया गया है जो मानवता को उभार कर समाज के सन्मुख रख सके ।

सत्य, धर्म, न्याय का थापक नायक :-

आज का मानव हृदय का त्याग कर बुद्धिवादी हो गया है । भौतिक उन्नति पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी है । मानव भौतिक ऐश्वर्य के जुटाने में ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है इसी आशा से कि इन्हीं से वह जीवन की वास्तविक शान्ति तथा आनंद प्राप्त कर सकता है परन्तु परिणाम उलटा है उसके इस खेल में भीषण जन संहार होने की संभावना है । बाह्य पदार्थों के प्रति आसक्ति और लिप्सा होने के कारण मनुष्य वास्तविक

१- जननायक - पृ० ६३, सर्ग ६

आनंद और जीवन के सत्य को नहीं प्राप्त कर पाता । व ईर्ष्या, द्वेष, कलह ने मानव को नृशंस बना दिया वह मानवता से दूर जा रहा है । स्वार्थ पोषण जीवन को एक मात्र लक्ष्य बन गया ।प्रतिहिंसा प्रतिशोध में शक्ति का दाय हो रहा है -वास्तविक सत्य का जीवन में लोप हो गया, सुख और शान्ति का अभाव हो गया, कलाकार हमारे इस अभाव की पूर्ति सत्य, धर्म, और न्याय के प्रतीक महापुरुष की स्थापना के द्वारा करता है ।

कवि की दृष्टि इतनी संवेदनशील और व्यापक होती है कि जीवन के सूक्ष्मतम भावों से संपृक्त होकर अभिमत आदर्शों की उपलब्धि करती है और पुन: इन्हीं मूर्त आदर्शों को जो उसकी कल्पना से सजीव हो उठे हैं वह अणु अणु में स्पंदित होते देखता है । विश्व में जो कुछ अन्तर्हित सत्य है उसे वह अपने ज्ञान स्फुलिंगों से प्रोद्भासित करता हुआ अपनी निस्सीम भाव परिधि में प्रतिष्ठित देखना चाहता है । विशेष वस्तुओं का निरीक्षण करते हुए जो स्मृतियां उसके अन्तर में संचित हो जाती हैं वे ही रससिक्त होकर उसकी लेखनी की नोक पर थिरकने लगती हैं ।[१]

सौन्दर्य की शाश्वत शक्ति सत्य का अवलंबन लेकर ही शिव की चरम सीमा पर पहुंचती है । कवि की सौन्दर्य भावना सत्य की जिज्ञासा बन कर जब भीतर के अदृश्य रूप को यत्र तत्र प्रकट करती है तब उसके लिए एक नायक की सृष्टि की जाती है जो हमारे सन्मुख सत्य और शिव का आदर्श उपस्थित करता है । कवि अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा और समन्वय बुद्धि से जीवन की संकुल सघनता में झांक कर मानव मात्र के अंतराल में प्रवेश करता है तथा युग युग के शाश्वत सत्य को, लोक कल्याण की भावना को प्रकट करता है ।

१- साहित्यकी पृ० ४ - शचीरानी गुर्टू

प्राचीनकाल में धर्म की महत्ता सर्वोपरि थी आज धर्म की परिभाषा परिवर्तित हो गयी और विश्व कल्याण की भावना अधिक प्रखर हो गई। हरिऔध जी ने प्रियप्रवास में अपने नायक के द्वारा मुक्ति और तप के परिमार्जित रूप को चित्रित किया है :

जो होता है निरत तप में मुक्ति की भावनासे
आत्मार्थी हैं, न कह सकते हैं उसे आत्मत्यागी
जी से प्यारा जगत हित और लोक सेवा जिसे है
प्यारी सच्चा अवनि तल में आत्म त्यागी वही है
है आत्मा का न सुख किसको विश्व के मध्य प्यारा
सारे प्राणी सरुचि इसकी माधुरी में बंधे हैं
जो होता है न वश इसके आत्म उत्सर्ग द्वारा
ऐ कान्ते है सफल अवनी मध्य आना उसी का ।[१]

आधुनिक महाकवियों ने आज धर्म का रूप परिवर्तित कर दिया है और जगत् हित, समाजहित, आत्म-त्याग की भावना को महत्व दिया है। महापुरुषों की जीवन गाथा भिन्न समयों में भिन्न युगों में युग धर्म के अनुसार परिवर्तित होती रही हैं। श्रीमद्भागवत के कृष्ण और सूरदास के कृष्ण में अन्तर रहा। प्रियप्रवास के कृष्ण के स्वरूप में पर्याप्त परिवर्तन हो गया। जिस प्रकार मनुष्य की वृत्तियों में परिवर्तन होता है उसका उत्थान-पतन होता है उसी प्रकार धार्मिक विचारों का भी उत्थान-पतन होता है। साधारणतया धर्म ब के सार्वभौम सिद्धान्त सनातन रहते हैं परन्तु उनके वाह्य स्वरूप में उन्नति और अवनति का प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की वृत्तियों का प्रतिबिम्ब धर्म पर भी तो पड़ता है। मानव अपने को धर्म के अनुसार कम बनाता है वह अधिकतर यही प्रयत्न करता है कि वह धर्म को अपनी सुविधा के अनुसार साँचे में ढाल ले। समाज का यह प्रभाव धर्म के रूप को सुन्दर कल्याणकारी भी बनाता है

१- प्रियप्रवास - पृ० २४४, सर्ग षोडश, छंद ४२, तथा ४५

और उसमें विकृति भी उत्पन्न करता है। पहिले धर्म सत्य के आधार पर था आज केवल मानव की व्यवस्थित प्रगति के आधार पर रह गया। युग के प्रतिनिधि कवि 'हरिऔध' जी के मानसिक परिवर्तन और विचारों की मौलिकता का आभास उन्हीं के शब्दों में मिलता है --

" काल पाकर मेरी दृष्टि व्यापक हुई मैं स्वयं सोचने विचारने और शास्त्र के सिद्धान्तों का मनन करने लगा। उसी के फलस्वरूप मेरे पश्चाद्‌वर्ती और आधुनिक काव्य हैं। भगवान कृष्ण में अब भी मुझको श्रद्धा है किन्तु वह श्रद्धा अब संकीर्णता, एकदेशिता और अकर्मण्यता, दोष दूषिता नहीं है। ईश्वर एकदेशीय नहीं है, वह सर्वव्यापक और अपरिच्छिन्न है उसकी सत्ता सर्वत्र वर्तमान है, प्राणि मात्र में उसका विकास है -सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन " जिस प्राणी में उसका जितना विकास है वह उतना ही गौरवगरिष्ठ है उतना ही महिमामय है, उसमें उतनी अधिक सत्ता विराजमान है। मानव प्राणी समूह का शिरोमणि है, उसमें ईश्वरीय सत्ता समस्त प्राणियों से अधिक है। इसलिए वह प्राणि श्रेष्ठ है, 'अशर्फुल मखलूकात है ' अतएव मानवता का चरम विकास ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है यही अवतारवाद है। यह सिद्धान्त अत्यन्त व्यापक है। संसार का प्रत्येक महापुरुष इस सूत्र से मान्य, वन्द्य और आदरणीय है। मानवता त्याग कर ईश्वर की चरितार्थता नहीं होती अतएव मानवता का निदर्शन ही आत्मोन्नति का प्रबल साधन है। अवतारों का सम्बल मानवता का आदर्श नहीं था, क्योंकि बिना इस मंत्र का साधन किये कोई 'सर्व भूतहिते रत।' नहीं हो सकता। अतएव उसको इसी रूप में देखने की आवश्यकता है जो उसका मुख्य रूप है और यही कारण है कि आज कल मेरा परिवर्तित मत यही है।"[1]

१- हरिऔध और उनका साहित्य - पृ० २४८ -मुकुन्द शर्मा

ईश्वर के सम्बन्ध में जब 'हरिऔध' जी का यह परिवर्तित मत हुआ तो स्वाभाविक था कि परम्परा से चले आते पूजा पाठ जप तप और अन्य धार्मिक कृत्यों के रूपों का भी उसी के अनुसार परिवर्तन हो । हुआ भी यही-ईश्वरोपासना में लीन भक्तों की नवधा भक्ति ने 'हरिऔध' जी के मत के अनुसार यह रूप ग्रहण किया -

'जी से सारा कथन सुनना
आर्त उत्पीड़ितों का
रोगी प्राणी व्यथित जन का
लोक उन्नायकों का
सच्छास्त्रों का श्रवण सुनना
वाक्य सत्संगियों का
मानी जाती श्रवण अभिधा भक्ति
सज्जनों में
सोये जागें, तम पतित की
दृष्टि में ज्योति आवे
भूले आवें सुपथ पर
औ ज्ञान उन्मेष होवे
ऐसे गाना कथन करना दिव्य न्यारे गुणों का
है प्यारी भक्ति प्रभुवर की
कीर्तनोपाधिवाली ।
विद्वानों के स्वगुरु जन के देश के प्रेमिकों के
ज्ञानी दानी सु-चरित गुणी सर्वतेजस्वियों के
आत्मोत्सर्गी विबुध जन के देव सद्विग्रहों के
आगे होना नमित प्रभु की भक्ति है वन्दनाख्या[1] ।।'

१- प्रियप्रवास - पृ० २५६-५७ षोडश सर्ग, छंद ११८ -१२०

'हरिऔध' जी ने समष्टि कल्याण की भावना को अभिधा भक्ति के माध्यम से प्रकट किया है। जाति के उत्थान, निर्धनों और अनाथों की सेवा को सर्वश्रेष्ठ उपासना और भक्ति कहा है -

" जो बातें हैं भव हितकारि सर्व भूतोपकारी
जो चेष्टायें मलिन गिरती जातियां हैं उठाती
हो सेवा में निरत उनके अर्थ उत्सर्ग होना
विश्वात्मा भक्ति भव सुखदा दासता संज्ञका है
कंगालों की विवश विधवा औ अनाथ आश्रितों की
उद्विग्नों की सुरति करना औ उन्हें त्राण देना
सत्कार्यों का पर हृदय की पीर का ध्यान आना
मानी जाती स्मरण अभिधा भक्ति है भावुकों में।[१]

प्रियप्रवास के रचनाकार ने अपने व्यक्तिगत विचारों ... के अनुसार धर्म के इस परिमार्जित स्वरूप का बोधगम्य चित्रांकन किया है। मानवमात्र का धर्म परोपकार और विश्व कल्याण है, उसी को यत्र तत्र अपनी कृतिमें निरूपित किया है-

" विपद सिन्धु पड़े नर वृन्द के
दु:ख निवारण औ हित के लिये
अरपना अपने तन प्राण को
प्रथित आत्म निवेदन भक्ति है ।।
संत्रस्तों को शरण मधुरा शांति संतापितों को
निर्बोधों को सुमति विविधा औषधी पीड़ितों को
पानी देना तृषित जन को अन्न भूखे नरों को
सर्वात्मा भक्ति अति रुचिरा अर्चना संज्ञका है
नाना प्राणी तरु गिरि लता आदि की बात ही क्या
जो दूर्वा से द्युमणि तक है व्योम में या धरा में

१- प्रियप्रवास - पृ० २५७, सर्ग षोडश छंद १२१-१२२

सद्भावों के सहित उनसे कर्म प्रत्येक लेना
सच्चा होना सुहृद उनका भक्ति है सख्य नाम्नी
जो प्राणी पुंज निज कर्म निपीड़ितों से
नीचे समाज वपु के पग-सा पड़ा है
देना उसे शरण मान प्रयत्न द्वारा
है भक्ति लोक पति की पद सेवनाख्या ।[1]

समाज की बहुमुखी ढंग से सेवा करना समाज में अन्याय उत्पीड़न, अत्याचार, घृणा, ईर्ष्या को दूर करने का यत्न करना ही जीवन का परम धर्म मानना। नवधा भक्ति के उपर्युक्त स्वरूप का चित्रांकन किया है ।

श्री मुकुंद देव शर्मा ने 'हरिऔध' जी के लिए कहा है कि एक लोटा जल और फलफूल मूर्ति पर चढ़ा कर अपने धर्म की इति कर्तव्यता समझ लेना उनकी समझ के परे की वस्तु थी । वे देवालयों की स्थापना को, उनके अस्तित्व को समाज के लिए आवश्यक समझते थे परन्तु देवालयों के प्रचलित रूप और व्यवस्था के प्रति उनके हृदय में तनिक भी अनुराग न था।[2] धर्म के इस परिवर्तित और संशोधित विचारों का समावेश आधुनिक महाकाव्यों में पाते हैं । आज लोगों को धर्म के वाह्य तड़क भड़क में आस्था नहीं है, मानव जीवन की वास्तविक प्रगति, दीन दुखियों के जीवन की रक्षा का उपाय इन वृत्तियों की महत्ता है । इसी कारण मुक्ति का आकांक्षी व और आत्मत्यागी वही है जिसके हृदय में लोक कल्याण की भावना निहित है, विश्व के हित की विचारधारा व्याप्त है ।

इस मानवतावादी युग में मनुष्य का प्रधान धर्म अपने जाति को संकट से उबारना, अनाथ असहायों की रक्षा करना है -इसका चित्रण प्रियप्रवास में 'हरिऔध' जी ने किया है और लोकनायक कृष्ण का कथन है --

'उबारना संकट से स्व जाति का
मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है ।[2]

१- प्रियप्रवास- पृ० २५७-२५८, छंद १२३, १२४, १२५ तथा १२६

२- हरिऔध और उनकासाहित्य- पृ० २५० -मुकुन्ददेव शर्मा

इसी दृष्टिकोण को लेकर आज के कलाकार युग काव्य की रचना करते हैं। इन्हीं विचारों को परिपक्व करने के लिए श्री रघुवीरशरण मित्र ने जननायक और गोपालशरण सिंह ने 'जगदालोक' की रचना किया है जिसमें महामानव युग पुरुष गांधी को नायक के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें किसी आदर्श की नहीं व्यक्तित्व की कर्मठता, समस्याओं को सुलझाने की आत्मशक्ति को प्रकाश में लाने का सफल प्रयास किया है। कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब कलाकार अपने समकालीन किसी महापुरुष का चरित्र चित्रित करने को अग्रसर होता है। सत्य जो प्राचीन काल में था वह आज भी है यह अवश्य है कि सत्य के रूपों के अभिव्यक्तिकरण के अनेक रूप हो गये हैं उसके प्रयोग की अनेक विधियां हो गयी हैं।

आज न्याय की बात भी परिस्थितिजन्य हो गयी उसमें बहुत परिवर्तन हो गया आर्थिक सम्बन्धों से न्याय की डोरी को जोड़ दिया गया। देश की, जाति की प्रगति के लिए जो किया जाय वही न्याय है। पहिले न्याय का दृष्टिकोण सापेक्ष था, आज निरपेक्ष है। जैसे राजा शिवि ने शरणागत बाज के लिए अपना मांस काट कर दिया था उसकी रक्षा करना अपना धर्म समझा। पहिले न्याय व्यक्तिनिष्ठ था राजा पर निर्भर था आज ऐसा नहीं है। मानव मात्र के हित के लिये जो होता है वही न्याय है।

सत्य धर्म पर दृढ़ रहने वाले, न्याय के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाले राष्ट्र पिता गांधी को नायक रूप में चित्रित कर के 'मित्र' जी ने मानव मात्र के लिये अत्यन्त ही कल्याणकारी पथ दर्शाया है। समय को ऐसे ही महामानव की आवश्यकता थी और उन्होंने मानवता के सत्य स्वरूप को स्थापित करके लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। अपनी आत्मशक्ति से असत् का, अन्याय का दमन किया। गांधी लोक के थे, लोकमय थे, लोक कल्याण ही ध्येय था, अपनी महत्ता के कारण ही महात्मा के नाम से संबोधित किये गये। ऐसे महान् व्यक्ति यदा-कदा ही अवतरित होते हैं गृहस्थ होते हुए भी तपस्वी, वैरागी थे, विभूतिवान् व होते हुए भी वीतराग थे। त्यागमूर्ति, करुण हृदय, संयमी और सत्य, अहिंसा के

पुजारी गांधी को कलाकार ने नायक के पद पर आसीन कर जनता को एक ऐसा अमर दीपक प्रदान कर दिया जो सदैव सत्मार्ग को प्रकाशित करता रहेगा। सत्य के रथ पर आरूढ़ होकर अहिंसा के पुजारी गांधी जी ने न्याय की ऐसी पताका फहराई जो सदैव के लिए अमर हो गयी । युग पुरुष गांधी हमारे जीवन के इतने सन्निकट रहे कि उनको अपने आदर्श का प्रतीक बनाने में उनको अपना प्रतिनिधि मानने में हमको संकोच नहीं होता बल्कि हमारी आत्मा स्वत: इसे स्वीकार कर लेती है । यह तो कवि का कौशल है जिसने अपनी तूलिका से उस महामानव का ऐसा अनुपम चित्र प्रस्तुत किया, जिसने जन जन के मानस मंदिर में अपनी प्रतिमा स्थापित कर ली- इतिहास कार यदि गांधी के कंकाल को अमर कर सकता है तो कलाकार उसमें प्राण भर देता है और फिर वह हममें भी स्फूर्ति का संचार करता है और हम नवजीवन प्राप्त करके विश्व के कंटकाकीर्ण पथ को पार करने के लिये तैयार हो जाते हैं ।

गांधी जी को आरम्भ में ही सत्य में आस्था थी शैशवावस्था में विद्यालय में निरीक्षक के आने पर अध्यापक ने कहा -'तुमने गलत क्यों लिखा बगल के विद्यार्थी से देख कर सही लिख देते ' उनका उत्तर एक होनहार बालक का परिचायक है -

चोरी नहीं करूंगा गुरु जी
गलती को स्वीकार करूंगा
चाहे मुझे जला दो जिन्दा
सच्चाई से प्यार करूंगा
जिसमें हरिश्चन्द्र राजा थे, मैं हूं उसी देश का बालक
मैं भी ध्रुव प्रह्लाद बनूंगा शांति अहिंसा सत का पालक ।[१]

जब ~~विलायत~~ विलायत पढ़ने के लिए जाते हैं ~~और~~ वहां पर इन्होंने अपने संयम और दृढ़ चरित्र से ही प्रत्येक अवसर पर विजय प्राप्त की ।इसका वर्णन मित्र जी ने किया है --

---

१- जननायक - पृ० ३१, सर्ग १

" वह विलायती जादूगरनी
अपना जादू लगी चलाने
पर मनमोहन आत्मबल से
उसके जादू लगी जलाने ।।[1]

यही नहीं सत्य के पुजारी गांधी ने विलायत में भी मांसाहार नहीं किया, न मदिरा ही स्पर्श किया । प्रत्येक निमंत्रण में जाते हैं -

" इन मौजों में गये, किन्तु वे
पास नहीं फटके शराब के
मौजों में फल फूल चखे पर
किये नहीं दर्शन कबाब के ।[2]

यह हमारे सामने दृष्टान्त उपस्थित करता है कि मनुष्य किसी भी परिस्थिति में रहे अपने संयम और अपनी सात्विकता को नहीं खोना चाहिए । सदैव सत्य पर दृढ़ रहने का आदेश दिया है-

" चाहे कुछ भी कार्य करो
पर व्यवहारों में सत्य न छोड़ो
प्रिटोरिया में गांधी जी का
गुण सबसे पहिला भाषण था
भेद भाव का भूत भगा दो
यही कह रहे थे वे रह रह ।।[3]"

१- जननायक, पृ० ५५, सर्ग १
२- वही पृ० ६४ सर्ग ४
३- वही पृ० ६६ सर्ग ७

युग पुरुष गांधी ने सत्य को जीवन का प्रधान लक्ष्य माना-

' धरा सत्य के बल पर ठहरी
सत् ही है सत्यम् शिव सुन्दर
शब्द निरर्थक व्यर्थ असत् है
जो हैं नहीं असत् २ नश्वर ।।[१]

राष्ट्र के पुजारी ने देश के हित को ही धर्म माना ।जनता के सुख को कर्तव्य समझा-

मानव बचे महापातक से
सुख से गाते जीव जहां हों
ईश्वर से विनती कर बोले
अपने मंदिर शुद्ध करो तुम
भारत को भगवान बना दो
पैदा फिर से बुद्ध करो तुम ।।[२]

आधुनिक तथा प्राचीन वृत्तों से निर्मित कुछ महाकाव्यों पर दृष्टि डालने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि नायक के द्वारा सत्य, धर्म और न्याय की स्थापना की जाती है । महापुरुषों का जीवन सत्य और न्याय पर आधारित रहता है वही हमारे नायक के पद पर प्रतिष्ठित किये जाते हैं उन्हीं के उदात्त कर्मों का वर्णन करके काव्यकार सत्य और धर्म का वास्तविक स्वरूप समाज के सामने प्रस्तुत करता है ।

१- जननायक - पृ० १७३ , सर्ग ११

२- वही पृ० १४६ सर्ग १०

जीवन के संघर्ष में सन्नद्धता और कटिबद्धता का प्रेरक नायक:-

> 'जीवन ही संघर्ष यहां है
> जड़ में कब संघर्ष हुआ है ?
> संघर्षों के निष्कर्षों से
> वीरों का उत्कर्ष हुआ है'[1]।

श्री रघुवीरशरण मित्र की इन पंक्तियों ने जीवन को ही संघर्ष कहा। जहां चेतनता है वहीं संघर्षण है। संघर्षों के बीच अग्रसर होकर वीरों का उत्थान होता है। कलाकार मानव जीवन के संघर्ष अथवा द्वन्द्व का चित्रण करता है और योग्यतम प्राणि के जीवित रहने के अधिकार का उद्घोष करता है। डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' महाकाव्य में नायक के संघर्षमय जीवन का चित्रण अत्यन्त कुशलता से किया है। धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करने की महत् आकांक्षा को लेकर नायक एकलव्य द्रोणाचार्य के समक्ष जाता है और वह अस्वीकृत कर देते हैं। कहते हैं, तुम निषाद-पुत्र हो और—

> किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी हैं
> जो कि भूमिपुत्र नहीं किन्तु भूमिपति हैं
> मृत्तिका के दीपकों का मोह शेष है नहीं
> जो कि उटजों से बुझते हैं एक फूंक से
> मैं सजा रहा हूं मणि दीप राजगृह में
> जिनके समीप झंझा झांक भी न सकता[2]।
>
> + +
>
> इस निषाद वंश में तो वंशी पर्याप्त है[3]

१- जननायक - पृ० ८७, सर्ग छठां
२- एकलव्य - पृ० १२६ सर्ग षष्ठ
३- वही पृ० १२२ सर्ग षष्ठ

आचार्य द्रोण का यह लक्ष्य कितना मर्मस्पर्शी और अपमानजनक था पर दृढ़व्रती एकलव्य ने इन विषम परिस्थितियों में भी अपने जीवन की दिशा नहीं परिवर्तित की, वीर पुरुषों के संकल्प नहीं बदलते । परिवार का मोह, मित्रों का परिहास, गुरु द्रोण का निरुत्साहित करना किसी भी बात का प्रभाव नहीं पड़ता और गुरु की मृत्तिका की प्रतिमा के समक्ष अस्त्राभ्यास करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और एकलव्य के शील और त्याग के समक्ष द्रोण तथा अर्जुन लज्जित हो जाते हैं -

> दारुण था दृश्य ! गुरु द्रोण हतप्रभ थे
> पार्थ भूमि में गड़े से लज्जित मलीन थे
> और एकलव्य झुका हुआ पदतल में
> रक्त धारा में सना अंगुष्ठ रखा सामने[1] ।

कवि इस प्रकार के चरित्रों का सृजन करके हमको संघर्षों के मध्य दृढ़ और अटल रहने की प्रेरणा देता है । 'साकेत संत' में संत भरत का नायक रूप में चित्रांकन हमारे सम्मुख एक वीतराग गृहस्थ योगी का चित्र उपस्थित करता है । भरत जीवन के द्वन्द्वों के बीच अपने ध्येय की पूर्ति में संलग्न है । किसी भी प्रकार की विषमता उनको अपने पथ से विचलित नहीं कर पाती । भरत के आराध्य राम अपनी हार स्वीकार करते हैं —

> ' आज भरत तो हार भी जीते
> और जीत कर भी मैं हारा[2] ।'

कुछ कलाकारों ने आधुनिक वृत्तों का आधार लेकर अपने काव्य की रचना की है । रघुवीरशरण मित्र ने 'जननायक' में युग पुरुष गांधी के जीवन की प्रमुख घटनाओं का चित्रण किया है । श्री 'द्विरेफ' ने 'युगस्रष्टा प्रेमचन्द' के

१- एकलव्य - सर्ग चतुर्दश -दक्षिणा - पृ० २६८
२- साकेत सन्त - सर्ग १३ पृ० ६६

वैषम्यपूर्ण जीवन का वर्णन किया है । ह्रिरैफ जी ने प्रेमचन्द जी के संघर्षमय जीवन के कतिपय स्थूल चित्र इस कृति में उपस्थित किये हैं –

तिमिर है चारों ओर अगाध
दीप जलता छोटा सा मंद
जग रहा कौन यहां इस काल
जब कि जग की आखें हैं बन्द ?
चलो देखें चल कर हम पास
अरे, यह तो है धनपतराय
यहां ऐसे तम में चुपचाप
अधिक चिंतित यह क्यों हैं हाय ?
चार आने गज से ज्यादा न
पहन पा सका अभी तक वस्त्र
सम्मिलित इसका सभी कुटुम्ब
रहा गुल्ली डंगा ही अस्त्र
सदा अंधेरा पुल का मजबूत
लिया चमरौधा जूता मोल
दाम बारह आने ही मात्र
कहानी में मन डांवाडोल ।।[1]

ऐसे साहित्यकार के जीवन में कितनी निराशा और संकट – पढ़ कर हृदय द्रवित हो जाताहै ।

पहिनने तक को नहीं कमीज
पाठशाला की पास न फीस
जूतियां भी जर्जर पग नग्न
धुन रहा है दीपक भी शीश[2]

१- युगद्रष्टा – प्रेमचन्द्र – सर्ग ३, पृ० ४०
२- वही – सर्ग ३ पृ०४६

इस प्रकार के वैषम्य में भी जो हृदय पुष्प विकसित ही रहे। उसकी आत्म-शक्ति, उसका दृढ़ विचार हमारे सम्मुख एक दृष्टान्त उपस्थित करता है । वैसे भी हम कह उठते हैं राम, कृष्ण, गांधी सभी महामानव अवतारी पुरुषों ने जीवन के झंझा में भी अपना लक्ष्य-दीप प्रकाशित रक्खा । वास्तव में संसार में वही अमर हो सकता है जो संघर्षों की चट्टानों के बीच कुचला जाकर भी निर्जीव न हो हमारे कलाकार इस प्रकार के पात्रों का सृजन करके हमको सद्प्रेरणा देते हैं । सत्य तो यही है कि -

' मैं तो दीपक उसे कहूंगा
झंझावों के बीच जले जो[1] ।'

राष्ट्रभक्त गांधी के प्रति मिश्र जी ने लिखा है—

' उस कर्तव्य निष्ठ को कोई
पत्थर पथ से हटा न पाया
जिसको जग से मोह नहीं है
उसने जग में दीप ब जलाया[2] ।।

जननायक बापू को जीवन में इतना अपमान, प्रताड़ना, और दुःख उठाना पड़ा, उसे कलाकार अपनी कृतियों में भर देता है और इससे हमको यह प्रेरणा मिलती है कि संघर्षों से टकराते हुए जीवन में आगे बढ़ें और अपने लक्ष्य को प्राप्त करें और भीषण द्वन्द्वों से विचलित नहीं होना चाहिए । विपत्ति के समय में मनुष्य दृढ़ रह कर प्रगति के पथ पर चलने में सफल होता है । मिश्र जी ने बड़ा ही सुन्दर विचार प्रकट किया है -

---

१- जननायक - पृ० २५ सर्ग १

२- वही - पृ० १५४ सर्ग १

'बिना आग में तपे स्वर्ण को
कभी निरखते देखा है क्या
रवि के बिना प्रकाश विश्व में
कभी बिखरते देखा है क्या
जो जितना भी तपा आग में
उतना ही वह निखर रहा है
पृष्ठों पर गांधी का जीवन
रूप रश्मि सा बिखर रहा है।'[१]

कष्ट की कसौटी में कसा जाकर ही मानव निखरता है। यह निर्विवाद सत्य है कि नायक जीवन की विषम परिस्थितियों में भी अविचलित रहने की सद्प्रेरणा देता है और लक्ष्य की प्राप्त करने की शक्ति देता है।

नायक के द्वारा समाज का नियमन और संयोजन :-

सत्कवि युग दृष्टा होता है युग का प्रभाव साहित्य और साहित्य का प्रभाव युग पर अवश्य पड़ता है। युग के अनुसार ही कलाकार ने अपनी कृतियों को सजाया। समय ने विलासिता और रसिकता चाहा साहित्य ने पैरों में घुंघरू बांध कर शृंगार के राग अलापे, देश ने वीरों की मांग किया कविता सुन्दरी ने हाथों में तलवार उठा ली, समाज ने सेवक की आवश्यकता प्रकट की। कलाकार ने लोक सेवी महामानव युग पुरुषों का सृजन कर डाला। काव्य सदैव युग का प्रतिनिधित्व करता है उस पर युग का प्रतिबिंब पड़ना स्वाभाविक है और वही सफल काव्य भी है। कवि जो देखता है, सुनता है, अनुभव करता है उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप काव्य का निर्माण करता है।

भौतिकवाद की अधिकता से सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न होने लगा देश अवनति के गर्त की ओर जाने लगा, - 'हरिऔध जी भी युग के साथ थे उनकी वृत्ति स्वयं जाति सेवा, समाज सेवा की ओर विशेष रूप से रमती थी,

---

१- जननायक - पृ० १३० सर्ग ६ वां

उन्होंने हमारे लिये समाजसुधारक, लोक सेवी, विश्व हितकारी नायक कृष्ण का सृजन किया, देश की चिन्ता ने कृष्ण के हृदय में घर कर लिया, इसी को उन्होंने प्रधान कर्तव्य समझा । कृष्ण का ऐसा रूप प्रस्तुत किया जिसकी समाज को आवश्यकता थी। कृष्ण से कहलाया-"विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का

सहाय होना असहाय जीव का
उबारना संकट से स्वजाति का
मनुष्य का सर्व प्रधान कृत्य है[1]।"

"हरिऔध"जी एक सीमा तक गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित हुए । समाज का आधार अहिंसा, सत्य, सहानुभूति और सौहार्द्र होना चाहिए परन्तु इनका उपयोग दुष्टों के लिए नहीं है । अत्याचारी और दुष्टों का दमन करके ही समाज की उत्पीड़ा दूर की जा सकती है तभी लोक कल्याण की स्थापना हो सकती है, लोकाराधन के लिये समाज के कंटकों को दूर करना ही पड़ता है । इन विचारों को हमारे सन्मुख प्रस्तुत करने के लिए, समाज को एक युग पुरुष देने के लिए ऐसे नायक की स्थापना होती है जो हमारे जीवन के निकट आकर हमारी समस्याओं को सुलझाता है, हमारी आवश्यकताओं कीपूर्ति करता है, हमको आत्मशक्ति प्रदान करता है । कवि युग की समस्याओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता ।संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि तथा कालिदास की कृति, हिन्दी में तुलसी, सूर, प्रसाद आदि इंगलिश में शेक्स-पियर शैली यह कलाकार अपने युग की ही देन है, और इनकी रचना समाज के लिए अमूल्य निधि है । समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

प्रसाद जी की आत्मा युग की स्थिति देख कर तड़प उठी । समाज की भौतिकता देख कर व्याकुल हो उठी और उसे अध्यात्म की ओर अग्रसर करने के लिए"कामायनी" की रचना की । ऊंच नीच की भावना ने समाज को विश्रृंखल कर दिया था, जाति भेद बढ़ता गया, वर्णव्यवस्था के स्थान पर ऊंच नीच अधिकार अनधिकार, समानता असमानता, कर्तव्य अकर्तव्य की भावनाएं

१- प्रियप्रवास - पृ० १९०- सर्ग एकादश, छंद ८५

समाज को पतन की ओर ले जाने लगी, ईर्ष्या द्वेष के कारण शक्ति का ह्रास होने लगा । ऐसे समय में प्रसाद जी ने कामायनी को प्रस्तुत किया । उनका विचार है कि प्राचीन प्रथाओं, रूढ़ियों में परिवर्तन आवश्यक है जैसे सर्प केंचुली का त्याग किये बिना जीवन की रक्षा नहीं कर सकता उसी प्रकार सामाजिक आचार-विचार, प्रथाओं का परिवर्तन भी अनिवार्य है । प्रसाद जी ने अपने काव्य में मनु को नायक के स्थान पर प्रतिष्ठित किया है । नायक के हृदय में उस प्रेम की झलक दिखाई है जो भोग से आरम्भ होकर योग में परिणत हो जाता है । श्रद्धा के प्रति मनु का प्रेम आरम्भ में वासनाजन्य है इसी की परिणति अन्त में सामरस्य :योग: में हुई । बड़े बड़े मनीषियों के जीवन में भोग योग का आदि अवसान देखने को मिलता है । मनु के द्वारा हमारे सामने यह विचार आता है कि बुद्धि नियंत्रित श्रद्धा के द्वारा ही मन समरसता की स्थिति को प्राप्त होता है । कलाकार ऐसे नायक की रचना करते हैं जो सामान्य :मानव: की कोटि में आकर हमारी भावनाओं के साथ तद्रूप हो सके । यदि कोई पात्र अकल्पित शक्ति लेकर हमारे समीप आता है, तो वह हमारे समाज का अंग नहीं बन पाता । मनु के द्वारा कलाकार ने हमारे सन्मुख एक ऐसा चरित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जो मानव सुलभ दुर्बलताओं और जीवन के संघर्षों के बीच उस चरम सीमा पर पहुँच जाता है जहाँ जाकर सब कुछ सीमारहित हो जाता है, मनु को एक अखंड आनन्द की अनुभूति होती है । देश की परतंत्रता की बेड़ियों को काटने के लिए एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता थी जो समाज में एकता की लहर उठा दे, भेद भाव की जड़ को मिटा दे, ऊँच नीच की भावना को विलीन कर दे । कलाकारों ने महामानव युग पुरुष गांधी को नायक रूप में प्रस्तुत किया और ऐसा चित्र अंकित किया जिसने समाज को आन्दोलित कर दिया । 'मित्र' जी ने 'जननायक' में सुन्दर दृश्य अंकित किया है -

'मानवता के उस मंदिर में
ऊँच नीच की बात नहीं थी
दुनिया में इंसान एक है
पर वह भंगी यह चमार है

वर्ण भेद का संग चल रहा
शोणित की बह रही धार है
वही रक्त है, वही मांस है, वही रूप है, वही देह है ।
किन्तु भेद कितना भारी है
पानी में बह रहा स्नेह है
वे भी भारत मां के बच्चे
वे भी ईश्वर के बालक हैं
हम उनको दुतकार रहे हैं ।
वे सच्चे आज्ञापालक हैं ।'[1]

इतना दयनीय और मार्मिक वर्णन किया है कि स्वतं सहानुभूति उत्पन्न होजाती है --

' भारत मां के इन लालों को
हम दुर दुर दुर गाली देते
मानो अपने अंगकाट कर
फेंक कोष की ताली देते
हाय कलेजे के टुकड़ों को
हम पैरों से कुचल रहे हैं
वे अपने हरिजन भाई हैं
खारी जल में किन्तु बहे हैं
उन्हीं कलेजे के टुकड़ों को
लगा हृदय से गांधी बोले
मेरे आश्रम में सब आओ
मानस के दवाजे खोले ।'[2]

इस प्रकार सत्कवि अपने नायक के महत् गुणों से युक्त करके समाज को नियोजित करता है, उसकी समस्याओं को सुलझाता है, अभावों की पूर्ति करता है ।

१- जननायक - पृ० १८६ सर्ग १२

२- वही - पृ० १८७ सर्ग १२

कलाकार की लेखनी में वह शक्ति है, जिससे मानव मंत्र मुग्ध होकर नाचने लगता है। इसी शक्ति से वह समाज की नवका को युगानुसार खेने का प्रयत्न करता है।

पूंजीपतियों के विलासमय व और निर्धन श्रमिकों के दयनीय जीवन में विषमता का प्रदर्शन कराते हुए द्विरेफ जी ने 'युग स्रष्टा: प्रेमचन्द' में समाज का अत्यन्त ही कारुणिक दृश्य उपस्थित किया है —

" एक ओर फूलों की शय्या
चांदी का व्यापार मनोहर
स्वर्णाभूषण में ललनाएं
सुरा पात्र देती हैं भर भर
संसृति का ऐश्वर्य चिरंतन
इधर उधर नीचे ऊपर है
और दूसरी ओर धरा है
खाने को दो ग्रास नहीं है
तन की लज्जा ढंक रखने को
फटे वसन भी पास नहीं है
पीने को जल सोने को थल
नहीं कहीं तिनकों का घर है।[1]

इस प्रकार शोषक और शोषित के जीवन की विषमताओं, सामाजिक रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं और समस्याओं को अंकित किया है —

जाति और वर्गगत भेद भाव को मिटाने में मानवतावादी विचारधारा, अछूतोद्धार और शिक्षा प्रचार संबंधी आधुनिक समस्याओं को डा० रामकुमार वर्मा ने एकलव्य में समुचित स्थान दिया है।

१- युगस्रष्टा-- प्रेमचन्द, सर्ग ४, पृ० ६०

समाज में सत्यं शिवं सुंदरम् का प्रवर्तन :-

कवि एक सामाजिक प्राणी है । मानव जाति में जन्म लेने के कारण उस समाज के प्रति उसके भी कुछ कर्तव्य होते हैं । वह अपने को उस समाज से अलग नहीं कर सकता, जिसमें उसका जन्म हुआ है, जिसमें उसने सांसारिक सुख दुखों का अनुभव किया है और सामाजिक प्राणी होने के नाते ही वह अपने युग का प्रतिनिधि कहा जाता है । चाहे वह कल्पना के लोक में ही उन्मुक्त उड़ान लेने वाला ही क्यों न हो उसकी रचनाओं में उस युग की छाप अवश्य होगी, जिसमें उनका सृजन हुआ है ।वह इससे दूर रहना भी चाहे तो नहीं रह सकता यदि उसकी रचना अतीतसे सम्बन्धित है तो भी उसमें तत्कालीन प्रभाव अवश्य होगा ।सभी महान कवियों की रचनाएं चाहे वे किसी काल से सम्बन्ध क्यों न रखती हों, अपने युग की पूर्ण प्रतिनिधि होती है[1]।

किसी भी कृति की गहराइयों में प्रवेश कर हम उस समय की सामाजिक राजनैतिक, सांस्कृतिक दशाओं से पूर्ण रूपेण परिचित हो सकते हैं तुलसी का मानस अपने युग के समस्त हर्ष, विषाद् सुख दुख आदि को अपने अन्तर में छिपाये हैं ।

कवि की आत्मा का क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाता है कि वह उन शाश्वत सत्यों की खोज में भटकने लगती है जिनकी झलक मात्र से जीवन के स्वर्णिम स्वप्नों के संकेत मिलते हैं तब उसकी दृष्टि भी इतनी तीक्ष्ण हो जाती है कि वह तीनों कालों को भेद कर आत्मा द्वारा खोजे गये उन शाश्वत सत्यों से साक्षात् कार करती है और जीवन के उन स्वर्णिम स्वप्नों को उन शाश्वत सत्यों में परिवर्तित कर उन्हें नवीन विकास एवं नवीन जीवन दर्शन का मार्ग दिखलाती है[2]।

१- कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा - पृ० १५५- शिवकुमार मिश्र

२- वही पृ० १५४ - वही

कवि अपनी व्यापक और सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा इन्हीं शाश्वत सत्यों को सुन्दरम भावों में सजा कर समाज के लिये कल्याणकारी चित्र उपस्थित करता है। वही चित्र हमारे सन्मुख युग की परिस्थितियों को प्रस्तुत करता है। कवि के लिये सत्यं शिवं सुन्दरम् का सम्मेलन विश्व का अंतरतम संगीत है। उसमें उसकी सूक्ष्म चेतना अन्तर्निहित रहती है।

यह शिवत्व की काव्य की वह चिरन्तन शक्ति है जो सत्यं और सुन्दरम् की चरम सीमा है। कवि की शिवत्व की भावना सत्य की जिज्ञासा बन कर जब समाज के सन्मुख प्रस्फुटित हो उठती है तो वही सुन्दर और कल्याण-कारी बन जाती है।

'प्रियप्रवास' के रचयिता 'हरिऔध' जी ने जिस समय साहित्य जगत में प्रवेश किया -साहित्य का विषय था - सोई हुई हिन्दू जाति को जगाना- प्राचीन गौरव का गान करना, देश भक्ति, समाज सेवा की ओर संकेत था और कवि ने समाज की बहुमुखी ढंग से सेवा करना अपना कर्तव्य समझा। परम्परा से आये हुए कृष्ण के परब्रह्म स्वरूप को लोक सेवी के रूप में चित्रित किया। कृष्ण का जाति और समाज उद्धारक रूपक चमक उठा। उन्होंने गंभीर स्वर में घोषणा की--

> 'स्वजाति और जन्म धरा निमित्त में
> न भीत हूंगा विकराल व्याल से।'[1]

काव्य में कृष्ण का अलौकिक समाजसेवी रूप निरन्तर हमारे सम्मुख आता है वे सर्वभूत के हित की कामना करते हैं --

> 'सशक्त होते तक एक लोक के
> किया करूंगा हित सर्वभूत का।'[2]

१- प्रियप्रवास- पृ० १४०- सर्ग एकादश, छंद, २५

२- वही - पृ० १४०- सर्ग एकादश छंद २७

परब्रह्म कृष्ण के सत्यस्वरूप को कवि अपने कौशल से सजा कर उनके कल्याणकारी रूप का दिग्दर्शन कराता है । समाज की युग की आवश्यकता को रचनाकार किस प्रकार अपने नायक के द्वारा सन्मुख रखता है -- कृष्ण जाति का ही नहीं, संसार का कल्याण चाहते हैं -

'विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का[1] ।'

यही मानव का प्रधान धर्म है । कवि इस प्रकार समाज में सत्यं, शिवं, सुंदरम् का प्रवर्तन करता है । सत्कवि युगद्रष्टा होता है उसने यही दृष्टिकोण रखा कि मानव मात्र का परब्रह्म के इस लोक कल्याणकारी रूप के प्रति आकर्षण होना समाज, देश, विश्व की दृष्टि से मंगलदायक है और विश्व में ईश्वर के इस लोक रंजनकारी रूप की प्रतिष्ठापना हो जाय तो समस्त संसार सत्य और प्रेम का प्रतीक बन जाय ।

'एकलव्य' के रचनाकार डा० रामकुमार वर्मा ने युग की समस्या अछूतोद्धार का समीकरण सुन्दर रूप से किया है । निषादपुत्र एकलव्य के आचार्य द्रोणाचार्य धनुर्विद्या की शिक्षा देने से विमुख हो जाते हैं केवल शूद्र पुत्र होने से । अपनी सत्य निष्ठा को लेकर एकलव्य वन में गुरु की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर धनुर्विद्या की साधना करता है - और अद्वितीय होता है । अन्त में गुरुदक्षिणा में दक्षिणांगुष्ठ काट कर समर्पित करता है उस समय गुरु द्रोण की वाणी-

हा तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है
सारा वर्णभेद धुल गया रक्तधार से
वीर एकलव्य ! जिस साधना के तरु को
सूर्यचन्द्र किरणों से सींचा दिन रात है
उसको उखाड़ दिया एक क्षण मात्र में
गुरु भक्ति ऐसी जो भविष्य के भाल पर
तिलक बनेगी रवि रश्मि को समेट कर

१- प्रियप्रवास - पृ० १५०- एकादश सर्ग, छंद ८५

पार्थ रक्त देखो इस वीर एकलव्य का
जो कि राजवंशों से भी धोया नहीं जायेगा।[1]

सत्यं शिवं सुन्दरम् का सामंजस्य समाज के सन्मुख एक आदर्श उपस्थित करता है महाकवि ने अपने नायक में वह विभूतियां एकत्रित कर दी, जिसके समक्ष राजवंशी पार्थ ही नहीं, गुरु आचार्य द्रोण भी नतमस्तक हो जाते हैं । हमारी आत्मा स्वयं पुकार उठती है धन्य है एकलव्य का त्याग और आदर्श गुरु-भक्ति ।मानव का शील और गुण उसे उन्नति के शिखर पर पहुंचाता है वंश अथवा उच्च जाति नहीं । कुशल कवि सदैव अपने काव्य में ऐसे युग पुरुष का सृजन करता है, ऐसे नायक का चित्रांकन करता है, जो देश की, समाज की, मानव मात्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एकपथ-प्रदर्शित करता है । काव्यकार अपनी लेखनी से सत्यं शिवं सुंदरम् के प्रतीक के रूप में महान् चरित्रों का निर्माण करता है ।

त्याग से संसार का उपभोग :-

ईश उपनिषद् के अनुसार यह महत् दृष्टिकोण है त्याग से संसार का उपभोग । एक ओर त्याग, दूसरी ओर भोग -दोनों शब्द एक दूसरे के पूर्णतया विरोधी । इसका तात्पर्य है कि संसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति न रखते हुए कर्म को करना। संसार में जल में कमलवत् निलिप्त होकर रहना । आत्म तत्व का यह प्रधान अंग है । कर्म हम सभी करते हैं पर उन त्यागी जनों का कर्म कर्म नहीं है जैसा कि गीता[2] में कहा है त्यागी पुरुषों के कर्मों का फल किसी काल में भी नहीं होता, क्योंकि उनके द्वारा होने वाले कर्म वास्तव में कर्म नहीं है । सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों में फल आसक्ति और कर्तापन के अभिमान को जिसने त्याग दिया है, वही त्यागी है । वास्तव में गीता, उपनिषद् आदि के अनुसार मानव जीवन का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह सांसारिक नश्वर वस्तुओं में लिप्त

१- एकलव्य-पृ० २९६ -२९७ सर्ग १४
२- अनिष्ट मिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्य त्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ।
-श्रीमद्भागवतगीता -अ० १८ श्लोक १२

न हो और अपने कर्म के फल में आसक्ति न रक्खे । इस प्रकार सब शुभ-अशुभ कर्म करते हुए भी न करने के सदृश रहते हैं । हमारे यहां अवतारी पुरुषों ने इस प्रकार के दृष्टान्त हमारे सन्मुख प्रस्तुत किये हैं । आसक्ति और मोह का त्याग बिना ज्ञान के नहीं होता है ज्ञान होने पर वह स्वयं निर्लिप्त हो जाता है जैसे विदेह राज जनक, लोककल्याणकारी कृष्ण, मर्यादापुरुषोत्तम राम, वीतराग गौतम बुद्ध क इन महापुरुषों का जीवन हमारे सामने संसार को आसक्ति रहित होकर भोगने का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण रखता है ।

इन महामानवों के चरित्र और महत् विचारों को युग युग तक अक्षुण्ण बनाये रखने की शक्ति महाकवि के ही पास है । महाकवि अपनी कृतियों में ऐसे नायक का सृजन करता है जिसके एक एक गुण हमारे लिए आदर्श की दिशा निर्धारित करते हैं । कलाकार अपनी तूलिका से महापुरुषों का ऐसा चित्र बनाता है जो हमारे नेत्रों को प्रकाश देता है और हम भी अपने जीवन को निर्मल कंचन बनाने की कल्पना ही नहीं करते बल्कि उसके लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं।

आज समय की बहुत ही गहरी खाई हमारे और गुरु भक्त एकलव्य के बीच हैं परन्तु जब हमारे सामने यह महाकाव्य प्रस्तुत होता है नेत्रों के सन्मुख यह पंक्तियां आती हैं -

गुरु भक्ति तुमने की जिस भांति शिष्य हो
रेखा दृढ़ खींची सदा को क्षितिज रेखा सी
है परोक्ष भक्ति तुम्हारी प्रत्यक्ष भक्ति से
कितनी महान् ! यह युग बतलाएगा
ऐसा शिष्य पा के गुरु कितना कृतार्थ है ।[१]

उस समय आचार्य द्रोण और एकलव्य की सजीव मूर्ति दृष्टिगत होने लगती है और हृदय में गुरुभक्ति की पुनीत भावना लहराने लगती है ।एकलव्य के त्याग पर

१- एकलव्य- पृ० २६२ - सर्ग १४

दृष्टि डालते ही श्रद्धा से सर झुक जाता है जिसने गुरु दक्षिणा के निमित्त जीवन भर की साधना को एक पल में समर्पित कर दिया —

" गुरु मूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना
एक ही आघात में अंगुष्ठ काटा मूल से[१]।।

आचार्य कह उठते हैं —

क्या किया है एकलव्य ! तुमने
मेरी प्रणपूर्ति में विनष्ट निज साधना
एक क्षण में ही कर डाली, शिष्य धन्य हो[२]।"

आचार्य द्रोण एकलव्य को हृदय से लगा देते हैं । यह कवि का कला-कौशल है जो अपने नायक को इस रूप में प्रस्तुत करता है उसके गुणों को इस प्रकार सुसज्जित करता है जो हृदय के अंतस्तल में प्रवेश कर उसे अपने रंग में रंग लेता है । कहने का तात्पर्य है कि सत्कवि अपनी रचनाओं में ऐसे नायकका निर्माण करते हैं जो त्याग, शील, सौम्यता, कर्मण्यता आदि गुणों से विभूषित रहते हैं और हमारे अति निकट आकर हमको सत्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं ।

'साकेत संत' में मिश्र जी ने भरत को नायक के पद पर रक्खा है जो गृहस्थ होते हुए भी तपस्वी हैं । भरत जी के द्वारा कवि हमारे सन्मुख त्याग से भोग का दृष्टान्त उपस्थित करता है । इनके चरित्र की सबसे बड़ी विभूति इनका महान् त्याग है । राज्य सत्ता के स्वामी होते हुए भी राम की चरणपादुका के सहारे भरत नंदिग्राम में कुटी बना कर सेवक की भांति रहते हैं । शम, दम, नियम और संयम को अपनाते हुए लोकसेवा में निरत होकर आसक्ति रहित हो जीवन व्यतीत करते हैं । राम लक्ष्मण गृहस्थी को त्याग कर वन में तपस्वी की

१- एकलव्य- पृ० २९६ सर्ग १४

२- वही - वही - वही

भांति रहते हैं तो भरत साकेत में भोगों के बीच प्रासादों के रहते हुए भी त्यागमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पत्नी भी पति के साथ तपस्विनी रूप में सेवा कर रही है -

"आई उतर तपस्या भू पर नारी बन सुकुमारी
पर सुकुमारी अग्नि शिखा भी जग जग पावन कारी।"[1]

भरत जी जब चित्रकूट में राम से मिलने जाते हैं रास्ते में प्रयागराज में भरद्वाज ऋषि के आश्रम में ऋद्धि-सिद्धि के द्वारा अनेक प्रकार के ऐश्वर्य विभूति की सामग्री प्रस्तुत होती है पर योगिराज भरत के हृदय को आकर्षित नहीं कर पाती क्योंकि सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति का जिसने त्याग कर दिया उसका मन कभी चलायमान नहीं हो सकता। वह केवल कर्तव्य मात्र समझ कर प्रत्येक कर्म को करता है और निरासक्त होकर संसार का उपभोग करता है।

'प्रियप्रवास' में भी कृष्ण के जिस चरित्र का वर्णन आया है वह हमारे सन्मुख त्याग से भोग का उदाहरण प्रस्तुत करता है। राधा और गोपियों के प्रेम में अनुरक्त कृष्ण पल भर में मथुरा चले जाते हैं। कृष्ण ने लोककल्याण की भावना को प्रमुखता दी। यदि संसार में आसक्ति होती, राधा के प्रेम में आसक्ति होती तो कृष्ण यह त्याग नहीं कर सकते थे। कृष्ण ने स्वतः अपने हृदय के अनेक मधुर भावों का शमन किया और कर्मक्षेत्र में अग्रसर हुए। अपने स्नेह को लोक कल्याण, जनहित के रूप में परिवर्तित कर दिया उनका विचार है -

"जी से प्यारा जगत हित और लोक सेवा जिसे है
प्यारी सच्चा अवनि तल में आत्मत्यागी वही है।"[2]

१- साकेत संत - सर्ग १४ :४: अ

२- प्रियप्रवास- पृ० २४४ सर्ग चौदह छंद ४२

'हरिऔध' जी ने राधा से कृष्ण के विश्वरूप परम प्रभु की झांकी का सुंदर चित्रण कराया है । किस प्रकार मनुष्य सब कर्म करता हुआ भी न करने के बराबर है इसकी महिमा समझना कठिन है । कृष्ण एक और सांसारिक कर्मों में व्यस्त दूसरी और पूर्णरूप से अनासक्त -यही है योगियों का त्याग से संसार का उपभोग करना । कृष्णप्रेम में अनुरक्त राधा कहती है-जो आता है न जन मन में जो परे बुद्धि के है

जो भावों का विषय न बना नित्य अव्यक्त जो है
है ज्ञाता की न गति जिसमें इंद्रियातीत जो है
सो क्या है, मैं अबुध अबला जान पाऊं उसे क्यों
शास्त्रों में कथित प्रभु के शीश औ लोचनों की
संख्याएं हैं अमित पग औ हस्त भी हैं अनेकों
सो हो के भी रहित मुख से नेत्र नासादिकों से
छूता खाता श्रवण करता देखता सूंघता है[1] ।'

ऐसे योगी और त्यागी महापुरुषों के लिए ही यह सिद्धान्त बना है । वही ऐसा करने से समर्थ होते हैं, इन्द्रियों द्वारा प्रत्येक कर्म करते हुए भी न करने के बराबर रहता है क्योंकि वह त्याग से भोग करते हैं आसक्ति रहित होकर कर्म करते हैं ।

गुप्त जी ने अपने काव्य में संयोग शृंगार का वर्णन कम किया है जो भोग प्रधान ही हुआ करता है उन्होंने शृंगार के विप्रलंभ का चित्रण अधिक किया है । मनोविकारों का आदर्शी करण निश्चय ही हमें परिमिति के क्षेत्र में व्यक्तिगत जीवन के संकोच और सीमाओं से बाहर ला खड़ा करता है[2] ।

१- प्रियप्रवास - पृ० २५४ षोडश सर्ग - छंद १०६

२- गुप्त जी का काव्य-साधना - पृ० ६१ :थीसिस:

आदर्श की स्थिति ऊर्जस्वित जीवन की मान्यता में है ।[१] यशोधरा की विह्वलता में रति का ऊर्ध्वायन देखिए-

"जाय सिद्धि पावें वे सुख से
दुखी न हों इस जन के दुख से
उपालंभ दूं मैं किस मुख से
आज अधिक वे भाये ।"[२]

गौतम के महानिष्क्रमण पर यशोधरा ~~गोपा~~ का हृदय व्याकुल है पर अपने दुख से उनको दुखी नहीं देखना चाहती वरन् उनकी सिद्धि की शुभ कामना करती है इसमें लोक कल्याण की भावना निहित है, जनता के हित का भाव छिपा है और यशोधरा को वे अधिक भाते हैं । वह अपने सुख का अपने स्वार्थ का सहर्ष त्याग करती है—

मेरे दुख में भरा विश्व सुख
क्यों न भरूं फिर मैं हामी
बुद्धं शरणं धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि ।"[३]

विश्व सुख के लिए अपने जीवन में सर्वस्व के त्याग से बढ़ कर क्या हो सकता है ।

'साकेत' में भी गुप्त जी ने त्याग की पराकाष्ठा का यत्र तत्र बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है । कल्पना में भी उर्मिला को सहन नहीं है - अवधि से पूर्व प्रिय का आगमन । एक ओर प्रियतम का मिलन दूसरी ओर कर्तव्य और त्याग । स्वप्न में लक्ष्मण का आगमन उसे व्याकुल कर देता है और कह उठती है -

---

१- साहित्य शास्त्र - डा० रामकुमार वर्मा - पृ० ५५

२- यशोधरा - पृ० २५

३- यशोधरा - संस्करण २००५ श्लोक ४८

'वह नहीं फिरे क्या तुम्हीं फिरे
हम गिरे अहो ! तो गिरे गिरे !'[1]

त्याग के समक्ष भोग का अस्तित्व कहां रह जाता है । कोई आसक्ति, कोई लिप्सा त्यागी पुरुष को नहीं रहती वह तो केवल कर्तव्य के लिये कर्म करता है और यही कर्म की उच्चतम भावना तथा परिभाषा है । गीता में भगवान योगिराज कृष्ण ने कहा है -'आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर कर्मों को कर ।

'योगस्थ: कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय
सिद्धासिद्धयो:समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।'[2]

इस प्रकार महाकाव्य के नायक निरूपण की ये उपलब्धियां हैं । महाकाव्यकार अपने नायक का सृजन एक महत् दृष्टिकोण को लेकर करता है और उसका चरित्र हमारे समक्ष ऐसा आदर्श प्रस्तुत करता है जिसे अपना कर मानवता कृतार्थ हो जाती है । सत्य, न्याय अथवा धर्म मानव जीवन के प्रधान अंग हैं इसका सजीव चित्रण महाकवि अपने प्रधान पुरुष पात्र के निर्माण के द्वारा करता है । समाज का नियमन संयोजन नायक के द्वारा होता है । जीवन के संघर्षों में सन्नद्ध रहने की सद्प्रेरणा नायक से प्राप्त होती है । महान् त्याग का दृष्टान्त भी महामानव स्थापित करते हैं, तात्पर्य यह कि महापुरुषों के महत् चरित्र को महाकाव्यकार अपनी कुशल लेखनी से अमर बना देता है, और मानव युग युगान्तर उससे सद्प्रेरणा प्राप्त करता है तथा उन्हें स्मरण कर कुछ क्षण को अलौकिक लोक में जा पहुंचता है । यदि महाकवि अपनी तूलिका से अपने नायक के चित्रों में प्राण की संजीवनी न भरता तो वह सब काल के गर्त में विलीन हो जाते । नायक के चरित्रांकन के द्वारा हमें जो उपलब्ध हुआ इस अध्याय में उस पर एक दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है ।

१- साकेत, संस्करण २००५ पृ० २४३

२- श्रीमद्भगवतगीता - अध्याय २ श्लोक ।४८।

* निष्कर्ष और उपसंहार *

निष्कर्ष और उपसंहार

समस्त आचार्यों के महाकाव्य विषयक सिद्धान्तों का अनुशीलन करने के उपरान्त नायक निरूपण के सम्बन्ध में कुछ निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। विविध युगों की परिस्थितियों के अनुसार नायक के व्यक्तित्व का विकास होता रहा है और आचार्यों ने महाकाव्य का परिवेश अधिकाधिक व्यापक बनाने की चेष्टा की है। साथ ही कवियों की तथ्यान्वेषिणी दृष्टि महापुरुषों के विभिन्न गुणों को विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त करती रही है और एक ही महापुरुष की अभिव्यक्ति एक ही युग के दो कवियों के द्वारा भिन्न रही है। सत्रहवीं शताब्दी में तुलसीदास और केशवदास ने एक ही महापुरुष राम का व्यक्तित्व भिन्न प्रकार से चित्रित किया है। आधुनिक युग में हरिऔध तथा द्वारिका प्रसाद मिश्र ने कृष्ण के चरित्र की अभिव्यक्ति भिन्न प्रकार से की है अतः यह आवश्यक है कि युगानुयुग में महापुरुषों के जिन चारित्रिक गुणों के आधार पर महाकाव्य की सृष्टि हुई है, उनका विवेचन सर्वांगीण रूप से किया जाय और नायक के व्यक्तित्व पर ऐसी दृष्टि डाली जाय जो किसी भी युग के नायक पर सामान्य रूप से घटित की जा सके।

नायक के संदर्भ में यह समीक्षा चार कोटियों में विभाजित की जा सकती है :—

१- नायक का व्यक्तित्व

२- नायक की परिस्थिति

३- नायक की दृष्टि

४- मानवता के मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में नायक का महत्व

इन चारों पर कुछ विस्तार से विचार होना चाहिए। जिसकी रूपरेखा निम्न-प्रकार से हो सकती है —

१- नायक का व्यक्तित्व

कर्मठ और उदारचेता

क- महान व्यक्तित्व

ख- जीवन के संघर्ष में सन्नद्धता और कटिबद्धता

ग- वर्गहीनता

घ- शक्तिशाली, आकर्षक और वाक्‌पटु

ङ०-जीवन की निर्धारित दिशा में दृढ़ और लक्ष्य

२- नायक की परिस्थिति

जीवन के प्रति संतुलित दृष्टि

क- पौराणिक, इतिहासप्रसिद्ध अथवा समसामयिक

ख- धीर, विषम परिस्थिति में शांत

३- नायक की दृष्टि

समष्टिवादिता-

क- समाज और राष्ट्र का उन्नायक

ख- जाति का प्रतिनिधि

ग- मानव मात्र के प्रति सहानुभूति और विश्वबन्धुत्व की भावना

४- मानवता के मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में नायक का महत्त्व

भविष्य दृष्टि

क- मानवता के गुणों से विभूषित

ख- व्यक्तिगत भावनाओं का समष्टि में समाहार

नायक का व्यक्तित्व

:क: महान व्यक्तित्व:-

कर्मठ और उदारचेता:- नायकके चरित्र का विकास उसके व्यक्तित्व के माध्यम से होता है । मानवतावादी युग में व्यक्तित्व की प्रधानता है । महान व्यक्तित्व के

लिये कर्मठ और उदारचेता होना आवश्यक है सर्वप्रथम नायक के पुरुषार्थ की विवेचना की जानी चाहिए-

पुरुषार्थ :- प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य के नायकत्व की प्राप्ति के लिये उच्चकुल सम्भूतत्व को एक अनिवार्य गुण ही मान लिया था किन्तु इस परिवर्तित युग में पूर्व मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ आज जिसमें मानवता के आभ्यंतर गुण अधिक मात्रा में होंगे वही उच्च और जिसमें इन गुणों का अभाव होगा वही निम्नकोटि का कहा जायगा क्यों कि जनता यथार्थ में गुणों का ही पूजन करती है ।

आज का युग कुल गौरव से औद्योगिक गौरव को श्रेष्ठ मानता है, कर्म का स्थान सर्वोपरि है । पुरुषार्थ के द्वारा नायक अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है । यदि प्राचीन साहित्य का अवलोकन किया जाय तो विदित होगा कि किस प्रकार प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा नायक ध्येय की पूर्ति करता है अत: कर्मशील होना नायक के लिये आवश्यक गुण है साथ ही उसे अपने आत्म बल पर विश्वास होना चाहिए । प्रत्येक युग में नायक के महान् व्यक्तित्व में कर्मण्यता की प्रमुखता रही ।संघर्षपूर्ण जीवनमें नायक प्रबल पुरुषार्थ से ही विजय प्राप्त करता है ।

डा० रामकुमार वर्मा के`एकलव्य`महाकाव्य में नायक निषादपुत्र एकलव्य ने पुरुषार्थ के द्वारा ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किया ।आचार्य द्रोण ने निषादपुत्र एकलव्य को धनुर्विद्या की शिक्षा देना स्वीकार नहीं किया किन्तु एकलव्य ने द्रोण को ही गुरु मान कर और मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उसी के सन्मुख अभ्यास किया और धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया ।राष्ट्र पिता बापू ने अपने पुरुषार्थ से ही जीवन पथ में आने वाली विषमताओं का सामना किया, अपने संकल्प की पूर्ति की और भारत को स्वतंत्र कराया । पुरुषार्थहीन व्यक्ति जीवन में कभी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता नायक में सर्वप्रथम गुण पुरुषार्थ होना चाहिए, पुरुषार्थ ही वह सर्वोपरि गुण है जिसके आश्रय से वह अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा कर सकता है ।

:ख: जीवन के संघर्ष में सन्नद्धता और कटिबद्धता

जिस प्रकार स्वर्ण अग्नि में तपने पर विशुद्ध हो जाता है उसी प्रकार मानव संघर्ष की ज्वाला में तप कर अधिक निखर उठता है, मानव के कंचन जीवन को कसने के लिए संघर्ष ही कसौटी है अत: नायक को जीवन में आने वाली विषमताओं के सन्मुख अडिग रहना चाहिए । अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बाधाओं और विपत्तियों का सामना करने वाला व्यक्ति ही महान् है । नायक को संघर्ष में सन्नद्ध और कटिबद्ध रहना चाहिए, जिसका जीवन जितना अधिक संघर्षमय होता है, उसका व्यक्तित्व उतना ही अधिक उज्ज्वल होता है । पौराणिक नायक अथवा समसामयिक नायक सभी के जीवन पट संघर्ष के रंगों से रंगे हुए हैं और उन संघर्षों से जूझने वाले व्यक्ति ही महान् हैं ।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय रहा और इन्हीं संघर्षों में विजयी होने के कारण ही राम आज भी अमर हैं और उनके चरित्र में कुछ भी परिवर्तन करने का साहस किसी भी साहित्यकार को नहीं हुआ । संघर्ष की शिलाओं से टकरा कर भी अपने संकल्पों में दृढ़ और अचल रहने वाला महान् व्यक्ति महाकाव्य का नायक हो सकता है ।रामकृष्ण, गांधी और एकलव्य आदि महामानवों ने निरन्तर जीवन में आने वाले संघर्षों में कटिबद्ध रह कर अपने ध्येय की पूर्ति की ।

:ग: वर्गहीनता:- दिनकर जी की इन पंक्तियों में जाति को महत्त्व देने वाले समाज की कटु आलोचना की गयी है --

> 'धंस जाये वह देश अतल में गुण की जहां नहीं पहिचान
> जाति गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहां सुजान ।'

जो समाज सच्चे गुणों का सम्मान न करके जाति के आधार पर ऊंच-नीच का विभाजन करता है आज वह सम्मानित नहीं हो सकता । प्राचीन आचार्यों ने अवश्य उच्चकुलोद्भव, देवता अथवा क्षत्रिय को नायक माना था किन्तु वर्तमान युग में इस सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी जा सकती और न यह नायक का अनिवार्य गुण ही माना जाता है । इस बौद्धिक युग में महान् गुणों से संपन्न

पुरुषार्थी व्यक्ति को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है वह किसी भी वंश अथवा जाति का क्यों न हो ।

प्राचीन सिद्धान्तों के अनुकूल न जाने कितनी महान् प्रतिमाएं कुल और वर्ण के विचार से अंधकार में विलीन हो गयीं । नायक के लिए वर्ग का कोई भी महत्व नहीं होना चाहिए इसी भाव की पुष्टि के लिए आधुनिक महाकाव्यकारों ने वैश्यकुलोद्भव बापू को अनेक महाकाव्यों का नायक बनाया है । महामानव, जगदालोक, जननायक के नायक राष्ट्रपिता बापू हैं । गांधी के त्यागपूर्ण जीवन की ओर दृष्टि जाते ही हृदय श्रद्धा से भर जाता है । कुल वंश की परम्परा का ध्यान नहीं रह जाता । इसी दृष्टि कोण को अपना कर डा० रामकुमार वर्मा ने निषादपुत्र एकलव्य को अपने महाकाव्य में नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया है एकलव्य शील, उत्सर्ग गुरुभक्ति आदि गुणों से सम्पन्न महामानव के रूप में हमारे सम्मुख आता है । एकलव्य के त्याग और महान् व्यक्तित्व के समक्ष आचार्य द्रोण को नत होना पड़ा —

> एकलव्य हे !
> तुम विप्र हो, है शिष्य गुरु द्रोण शूद्र है
> हा, तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है ।[1]

इस महाकाव्य में अछूतोद्धार की भावना का चित्रण किया गया है, शिक्षित होने का अधिकार सभी को समान रूप से है इस विचार को महाकाव्यकार ने प्रमुखता दी है —

> 'जाति भेद नहीं, वर्ग वंश भेद भी नहीं,
> शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं ।'[2]

१- एकलव्य : पृ०- २९६ - सर्ग चतुर्दश 'दक्षिणा'

२- एकलव्य : पृ०- २२२ - सर्ग एकादश 'स्वप्न'

अत: इस रूढ़िगत परम्परा को समूल नष्ट कर देना चाहिए कि नायक उच्च वंश का हो। मानवता के गुणों से सम्पन्न किसी भी जाति किसी भी वंश के महान् व्यक्ति को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

:घ: शक्तिशाली,आकर्षक और वाक्पटु

महाकाव्य का नायक उस कृति का प्राण होता है और शरीर में प्राण की भांति उसका स्थान अनिवार्य है। नायक को सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिए क्योंकि वह अकेले समस्त मानवता का और राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। नायक में अदम्य शक्ति का स्रोत होना चाहिए। शक्तिहीन व्यक्ति साधारण जीवन में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता तो जीवन के रण प्रांगण में युद्ध करने वाला नायक बिना शौर्य और बल के कैसे सफल हो सकता है। हमारा भारतीय नायक शक्ति की पराकाष्ठा से संपन्न होकर संघर्षों में दृढ़ रहता है। महामानव राम की शक्ति की सीमा नहीं है। एक ओर अतुलित बलशाली रावण और उसकी अपार सेना दूसरी ओर एकाकी वनवासी राम और राम ने निर्भीक होकर निरन्तर युद्ध किया, अन्त में विजय प्राप्त की। आज भी वही दृष्टान्त उपस्थित है राष्ट्रपिता गांधी ने अपने आत्मबल के द्वारा भारत को स्वतंत्र कराया और आश्चर्यजनक बात यह कि अहिंसा के माध्यम से इतना बड़ा परिवर्तन हुआ जो आज तक इतिहास में कभी नहीं हुआ। अत: नायक को शक्तिशाली होना चाहिए केवल शारीरिक शक्ति ही नहीं बल्कि आत्मशक्ति भी होना अनिवार्य है।

प्राचीन दृष्टिकोण के अनुसार नायक को सुन्दर होना चाहिए-

नायक का गौरवर्ण, अरुण अधर, घुंघराले केश और रतनारे नेत्र अर्थात् वाह्य सौन्दर्य अनिवार्य नहीं है बल्कि उसका आन्तरिक सौन्दर्य आवश्यक है। वह ऐसे उदात्त गुणों से विभूषित हो, जिससे उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली बन सके और वह समाज के आकर्षण का केन्द्र बन सके। क्या महात्मा गांधी में वाह्य सौन्दर्य था ? गांधी जी का व्यक्तित्व ऐसा महान था, उनमें ऐसे अलौकिक गुण थे जो सबको प्रभावित कर देता था। यह अवश्य है कि गुणवान

नायक में शारीरिक सौन्दर्य का पुट सोने में सुगन्ध की भांति महत्वपूर्ण है परन्तु अनिवार्य गुण नहीं है । डा० रामकुमार वर्मा ने अपने नायक एकलव्य के सौन्दर्य की जो रूपरेखा प्रस्तुत की है उससे हमारे सन्मुख श्यामवर्ण के वीर, वनवासी भील का ऐसा स्वरूप आता है जो राम अथवा कृष्ण के रूप के समान कोमल तथा सुकुमार नहीं है किन्तु आकर्षक है, प्रभावोत्पादक है । तात्पर्य यह कि नायक में सौन्दर्य का दृष्टिकोण भिन्न होना चाहिए, पुरुष की सुन्दरता उसका महान व्यक्तित्व, उदात्त चरित्र और प्रबल पुरुषार्थ हो ।आधुनिक नायक को इन विशेषताओं से सम्पन्न होना चाहिए।

वाकपटु :- वचन चातुर्य के साथ वाणी में ओज एक विशेष गुण है । व्यवहार कुशल होने के लिए वाकपटु होना आवश्यक है । अत: नायक में अन्य गुणों के साथ वाक्चातुर्य का गुण होना अनिवार्य है । समसामयिक नेता बापू की वाणी में ऐसी शक्ति थी कि उसके द्वारा अचेतन में भी प्राण का संचार हो जाता था । देश-विदेश में अनेक ऐसे अवसर आये जब गांधी ने अपनी वाकपटुता से विजय प्राप्त की । जिस प्रकार नायक को क्रियाचतुर होना आवश्यक है उसी प्रकार उसे वाकपटु भी होना चाहिए । वाकपटु का तात्पर्य अवसर को देख कर उचित और ओजपूर्ण वचन बोलना है । प्राचीन और आधुनिक दोनों ही सिद्धान्तों से नायक का वचन चातुर होना अनिवार्य होना चाहिए ।

:ड०: जीवन की निर्धारित दिशा में दृढ़ और अचल:-

नायक में इतनी दृढ़ता होना चाहिए कि जीवन का जो लक्ष्य निश्चित कर ले उसकी पूर्ति के लिए सदैव अडिग रहे । किसी भी महान् वृत्ता की पूर्ति में अनेक बाधायें पड़ती हैं यह प्रकृतिगत नियम है यहीं महापुरुषों की परीक्षा होने लगती है, विषमताओं से संघर्ष कर के अपने संकल्प की पूर्ति करने वाला व्यक्ति ही महान है और वह महाकाव्य का नायक पद प्राप्त करने का अधिकारी है ।जितने भी महामानव हुए उन्होंने आजीवन कष्ट सहन किये किन्तु वे अपने संकल्प से विचलित नहीं हुए और लक्ष्य-बिन्दु तक पहुंच कर ही रहे ।

जीवन में आने वाले संकटों को सहन करके अपने निश्चय पर अटल रहना नायक के लिये आवश्यक है ।

:२: नायक की परिस्थिति:-

जीवन के प्रति संतुलित दृष्टि:-

क- पौराणिक,इतिहासप्रसिद्ध अथवा समसामयिक:-

नायक में ऐसी क्षमता होना चाहिए कि वह विषम से विषम परिस्थितियों का सरलता से सामना कर सके, इसके लिए संतुलित दृष्टि होना चाहिए ।पौराणिक नायक हो, इतिहास प्रसिद्ध हो अथवा समसामयिक परिस्थिति में ख्याति प्राप्त कर चुका हो उसके अन्दर संतुलन का भाव होना आवश्यक है जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम को ही लीजिए जब जब विकट स्थिति उत्पन्न हुई उन्होंने शांति के साथ उसका सामना किया । राम का राज्यतिलक होने जा रहा है,चारों ओर आनन्द मनाया जा रहा है अचानक वनगमन की आज्ञा दी गयी वह भी पूज्य पिता के द्वारा किन्तु मुख पर वही शान्ति और वही दृढ़ता—

'राम भाव अभिषेक समय जैसा रहा
वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा'[१]

उसी स्थान पर लक्ष्मण अपने आराध्य राम के प्रति ऐसे अन्याय को सहन नहीं कर पाते ।माता-पिता को अनेक अपमानसूचक शब्द कहते हैं -

'खड़ी है मां बनी जो नागिनी यह
अनार्या की जनी हतभागिनी यह'[२]

१- साकेत - पृ० १९७ सर्ग ८
२- वही - पृ० ७९ सर्ग ३

राम ~~जो~~ धीरोदात्त नायक हैं वह लक्ष्मण को समझाते हैं, शांत करते हैं और कहते हैं कि पूज्य पिता के प्रति ऐसे कटु शब्द कहना अशोभनीय है । लक्ष्मण के इसी उग्र स्वभाव के कारण उन्हें साकेत का नायक मानने में संकोच होता है धीरोदात्त नायक को उग्र नहीं होना चाहिए ।अत: कोई भी महापुरुष हो जो विषम परिस्थितियों में विचलित न हो और संतुलित दृष्टि रख सके वह महाकाव्य के नायक के पद पर प्रतिष्ठित करने के योग्य है ।

लोकविश्रुत अथवा इतिहासप्रसिद्ध नायक जनता के हृदय में स्थान पाने में अधिक समर्थ होता है क्योंकि पहिले से ही बंधी हुई मनोवृत्ति को आकृष्ट तथा प्रभावित करने में अधिक सफलता मिलती है । राम कृष्ण और बुद्ध के प्रति चिरसंचित श्रद्धा को जागृत करने में कवि को अधिक प्रयास की आवश्यकता नहीं रहती ।इसी प्रकार तत्कालीन महापुरुष को भी नायक मान कर कई महाकाव्य की रचना हुई है उसमें भी महाकाव्यकार को सफलता मिली है, जैसे राष्ट्रनायक गांधी को लेकर `जननायक' `महामानव' आदि का निर्माण हुआ है किन्तु कल्पित कथावस्तु अथवा कल्पित नायक को वह ख्याति नहीं मिल सकती जो लोकप्रसिद्ध नायक को मिलती है। समसामयिक महापुरुष को नायक माना जा सकता है क्योंकि गांधी को हम आज राम और कृष्ण की ही भांति पूजते हैं ।

इसके अतिरिक्त महान् शब्द की परिधि आज व्यापक हो गई है परिस्थिति में परिवर्तन हो गया है, विप्लव और राज्य क्रान्ति में भाग लेकर सामान्य सिपाही या स्वयंसेवक भी महान हो सकता है राज्यतंत्र या समाजतंत्र में व्यवस्था तथा सामंजस्य स्थापित करने का उद्योग करने वाला सामान्य व्यक्ति भी महान है शांति प्रसार में लीन व्यक्ति तो महात्मा कहा ही जायगा मुख्यतया जन-कल्याण के सभी कार्य महान होते हैं इस दृष्टिकोण से सत्याग्रही, नेता , समाज सेवक, जाति का प्रतिनिधि, राष्ट्रप्रेमी पुरुष भी आज नायक के गौरव पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है, नायक में परिस्थितियों का सामना करने के लिए संतुलित दृष्टि होनी चाहिए।

धीर :- 'धीर' होना नायकके लिए अनिवार्य है, जीवन के संघर्ष में विजय प्राप्त करने के लिए धीर वृत्ति का महान व्यक्ति ही सफल हो सकता है । नायक की चारों कोटियों में उसे धीर होना आवश्यक कहा है जो इस प्रकार है- धीरोदात्त धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त । महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिए। नायक के महान् वृत्त की पूर्ति में ऐसे ऐसे संकट उत्पन्न होते हैं जो साधारण व्यक्ति नहीं सहन कर सकता अत: महापुरुष को शान्त और धीर होना स्वाभाविक है। राम को धीरोदात्त नायक का प्रतीक कहा जाता है जब भी उनके समक्ष जटिल और विषम समस्याएं उपस्थित हुई उन्होंने उसका शान्ति से समाधान किया । वनगमन, सीता का त्याग, भरत का चित्रकूट में आगमन आदि विषम स्थितियों का धीर राम ने सहर्ष सामना किया और अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए ।

३- नायक की दृष्टि :-

समष्टिवादिता

क- समाज और राष्ट्र का उन्नायक, जाति का प्रतिनिधि :-

महाकाव्य युग काव्य होता है और उसका नायक जाति अथवा समाज के प्रतिनिधि के रूप में हमारे सन्मुख आता है । भारतीय सिद्धान्त के अनुसार नायक को सदैव विजयी होना चाहिए क्योंकि वह सारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है उसीकी विजय राष्ट्र की विजय है । कोई लब्ध प्रतिष्ठ महान् चरित्र का व्यक्ति जो राष्ट्र का उन्नायक है महाकाव्य के नायक बनने के योग्य है । महाकाव्यकार भी युगानुसार अपने विचारों को बुद्धिग्राह्य बनाने का प्रयास करता है ।प्रियप्रवास के रचयिता हरिऔध जी और साकेत के निर्माता गुप्त जी ने राम, कृष्ण को लोक सेवक के रूप में चित्रित किया है, परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन किया है । भागवत के रसिक बिहारी कृष्ण घर घर में जाकर दुखी पीड़ितों की अपने हाथों से सेवा करते हैं-

> 'रोगी दुखी विपद आपद में बड़ों की
> सेवा सदैव करते निज हस्त से थे [१]

१- प्रियप्रवास - पृ० १६७ - सर्ग द्वादश

लोकरंजनकारी राम कहते हैं-

'इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया '[1]

और समष्टि के कल्याण के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं ।दृष्टान्त के लिए हम प्राचीन और नवीन नायकों के चरित्र की विवेचना करना उचित समझते हैं ।'जननायक' गांधी का जीवन कष्टमय रहा, उन्होंने राष्ट्र के कल्याण के लिए अपने सुख को महत्व नहीं दिया । देशवासियों को वस्त्र हीन और अन्नहीन देख कर गांधी ने संकल्प कर लिया कि इन बन्धुओं के दुख का निवारण करेंगे ,राष्ट्र के उन्नायक बापू ने समष्टि के हित के लिए महान् त्याग किया । महाकाव्य का नायक युग धर्म जातीय आदर्शों को आत्मसात् कर लेता है वही सर्वजन के मानस मन्दिर का इष्टदेव बन जाता है।

:ख: मानव मात्र के प्रति सहानुभूति और विश्वबन्धुत्व की भावना:-

महाकाव्य का नायक युग पुरुष होता है उसमें मानव मात्र के प्रति बन्धुत्व कीभावना रहती है । लोक कल्याण की मंगलदायिनी विचारधारा को लेकर नायक अपने जीवन की दिशा निर्धारित करता है और 'वसुधैवकुटुम्बकम्' के उद्देश्य को अपनाता है । अत: नायक में विश्वबन्धुत्व की भावना अवश्य होना चाहिए ।हमारे पौराणिक नायक अथवा ऐतिहासिक नायक सब ने विश्वकल्याण के लिये अपने जीवन को अर्पित किया ।मानव मात्र का कैसे हित हो इसी उद्देश्य को लेकर महाकाव्य का नायक विषम से विषम परिस्थितियों का शान्ति के साथ सामना करता है ।

:४: मानवता के मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में नायक का महत्व:-

:क: मानवता के गुणों से विभूषित :-इस मानवतावादी युग में नायक का मानवीय गुणों से संपन्न होना अनिवार्य है क्यों कि जनता गुणों का ही पूजन करती है । यह अवश्य है कि प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार अलौकिक गुणों से युक्त पुरुष सुर अथवा उच्चवंशोद्भव महामानव ही को नायक के पद पर

प्रतिष्ठित किया जासकता ै था । आज मानवमूल्यों की प्रतिष्ठा है अत: दुर्बलताओं के बीच संघर्ष करने वाला साधारण व्यक्ति भी महान् समझा जाता है जैसे प्रसाद जी की "कामायनी" का नायक मनु जिसमें धीरोदात्त नायक के कोई गुण नहीं, वासना की भावनाओं से युक्त, स्वार्थपरक, पग पग पर पराजित होने वाला नायक है किन्तु उसकी मनोवृत्ति अंत में योग में परिवर्तित हो जाती है और वह चरम लक्ष्य पर नायिका श्रद्धा के सहयोग से पहुँच जाता है। तात्पर्य यह है कि इस बौद्धिक युग में मानव का सम्मान है उसके जीवन में मानव सुलभ दुर्बलताओं का सन्निवेश अनुचित नहीं माना जाता ।

वर्तमान दृष्टिकोण से नायक की महानता का मापदंड उसकी मानवता है उसका उदात्त व्यक्तित्व है उच्चकुल अथवा वर्ग नहीं है । किसी भी वर्ग का महार्घ चरित्र वाला व्यक्ति महाकाव्य का नायक बनाया जा सकता है । कुछ गुण ऐसे हैं जिनका होना महापुरुषों के चरित्र में आवश्यक है वह इस प्रकार है - सत्यप्रिय, दयालु, शांत और न्यायपरक -इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को महाकाव्य के नायक के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहिए । हमारे प्राचीन नायकों ने सत्य और न्याय के लिए संघर्ष किया अन्त में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की, अधर्म पर धर्म की विजय हुई ऐसा हमारा भारतीय सिद्धान्त है, भारतीय नायक कभी पराजित नहीं है होता, पौराणिक नायक में कृष्ण, राम तत्कालीन नायक में गांधी इसके उदाहरण हैं । गांधी ने सत्य और अहिंसा के माध्यम से राष्ट्र का कल्याण किया, राम ने पिता के वचन को सत्य सिद्ध करने के लिए अपने सुख की आहुति दी । महाकाव्य में मानवजीवन का शाश्वत सत्य निहित रहता है इसलिए नायक को सत्य का अनुसरण करना पड़ता है । महाकाव्य अपने नायक के सर्वांगीण चित्रण के द्वारा विश्वजनीन भाव-राशि को अभिव्यक्त करता है।

मानवमात्र के कष्ट और पीड़ा को देख कर द्रवित होने वाला दयालु व्यक्ति वास्तव में मानव कहलाने का अधिकारी है । सिद्धार्थ ने रोगी, वृद्ध प्राणी को देखकर व्यथित हो उठे और जीवन को जन्ममरण के चक्र से मुक्त करने का उपाय निकाला । जितने भी महापुरुष हुए अधिकांश रूप में सबके महान वृत्तों को

दयालुता से प्रेरणा मिली । नायक में दयालुता का भाव होना चाहिए। यह गुण मानवता का पोषक है ।इसी प्रकार शान्त और न्यायपरक होना भी नायक के लिए अनिवार्य है । डा० रामकुमार वर्मा के एकलव्य महाकाव्य के नायक ने निम्नवर्ग के प्रति होने वाले अन्याय का विरोध किया ।शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं है इस रूढ़ि को समाप्त किया ।साथ ही यह दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि शिक्षित होने का समान अधिकार मानव मात्र को है । नायक का धीर होना जिस प्रकार आवश्यक गुण है उसी प्रकार शान्तिप्रिय होना भी अनिवार्य है ।शान्त व्यक्ति संकटों का दृढ़ता के साथ सामना कर सकता है और अंत तक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अटल रह सकता है । इसके विपरीत उद्धत और उग्र प्रकृति का पुरुष विषमताओं के सन्मुख स्थिर नहीं रह सकता ।इस प्रकार विवेचनात्मिक दृष्टि डालने के पश्चात् निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि नायक को उपर्युक्त गुणों से संपन्न होना चाहिए, जो किसी भी युग के नायक पर घटित किया जा सकता है।

परिशिष्ट

:क: आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों की नामावलि

:ख: नायक के गुणों के कतिपय उद्धरण

:ग: सहायक पुस्तकों की सूची

आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों की नामावलि

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों की संख्या भी पर्याप्त है। लक्षण की कसौटी पर कौन-से महाकाव्य किस कोटि तक सफल और खरे हैं यह प्रश्न इस स्थान पर विचारणीय नहीं है। इस पर शोध-प्रबंध में पिछले अध्याय में विचार किया गया है। यहां केवल आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों की नामावलि प्रस्तुत की जारही है तथा उनका रचनाकाल भी जानने का प्रयास किया गया है।

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की नामावलि

(१) प्रियप्रवास (सन् १६१४)
(२) रामचरितचिंतामणि (१६२०)
(३) साकेत (१६२६)
(४) कामायनी (१६३५)
(५) नूरजहां (,,)
(६) सिद्धार्थ (१६३७)
(७) वैदेही वनवास (१६३६)
(८) हल्दीघाटी (,,)
(९) श्रीकृष्णचरितमानस (१६४१)
(१०) कुरुक्षेत्र (१६४३)
(११) कृष्णायन (१६४३)
(१२) आर्यावर्त (,,)
(१३) जौहर (१६४५)
(१४) महामानव (१६४६)
(१५) साकेतसंत (,,)
(१६) दैत्यवंश (१६४७)
(१७) विक्रमादित्य (,,)
(१८) जननायक (१६४६)
(१९) अंगराज (१६५०)
(२०) वर्द्धमान (१६५१)

(२१) जयभारत (सन् १६५२)

(२२) जादालोक (,,)

(२३) देवार्चन (१६५३)

(२४) झाँसी की रानी (१६५५)

(२५) पार्वती (,,)

(२६) मीरा (१६५७)

(२७) रश्मिरथी (,,)

(२८) एकलव्य (१६५८)

(२९) उर्मिला (,,)

(३०) तारकवध (,,)

(३१) सेनापति कर्ण (,,)

(३२) युगस्रष्टा-प्रेमचन्द (१६५६)

(३३) लोकायतन (१९६४)

परिशिष्ट - ख

नायक के कतिपय गुणों का उद्धरण

परम्परागत भारतीय आदर्शों के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त कोई सद्वंशी महापुरुष होना चाहिए किन्तु आधुनिक महाकाव्य-कारों ने इस सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी । आज के मानवतावादी युग में महापुरुष के विषय में रूढ़िगत धारणा में परिवर्तन हो गया है ।महानता की परिधि व्यापक हो गयी ।महान् गुणों से युक्त कोई भी महत् चरित्र का व्यक्ति नायकके पद पर आरूढ़ किया जा सकता है उसका उच्च वंश में उत्पन्न होना अनिवार्य नहीं है ।व्यक्तिगत दुर्बलताओं और सबलताओं के बीच अपने ध्येय की पूर्ति करने वाला महारथी ही नायक है । मानव की मूल प्रवृत्तियों के संघर्ष में विजय प्राप्त करना, राष्ट्र के लिए, मानवमात्र के लिए जीवन को उत्सर्ग करना आदि कर्म महानता के द्योतक है । आधुनिक महाकवि अपने प्रधान पुरुष पात्र के जीवन तत्वों को संघटन इस रूप करता है कि वे एक युग एक देश के न हो कर सर्वदेशीय सर्वकालीन बन जाते हैं।

पाश्चात्य मानवतावाद से प्रभावित हो कर हिन्दी के अनेक महाकाव्यकारों ने अतीत के उपेक्षित चरित्रों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया ।संस्कृत वांगमय में इतस्तत: ऐसे वरेण्य गुणियों की झांकी मिलती है जिनके द्वारा यह विदित होता है कि न जाने कितनी महान् प्रतिमाएं कुल और वर्ण के विचार से श्रेष्ठता प्रदान करने की रूढ़ि के हाथों उपेक्षित होकर अन्धकार में विलीन हो गयीं। जनता यथार्थ में गुणों का ही पूजन करती है वस्तुत: गुण ही मानव के यश: शरीर को स्थायित्व प्रदान करते हैं । दिनकर जी ने सुन्दर भाव प्रकट किया है-

> धंस जाय वह देश अतल में गुण की जहां नहीं पहिचान
> जाति गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहां सुजान
> नहीं पूछता है कोई, हम व्रती वीर या दानी हों
> सभी पूछते सिर्फ यही तुम किस कुल के अभिमानी हो
> मगर मनुज क्या करे ? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं
> चुनना जाति और कुल अपने बस की तो है बात नहीं ।"[1]

१- रश्मिरथी- पृ०

मानव अपने शील, स्वभाव, और कर्म से मानव है मानवता वर्ण कुल से नहीं बल्कि गुण से सुशोभित है। निषादपुत्र एकलव्य को डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' का नायक माना है। नायक एकलव्य में शील की प्रमुखता है जो मानव का प्रधान गुण है। वन पर्व में युधिष्ठिर का कथन कितना सार्थक है कि मनुष्य में जाति की अपेक्षा शील ही प्रधान है[1]।

मानवता- कर्मण्यता मानव जीवन का प्रमुख आदर्श है बुद्धिवादी युग में इस भावना को सभी महाकाव्य में किसी न किसी रूप में स्थान दिया गया है। मानवता की रक्षा करना और पुरुषार्थ करना जीवन की सफलता की कसौटी है। साकेत संत में इसका वर्णन सुन्दर रूप में किया गया है -

मनुजता की रक्षा के हेतु
निछावर कर दे अपने प्राण
जनार्दन को जनता में लखो
यही है सब धर्मों का सार[2]

संघर्ष में कटिबद्धता-

श्री रघुवीरशरण मित्र ने बापू को नायक के पद पर प्रतिष्ठित करके जननायक महाकाव्य की रचना की है। बापू के चरित्र में दृढ़ता और कटिबद्धता का मार्मिक चित्रण किया है। यह नायक के लिए अनिवार्य गुण है उसी के मापदंड से वह अपने जीवन की निर्धारित दिशा पर अटल रहता है और संकटों का सामना करता है। एक घटना का वर्णन है, अफ्रीका में गांधी जी घोड़ा गाड़ी में बैठे हैं, गोरे उन्हें अपमानित करते हैं- कहते हैं-

---

१- महाभारत वनपर्व- १८०

२- साकेतसंत -पृ० १५१-सर्ग द्वादश

'अरे ओ गांधी ! कुली बैठ पैरों में आकर
जगह हवा के लिये छोड़ यह, अबे ! बैठ जा पैरों में आकर [1]

घोर अपमान सहकर के भी गांधी स्थान से नहीं हटते और उत्तर देते हैं-

'मैं नहीं बैठ सकता जूतों में,
अभी देश का स्वाभिमान है
भारतमाता के पूतों में [2]

राष्ट्र के पुजारी गांधी के जीवन में इस प्रकार की अनेक घटनायें घटित हुई हैं। युग के समसामयिक साहित्यकार अपने नायक को मानवीय गुणों से विभूषित करके प्रस्तुत करते हैं। नायक का व्यक्तित्व ही प्रमुख है, कथावस्तु प्रकृति चित्रण रस आदि महाकाव्य के अन्य तत्वों का विकास नायक के गुणों की समृद्धि और पुष्टि के लिए किया जाता है।

लोकसेवा:-

प्राचीन काल में धर्म की महत्ता सर्वोपरि थी, वह आज भी है। परन्तु धर्म की परिभाषा, धर्म के सिद्धान्त में परिवर्तन और संशोधन हो गया। प्रियप्रवास में हरिऔध जी ने लोकसेवा के आदर्श का प्रभावशाली चित्रण किया है। नायक कृष्ण का धर्म प्रिय विश्वकल्याणकारी रूप यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है, कृष्ण कहते हैं-

'जी से प्यारा जगत हित और लोकसेवा जिसे है
प्यारी सच्चा अवनि तल में आत्म त्यागी वही है [3]

\+ \+

विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का
सहाय होना असहाय जीव का

1- एकलव्य - पृ० ६२ सर्ग ६

2- वही पृ० ६३ सर्ग ६

3- प्रियप्रवास- पृ० २४४ सर्ग षोडश छंद ४३

उबारना संकट से स्वजाति का
मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है [1]

'हरिऔध' जी ने जातहित,समाजहित की भावना को महत्व दिया है। राष्ट्र को, जाति को संकट से उबारना उस उद्देश्य को सभी साहित्यकारों ने प्रमुखता दी है।

उत्सर्ग- निषाद-पुत्र एकलव्य का त्याग सराहनीय है। जीवन भर की साधना को एक क्षण में अपने गुरु की प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए समाप्त कर देता है। आचार्य द्रोण ने एकलव्य को शूद्र पुत्र होने के कारण शिष्य रूप में ग्रहण नहीं किया किन्तु एकलव्य की धारणा दृढ़ हो चुकी थी उसने मृत्तिका की गुरुद्रोण की मूर्ति स्थापित की और उसी के सन्मुख धनुर्विद्या का अभ्यास करता है और अद्वितीय लाघव प्राप्त करता है, कठोर साधना और दृढ़ आस्था के द्वारा जड़ में भी चेतन की अनुभूति करता है। उसी गुरु के प्रण की रक्षा के हेतु एक पल में अपना दक्षिणांगुष्ठ काट कर चरणों में अर्पित कर देता है, आचार्य के हृदय से उद्गार रूप में यह शब्द निकल पड़ते हैं-

'हा तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है
सारा वर्ण भेद धुल गया रक्त धार में, वीर एकलव्य ! [2]

निषाद-पुत्र एकलव्य के समक्ष आचार्य द्रोण तथा राजवंशी अर्जुन पराजित हो जाते हैं। आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार गुणवान व्यक्ति को नायक के पद पर आरूढ़ किया जा सकता है, समाज में क्षत्रिय या भूप से इतर महापुरुष के लक्षण और गुण किसी भी जाति, किसी भी धर्म के व्यक्ति में मिले वह मान्य है, आदरणीय है। इसी कारण आज हम महात्मा गांधी बुद्ध, ईसा किसी को नायक मान सकते हैं। नायक के गुणों का कोष असीमित है उद्धरण के हेतु कुछ दृष्टान्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

1- प्रियप्रवास- पृ० १५१ सर्ग एकादश छंद ८५
2- एकलव्य-पृ० २९६-९७ सर्ग चतुर्दश 'दक्षिणा'

परिशिष्ट :ग:

सहायक ग्रन्थों की सूची

१-अध्ययन और आलोचना-रामरतन भटनागर, साहित्यसदन, देहरादून, १९५७
२-अरस्तू का काव्यशास्त्र-अनुवा०डा० नगेन्द्र श्री महेन्द्रचतुर्वेदी, हिन्दी अनुसंधान-
परिषद दिल्ली, सं० २०१४
३- आधुनिक साहित्य-नंददुलारे बाजपेयी-भारती भंडार प्रयाग, सं० २००७
४- आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त-सुरेश चन्द्रगुप्त, हिन्दी अनुसंधान
परिषद्, दिल्ली १९५९ ई०
५- आधुनिक तीन महाकाव्य-भारतभूषण सरोज, आगरा, विनोदपुस्तक मंडार १९५२ई०
६-आधुनिक हिन्दी साहित्य-डा०नगेन्द्र, स०ही०वात्स्यायन, प्रदीप कार्यालय,
मुरादाबाद १९४६ ई०
७- आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय -प्रयाग १९५२ई०
८- आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत-डा० केसरीनारायण शुक्ल, काशी
सं० २००४
९- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास- डा०कृष्णलाल, प्रयाग सं० १९९९
१०-आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा -प्रयोग :गोपालदास सारस्वत,
सरस्वती प्रकाशन मंदिर, १९६१ ई०
११- आलोचना तथा इतिहास-डा० एस०पी० खत्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
१२- आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धान्त-रामलाल सिंह, कर्मभूमि प्रकाशन मंदिर,
वाराणसी
१३- एकलव्य -डा० रामकुमार वर्मा -भारती भंडार प्रेस, इलाहाबाद सं०२०१५
१४- कवि प्रसाद-रामरतन भटनागर - प्रयाग, द्वि०संस्करण
१५- कृष्णायन -द्वारिका प्रसाद मिश्र, लखनऊ, सं० २००२
१६- कुमारसंभव-कालिदास निर्णय सागर प्रेस, बंबई सन् १९४६
१७- किरातार्जुनीय-भारवि, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४२
१८- केशवदास-एक अध्ययन :रामरतन भटनागर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
१९- काव्यादर्श -दंडी :व्याख्याकार-रामधारी सिंह 'दिनकर' :औरियंटल बुक डिपो
दिल्ली

२०- काव्यादर्श - दंडी, कलकत्ता सं० १९८२
२१- काव्यदर्पण - रामदहिन मिश्र - ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, प्रथम संस्करण १९४७
२२-काव्यकल्पद्रुम -कन्हैयालाल पोद्दार-जगन्नाथ शर्मा, मथुरा सं० १९९९
२३- काव्यानुशासन - हेमचन्द्र, तुकाराम बंबई, सं० १९०१
२४- काव्य मीमांसा- राजशेखर : अनु० केदारनाथ शर्मा-: बिहार राष्ट्रभाषा
सारस्वत परिषद् पटना सं० २०११
२५- काव्यालंकार - रुद्रट - काव्यमाला २ बम्बई सं० १९८६
२६- काव्यप्रकाश -मम्मट अनुवादक-हरिमंगल सिंह
२७- काव्य प्रकाश-मम्मट, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला काशी सन् १९२६
२८-काव्यालंकार-भामह -निर्णय सागर प्रेस बम्बई, सन् १९४६
२९- कामायनी-जयशंकरप्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद प्रथम सं०
३०- कामायनी -अध्ययन और समीक्षा-योगेन्द्र सुमन, फ्रेन्ड्स बुक डिपो, प्र०सं० १९५६
३१- कामायनी की व्याख्यात्मक आलोचना-विश्वनाथ हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस १९५९ ई०
३२- कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन-डा०द्वारिकाप्रसाद मिश्र, विनोद पुस्तक
मंडार आगरा सं० २०१४
३३- कामायनी और प्रसाद की कविता-गंगा : शिवकुमार मिश्र, रवि प्रकाशन
कानपुर, सन् १९५७
३४- कामायनी अनुशीलन-रामलाल सिंह, इलाहाबाद, सं० २००२
३५- कामायनी दीपिका- नगीनचन्द्र सहगल, १९६१ ई०
३६- कामायनी दर्शन- कन्हैयालाल विजयेन्द्र स्नातक -दिल्ली, प्र०सं०
३७- काव्य के रूप - गुलाबराय, दिल्ली, आत्माराम, १९५८
३८- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास-डा० शकुन्तला दुबे,
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी
३९- गुप्त जी की काव्य-कला : गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश : १९३७ ई०
४०- गुप्त जी की काव्यधारा-त्रिलोचन पाण्डेय - १९५५ ई०
४१- गुप्त जी की कला- डा० सत्येन्द्र, आगरा, प्रथम संस्करण
४२- गुप्त जी की काव्यसाधना-डा० उमाकान्त : नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली प्र०संस्करण १९५८

४३- गुप्त जी की कृतियाँ-श्यामनंदन प्रसाद सिंह-किताब महल, इलाहाबाद प्रथम संस्करण

४४- चन्दवरदायी-और उनका काव्य-डा० विपिनविहारी त्रिवेदी-प्रयाग सन् १९५२

४५-जननायक -रघुवीरशरण मित्र, मेरठ, सन् १९४९

४६- जयशंकर प्रसाद-डा० इन्द्रनाथ मदान-जालंधर, प्रथम संस्करण

४७- " :नंददुलारे बाजपेयी-प्रयाग, तृतीय संस्करण

४८- जायसी और उनका पद्मावत- हजारीप्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली- १९५६

४९-जायसी ग्रन्थावली- पं० रामचन्द्र शुक्ल, काशी सं० २००६

५०-तुलसीदास- डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग, सन् १९५३

५१- तैत्तरीय उपनिषद्-गीताप्रेस गोरखपुर, चतुर्थ संस्करण सं० २००९

५२-दिनकर -प्रो० शिवबालक राम, युनिवर्सल प्रेस, इलाहाबाद

५३- दिनकर की काव्य-साधना-मुरलीधर श्रीवास्तव : अजन्ता प्रेस पटना एन०पी०

५४- दिनकर के काव्य-लालधर त्रिपाठी-आनंदपुस्तक भवन, वाराणसी प्र०स० १९५७

५५-द्विवेदी युग में कविता का पुनरुत्थान-ब्रजदत्त मिश्र, सुधीन्द्र, नागपुर १९५०

५६- दशरूपक- धनंजय, निर्णयसागर प्रेस बम्बई, सन् १९४७

५७- ध्वन्यालोक- आनन्दवर्धन -चौखम्भा संस्कृत सिरीज़ आफिस बनारस १९९७

५८- नैषधचरित:श्रीहर्ष-चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, देहरादून, सन् १९५१

५९- नाट्यशास्त्र- भरतमुनि, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सं० १९४३

६०- प्रसाद साहित्य और समीक्षा-रामरतन भटनागर, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली १९५८

६१- प्रसाद का काव्य- डा० प्रेम शंकर, भारती भंडार, इलाहाबाद प्रथम संस्करण सं० २०१२

६२-प्रसाद और उनका साहित्य-विनोदशंकर व्यास बनारस, तीसरा संस्करण

६३- प्रसाद जी का काव्य-गुलाबराय -आगरा साहित्य रत्नमंदिर, १९५६ ई०

६४- पद्मावत - व्याख्याकार-डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, चिरगांव सं० २०१२

६५- पद्माकर पंचामृत -विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी

६६- पृथ्वीराजरासो -नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्रथम संस्करण

६७- प्रसन्नराघव-जयदेव, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सं० १८४३

६८- प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन-डा० द्वारिकाप्रसाद मिश्र -थीसिस

६९- प्रियप्रवास दर्शन-लालधर त्रिपाठी, बनारस प्रथम संस्करण

७०-प्रियप्रवास - अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'-खंगविलास प्रेस, बांकीपुर
द्वितीय संस्करण

७१- प्राचीन साहित्य-रवीन्द्रनाथ, अनुवादक-रामदहिन मिश्र, हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर
बम्बई, १९३३

७२-पाश्चात्य साहित्यालोचन-लीलाधर गुप्त, प्रयाग, प्रथम संस्करण
के सिद्धान्त

७३- बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य-डा० प्रतिपाल सिंह, ओरियंटल बुकडिपो
१७०४ दिल्ली, प्रथम संस्करण

७४- वाल्मीकि रामायण-अनुवादक-द्वारकाप्रसाद शर्मा-इलाहाबाद-प्रथम संस्करण

७५- भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका-भाग २:डा० नगेन्द्र -ओरियंटल बुक डिपो
दिल्ली, १९५५

७६- भारतीय साहित्य परिचय-शान्तिकुमार नानूराम व्यास -संपादक क्षेमचंद्र सुमन
दिल्ली, १९५७

७७- महाकवि प्रसाद- विजयेन्द्र स्नातक रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, दिल्ली, १९६० ई०

७८-महाकवि हरिऔध-गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश -रामानारायण बुकसेलर प्रयाग,
सं० २००३ द्वितीय संस्करण

७९- महाभारत - गीता प्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण

८०- मैथिलीशरण गुप्त :कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता-डा० उमाकान्त
दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५७ ई०

८१- मैथिलीशरण गुप्त:व्यक्ति और काव्य-डा० कमलाकान्त पाठक, चौखम्बा
विद्याभवन वाराणसी, सं० २०१३

८२- महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास-धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, प्रयाग-प्रथम संस्करण

८३- महाकवि केशवदास-चन्द्रबली पाण्डेय, ग्वालियर प्रथम संस्करण

८४- महावीरप्रसाद द्विवेदी-और उनका युग-डा० उदय भानु सिंह, लखनऊ प्र०संस्करण

८५- मेघनाथ वध-हिन्दी अनुवाद -मैथिलीशरण गुप्त -चिरगांव, सं० २००८

८६- योरोपीय साहित्यकार-विनोदशंकर व्यास -पुस्तक मंदिर काशी, प्रथम संस्करण
१९५२ ई०

८७-युगस्रष्टा :प्रेमचन्द - श्री परमेश्वर द्विरेफ - १९५२ ई०

८८- यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त सं० २००७

८९- रसराज -मतिराम - खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
सं० १९८८

९०- रसमीमांसा-पं०रामचन्द्र शुक्ल-नागरी प्रचारिणी सभा काशी,सं० २०११
द्वि०संस्करण

९१- रसकलश-अयोध्यासिंह उपाध्याय- हिन्दी साहित्य कुटीर,बनारस सं०२००१

९२-रसकुसुमाकर -श्रीप्रतापनारायण सिंह-जू देव-इंडियन प्रेस इलाहाबाद सन्१८९४

९३- रसिकप्रिया-केशवदास सरदार बम्बई सं० १९७१

९४- रसरत्नाकर-जगन्नाथ प्रसाद बिलासपुर १९९९

९५-रसमंजरी-कन्हैयालाल पोद्दार-जगन्नाथशर्मा-मथुरा सं० १९९८

९६- रश्मिरथी-दिनकर अजंता प्रेस, लिमिटेड,पटना नया टोला, १९५२ ई०
प्रथम संस्करण

९७- रामचरितमानस-गीताप्रेस,गोरखपुर, सं० २०१०

९८- रामचंद्रिका - केशवदास,लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस,बम्बई,सं० १९८३

९९-विदेशों के महाकाव्य- अनुवादक-गोपीकृष्ण -प्रयाग सन् १९४६

१००- विचार और विश्लेषण- डा० नगेन्द्र दिल्ली प्रथम संस्करण

१०१-विचार और निष्कर्ष- वासुदेव, दिल्ली प्रथम संस्करण

१०२- वांगमय विमर्श- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस
द्वितीय संस्करण सं० २००५

१०३- वैदेही वनवास- मैथिलीशरण गुप्त -हिन्दी साहित्य कुटीर,बनारस
प्रथम संस्करण

१०४- संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव प्रसाद उपाध्याय बनारस सन् १९५३

१०५-संस्कृत साहित्य का इतिहास- वी०वरदाचार्य अनुवादक-डा० कपिलदेव
इलाहाबाद प्रकाशक-रामानारायणलाल
प्र०संस्करण

१०६- संस्कृत साहित्य का इतिहास-भाग २-कन्हैयालाल पोद्दार,राजस्थान
प्रेस,कलकत्ता, १९३८

१०७- संस्कृत साहित्य का इतिहास-वाचस्पति गैरोला-चौखम्बा, विद्याभवन
वाराणसी, सं० २०१७

१०८- संस्कृत साहित्य का इतिहास-डा०रामजी उपाध्याय,रामनारायण लाल
इलाहाबाद-सं० २०१८

१०६-संस्कृत साहित्य का इतिहास- कीथ -मोतीलाल बनारसी दास, बनारस १६६०
११०-संस्कृत कविदर्शन-डा० भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस, सं० २०१२
१११-संस्कृत साहित्य का इतिहास-मैक्डोनल-अनुवादक-चारुचन्द्र शास्त्री सं० २०१६
११२-समीक्षा-शास्त्र :सीताराम चतुर्वेदी, गयाप्रसाद ज्योतिषी, अखिल भारतीय
परिषद, काशी
११३-समीक्षा शास्त्र-डा० दशरथ ओझा-राजपाल सिंह एंड सन्स दिल्ली १६५५
११४-साकेत संत -डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, विद्यामंदिर कनाट सरकस दिल्ली, प्रथम
संस्करण १६४६
११५-साकेत -मैथिलीशरण गुप्त -साहित्य सदन, चिरगांव झांसी, सं० २०१२
११६-साकेत के नवम सर्ग का काव्य-कन्हैयालाल सहल ~~बुकडिपो, दिल्ली~~ चिरगांव सं०२००७
११७-साकेत सौरभ-नगीनचन्द्र सहगल-रीगल बुकडिपो दिल्ली, १६५६ ई०
११८- साकेत समालोचना-योगेन्द्र नाथ वर्मा - १६५७ ई०
११६-साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन-डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, विनोद-
पुस्तक भंडार, आगरा, १६६१ ई०
१२०-साकेत दर्शन - त्रिलोचन पाण्डेय, आगरा, सं० २०१२
१२१-साहित्य कोष-संपादक मंडल -ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी सं० २०१५
१२२- साहित्य मीमांसा-श्री सूर्यकान्त शास्त्री, हिन्दी भवन लाहौर, चतुर्थ संस्करण
१२३- साहित्य दर्शन -शचीरानी गुर्टू दिल्ली सन् १६५०
१२४- साहित्य की - शचीरानी गुर्टू, शिक्षा मंदिर, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली
१२५- साहित्यालोचन - विनयमोहन शर्मा -साहित्य भवन, इलाहाबाद, १६५२
१२६- साहित्य विवेचन- क्षेमचन्द्र सुमन, योगेन्द्रकुमार मल्लिक, आत्माराम
एण्ड सन्स, दिल्ली, १६५२
१२७-साहित्य शास्त्र-डा० रामकुमार वर्मा-साकेत प्रकाशन, राजकिशोर प्रकाशन -
इलाहाबाद
१२८-साहित्यसागर -बिहारीलाल भट्ट लखनऊ सं० १६६४
१२६-साहित्यदर्पण-विश्वनाथ व्याख्याकार शालिगराम शास्त्री, श्रीमृत्युंजय औषधालय
एलवर्ट रोड, लखनऊ सं० १६६१
१३०-साहित्यदर्पण-विश्वनाथ निर्णय सागर, प्रेस बम्बई, सं० १८४३

१३१-सिद्धार्थ-अनूपशर्मा -हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई सन् १९५३ :प्र०संस्करण
१३२-सिद्धान्त और अध्ययन-गुलाबराय दिल्ली, दूसरा संस्करण
१३३-शतपथ ब्राह्मण -सं० चन्द्रधर शर्मा, काशी सं० १९६४
१३४-श्वेताश्वेतरोपनिषद् -गीता प्रेस गोरखपुर, तृतीय संस्करण
१३५- शिशुपाल वध- माघ, सं० दुर्गाप्रसाद शिवदत्त, बम्बई, सन् १९४०
१३६- श्रीमद्भगवद्गीता-गीताप्रेस, गोरखपुर, दसवां संस्करण
१३७- श्रीमद्भागवत - गीताप्रेस गोरखपुर प्रथम संस्करण
१३८-हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य-डा०गोविन्द राम शर्मा-लखनऊ १९४८
१३९-हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डा० रामकुमार वर्मा-नागपुर १९४०
१४०-हिन्दी महाकाव्य और महाकाव्यकार-रामचरण महेन्द्र, सरस्वती पुस्तक सदन
मोती कटरा, आगरा १९५२
१४१-हिन्दी दशरूपक -डा० भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस
१४२-हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव-डा० शरणाम्बशरण सिंह
भारती भंडार इलाहाबाद सं० २००७
१४३- हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास - डा० भगीरथ मिश्र, ओरियंटल बुक डिपो
दिल्ली सं० २००५
१४४-हिन्दी साहित्य की रूपरेखा-डा०हरदेव बाहरी -मोतीलाल बनारसी दास
दिल्ली, बनारस, पटना
१४५- हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य -ओमप्रकाश -भारतीय साहित्य मंदिर
फव्वारा दिल्ली, १९५०
१४६-हिन्दी में महाकाव्य का स्वरूप-विकास-डा० शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय, बनारस, १९५५
१४७- हिन्दी साहित्य की बीसवीं शताब्दी-नंददुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य
सम्मेलन, प्रयाग, सं० १९९९
१४८- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां-जयकिशनप्रसाद-विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
१९५१
१४९-हिन्दी साहित्य समीक्षा-रामचन्द्र शुक्ल, संपादक -श्रीमूर्तिसुब्रह्मण्यम एम०ए०
साहित्यरत्न
१५०- हरिऔध और उनका साहित्य-मुकुन्ददेव शर्मा - हिन्दी साहित्य कुटीर
बनारस, सं० २०१३ प्र०संस्करण

१५१- हिन्दी काव्य शैलियों का विकास-डा० हरदेव बाहरी -भारती प्रेस १९५७

१५२- हिन्दी वक्रोक्ति जीवित-व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर
संपादक-डा० नगेन्द्र, हिन्दी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली
आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, सं० २०१२, १९५५

पत्र-पत्रिकायें

साहित्य संदेश - सन् १९५३

साहित्य संदेश - मई सन् १९५४

सरस्वती -भाग ३७ खंड १ -सन् १९३६

संगम - वर्ष ५, अंक २५

अवन्तिका - सन् १९५३

सिलवन लैवी का पत्र - सन् १८८८, १७-३

ENGLISH BOOKS

1. English Epic & Heroic Poetry : W. M. Dixon, J. M. Dent and Sons Ltd. London 1912

2. The Epic; an Essay : Abercrombie, London 1922.

3. Epic & Romance : W. P. Kor, London 1908

4. A History of Indian Literature : M. Winternitz Vol. I Calcutta 1927.

5. A History of Sanskrit Literature : A. B. Keith, London 1913

6. Aristotle's Theory of Poetry and Fine Art : Translation by S. H. Butcher, London IVth Edition 1901.

7. Aristotle's Poetics- : Demetrius, Everyman's Library, London, 1943

8. Studies in the History of Sanskrit & Poetics : Sushil Kumar De 1923 in two columes
Vol. 1. Luzae and Co. London W.C.

9. English Literature at the close of the middle ages. : E. K. Chambers, Clarendon Press Oxford 1947.

Kings Land ----- : Rational Mysticism Page 354